મધ્યકાલીન ભારત

ધનપતિ પાણ્ડેય



मध्यकालीन अरब

लेखक

धनपति पाण्डेय

रीडर, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग

भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर-7

प्रकाशक

जानकी प्रकाशन

दिल्ली :: पटना

प्रकाशक
श्री रामवृत सिंह
जानकी प्रकाशन
अशोक राजपथ
पटना-८००००४

मुद्रक
सूर्योदय प्रेस
चकमुसल्लहपुर
पटना-८००००६

द्वितीय संस्करण : जून, १९८२

पुस्तक प्राप्ति-स्थान

जानकी प्रकाशन
अशोक राजपथ
चौहट्टा
पटना-८००००४

जानकी प्रकाशन
१९७९ पंजमीरखान
दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

प्राक्कथन

मध्यकालीन अरब नये कलेवर एवं संस्करण के रूप में छात्रों एवं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। गत कुछ वर्षों से इस विषय में पुस्तक की प्राप्ति नहीं हो रही थी जिससे एम०ए० के छात्रों को कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा था। निरन्तर माँग के कारण पुस्तक का पुनःनिर्माण करना आवश्यक हो गया। नये रूप में पुस्तक को अधिक उपयोगी बना दिया गया है और लगभग सारे अध्यायों का संशोधन करके अधिक सामग्रियों को जोड़ भी दिया गया है। कुछ अध्याय तो एकदम नये ढंग से पुनः लिखे गये हैं और कुछ नये अध्याय जोड़ दिये हैं। आशा है, छात्रों के लिये यह नया संस्करण और भी उपयोगी सिद्ध होगा।

इस्लाम की कहानी में वाद-विवाद के अनेक स्पर्श-योग्य बिन्दु हैं। इन बिन्दुओं का मैंने उल्लेख किया है और उन्हें सुलझाने का प्रयास भी किया है। संभव है, पाठकों को कहीं-कहीं भ्रान्तियाँ भी हों। ऐसे पाठकों से लेखक का आग्रह है कि एक अन्वेषक का मस्तिष्क रखकर अध्ययन करें और कहीं सुझाव एवं तथ्य देने की आवश्यकता महसूस करें, तो उससे लेखक को अवश्य परिचित करावें। लेखक उन्हें सहर्ष स्वीकार करेगा।

पुस्तक-निर्माण में जिन विद्वानों एवं शिक्षकों की सहायता, कृति या कृत्य रूप में, लेखक को मिली है, लेखक उनके प्रति कृतज्ञ है। एम० ए० (इतिहास) अन्तिम वर्ष का सर्वाधिक मेधावी और मेरा प्रिय छात्र श्री अमरनाथ झा धन्यवाद पाने का अधिकारी है, क्योंकि उसने विषय से सम्बद्ध सामग्रियों को जुटाने में मेरी काफी सहायता की है। मैं उसे हार्दिक धन्यवाद देता हूँ तथा उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

—धनपति पाण्डेय

भिखनपुर
भागलपुर
१५-६-८२

दिवंगता इन्दिरा के नाम

अनुक्रमणिका

अध्याय			पृष्ठ
1.	इस्लाम-एक विश्लेषण	...	1-8
2.	जमाना-ए-जाहिलियत	...	9-28
3.	हजरत मुहम्मद और इस्लाम	...	29-61
4.	कुलफा-ए-राशिदीन	...	62-88
5.	उमैय्या वंश का संस्थापक और मुआविया	...	89-105
6.	उमैय्याकालीन समाज	...	106-113
7.	उमैय्याकालीन संस्कृति	...	114-127
8.	उमैय्या शासन का प्रभाव तथा महत्व	...	128-135
9.	उमैय्या शासन का पतन	...	136-143
10.	अब्बासी खिलाफत	...	144-185
11.	अब्बासी खिलाफत की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ	...	186-206
12.	अब्बासी खिलाफत का प्रशासन	...	207-216
13.	अब्बासी समाज	...	215-214
14.	अब्बासी खिलाफत का अवसान	...	223-229
15.	स्पेन का उमैय्या खिलाफत	...	230-268
16.	सिल्जुक तुर्कों का उत्कर्ष	...	269-278
17.	फातिमी खिलाफत	...	279-289
18.	फारस और सीरिया में इस्लाम का प्रसार	...	290-297
19.	धर्म-युद्ध	...	298-329
20.	परिशिष्ट	...	330-334
21.	ग्रन्थ-सूची	...	335-338

अध्याय 1

इस्लाम एक विश्लेषण

(An Analysis of Islam)

तेरह शताब्दियों पुराना इस्लाम का इतिहास धर्म, राजनीति तथा संस्कृति की दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण है। यह मूलतः एक नवीन धर्म के रूप में जन्मा, खिलाफतों ने दूसरी स्थिति में लाकर इसे राज्य का रूप दिया और तीसरी स्थिति में वह एक संस्कृति बन गया। धर्म के रूप में इस्लाम बौद्धधर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म आदि की श्रेणी में आता है। दूसरे शब्दों में यह विश्व के प्रधान धर्मों में एक है तथा विश्व के विभिन्न देशों में इसका प्रसार और विस्तार है। संक्षेप में "इस्लाम एक धर्म मात्र नहीं है, यह एक विशिष्ट धर्म है जिसकी यद्यपि परिभाषा संभव नहीं है तथापि जिसके लक्षण बताए जा सकते हैं।"

इस्लाम को जिन्होंने स्वीकारा है उनके (मुसलमानों) लिये इस्लाम अल्लाह (ईश्वर) का मजहब है। इस मत को अगर माना जाय तो इस्लाम का आविर्भाव सातवीं शताब्दी में नहीं हुआ अपितु सृष्टि की रचना के साथ ही हुआ। जिस दिन ईश्वर ने सृष्टि की उसी दिन यह विधान भी बनाया कि—प्रकृति की शक्तियाँ उसके द्वारा पूर्व निर्धारित परियोजना का अपरिहार्यरूपेण पालन करें। प्राकृतिक जगत को निर्धारित परियोजना का अनिवार्यतः पालन करना है। यह परियोजना का नियम शाश्वत है, स्थायी है, संस्कारी एवं परिशुद्ध है। नियमों का पालन करते समय साथ ही साथ विवेकी तथा बुद्धिमान व्यक्तियों के लिये उसकी परियोजना का, उसकी शक्ति तथा गरिमा को दर्शनीय तथा प्रत्यक्ष बनाना है। ईश्वर ने न केवल प्राकृतक जगत के लिए अपितु मानव जगत के लिये एक परियोजना का निर्धारण किया है। अनादिकाल से ही इस परियोजना का उसने निर्धारण कर रखा है कि मनुष्य को हमेशा व्यक्तिगत रूप में अथवा एक समूह में किस रूप में व्यवहार करना है। मानवीय आधार का एक विशिष्ट तथा उपयुक्त प्रकार है : चाहे यह ईश्वर के प्रति उद्धिष्ट मानवीय व्यवहार हो अथवा अन्य मनुष्यों के प्रति। जीवन-यात्रा का एक सही मार्ग है। ईश्वर ने सृष्टि के समय जिन विविध तथा विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया उनमें मनुष्य भी एक है। किन्तु सृष्टि की सारी चीजों में वह (मनुष्य) इस अर्थ मे भिन्न तथा विशिष्ट है कि वह चेतनशील जीव है, स्वतन्त्र प्राणी है। समस्त चीजों में केवल मनुष्य को ही इस बात की स्वतन्त्रता दी कि अगर वह चाहे तो ईश्वर द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करे अथवा इच्छा न हो तो उनका उल्लंघन करे। सृष्टि काल से ही अच्छाई की अहमियत मानी जाती रही है। किन्तु मनुष्य इस बात के लिये बाध्य नहीं है कि वह इसे अच्छाई को) स्वीकार करे।

स्वतन्त्र एवं चेतनशील होने के कारण मनुष्य वस्तुतः स्वतन्त्र नहीं रह पाता। वह गंभीर उत्तरदायी हो जाता है और उसका यही उत्तरदायीपन उसके

ऊपर हावी हो जाता है। कुरान में एक स्थल पर (33, 72) इस बात को—कि मनुष्य ने उत्तरदायी होना स्वयं स्वीकारा है—प्रतीकात्मक ढंग से समझाया गया है। जब ईश्वर ने स्वर्ग को (आध्यात्मिक शक्तियाँ) एवं पृथ्वी और पर्वत श्रृंखलाओं (प्राकृतिक जगत) को स्वतन्त्रता का विकल्प दिया तो उन्होंने मना किया, मनुष्य ने इसे स्वीकार किया और इस प्रकार उसने अपनी जीवन-यात्रा को स्वयं ही व्यवस्थित करने की चुनौती स्वीकार की। आकाश के तारागण जिस प्रकार एक पूर्वनियोजित व्यवस्था में अपनी राह पर परिभ्रमण करते रहते हैं उस प्रकार की न्याय-संयुक्त व्यवस्था उसे पूर्व प्राप्त नहीं है, किन्तु वह इसके लिए प्रयास करेगा। अपने समाज को विघटनकारी तत्वों तथा बुरी अवस्था से बचाने के लिये मनुष्य को अच्छी तरह समझ-बूझ को रखते हुए रहना चाहिये। अगर वह ठीक से न रहना चाहता है तो इसके लिये भी वह स्वतन्त्र है। वह अशुभ मार्ग को ठीक उसी प्रकार से पकड़ने के लिये स्वतन्त्र है जिस प्रकार शुभ मार्ग को अंगीकार करने के लिये स्वतन्त्र है। मनुष्य सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। ईश्वर ने मनुष्य के लिये एक मार्ग का निर्धारण कर दिया है। जो इसके अनुरूप आचरण करते हैं वे अनन्त कल्याण की प्राप्ति करेंगे और जो विपरीत आचरण करेंगे उनको दारुण दण्ड का भागी बनना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में निर्धारित नियमों का प्रतिपालक बहिश्त में उत्तम पुरस्कार पायेगा और उनकी अवहेलना करनेवाला दोजख में भयंकर दण्ड का अधिकारी होगा। इस्लाम इसी निर्धारित परियोजना को सामने रखता है : उसका प्रधान लक्षण यही है।

इस्लाम यह भी बतलाता है कि ईश्वर ने मनुष्यों को मार्ग-दर्शन भी दिया है जिसके अनुसार उन्हें रहना है, आचरण करना है, जीना है, व्यवहार करना है। नैतिक शिक्षा ही मार्ग-दर्शन है। इस्लाम बतलाता है कि सृष्टि-रचना का काम समाप्त करते ही ईश्वर ने नैतिक आदर्श को स्पष्ट कर दिया। इस्लाम की शब्दावली में आदम प्रथम पैगम्बर अथवा संदेशवाहक था। आदम ने ईश्वर द्वारा निर्धारित नैतिक नियम का संप्रेषण मानव-जाति के प्रति किया, कि मनुष्य को क्या करना चाहिये, तथा उसे किससे बचना चाहिये। कुछ काल तक आदम का उपदेश तो जीवित रहा, किन्तु शनैः-शनैः मनुष्य उसे भूल गये। आदम का प्रयास सफल होकर भी असफल हो गया। तब ईश्वर ने दूसरा दूत भेजा जिसे आदम का ही भाग्य मिला। किन्तु सृष्टि के श्रेष्ठ प्राणी के कल्याणार्थ ईश्वर दूत पर दूत भेजता गया जिसकी निश्चित संख्या का हमें बोध नहीं है। आदम के उपरान्त जिन पैगम्बरों को मुस्लिम जगत याद करता है वे हैं अब्राहम, मोजेज तथा जीसस। यद्यपि इन पैगम्बरों को भी सफलता के सारे सोपानों पर चढ़ने में सफलता नहीं मिली तथापि अन्य पूर्ववर्ती पैगम्बरों की तुलना में वे अधिक सफल रहे और उनके नैतिक उपदेशों से लोग अधिक अनुप्राणित हुए। अब्राहम ने अनेकेश्वरवाद की जगह एकेश्वरवाद की स्थापना की जो कालान्तर में भी बनी रही। अब्राहम के प्रयासों से मिथ्या देवताओं तथा मानव-निर्मित कृत्रिम प्रतिमाओं का निराश मानव-इतिहास मे प्रथम चरण था। किन्तु मानव-जाति के संगठन के अनेक कार्य अधूरे थे। मोजेज ने कुछ बीड़ा उठाया और अब्राहम को जीवित रखने का प्रयास

किया। उसने एकेश्वरवाद का सन्देश ही नहीं दिया, उसे व्यावहारिक रूप भी देने का, क्रिया में लाने का भी प्रयास किया। उसने ईश्वर की एकता तथा उसके नियमों की एकात्मकता पर भी बल दिया। उसके अनुयायियों में इस बात का अभिज्ञान हुआ कि ईश्वर की एक नियम-संहिता है और इस संहिता से सारे मानव प्राणी बँधे हुए हैं। किन्तु उन्होंने उसके लिखित नियम को दोषपूर्ण हो जाने दिया। उनका सर्वाधिक गंभीर दोष इस विश्वास में निहित था कि दैवी आदेश सार्वभौमिक स्वरुपी न होकर केवल उनके लिए ही था। इस मूल के परिशोधन के लिये ईश्वर ने एक दूसरे दूत को भेजा और वह दूत था जीसस। किन्तु जीसस पंथ में गड़बड़ी आ गयी। जीसस के अनुयायियों ने जीसस के संदेश के अनुरूप आचरण न करके जीसस की ही पूजा प्रारम्भ कर दी। यह एक अक्षम्य गलती थी। मुस्लिम विचार के अनुसार जीसस भी अपने पूर्ववर्ती पैगम्बरों के समान ईश्वर द्वारा चुने गये व्यक्ति थे और असाधारण नैतिक चरित्र तथा चमत्कार प्रदर्शनों के बावजूद एक मनुष्य मात्र थे। यद्यपि जीसस ने अपनी पूजा का विरोध किया तथापि उनके समर्थकों ने उन्हें आराध्य मानकर उन्हें पूजना प्रारम्भ कर दिया। यही नहीं, उन्होंने उनकी माता का ईश्वर के साथ अश्लील तथा कुविचारी संबंध-स्थापन प्रदर्शित करने का प्रयास किया। इस प्रकार एक बार पहले की तरह पुनः धर्म में अधार्मिकता, दुर्व्यवस्था एवं दोष का अनुप्रवेश हुआ।

उपर्युक्त बिन्दु तक मानव-इतिहास निराशा का, भटकाव का, अस्थिरता का इतिहास था। पैगम्बर आते गये, पर मानव जाति उनके संदेशों की उपेक्षा करती रही क्योंकि वह ऐसा करने को स्वतन्त्र थी। लेकिन दयालु ईश्वर ने मूर्ख-मानव की मूर्खता पर क्रोध नहीं किया। उसने एक बार पुनः और अन्तिम बार मानव जाति के उद्धार के लिये मुहम्मद को पैगम्बर बनाकर भेजा। इस बार का पैग-म्बर केवल सन्देशवाहक ही नहीं था अपितु इन संदेशों की व्याख्या करने वाला भी था, वह केवल व्याख्याकार ही नहीं था प्रत्युत उनके (संदेशों) अनुसार खुद आच-रण करने वाला भी था। ऐसा करके वह मनुष्यों के एक ऐसे समाज का निर्माण करनेवाला था जो इन संदेशों को निष्ठापूर्वक सुरक्षित रखते हुए विश्व के कोने-कोने में फैलाने का उपक्रम करे।

अबकी बार मूल अथवा उपेक्षा करने का स्थान नहीं था। फिर, इस बार का रसूल तो आखिरी रसूल था। मुहम्मद के पूर्व भी पैगम्बर आये थे और उन्होंने भी ईश्वर के संदेशों का संप्रेषण किया था। किन्तु इस बार के अन्तिम रसूल के आगमन के साथ एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन हुआ। यह कार्य था एक श्रद्धालु समाज की स्थापना जो उसके आदेश के अनुरुप जीवन-यापन करेगा। इस समाज के द्वार सभी के लिये सामान रुप से खुले हैं। ईश्वर अपने अनुयायियों के प्रति प्रतिश्रुत है कि वह सदा उनके साथ है और समय-समय पर उनका मार्ग-दर्शन करता रहेगा। इस प्रकार इस्लाम, जो सृष्टिकाल से ही विद्यमान रहा है, प्रत्यक्ष रूप से मुहम्मद साहब के प्रयास से सातवी शताब्दी ई० में इतिहास में प्रविष्ट हुआ और मानव-समाज में अपने वास्तविक एवं अन्तिम कार्य-सम्पादन में प्रवृत्त

हुआ। इसका सन्देश केवल कुरान में ही सुरक्षित है। इस्लाम के धर्म-रूप की यह कथा है।

इस्लाम का राज्य-सा इस्लाम के उदय के बाद मुहम्मद के मदीनी जीवन से प्रारम्भ होता है। यहीं से इस्लाम का इतिहास भी प्रारम्भ होता है, यहीं से विस्तार का उपक्रम भी बनाया जाता है, यहीं से इस्लाम का धर्म इस्लाम के राज्य के रूप में परिवर्तित होता है। मक्का-त्याग राज्य-संस्थापन का कारण बना। इस्लाम के सिद्धान्त का प्रसार तो बुनियादी शिक्षा ही थी। अतः समाज के संगठन के उपरान्त विस्तार का कार्यक्रम समय था और विस्तारवादी प्रवृति राज्य के निर्माण का मूल इस्लामी इतिहास में मुसलमानी संवत् का प्रथम वर्ग (हिजरी 1=622 इस्वी) पैगम्बर मुहम्द के जन्म का अथवा उनके द्वारा ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति का वर्ष नहीं है, अपितु वह वर्ग है जब मुस्लिम समाज को राजनैतिक प्रभुत्व प्राप्त हुआ। पैगम्बर तथा उनके थोड़े से अनुयायियों ने मक्का से मदीना जाकर एक स्वायत्त समाज की स्थापना की, और यहीं इस्लाम धर्म इस्लाम राज्य बन गया, यहीं से इस्लाम का इतिहास प्रारम्भ होता है।

विस्तार की बुनियाद पाक कुरान ने दी। शुभ कर्म कुरान में बतायी गयी जीवन-यापन की विद्या है और जिसकी अभिव्यक्ति मुस्लिम समाज है। पृथ्वी पर मुस्लिम समुदाय द्वारा 'ईश्वरीय साम्राज्य की स्थापना' के ऐतिहासिक प्रयास में सहभागिता द्वारा मनुष्य ईश्वर के निकट पहुँचता है। इस्लाम 'समाज' की सर्वोपरिता मानी गयी। मुस्लिम समाज केवल एक सामाजिक वर्ग ही नहीं, एक धार्मिक संस्था भी है। 'धार्मिक संघ' तथा 'राज्य' अभिन्न हैं। इसे और स्पष्ट करना आवश्यक है। इस्लाम के अनुसार परम लक्ष्य 'साथ' अथवा परलोक में परम सुख की प्राप्ति है। यह सुख ईश्वर को एकान्तिक सेवा (इबाद) से प्राप्त है जिसका अर्थ है ईश्वर की आज्ञा के पूर्ण पालन का भाव। यह आज्ञा-पालन ईश्वर के प्रयोजन तथा कार्य के ज्ञान (इस्म) द्वारा ही सम्भव है। कुरान में साफ-साफ ढंग से कहा गया है कि 'उसके सेवकों में केवल ज्ञानवाला ही ईश्वर से डरते हैं।' साथ ही विशुद्ध सेवा (इबाद) का क्रियान्विति श्रद्धालुओं के सगठित समाज के बिना नहीं हो सकती और इस प्रकार के समाज का अस्तित्व सुचारु सा राज्य-प्रशासन पर निर्भर है। इस प्रकार प्रशासन का प्रमुख प्रयोजन विशुद्ध तथा पूर्ण सेवा को सम्भव बनाना है। यदि दूसरे शब्दों में कहा जाय तो इस्लाम में राज्य को एक नैतिक संस्था के रूप में उपकलिपत किया गया है। राज्य का कर्त्तव्य मुस्लिम जगत् को मुस्लिमेतर जगत से, पारस्परिक कलह तथा मिथ्या ज्ञान से सुरक्षा तथा 'शरीयत' के आधार पर सुचारु जीवन विद्या का प्रतिष्ठापन है। यह जीवन-विद्या कुरान में दी गयी है और राज्य इसमें लेश मात्र भी परिवर्त्तन अथवा परिवर्धन नहीं कर सकता। ईश्वरीय नियम का संप्रेषण धर्मशास्त्रियों के हाथ में है जो समय-समय पर इसको व्याख्यायित तथा व्यवस्थित करते हुए विकसित करते हैं।

मदीना में राज्य की नींव पड़ी जो बढ़कर मक्का तक गया। पैगम्बर के काल में ही राज्य या 'साम्राज्य' का रूप स्थापित हो चुका था। कुलफा-ए-राशिदीन के

चार खलीफाओं अबू बक्र, उमर, उसमान तथा अली—ने प्रत्यक्ष रुप से राज्य का प्रकाशन कर दिया। कुरान ने कर्मशाला तैयार की थी, राज्य के लिये तलवार की आवश्यकता का संकेत भी उसने दिया था। अब एक हाथ में कुरान था तो दूसरे में तलवार। विस्तार की दृष्टि तीक्ष्ण थी, दूर तक चली जानेवाली थी। राज्य का विस्तार इसी रूप में उमैय्यों (सीरिया और स्पेन), अब्बासियों, सिल्जुकों और फातमियों के खिलाफतों के काल में होता रहा। अब धर्म इस्लाम की जगह 'खिलाफत' और रसूल की जगह 'खलीफा' आ गये। विशुद्ध रूप में समाज राज्य बना और राज्य साम्राज्य में परिवर्त्तित हो गया। हीरा गुफा का ज्ञान अगोचर प्रतिभास के रूप में रहकर पर्वत शृंखलाओं में, जंगलातों में, समुद्रों के इस पार-उस पार के क्षेत्रों में और विश्व के एशिया, यरोप तथा अफ्रीका के महादेशों में गोचर हो गया। मुअज्जिन का मधुर स्वर अगर ईश्वर और पैगम्बर को स्मरण दिलाता था तो तलवार की धार रक्तिम रक्त को भी प्रवाहित रखती थी। सचमुच धार्मिक संघ और राज्य का एक सुन्दर समन्वय इस्लाम ने किया था। कुरान तथा तलवार ने इस्लाम को धार्मिक साम्राज्य में परिवर्त्तित कर दिया।

इस्लाम मात्र धर्म राज्य ही नहीं, अपने आप में एक संस्कृति भी था। इसका अन्तिम सांस्कृतिक रूप इस्लाम के इतिहास की अमूल्य धरोहर है, अनमोल निधि है। उसके धर्म तथा राजनीति (राज्य) ने विश्व को जितना अनुप्राणित किया उससे कहीं अधिक सांस्कृतिक रुप, सांस्कृतिक उपलब्धियों ने प्रभावित किया। अंधकार युग को मुस्लिम अथवा अरबी सभ्यता ने आलोकित किया, मुस्लिम वाङ्मय तथा भाषा ने विश्व साहित्य तथा विभिन्न भाषाओं को अनुप्राणित किया, मुस्लिम वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार किया, कला और वास्तुकला के क्षेत्र को मुस्लिम कलाकारों ने धनी बनाया, अरबों के कारण हस्तकला, व्यापार, खेती में प्रगति आयी और इसी प्रकार संस्कृति के अनेक आयामों का पल्लवन एवं संवर्धन हुआ। इस्लाम की कहानी का प्रत्येक काल और शासकीय वंश सांस्कृतिक रहा। अगर प्रशासकीय वंशों ने खून की नदियाँ बहायी तो उन्होंने संस्कृति की सरिता का भी प्रवाहन किया। प्रस्तुत ग्रन्थ इस्लाम के इन्हीं तीनों रुपों—धर्म, राज्य और संस्कृति—का विश्लेषण एवं व्याख्या प्रस्तुत करता है।

आइये, थोड़ा इस्लाम के स्त्रोतों पर भी विचार कर लें। 'कुरान' तथा 'हदीस' (मुहम्मद के जीवन की परम्परा) इस्लाम के दर्पण हैं। दोनों धर्म तथा प्रवर्त्तक के संबंध में ज्ञान की निधि माने जाते हैं। इनमें, विशेषकर कुरान में, पैगम्बर के वास्तविक अभिकथन प्रस्तुत किये गये हैं। डी० एस० मार्गोलियोअथ ने अपनी कृति 'लेक्चर्स आन अरेबिक हिस्टोरियन्स' (पृ० 74) में तथा एच० ए० आर० गिब ने 'तारीख 'इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम' (23413-344) और रोजेन्थाल ने 'ए हिस्ट्री आफ मुस्लिम हिस्टोरियोग्राफी' (पृ० 22-23) में कुरान तथा हदीस को इस्लाम का सर्वश्रेष्ठ एवं मूल स्रोत के रुप में स्वीकार किया हैं।

इस्लाम की स्थापना के बाद ऐतिहासिक ग्रंथ जानकारी के प्रमुख स्रोत बने। स्थापना के साथ ही इस्लाम का प्रसार भी बड़ी शीघ्रता के साथ हुआ और

उसी गति में ऐतिहासिक साहित्य का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर होने लगा। कुरान तथा हदीस में जो ऐतिहासिक बीज पहले से ही विद्यमान था, उसके विकास के लिये एक उपयुक्त वातावरण भी प्राप्त हुआ।

अरबी भाषा में लिखी गई ऐतिहासिक कृतियों में अधिकांश अब्बासी शासन काल से संबद्ध है। किंवदन्तियों तथा पुराण कथाओं से उपलब्ध पूर्व-इस्लाम युगों के विषय में प्राप्त विवरणों तथा पैगम्बर मुहम्मद के नाम तथा जीवन से संबद्ध धार्मिक परम्पराओं ने इतिहास-लेखन को प्रारम्भिक वस्तु-सामग्री प्रदान की। पूर्व-इस्लाम युग के विवेचन के प्रसंग में अल-कूफा के हिशाम अल-कलबी (819 ई०) का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'अल-फिहरिश्त' में उसके द्वारा लिखी हुई उन्तीस पुस्तकों की सूची प्राप्त होती है, लेकिन अब उनमें से केवल तीन कृतियाँ हीं उपलब्ध हैं, लेकिन अल ताबरी, याकूत एवं अन्य इतिहासकारों की रचनाओं में भारी मात्रा में उसके उद्धरण प्राप्त होते हैं। धार्मिक परम्पराओं पर आधारित प्रथम कृति 'सीरत रसूल अल्ला' है जिसका लेखक अल-मदीना का मुहम्मद इब्न-इशहाक था जिसकी मृत्यु बगदाद में लगभग 767 ई० में हुई। इस कृति में मुहम्मद की जीवन-कथा उल्लिखित है। इसके पश्चात् वे कृतियाँ आती हैं जिनमें इस्लाम के प्रारम्भिक युद्धों तथा विजयों की चर्चा हुई हैं। इस प्रसंग में मूसा इब्न उकबा (758 ई०) तथा अल-वाकिदी (822 ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। इब्न-साद—जिसकी मृत्यु बगदाद में 845 ईसवी में हुई—नामक लेखक ने सर्वप्रथम वर्गीकृत जीवनकथाओं की एक महान कृति की रचना की जिसमें मुहम्मद, उनके सहयोगियों तथा उसके अपने समय तक के उत्तराधिकारियों के जीवन के विषय में विवरण संकलित हैं। इस्लाम की विजयों के संबंध में इतिहास लेखन करने वालों में दो सर्वाधिक विशिष्ट नाम मिस्त्रनिवासी अब्दल हकम (870-71 ई०) तथा अरबी-भाषा में लिखने वाले फारस निवासी अहमद इब्न-यहया (892 ई०) के हैं। प्रथम लेखक की कृति का नाम 'फुतूह मिस्त्र व-अलबारुह' है जो मिस्त्र, उत्तरी अफ्रीका तथा स्पेन में इस्लाम की विजयों की चर्चा करने वाला प्राचीनतम प्राप्य प्रलेख हैं। अहमद इब्न-यहया की दो पुस्तकों के शीर्षक 'फुतुह अल-बुन्दन' तथा अन्साब अल-अशराफ हैं। अन्साब अल-अशराफ में पहली बार विभिन्न नगरों की विजयों तथा विविध विधि-संग्रहों को एक सुग्रथित तथा एक समष्टि के रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसके पूर्व की ऐतिहासिक रचनाओं में इस प्रकार की समष्टिगत विशेषता का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है।

प्रारम्भिक औपचारिक इतिहास-लेखक में प्रथम नाम इब्न-कुतयब का लिया जा सकता है जिसकी कृति 'किताब अल-मारिफ' (ज्ञान की पुस्तक) इस्लाम पर प्रकाश डालती है। इस लेखक की मृत्यु 889 ई० में हुई थी। इसी का समसामयिक अबू हनीफ अहमद इब्न-दाऊद अल-दीनावरी था जिसकी प्रमुख रचना का नाम 'अल अखबार अल-तिवाल' (लम्बे वृतान्त) है—यह फारसी दृष्टिकोण से लिखा गया एक सार्वभौमिक इतिहास प्रस्तुत करता है। लगभग इसी समय इब्न-वादी अल-यकूबी द्वारा एक अन्य सार्वभौमिक इतिहास-ग्रन्थ की रचना हुई जिसमें हिजरी सन् 258 (872 ई०) तक का इतिहास दिया गया है एवं जिसमें प्राचीन

तथा अविकृत शिया परंपरा सुरक्षित है। हमजा अल-इसफाकी (मृत्यु 961 ई०) तथा मिसकवाय (1030 ई०) इस वर्ग के दो अन्य उल्लेखनीय इतिहासकार हैं, मिसकवाय ने 'तजारीब अल-उमम' शीर्षक के अन्तर्गत हिजरी 69 (ई० सन् 979-80) तक का सार्वभौमिक इतिहास लिखा है और इसके नाम की गणना प्रमुख अरबी इतिहाकारों में की जाती है।

अरब इतिहासकारों में दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम अबू जाफर मुहम्मद इब्न-जरीर अल-तबरी तथा अब अल-हसन अली अल-मसूदी के हैं। तबरी का जन्म फारस के पहाड़ी जिले तबरिस्तान में हुआ था (838-922) जिसने पैगम्बरों तथा राजाओं का इतिहास 'तारीख अल-रसूल व-अल-मुलूक' नामक पुस्तक में लिखा। इस इतिहासकार ने कुरान की टीका भी लिखीं जिसे बाद में टीकाकारों तथा व्याख्याकारों द्वारा एक प्रतिमान एवं आधार के रुप में स्वीकार किया गया। इसी प्रकार सार्वभौमिक इतिहास से संबद्ध उसकी तारीख भी मिसकवाय, इब्न-अल अतहीर तथा अबू अल-फिदा जैसे प्रमुख इतिहासकारों द्वारा आधार ग्रन्थ के रुप में मान्य हुआ। अधिकांश अरब इतिहाकारों की तरह तबरी ने भी अपनी घटनाओं को तिथिक्रम के आधार पर व्यवस्थित किया है एवं उन्हें हिजरी संवत् के अनुवर्त्ती वर्षों में रखता गया है। वस्तुत; उसका इतिहास सृष्टि-रचना के दिन से प्रारम्भ होता है तथा हिजरी 302 (905 ई०) तक चलता है। इस इतिहासकार ने फारस, इराक, सीरिया, मिस्र आदि देशों की यात्रा की थी एवं उसके उत्साह तथा अध्यवसाय की उपकल्पना उसके विश्व में प्राप्त इस लोकप्रिय परंपरा से की जा सकती है कि वह प्रतिदिन चालीस पृष्ठ लिखा करता था।

मसूदी को 'अरबों का हेरोडोटस' कहा जाता है। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने अरब इतिहास-लेखन में एक नई विद्या का अनुप्रवेश किया। उसने अपने इतिहास में वर्षों की जगह शासन-वंशों, राजाओं और लोगों को केन्द्र-बिन्दु बनाया। यह एक नवीन विद्या थी जिसका परवर्ती काल में इब्न खाल्दून तथा अन्य इतिहासकारों ने अनुकरण किया। इतिहासलेखन में ऐतिहासिक दृष्टान्तों का सम्यक् उपयोग भी उसी से प्रारम्भ हुआ। उसने भी ज्ञान-प्राप्ति के लिये यात्रा की और अपने मूल स्थान बगदाद से जंजीबार तक आया। उसके जीवन के अंतिम दशक सीरिया तथा मिस्र में व्यतीत हुए जहाँ उसने तीन जिल्दों में विस्तृत अपनी प्रमुख रचना 'मुरूज अल-बहाब व-मदीन अल-जवाहर' (सोने के चारागाह और जवाहरों की खान)की वस्तु-सामग्री का संकलन किया। उसकी उदारता तथा वैज्ञानिक जिज्ञासा ने उसे मुस्लिमेतर विषयों के अतिरिक्त भारतीय, पारसी, रोम तथा यहूदी इतिहास की ओर भी आकृष्ट किया। अपनी पुस्तक के प्रारंभ में ही वह कहता है कि" जहाँ आजकल सूखा है, वहाँ पहले समुद्र था और जहाँ आजकल समुद्र है वह सूखा स्थल था—और इसके लिये भौतिक शक्तियाँ उत्तरदायी थीं"। उसकी मृत्यु 956 ई० में हुई। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने 'अल तनबीह व-अल-इशराफ' नामक ग्रन्थ में अपने इतिहास-दर्शन तथा प्राकृतिक जगत के विषय में अपने विचारों को एक लिखित रूप प्रदान किया।

तबरी तथा मसूदी की रचनाओं में अरबी इतिहास लेखन अपनी उत्कृष्टता के चरम उत्कर्ष को प्राप्त किया तथा मिस्कवाय (1030 ई०) के पश्चात इसका

शीघ्रता के साथ पतन प्रारम्भ हुआ। अल अतहीर (1160-1234) ने अपनी कृति 'अल कामिल फि अल-तारीख' (इतिवृत्तों की पूर्ण पुस्तक) में अल-तबरी की कृति का संक्षेपन किया तथा वृतान्त को 1231 ई० तक आगे बढाया, इसमें क्रूसेड के युग का इतिहास उसका मौलिक योगदान है। उसकी दूसरी कृति 'उस्द अल-गावा' (झाड़ी के शेर) है जिसमें सहयोगियों की 7500 जीवन-कथाओं का सकलन है। सिब्त इब्न-अल-जावजी (1180-1257) ने सृष्टि-रचना के दिन से 1256 ई० तक का मुस्लिम इतिहास लिखा। इसका नाम है 'मीरत अल-जमां फि तारीख अल-अय्याम'।

इब्न खाल्दून की कृति इस्लाम की कहानी पर विशद रूप से प्रकाश डालती है। ट्यूनिस में पैदा हुआ (1322 ई०) खाल्दून विभिन्न देशों में काम किया। उसने उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका की तथा कुछ अशों तक मुस्लिम अधिकृत स्पेन एवं मिस्र की तत्कालीन राजनीतिक कार्य-विधियों में जमकर भाग लिया। वह इन प्रदेशों के समसामयिक इतिहास से परिचित था तथा उसे इस्लाम के प्रभुत्व के अन्तर्गत स्थित अन्य देशों की राजनीति का भी ज्ञान था। इन घटनाओं का उसके विचारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। पूर्ववर्त्ती चार शताब्दियों की तुलना में इन घटनाओं के परिणामस्वरूप इस्लामी समाज का स्वरूप तेजी से बदल रहा था ओर इब्न खाल्दून ने परिवर्त्तन प्रक्रिया में इन घटनाओं के स्वरूप तथा महत्व को समझा। भावी इतिहासकारों के लाभ के लिये इन परिस्थितियों का लेखन अपेक्षित था ताकि वे इनसे प्रकाशित होनेवाले इतिहास के स्वरूप को ठीक से समझ सकें एवं बुद्धिमत्तापूर्ण व्यावहारिक कर्म में इनकी सहायता ली जा सके।

इस महान इतिहासकार ने अपने अध्ययन क्रम में कुरान तथा इस्लामी परम्पराओं के साथ-साथ धार्मिक विधि-सग्रह एवं रहस्यवाद के विशिष्ट तत्वों का भी अध्ययन किया था। अपनी उच्च शिक्षा के अन्तर्गत उसने तर्कशास्त्र, गणित, प्राकृतिक दर्शन एवं अध्यात्मशास्त्र का अध्ययन किया, इन विज्ञानों के अध्ययन के लिये सहायक उपादान के रूप में उसने प्रासंगिक भाषशास्त्रीय, जीवनकथा विषयक तथा ऐतिहासिक विज्ञानों का भी ज्ञान प्राप्त किया और अन्त में, प्रशासन के व्यावहारिक कार्य-व्यापारों में रूचि रखने के कारण, उसने राजकीय सेवा के अन्तर्गत भी प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रारम्भ से इस्लामी धार्मिक चिन्तन का केन्द्र-विन्दु समाज तथा उसकी सम्यक व्यवस्था का प्रश्न था। कुरान तथा हदीस के रहते हुए, समस्या यह थी कि उनमें निहित सिद्धान्तों तथा शिक्षाओं को कैसे इस्लाम के प्रसार तथा विकास से उत्पन्न नई तथा परिवर्तित ऐतिहासिक परिस्थितियों में व्यवहार में लाया जाय। इस इतिहासकार की प्रमुख कृति 'किताब अल-इबर' है जिसमें उसने सार्वभौमिक इतिहास को सम्पूर्ण परिधि को सन्निविष्ट किया था। साथ ही साथ, उसने उस इतिहास का विवरण प्रदान किया जिसका उसने स्वयं अनुभव किया था अर्थात् सामान्यतया इस्लामी प्रभुत्व के पश्चिमी क्षेत्र का पतन। उसने पहली बार सस्कृति के विज्ञान की आवश्यकता को समझा और इसके लिये प्रयास किया। उसके अनुसार 'इतिहास वस्तुत: मानव-समाज के विषय में सूचना है जो कि अपने विविध पक्षों में विश्व की संस्कृति है।' अत: अपनी कृति के माध्यम से उसने संस्कृति को विविध सूचनाएँ दी।

अध्याय 2

जमाना-ए-जाहिलियत

(Age of Ignorance)

मुस्लिम सभ्यता के उत्कर्ष एवं अपकर्ष की कहानी विश्व-इतिहास की सर्वाधिक व्यापक एवं मनोरंजनकारी घटना है। इस सभ्यता का उद्गम-स्थल अरब प्रायद्वीप रहा है। चतुर्दिक बालु राशि से आवृत मरुप्रदेश अरब के संबंध में किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि यहाँ एक ऐसी उन्नतशील तथा उपयोगी सभ्यता का आविर्भाव होगा जो विश्व के अनेक देशों को रोशनी देगा और लोगों को सभ्यता के सोपान पर चढ़ते जाने में सहायता करेगा। करीब पाँच सौ वर्षों (700-1 00) तक अरब प्रायद्वीप में जन्मा हुआ इस्लाम अपनी सशक्तता कायम रखा और विश्व के देशों को शान्ति तथा सुव्यवस्था के नियमों, प्रशासन के अवयवों, संस्कृति की विधाओं, विधियों, धार्मिक सहिष्णुता, विज्ञान, दर्शन आदि का शाश्वत संदेश देता रहा। किन्तु अरबिस्तान को नखलिस्तान बनाने का श्रेय पैगम्बर मुहम्मद साहब को दिया जाता है जो आज भी समस्त विश्व के मुस्लिम जगत में उसी प्रकार प्रिय , पूज्य हैं जिस प्रकार हिन्दू-जगत में भगवान बुद्ध, ईसाई जगत में यीशु और पारसी-जगत में जरथुष्ट्र पूज्य हैं।

भौगोलिक परिचय

एशिया महादेश के दक्षिण-पश्चिम अरब प्रायद्वीप का विस्तृत मरुस्थल फैला हुआ है जो 1400 मील लम्बा और 1250 मील चौड़ा है। 'अरब' (Arab) शब्द का अर्थ होता है मरुभूमि, झूलसा हुआ प्रदेश (Arid) और भूगोल बतलाता है कि सम्पूर्ण प्रायद्वीप ही मरूप्रदेश है। किन्तु इसी मरुप्रदेश के उष्ण बालू के कणों ने संसार को शान्ति तथा संस्कृति का सन्देश दिया।

किन्तु पैगम्बर मुहम्मद के जन्म के पूर्व अरब प्रायद्वीप वह नहीं था जो उनके जन्म के बाद बना। सम्पूर्ण अरब प्रदेश असभ्य जनों का आवास-स्थल था और इसकी शुष्क हवा भी शरीर को सताती थी। छठी शताब्दी में अरब के अधिकांश लोग गाँवों में निवास करते थे और कुछेक जन ही प्रायद्वीप के हेज्जाज, मक्का, मदीना, यमन, नेज्द आदि नगरों में रहकर नागरिक जीवन व्यतीत करते थे। भौगोलिक नजरिया से तमाम अरब प्रदेश शुष्क था और ग्रीष्म ऋतु में मरुस्थल की छाती को चीरती हुई प्रवाहित हवा अपना शुष्कता से लोगों की छाती को जला डालती थी इतिहासकार विल ड्यूरां के शब्दों में "यहाँ प्रति दिन सूर्य चेहरे को झूलसा देता है और खून को जला देता है।"[1] यही कारण था कि तीखी शराब सी जलाने वाली गर्म हवा से त्राण पाने के लिये यहाँ के लोग लम्बी

1. "....the daily sun burns the face and boils the blood...."
—Will Durant; The Age of Faith; p 155.

कमीज पहनते थे और शरीर तथा सिर की सुरक्षा के लिए सिर में पट्टा बाँधते थे। पर यह कोई नहीं जानता था कि गर्मी को वर्षा करनेवाला अन्ध-युग का यही अरब प्रदेश योग्य नेताओं के नेतृत्व में उत्कर्ष करेगा और इसके बनजारे सुसभ्य तथा सशक्त सैनिक बनकर आधा बिजेन्ताइन एशिया, सम्पूर्ण फारस और मिश्र, उत्तरी अफ्रीका के अधिकांश भू-प्रदेशों और स्पेन को जीतकर विशाल अरब साम्राज्य कायम करेगा।

अरब के लोग सेमेटिक जाति के थे। इसी जाति में यहूदी, बेबीलोनियन तथा फिनीशियन भी आते हैं जिन्होंने कभी विश्व की सभ्यता तथा संस्कृति के पल्लवन एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। किन्तु शीघ्र ही असीरिया (606 ई० पू०) तथा बेबीलोन (538 ई० पू०) का अवसान हो गया और उनका प्राचीन उत्कर्ष एवं गौरव जाता रहा। 622 ई० पू० तक अरब के निवासियों में शिथिलता व्याप्त गयी और पैगम्बर मुहम्मद के जन्म तथा इस्लाम के उदय के पूर्व वे अंधकार में भटकते रहे।

अरब प्रायद्वीप के उत्तर में सीरिया का मरुप्रदेश, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूरब में फारस की खाड़ी तथा पश्चिम में लालसागर हैं। यहाँ हरे-भरे भू-खण्डों का नितान्त अभाव रहा। यमन में यत्र-तत्र कभी हरियाली दृष्टिगोचर हो जाती थी। गर्म जलवायु में पैदा होने वाले अनाज की खेती ही अरब प्रायद्वीप में की जाती थी। मध्य युग में यहाँ कम ही मात्रा में खेती की जाती थी। हेज्जाज में लोग खजूर पैदा करते थे जिसकी खाल से रस्सी तथा फल एवं शीर्ष भाग को छीलकर शराब बनायी जाती थी। अमन प्रदेश में बाजरा की खेती की जाती थी। हासा में धान अल्प मात्रा में उपजाया जाता था। कहीं-कहीं रुतालू, अनार, नारंगी, केला और अंजीर भी पैदा किये जाते थे। लोग सुगन्धित पौधों को भी लगाते थे जिनमें लोहवान, पुदीना, चमेली और हल्के पीले रंग का एक पौधा (Lavender) उल्लेखनीय है। अन्तिम पौधे की पत्तियों को लोग अपने वस्त्रों पर रगड़ते थे जिससे वे सुगन्धित हो जाते थे। देहातों में लोग अनाजों तथा साग-सब्जियों की खेती करते थे, जानवरों को पालते थे और अच्छी नस्ल वाले घोड़ों को रखते थे। इत्र निकालने का काम अधिकांश लोग करते थे। यह सही है कि आधुनिक विज्ञान ने अरब के कृषि-जगत में परिवर्तन लाया है, पैदावार में वृद्धि लायी है, किन्तु प्रदेश की शुष्कता यथावत है।

आज का अरब कल कुछ और था। यह लिखा जा चुका है कि हजरत मुहम्मद के आगमन के पूर्व अरब अज्ञानता की दुनिया में था और अंधकार में भटक रहा था। उनकी सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक स्थिति, और धार्मिक स्थिति उन्नतशील नहीं थी और जीवन के इन विभिन्न स्थितियों की अपनी-अपनी खास विशेषताएँ थीं। इस काल को इतिहासकारों ने जमाना-ए-जाहिलियत' (Age of Ignorance) की संज्ञा दी है। जाहिलियत को इन कतिपय स्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है जिसमें हजरत मुहम्मद के आगमन के पूर्व सम्पूर्ण अरब-जन में पड़े थे।

सामाजिक स्थिति :

बर्नार्ड लेविस ने सारे अरेबियनों या अरब को राष्ट्रीयता की दृष्टि से दो भागों में बाँटा है :—उत्तरी अरेबिया और दक्षिणी अरेबिया। किन्तु अरब के इन दोनों भागों के समाजों में उत्तरी अरब की अपेक्षा दक्षिणी अरब का समाज अधिक सभ्य और सम्मुन्नत था।[2] यही विभाजन पैगम्बर मुहम्मद के आगमन तक बना रहा जिनमें बद्दू और शहरी प्रधान थे। अतः पैगम्बर मुहम्मद के पूर्व अरब का समाज दो वर्गों में बँटा हुआ था : बद्दू नागरिक (Nomader Bedouins) तथा शहरी लोग (Town-dwellers)।

बद्दू अथवा बनजारे असभ्य थे और उनका जीवन विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। उनका जीवन उद्देश्यहीन था और वे निरुद्देश्य होकर यत्र-तत्र भटकते रहते थे। वे सदैव भ्रमण करने के आदी थे और इसीलिये एक स्थल पर वे अधिक दिनों तक ठहर नहीं पाते थे. वे यायावर थे। एक अरब तथा मरुभूमि के जीवन में सादृश्यता थी। मरुप्रदेश की शुष्क हवा की तरह उनका जीवन भी शुष्क था। ज्ञान-विज्ञान तथा बौद्धिक जगत से उनका तनिक भी संबंध न था। मरुभूमि के भौगोलिक वातावरण के अनुरूप उन्होंने अपने जीवन की आदतों, क्रिया कलापों एवं कार्यक्रमों को ढाल रखा था। वे दिन भर चारागाह की तलाश में यत्र-तत्र घूमते रहते थे। उन्होंने परोपकार का पाठ कभी नहीं पढ़ा और इसीलिये वे अपने ही स्वार्थ की, सुरक्षा की, हित की चिन्ता में लगे रहते थे। स्वार्थ-पूर्ति के प्रश्न को लेकर वे शहर के नागरिकों से झगड़ा कर बैठते थे। लूट का सहारा लेकर वे अपना भरण-पोषण करते थे और जैसे-तैसे अपने जीवन की गाड़ी चलाते थे। वे अपने पड़ोसियों को भी लूटकर जीविका का उपार्जन करते थे। वे अपहरण करने की कला में दक्ष थे और किसी पर भी सीधे आक्रमण करते थे। वे वस्तुतः दस्यु थे। अगर लूट-पाट से उनकी बुभुक्षा शान्त नहीं होती थी तो वे दलाली का भी काम करके धनराशि अथवा खाद्य सामग्रियों की व्यवस्था कर लेते थे। दलालों में अपने लागत श्रम की मजदूरी वे संबंधित पक्ष से प्राप्त कर लेते थे। अतएव एक बद्दू दस्यु अथवा दलाल था। कोई-कोई बद्द तो दस्यु और दलाल, दोनों था। ऐसा बद्दू खूंखार होता था और उससे सारे पड़ोसी तथा नागरिक डरते रहते थे।

बद्दू की प्रवृति और मनोविज्ञान में कभी भी तबदीली आनेवाली नहीं थी। वे अपरिवर्त्तनशील थे। कोई भी मसीहा आसानी से उनके जीवन तथा रहन-सहन में परिवर्त्तन लाने में समर्थ न हो सकता था। कम से कम उनका मनोविज्ञान तो निश्चित रूप से विशुद्ध बद्दूपन से पूर्ण था। इसीलिये अरब इतिहास के अधिकारी पी० के० हिट्टी ने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया है कि "बद्दू आज भी अपने उसी खास ढंग के हैं जिस तरह वे गत सदियों में थे और

---

2. **Bernard Lewis; The Arabs in History, p 20.**

वे भविष्य में भी उसी प्रकार के रहेंगे।"[3] नसीहत तथा वक्त का असर उनकी कुदरती बनावट पर, दिमागी धरातल पर कतई पड़ने वाला नहीं था। उनके रहन-सहन और रस्म-रिवाज सदैव अपरिवर्तनशील रहे। जीवन में उन्होंने कभी भी विकास-पथ पर अग्रसर होने का, कभी प्रगति करने का स्वप्न ही नहीं देखा। उनके अधिकांश समय निरर्थक कार्यों के सम्पादन करने में लग जाते थे। वे खेतों की मेड़ों पर बैठकर रात गुजार लेते थे, शिशिर ऋतु में भेड़ों के केश एवं खाल से अपने शरीर को ढँककर स्वर्गिक सुख का अनुभव करते थे और सुबह होते शिकार की खोज में मरुभूमि में भटकते रहते थे।

मरुभूमि के वातावरण ने बद्दूओं के जीवन को ऊसर बना डाला था। मरु-प्रदेश की गर्म आवहवा ने उनके जीवन को कठोर तथा शरीर को बलिष्ठ बना रखा था। शुष्क वातावरण में जिन्दगी गुजारने के कारण एक बद्दू बालक बाल-काल से ही कठोर बनता जाता था और जीवन की दुपहरी आते-जाते शारीरिक सौष्ठव से परिपूर्ण हो जाता था। कठोरता का पाठ पढ़ने के कारण उनके जीवन में जीवटता आ जाती थी, स्वभाव में निर्भीकता भर जाती थी और यही वजह था कि वह संकट काल में, आपत के आगमन पर जरा भी घबड़ाता नहीं था। एक बद्दू एक शहरी की तुलना में अधिक कठोर एवं लड़ाकू था। शारीरिक बल के दर्प में वह सहज तरीके से मुसाफिरों पर आक्रमण कर बैठता था और उनके माल-असबाब को छीन लेता था। मरुभूमि में पैदा होनेवाला खाद्य-पदार्थ खाकर वह और भी बलिष्ठ हो जाता था। वह दूध अथवा पानी में खजूर का फल, आटा या सड़ा-गला अनाज मिलाकर खाता था। इन गुरूपाक खाद्य-सामग्रियों के सेवन से वह रोज-व-रोज ताकतवर होता जाता था। कमनीयता और सुकुमारता के अभाव ने उसके शारीरिक सौन्दर्य को आकर्षक नहीं बनाकर भयानक बना डाला था। अतः एक बद्दू के जीवन में सरिता की शीतलता की जगह मरुभूमि की उष्णता विद्यमान थी।

बद्दूओं की पोशाक भी खास तरह की होती थी जिसमें निरालापन दृष्टिगोचर होता था। वे काफी लम्बी कमीज पहनते थे जिसे कमर के पास लम्बी किन्तु पतली डोर से बाँध दिया करते थे। सिर को ढँकने के लिये वे छोटे शाल को प्रयोग में लाते थे। शाल को भी डोर से बाँध कर रखते थे ताकि वह सिर से नीचे न गिर सके। अधिकांश बद्दू जूतों का इस्तेमाल नहीं करते थे। कुछ ही बद्दू उनको अपने व्यवहार में लाते थे।

बद्दूओं के जीवन में सदगुणों का अभाव और दुर्गुणों का बाहुल्य था। यद्यपि दत्तचित्तता तथा धैर्यता उनके जीवन में समाहित थी, किन्तु इन सदगुणों

---

3. The Nomad, as a type, is today what he was yesterday and what he will be tomorrow.

P. K. Hitti; History of the Arabs, p 23.

को भी वे बुरे कार्यों के सम्पादनार्थ काम में लाते थे। स्वार्थपरता तथा वैयक्तिकता में वे सदैव बँधे रहे और इसीलिये वे मानव की परिभाषा में नहीं जा सकते। एक बद्दू मानसिक दृष्टि से पिछड़ा रहने के कारण सामाजिक कल्याण की बातें कभी नहीं सोचता था। शिष्टाचार के सर्वमान्य सिद्धान्तों को स्वीकार करना, प्रचलित सामाजिक परम्पराओं के प्रति समादर की भावना रखना और सम्प्रभुता का अर्थ आँकना उनके लिये संभव नहीं था। इस्लाम के जन्मदाता पैगम्बर मुहम्मद की नसीहतों को ग्रहण करके भी वे स्वार्थ-सीमा को पार न कर सके। खुद की इबादत करते समय भी उनके हृदय में समष्टिगत भावना के उद्रेक की जगह स्वार्थ की भावना प्रभाव जमाये रही और वे केवल अपनी तथा अपने पैगम्बर के कल्याण के लिये ही खुदा से रहम की भीख माँगते रहे। इबादत के वक्त एक बद्दू कहता था : "ए खुदा, मेरे तथा मुहम्मद पर रहम करो और अन्य किसी पर नहीं।"[4]

बद्दूओं का समाज बंश-व्यवस्था (Clan Organisation) पर आधारित था। प्रत्येक खेमा एक परिवार का द्योतक था और खेमों का एक डेरा (Encampment) एक है (Hay) का प्रतीक था। अनेक शाखाओं (जातियों) के वर्ग एक कबीला (Tribe) का निर्माण करते थे। मुहम्मद के आगमन के पूर्व अरब प्रायद्वीप में अनेक कबीले थे जिनमें मखजूम, अब्द शक्स, आला-मुतालिब, ताथम तथा कुरैश उल्लेखनीय थे। इन सारे कबीलों में प्रधान तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कुरैश कबीला था। छठी सदी के प्रारम्भ में यह कबीला दो भागों में विभक्त था : एक भाग का प्रधान हाशिम था और दूसरे का प्रधान हाशिम का भतीजा उमैय्या था जो इर्ष्यालु स्वभाव का था। हाशिम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र (अथवा छोटा भाई ?) अब्द अल मुत्तालिब नया सरदार बना। मुत्तालिब के पुत्र अब्दुल्ला ने अमीना से 568 ई० में विवाह किया जो कुशे (Qusay) खान्दान की थी। व्यापार-यात्रा में अब्दुल्ला की मौत मदीना में हो गयी। अपनी नव विवाहिता पत्नी के सहवास का सुख केवल तीन दिनों तक ही वह भोग सका था। दो महीनों के उपरान्त (569 ई०) में एक शिशु को अमीना ने जन्म दिया जो अन्य कोई नहीं, मध्य युगीन अरब के इतिहास को प्रभावित करनेवाला और इस्लाम का जन्मदाता मुहम्मद था। अतः मुहम्मद का कबीला 'हाशिम' था। उनके परदादा भी, जैसा कि उल्लेख किया गया है, इसी कबीला के सदस्य थे।

अरब में एक जाति के लोग एक खान्दान (Blood) के समझे जाते थे। वे एक शेख की अधीनता में रहकर उसकी सारी आज्ञाओं का पालन करते थे। बुद्धि रखनेवाला अथवा धन रखनेवाला अथवा मारने-मरने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति ही शेख के पद पर नियुक्त हो सकता था। शेख का निर्वाचन उस

---

4. O Lord, have mercy upon me and upon Muhammad, but upon no one else besides 1.

—*P. K. Hitti, Quoted*, P. 24

कबीले के सरदार करते थे। एक जाति में बुजुर्ग व्यक्ति ही सामान्यतः यह पद प्राप्त करता था। एक खेमा उन बद्दूओं की दौलत थी जो उनमें रहते थे। किन्तु जल, चारागाह तथा कृषि-योग्य भूमि पर एक कबीला के सारे लोगों का समान अधिकार था।

एक बद्दू का जीवन श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है। बद्दू नाटे तथा पतले होते थे और सम्पूर्ण जीवन प्रेम तथा कलह करने में गुजार देते थे। कई दिनों तक वे खजूर तथा दूध खाकर अपना समय काट लेते थे। खजूर की शराब पीकर वे प्रेम का राग अलापते रहते थे। अपने अपमान का बदला लेना एक बद्दू अपना धर्म समझता था। वह शहर की अपेक्षा मरुभूमि में रहना अधिक पसन्द करता था क्योंकि यहाँ वह प्राकृतिक स्वतन्त्रता का मजा लेता था। एक बद्दू के चरित्र तथा प्रवृति का उल्लेख विल ड्यूरा ने इस प्रकार किया है : "दयालु और वधिक, उदार तथा लालची, बेईमान तथा विश्वासी, सचेतपूर्ण तथा बहादुर ये सारे गुण एक बद्दू में थे और इन्हीं गुणों के गौरव तथा दर्प में रहकर वह दुनिया का सामना करता था।"[5]

समाज अशान्त रहता था। समाज में शांति की जगह अशान्ति तथा मेल की जगह मतभेद कायम थे। बद्दू सदैव अपने शत्रु से प्रतिशोध लेने की बात सोचते रहते थे। वे यह मानते थे कि शत्रु से प्रतिशोध लेना ही उसे वास्तविक दण्ड देना है।[6] हजरत मुहम्मद के पूर्व अज्ञानता का शिकार होकर अनेक कबीलों के सदस्य खानदानी झगड़ों के कारण मर मिटे। जीवन-तर्पण के बाद भी उनके खानदानी झगड़ों की जड़ें बनी रहीं।

खानदान की पवित्रता पर अधिक बल दिया जाता था। कबीला एक बद्दू का जीवन-प्राण था और उससे विलग होकर कोई भी बद्दू जीवित नहीं रह सकता था। कबीले से सम्बन्ध विच्छेद कर कोई भी बद्दू असहाय और कमजोर हो जाता था और विपतियों का सामना करने में असफल हो जाता था। बड़े-बड़े कबीले छोटे कबीलों पर कब्जा जमा लेते थे और छोटे कबीलों का अस्तित्व समाप्त हो जाता था। उत्तरी अरबी कबीला में ताची, घटाफान तथा मघलीब नामक छोटे कबीले शामिल थे। उत्तरी अरबी कबीला के सदस्य आज भी अरब प्रदेश मे पाये जाते हैं।

---

5. Kindly and murderous, generous and avaricious, dishonest and faithful, cautious and brave, the Bedouin, however poor, fronted the world with dignity and pride...... —*Will Durant; p 158.*

6. Blood calls for blood; no chastisement is recognised other than that of Vengeance. —*P. K. Hitti; p 26.*

एक कबीला के सदस्य आपस में मेल तथा प्रेम रखते थे। उनकी पारस्परिक सौहार्दता का उल्लेख एक समसामयिक कवि इस प्रकार करता है : "अपने कबीले के प्रति भक्ति रखो।" कबीला का अपने सदस्यों पर इस तरह का कड़ा नियन्त्रण रहता था कि उसके लिये सदस्य अपनी पत्नी तक का परित्याग कर देते थे। जिस प्रकार एक सुसंस्कृत व्यक्ति अपने देश, धर्म तथा जाति (Race) के लिये सब कुछ न्योछावर करने की भावना रखता है, उसी प्रकार एक सदस्य अपने कबीले की प्रतिष्ठा, मर्यादा तथा अस्तित्व के लिये झूठ तक बोल सकता था, चोरी तक कर सकता था, किसी की हत्या भी कर सकता था और अपने प्राणों का अर्पण भी कर सकता था।[7] कबीले के सदस्यों की भक्ति से प्रभावित होकर खलीफाओं ने अपनी सेनाओं में उन्हें दाखिल किया और उनकी अटूट राज्य-भक्ति के कारण ही मुहम्मद साहब के मरणोपरान्त इस्लाम का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

बद्दूओं का जीवन मर्दानगी के अन्य गुणों से भी समन्वित था। इतिहासकार फिशर के शब्दों में "वे युद्ध में बहादुर, संकटकाल में धैर्यवान, प्रतिशोध लेने में दृढ़ दुर्बलों के संरक्षक और सबलों को युद्ध में ललकारने वाले थे।"[8] प्रत्येक कबीला का अध्यक्ष एक शेख होता था जिसका उल्लेख किया जा चुका है। उसकी सहायता के लिये एक समिति का गठन किया जाता था जिसके सदस्य अंगीभूत परिवारों के लोग होते थे। समिति के सदस्यों तथा कबीला के लोगों की इच्छा रहने पर ही शेख अपने पद पर बना रह सकता था। उनकी कृपा एवं इच्छा के अभाव होते ही उसे अपने पद का त्याग करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

अरब के बद्दू स्वयं को श्रेण्य तथा श्रेष्ठ मानते थे। श्रेष्ठता की यह अहम्मन्यता प्रत्येक बद्दू के मस्तिष्क में धावित थी। प्रत्येक बद्दू स्वयं को शेख से कम महत्वपूर्ण और शान-शौकत वाला नहीं मानता था। अतः एक बद्दू और शेख में कोई विशेष अन्तर नहीं था। यह कबीला-जीवन का प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण था। पुनश्च, बद्दू स्वयं को असभ्य न मानकर कुलीन मानते थे। उनका यह दावा था कि वे सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ जीव हैं और उनका देश सर्वश्रेष्ठ है। अन्य सभ्य लोगों को भी वे अपने से अधिक श्रेष्ठ नहीं मानते थे। अपने पाक खानदान, शायरी, तलवार तथा घोड़े पर वे नाज करते थे।

जमाना-ए-जाहिलियत में महिलाओं की स्थिति सन्तोषप्रद नहीं थी। प्रायः महिलाओं को सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी और उन्हें घर के घेरे के अन्दर कूपमंडूकता का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इस्लाम के प्रसार के बाद तो

7. for his tribe he would do.........what civilised people do only their country, religion or race—i.e. lie, steal, kill or die. —*Will Durant; p 157*

8. S. N. Fisher; the Middle East; A History, p 23.

उनका जीवन और भी बुरा बन गया। और वे केवल यौन-तुष्टि का साधन बनकर रह गयी। इस बात का उल्लेख मिलता है कि कबीले के लोग लड़की का जन्म होना विपत्ति का आगमन मानते थे और इसलिये वे उसे जन्म लेते ही दफना देते थे। अगर पिता की इच्छा होती थी तो निश्चित रूप से लड़की को दफना दिया जाता था। कन्या के जन्म लेने पर परिवार के सदस्य पश्चाताप किया करते थे और कन्या का पिता अपने मित्रों से मुँह चुराता फिरता था। अगर कन्या का जीवन सुरक्षित रह जाता था तो उसके पिता आठ-नौ वर्ष होते ही उसकी शादी अपने ही कबीले के किसी सदस्य से कर देता था। विवाह के समय पिता अपने दामाद को दहेज के रुप में धनराशि और सामग्रियाँ भी देता था। किन्तु विवाहिता शादी के उपरान्त भी स्त्रीयोचित गरिमा को प्राप्त करने में असमर्थ थी और सामाजिक मर्यादा पाना उसके लिये दुर्लभ था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि विवाहिता को अपने पति पर कुछ भी सामाजिक अधिकार नहीं रह पाता था और उसका पति अन्य स्त्रियों को भी विवाह करके अपने घर में लाने का अधिकारी था। संक्षेप में बहुपत्नी प्रथा के कारण महिलाओं को अरब समाज में मर्यादित तथा सम्पूजित स्थान प्राप्त नहीं था। पत्नी को सदैव पति की आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था और उसकी इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती थी। पति जब चाहे अपनी पत्नी को ठुकरा सकता था। वह पति की नौकर थी, जीवन-साथी का सच्चा पद शायद ही कभी पाती थी।[9] उसका विशेष काम था अधिक पुत्र पैदा करना जो लड़ाकू और सैनिक बनकर लड़ाई में मदद करें। कभी-कभी कबीले के लोग किसी पुरुष की सुन्दर पत्नी का अपहरण भी कर लेते थे और अपनी यौन-तुष्टि करते थे। इस प्रकार अरब के समाज में महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं था।

फिर भी अरब का समाज सर्वथा महिलाओं की इच्छाओं को ठुकराने में असमर्थ था। पति की संचालन-सीमा में रहकर भी पत्नी को कुछ स्वतन्त्रताएँ भी प्राप्त थीं। कन्या विवाह योग्य होने पर अपना जीवन साथी स्वयं चुन सकती थी और समाज उसे ऐसा करने का अधिकार प्रदान करता था। पति भी अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा की रक्षा करता था और उसके लिये संघर्ष करने पर भी उतारू हो जाता था। पत्नियों को तलाक करने का भी अधिकार था। वे दुश्चरित्र तथा दुर्व्यवहार करने वाले पतियों का त्याग भी कर सकती थीं।

महिलाओं की दयनीय स्थिति से मिलती-जुलती गुलामों की भी स्थिति थी। समाज में उनकी खरीद-बिक्री होती थी और मेले के अवसर पर क्रेता-विक्रेता उनकी खरीद-बिक्री के लिये मेले में पहुँच जाते थे। एक गुलाम का जीवन उसके स्वामी की कृपा पर निर्भर करता था। गुलामों की गिरफ्तारी और हत्या साधारण बात थी।

बद्दूओ के अतिरिक्त अरब प्रायद्वीप में शहरी लोग थे जो शहरों में निवास करते थे। बद्दूओं की अपेक्षा शहरी लोगों का जीवन अधिक संगठित, अधिक सुनियोजित, अधिक अनुशासित तथा अधिक स्थायी था। वे बद्दूओं की तरह

---

9. She was always the servant, ra ely the comrade.

— , ill Durant, P. 157

यायावर नहीं थे। नगरों में अपने आवास-गृहों का निर्माण कर वे स्थायी रुप से रहा करते थे। सभ्यता की दृष्टि से भी वे बददूओं से चढ़े-बढ़े थे। उनकी पोशाक, भोजन की सामग्रियाँ, जीवन का स्तर आदि सब कुछ श्रेष्ठ थे। वे तिरस्कार एवं प्रतिशोध की भावना को अपने पास फटकने नहीं देते थे और परिष्कृत जीवन व्यतीत करने के शौकीन थे। उन्नति करने की कला वे जानते थे। यही कारण था कि शहरी व्यापारी हो गये थे और व्यापार-कर्म ने उन्हें सम्पन्न तथा सुखी बना डाला था। उनकी सम्पत्ति का अपहरण करने के लिये कभी-कभी बद्दू उनपर आक्रमण कर बैठते थे। ऐसी स्थिति में उन्हें विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना पड़ जाता था। शहरी लोग व्यापार से लाभ उठाकर कला तथा संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिये भी उत्तरदायी थे। इस प्रकार अज्ञानता के इस युग में बद्दू जहाँ असभ्यता तथा पिछड़ेपन के द्योतक थे वहाँ बददूओं की ही दूसरी शाखा के लोग जो शहरों में निवास करते थे, इस बात के प्रतीक थे कि संगठित एवं परियोजित जीवन व्यतीत किया जाय तो अरब प्रायद्वीप के लोगों की जाहिलियत दूर की जा सकती है और सभ्यता तथा संस्कृति के श्रेष्ठ सोपान बनाये जा सकते हैं।

आर्थिक स्थिति

यद्यपि अरब प्रायद्वीप के शहरी और व्यापारी व्यापार करते थे, किन्तु सामान्यतः अरब के लोग दरिद्र थे और उनका जीवन सुखी नहीं था। संभवतः अरबों की आर्थिक विपन्नता का कारण प्रायद्वीप की ऊसर भूमि तथा उनकी असभ्यावस्था का होना है। इस क्षेत्र में वर्षा का अभाव था और इस कारण ही फसलों का बहुतायत रुप से पैदा होना संभव नहीं था। अरब प्रायद्वीप की आर्थिक स्थिति का आकलन कतिपय बिन्दुओं को ध्यान में रखकर किया जा सकता है।

सर्वप्रथम व्यापार का इतिहास पठनीय है। पैगम्बर मुहम्मद के पूर्व प्रायद्वीप के लोग व्यापार किया करते थे। मक्का प्रधान व्यापारिक नगर था जहाँ के व्यापारी देशी तथा विदेशी दोनों क्षेत्रों के व्यापार किया करते थे। छठी सदी के पश्चात् मक्का का व्यापार तो और विस्तृत हुआ और यमन तथा दमिश्क (सीरिया) तक के बाजारों में मक्का के व्यापारी दिखलाई पड़ने लगे। मक्का के व्यापारी प्रोन्नत मस्तिष्क रखते थे। वे नये-नये सिद्धान्तों के प्रचार तथा मौलिक वस्तुओं के अन्वेषण में अपना धन भी खर्च करते थे। संभवतः 27+3 ई० पू० से ही अरब का मिश्र के साथ व्यापारिक संबंध चला आ रहा था। अनुमानतः भारत से भी उसका व्यापारिक संबंध कायम था। मक्का के निकट 'उकज' (Ukaz) नामक स्थान में एक वार्षिक मेला लगता था जहाँ सकड़ों व्यापारी, अभिनेता, उपदेशक, जुआड़ी, कवि, वेश्यागामी पुरुष आदि पहुँचते थे। यह मेला भी अरब प्रायद्वीप के आर्थिक पहलू पर प्रकाश डालता है। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि मुहम्मद साहब के उत्कर्ष के पूर्व अरब प्रायद्वीप के लोग व्यापार कर्म से परिचित थे और सीरिया, मिश्र तथा भारत से उसका व्यापार चलता था।

इस काल में अरब प्रायद्वीप ने औद्योगिक विकास नहीं किया था। मक्का अथवा हेज्जाज औद्योगिक सामग्रियों का उत्पादन करते थे अथवा नहीं, इस सम्बन्ध

में हमें ज्ञान नहीं है, क्योंकि तत्सम्बन्धी कोई ऐतिहासिक प्रमाण हमें नहीं मिले हैं। अला-तईफ में फलों की तथा मदीना में खजूर की खेती की जाती थी। उनसे शराब तथा विभिन्न प्रकार के सुगन्धित इत्र, तेल वगैरह तैयार किये जाते थे। खजूर के पेड़ की छालों से रस्सियाँ तैयार की जाती थी। खजूर के फल का सेवन दूध के साथ किया जाता था। बद्दूओं का प्रधान भोजन भी यही था। हमें इस बात की सूचना हैं कि खजूर के फल को निचोड़कर नशीला रस (शराब) तथा केक तैयार किया जाता था जो ऊँटों को खिलाया जाता था। प्रत्येक बद्दू के घर में खजूर का फल और उसका पानी उपलब्ध रहता था। बाद में जब मुहम्मद साहब का आविर्भाव हुआ और वे महान व्यक्ति बन गये तब उन्होंने भी खजूर की उपयोगिता पर अपना विचार व्यक्त किया था और खजूर को बद्दुओं का जीवन बतलाते हुए यह उपदेश दिया था : "पिता का तथा खजूर की मर्यादा कायम रखो क्योंकि वे उन्हीं तत्वों से बने हैं जिनसे तुम्हारे पूर्वज आदम की रचना की गयी है।"[10] ऐतिहासिक प्रमाणों से हमें इस बात का ज्ञान मिलता है कि मक्का में खजूर की अनेक किस्में पैदा की जाती थीं। इन विभिन्न किस्मों की चर्चा अरब के कवियों ने अपनी कविताओं में की है। खजूर को 'वृक्षों की रानी' कहकर पुकारा जाता था। अरब में मेसोपोटामिया (आधुनिक इराक) से खजूर के पौधों का आयात होता था।

किन्तु यह तथ्य निर्णायक रूप से सत्य है कि जमाना-ए जाहिलियत में अरबों ने व्यापार में सन्तोषप्रद विकास कर लिया था। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि मक्का तथा हेज्जाज व्यापार की दुनियाँ में चढ़े-बढ़े थे और उनके व्यापारिक सामान विभिन्न मेलों तथा देशों में पाये जाते थे। सीरिया, ईरान, मिस्र तथा भारत से तो निश्चित रूप से अरब का व्यापारिक सम्बन्ध कायम था। भूमध्यसागरीय प्रदेशों तक अरब के व्यापारी सामानों को लादकर चले जाते थे। व्यापार के विकास में ऊँट बड़े सहायक थे। इस बात का उल्लेख मिलता है कि ऊँटों का कारवाँ अरब से चला करता था और यमन से वस्तुओं को लादकर वापस आता था। यमन पार करते हुए अपने ऊँटों के साथ अरब के व्यापारी मक्का, हेज्जाज और दमिश्क (सीरिया) तक जाते थे। इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं कि मुहम्मद साहब के परिवार के सदस्य तथा मक्का की खदीजा, जो हजरत मुहम्मद की पहली बीबी बनी, पक्के व्यापारी थे। अतः यह बात सत्य प्रतीत होती है कि मुहम्मद साहब के आगमन के पूर्व ही अरब व्यापार के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ नहीं था।

कृषि एवं जानवर अरबों के जीवन के प्रधान आधार थे। खजूर तथा फल की खेती बहुतायत से की जाती थी। खजूर सर्वाधिक उपयोगी वृक्ष था जिसका उल्लेख किया जा चुका है। बबूल के वृक्ष मरुभूमि में काफी पैदा होते थे जो ऊँटों को भोजन देते थे और मनुष्यों को गोंद। छोटी-छोटी झाड़ियों की दुनियाँ बसी थी जिनका उपयोग लकड़ी के रूप में किया जाता था। कोयला बनाने के लिए झाऊ

---

10. "Honour your aunt, the palm, which was made of the same clay as Adam."—*P. K. Hitti*, p. 27

का वृक्ष अधिक उपयोगी था। अरब में एक विशेष प्रकार का अन्न पैदा किया जाता था जिससे आटा तैयार किया जाता था। यह आटा हलुआ के रूप में व्यवहार में लाया जाता था। फलों की खेती में अँगूर बहुतायत से पैदा किया जाता था जिसकी खेती काफी तायदाद में अल-तईफ में की जाती थी। अँगूर की खेती करने की विधि अरब के कृषकों ने सीरिया के लोगों से सीखा था। इसके अतिरिक्त यमन में गेहूँ तथा अमन और अल-हासा में धान पैदा किये जाते थे। महरा में लोहबान की खेती की जाती थी, असीर में गोंद तथा यमन में काफी का उत्पादन किया जाता था। संभवतः अबीसीनिया ने अरबों को काफी पैदा करने का ज्ञान दिया।

पक्षियों एवं पशुओं को अरब के लोग काफी महत्व देते थे और उनसे इन्हें विभिन्न प्रकार के लाभ थे। अरब के लोग पक्षियों में बाज, उल्लू, गिद्ध, बुलबुल, कबूतर, भारद्वाज आदि से परिचित थे और इनमें से अधिकांश पक्षियों को वे पालते भी थे। बद्दू टिड्डियों से परिचित थे और उन्हें आग में भुनकर खाते थे। विषैले सर्प भी मरुभूमि में पाये जाते थे।[11] अरब के लोग जंगली तथा पालतू जानवरों तथा उनकी प्रकृति से वाकिफ थे। जंगली जानवरों में चीता, भेड़िया, लोमड़ी, लकड़बघ्घा, सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इस काल के कवियों ने अपनी कविताओं में सिंह की चर्चा की है। बद्दू छिपकली से भी परिचित थे। यमन में बन्दर पाये जाते थे। अरबों के कुछ पालतू जानवर भी थे जिनमें ऊँट, गदहा, घोड़ा, पहरेदार कुत्ता, शिकारी कुत्ता, बिल्ली, भेड़ तथा बकरा अधिक उल्लेखनीय हैं।

इन कथित जानवरों में दो जानवर अरबों के लिये काफी उपयोगी सिद्ध हुए और इसीलिये उन्होंने उन्हें विशेष महत्व का स्वीकार किया। वे थे घोड़े और ऊँट। इस काल में अरब के लोग—बद्दू और शहरी—घोड़े को प्रयोग में लाते थे। घोड़े पर चढ़ना और उससे विभिन्न काम लेना उन्होंने सीरिया के लोगों से जाना।[12] कालान्तर में घोड़े-घोड़ियों को प्रयोग में लाने की कला अरबों से यूरोपवासियों ने सीखी। घोड़ों का व्यवहार पडोसियों पर आक्रमण करने, शिकार करने, यात्रा करने और व्यापार करने के समय किया जाता था। चूँकि घोड़े अधिक उपयोगी थे, इस कारण अरबवासी उन्हें अच्छी तरह खाद्य- सामग्रियाँ खाने के लिये देते थे।

लेकिन समस्त जानवरों में अरबों को विशेष प्रिय ऊँट थे। एक बद्दू घोड़े को अवश्य प्यार करता था, क्योंकि मरुभूमि में उसका सबसे बड़ा मित्र ऊँट था।[13]

---

11. T. E. Lawrance; —*Seven pillars Wisdom*. p. 270.
12. William .R. Brown; —*The Horse of the Desert*, p. 123.
13. The Bedouin loved horses, but in the desert the camel was his greatest friend. —*Will Durant*, p. 157.

ऊँट उसका पालनकर्त्ता, आवागमन का सर्वोत्तम साधन और वितरण का श्रेष्ठ माध्यम था। बद्दू दुलहिन को दहेज, खून की कीमत तथा जुए का नफा ऊँट के रूप में देते थे। शेख की सबसे बड़ी सम्पत्ति ऊँट ही था। बद्दू ऊँट को अपनी आत्मा ही मानते थे क्योंकि उनसे उनका जीवन चलता था, उन्हें सुख-सुविधा मिलती थी और आर्थिक लाभ में उनका सहयोग मिलता था। बद्दू ऊँटनी के दूध का सेवन करते थे, ऊँट का मुलायम माँस खाना पसन्द करते थे, उसके चमड़े को शरीर पर रखकर जाड़े से त्राण पाते थे और उनके चमड़े तथा केशों को जमाकर अपना तम्बू तैयार करते थे। ऊँट का गोबर जलावन का काम करता था और उसका मूत्र दवा तथा तेल के रूप में प्रयोग में लाया जाता था।

डौटी (Doughty) ने लिखा है कि "एक बद्दू औरत ऊँट के मूत्र से अपने बच्चों को धोती थी और यह विश्वास करती थी कि उसके बच्चे कीटाणुओं से रक्षा पायेंगे। पुरुष और स्त्री दोनों मूत्र को अपने केशों में लपेटकर कँघी करते थे"।[14] ऊँट वस्तुतः 'मरुभूमि के जहाज' थे, और लोग उन्हें 'अल्लाह का विशेष उपहार'[15] मानते थे। एक बद्दू अपने को ऊँट की सन्तान कहने में गौरव का अनुभव करता था। स्पेन्जर के शब्दों में "बद्दू ऊँटों की खुशामद करने में लगे रहते थे।" मुस्लिम के अनुसार "रूवाला (Ruwalah) कबीला का शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो ऊँट के उदर का पानी न पीता होगा।"[16] संकट तथा अकाल के वक्त अरबवासी ऊँट को मारकर खा जाते थे और अपने प्राणों की रक्षा करते थे। लम्बी यात्रा के समय पानी की दुर्लभता होने पर यात्री ऊँटों के मुँह में छड़ियाँ घुसेड़ देते थे जिससे ऊँट पानी की कै करने लग जाता था और प्यासे यात्री पानी पीकर प्यास बुझा लेते थे। प्रकृति ने भी ऊँटों को पानी रखने और लम्बे दिनों तक प्यास मारकर रहने की विशेषता प्रदान की थी। शिशिर ऋतु में लगातार पच्चीस दिनों तक और ग्रीष्म ऋतु में पाँच दिनों तक ऊँट आसानी से बिना पानी पीये यात्रा करते रहते थे। वास्तव में ऊँट बद्दूओं को न केवल सुखमय जीवन बिताने के लिये माँस, चमड़े, केश और पानी ही प्रदान करते थे अपितु उनके आर्थिक लाभ के साधन भी जुटाते थे। संपूर्ण अरब की आर्थिक सम्पन्नता में ऊँट एक प्रधान सहयोगी साधन था। खलीफा उमर तो यहाँ तक कहा था कि "ऊँटों की संख्या-वृद्धि पर ही अरब की प्रगति निर्भर करती है।"[17]

अज्ञानता के इस युग में अरब में ऊँटों की अच्छी संख्या रही और अच्छी नस्ल के ऊँट भी पाये जाते रहे। नेज्द में घोड़े, अल-हासा में बन्दर और अमान

14. Doughty; *Travels in Arabia Deserts*, vol. II p. XX.
15. *Koran*, 16 : 5-8.
16. Musil; *The Manners and Customs of the Ruwalah Bedouins*, p. 368.
17. Carleton S. Coon; Carvas : *The Story of the Middle, East*, p. 61.

में ऊँट अधिक प्रसिद्ध थे। ऊँट आय-वृद्धि के कीमती साधन थे। अमान तथा फारस की खाड़ी के निकटस्थ प्रदेशों में ऊँटों का व्यापार चलता था। अरब प्रदेशों से ही ऊँटों के पालने तथा उनसे विभिन्न कार्य लेने की कला अन्य देशों के लोगों ने सीखी। ग्यारहवीं सदी में फिलस्तीन और सीरिया में अरब के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों से ऊँटों का निर्यात हुआ। सातवीं सदी में असीरिया की विजय के समय मिस्रवासी ऊँटों से परिचित हुए और इसी समय में मुसलमानों के आक्रमण के समय उत्तरी अफ्रीका में भी ऊँटों का कारवाँ देखा गया।

अरबों के जीवन में ऊँटों ने एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन लाया। फिशर ने लिखा है कि जिस प्रकार तेल तथा मोटरगाड़ियों ने 20 वीं सदी में मध्यपूर्व के देशों के लोगों के जीवन में युगान्तकारी परिवर्त्तन लाया उसी प्रकार ऊँटों ने अज्ञानता के काल में अरबों के जीवन में आर्थिक दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्त्तन लाया। ऊँटों ने बद्दूओं को एक समाज के संगठन करने की भावना दी। मरुस्थल और शहर मिलकर 'एक समाज' का संगठन करने की दिशा में उन्मुख हुए।[18] ऊँटों ने भारत तथा मेडीटरेनियम प्रदेशों के मध्य न चलने वाले व्यापार को आगे बढ़ाया और तत्संबंधी अनेक कठिनाईयों को दूर किया। हद्रा माउट से यमन तक ऊँटों का कारवाँ विभिन्न मसालों तथा सामग्रियों को लेकर आता-जाता था। उनका कारवाँ मक्का, हेज्जाज तथा दमिश्क में अक्सर देखा जाता था। इस प्रकार ऊँटों के कारवाँ द्वारा अरब का व्यापार विकासोन्मुख हुआ। व्यापार ने नगरों के जन्म तथा उत्कर्ष में सहयोग दिया, नगरों ने राज्यों का रूप धारण करना प्रारम्भ किया और राज्यों ने अरब प्रायद्वीप की सभ्यता तथा संस्कृति के विकास का मार्ग खोल दिया।

धार्मिक स्थिति

चूँकि उन्नत सभ्यता से अरबवासी परिचित नहीं थे, इसलिये उनका न तो कोई खास धर्म था और न एक देवता। वे विभिन्न धार्मिक बुराईयों, आडम्बरों, पाखण्डों और अंधविश्वासों के शिकार थे। यही कारण था कि धार्मिक दृष्टि से भी वे एकमत नहीं थे और उनमें बिखराव था।

अरबवासी बहुदेववादी और मूर्तिपूजक थे। विभिन्न देवताओं तथा मूर्तियों की आराधना के पीछे उनका यह भय था कि देवताओं की अप्रसन्नता तथा अकृपा के कारण उनका सुख समाप्त हो जायेगा और वे विभिन्न यन्त्रणाओं का सामना करने लगेंगे। यही कारण था कि वे बहुतेरे देवी-देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करने लगे थे। प्रत्येक कबीला के अपने-अपने देवी-देवता थे जो विभिन्न गुणों की

---

18. The camel was as revolutionary to life in Arabia at that time as oil and motor vehicle have been in the twentieth century. The Camel people became lord of the desert. Above all, the camel welded city and desert life in Arabia into one integrated society, each dependent upon the other. — *S. N. Fisher* p. 19.

खान थे। वे वृक्षों तथा पत्थरों में भी देवताओं की झाँकी पाते थे और इसीलिये उनकी पूजा करते थे। अरब के अनेक वृक्ष, पत्थर, गुफा और कूप आराध्य थे। स्वच्छ कूप की वे इसलिये पूजा करते थे क्योंकि उससे उन्हें प्राण-यापन के लिये जल मिलता था। जामजाम के जल की पवित्रता का बखान इस काल में काफी किया गया। इसी प्रकार ऑरबा (Orwah) का कूप पूजित था क्योंकि उसका जल पवित्र माना जाता था जिसे यात्री पात्रों में भरकर अपने-अपने क्षेत्रों में ले जाते थे और अपने संबंधियों तथा मित्रों को पान कराते थे। बद्दू गुफाओं की इसलिये पूजा करते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि भूमि के अन्दर निवास करनेवाले देवताओं का संबंध गुफाओं से है और इसीलिये पाक देवताओं की तरह गुफाएँ भी पाक हैं।

अरबवासी सौर मण्डल के देवताओं की भी पूजा करते थे और उनकी शक्ति में अटूट विश्वास करते थे। वे चन्द्रमा की पूजा करते थे क्योंकि वह उनके जानवरों को चरने के लिये रोशनी देता था। वे सूर्य की इबादत इस वजह से करते थे क्योंकि वह उनकी खेती में मदद करता था। रूवाला कबीला के लोगों का यह विश्वास था कि उनका जीवन चन्द्रमा के द्वारा ही संचालित होता है। चन्द्रमा ही भाप बनकर उड़े हुए पानी की बून्दों को जमाकर उन्हें चारागाहों पर शबनम की बून्दों के रूप में बरसाता है और पौधों के जन्म, अंकुरण, पल्लवन तथा वृद्धि में मदद करता है। किन्तु वे सूर्य को अधिक अहमियत नहीं देते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि वह बद्दूओं, उनके जानवरों तथा उनकी फसलों को सुखाकर मार डालता है। सितारों की भी अरब में आराधना की जाती थी।

अरबवासी अंधविश्वास के शिकार थे और राक्षसी प्रवृतिवाले जीन (Jins), भूत-प्रेतों तथा अन्य अदृश्य शक्तियों में विश्वास करते थे। वे देवताओं और जीनों में अन्तर निकालते थे। उनके अनुसार देवता शुद्धात्मा रखते थे और जीन बुरी आत्मा रखते थे। देवतागण मनुष्य को अपरमित सुख देते थे तो जीन अपार दुख के कारण थे। इसलिये अरब के लोग देवताओं को अपना मित्र तथा जीनों को शत्रु मानते थे। फिर, वे जीनों को इस कारण पूजते थे ताकि वे अप्रसन्न होकर उन्हें दुख नहीं दें। वे यह मानते थे कि जीनों के साथ मनुष्य नहीं, "मजनू" (विक्षिप्त-मानव) रहते हैं।

हैज्जाजवासी अल्लाह की तीन पुत्रियों--अल-अज्जा, अल-लत और अल-मना-में विश्वास करते थे और उनकी आराधना करते थे। उनका कहना था कि मूर्तिपूजा में नक्षत्रों की पूजा करने का समय पहले होना चाहिये। इसलिये वे नक्षत्रों के मध्य निवास करनेवाले अल्लाह की इन तीन पुत्रियों को अपनी आराधना की देवियाँ मानते थे अल-लत का हरम (Haram) अल-तईफ के निकट अवस्थित था जहाँ उसकी पूजा के लिये मक्का तथा अन्य नगरों के लोग आते थे। इस क्षेत्र (Haram) के सीमान्तर्गत खून बहाना, वृक्ष काटना तथा शिकार खेलना पाप समझा जाता था। अल-अज्जा का क्षेत्र मक्का के पूरब स्थित नख्ला में स्थित था।

कालाबी के अनुसार कुरैश कबीला के लोग इस देवी की पूजा करते थे। युवावस्था में मुहम्मद साहब ने भी देवी इलहाम होने के पहले इस देवी के पैरों पर कुर्बानी चढ़ाई थी। मानव बलिदान से यह देवी अत्यन्त प्रसन्न होती थी। अला-मना तकदीर की हालत बतलाने वाली देवी थी। मदीना में एक पत्थर को अला-मना मानकर लोग पूजते थे। आवज (Aws) तथा खजराज (Khazraj) कबीला के लोग इस देवी की पूजा किया करते थे।

इसके अतिरिक्त अन्य देवी-देवता भी सम्पूजित थे। मूर्त्ति रूप में पवित्र पत्थरों की पूजा मक्का में की जाती थी। 'हाबूल, नामक देवता काबा में प्रभावशाली था। लोगों का यह विश्वास था कि हाबूल मानव शरीरधारी देव हैं। मक्का के देवस्थल में इस्लाम के उदय के पूर्व भी 'काबा' (एक कृष्ण पत्थर) जिसका अर्थ है एक वृत्ताकार भवन, का अत्यधिक धार्मिक महत्त्व था। साल में एक बार अरब के लोग यहाँ आते थे और धर्मयात्रा करके निहाल हो जाते थे। मुसलमानों की यह मान्यता है कि काबा का दस बार निर्माण हुआ। पहली बार इसका निर्माण इतिहास के प्रारम्भिक काल में स्वर्ग के देवताओं ने, दूसरी बार आदम ने, तीसरी बार उसके पुत्र सेत (Seth) ने, चौथी बार अब्राहम (Abraham) तथा उसके पुत्र इसराइल (Israel) ने, सातवीं बार कुशी (Qussy) ने, आठवीं बार 605 ई० में मुहम्मद के जन्म काल में कुरैश नेताओं ने और नवीं तथा दसवीं बार (681 और 696 में) मुस्लिम नेताओं ने किया। यह वृत्ताकार भवन 40 फीट लम्बा, 35 फीट चौड़ा और 50 फीट ऊँचा है जो सिर्फ काले रंग वाले पत्थर से ही बना है। मसीहा बनने के बाद मुहम्मद साहब ने भी काबा के मजहबी अहमियत को स्वीकार किया और आज तक इसका महत्त्व कायम है।

मक्कावासी 'अल्लाह' (Allah) नामक एक अन्य देवता के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे। इस्लाम के उदय के पाँच सौ वर्ष पूर्व 'अल्लाह' शब्द 'सफा' के अभिलेख में 'हल्ला' (Halla) के नाम से उत्कीर्ण है। मुहम्मद साहब के वालिद अब्दुल्ला (Abdullah) इसी अल्लाह के पुजारी थे। यही अल्लाह कालान्तर में पैगम्बर मुहम्मद का 'खुदा' या अल्लाह' बना और इसी एक की इबादत करने के लिये उन्होंने लोगों को नसीहत दी। इस काल में दो अन्य देवताओं के अस्तित्व का भी उल्लेख मिलता है। उनके नाम हैं 'नस्र' (Nasr) जिसका अर्थ 'गिद्ध' होता है और 'आवफ' (Awf) जिसका अर्थ होता है 'बड़ी चिड़ियाँ'।

बद्दू भविष्य में विश्वास करते थे या नहीं, यह निश्चयात्मक रूप से कहा नहीं जा सकता है। इस बात का उल्लेख मिलता है कि वे शव को दफनाते समय ऊँट को भी जीवित दशा में ही बाँधकर कब्र में डाल देते थे ताकि समाज के लोग यह स्वीकार करें कि मृत व्यक्ति अपनी प्रिय सवारी (ऊँट) पर सवार होकर ही स्वर्ग गया है।

सांस्कृतिक स्थिति

सौन्दर्यमयी महिलायें जहाँ कबीलों के लोगों में संघर्ष का कारण थीं वहाँ कवियों की कविता-रचना का प्रेरक-स्रोत भी थीं। इस्लाम के उदय के पूर्व अरब में शिक्षा का अभाव था, किन्तु लोग घोड़े, शराब और औरतों के बाद कविता से ही प्रेम करते थे। इतिहास तथा विज्ञान पर रचना करने की मेधा भी बद्दू में नहीं थी, किन्तु वे वक्तृत्व कला में पारंगत थे। उनकी भाषा हिब्रू से मिलती-जुलती थी। शहरों, गाँवों, कैम्पों तथा मेलों में कविताओं का पाठ और श्रवण करने के लिये कबीलों के लोग भ्रमण करते रहते थे। कविताओं में युद्ध एवं प्रेम के नायकों, कबीलों और राजाओं की चर्चा हुआ करती थी। अरबवासी अपने कवि को ही इतिहासकार, व्यंगकार, नैतिक पुरुष आदि सब कुछ मानते थे। जब एक कवि पुरस्कार प्राप्त करता था तब उसके (कवि के) कबीले के लोग अपने आपको गौरवान्वित मानते थे। प्रत्येक वर्ष 'उकाज' के मेले में कवियों की जमघट लगती थी और प्रतियोगिता में जो कवि श्रेष्ठ ठहरता था वह पुरस्कृत होता था। कवि की श्रेष्ठता का निर्णय दर्शक ही करते थे। विजय पानेवाली कविताओं को 'स्वर्ण गीत' कहा जाता था और उन्हें सुरक्षित रख दिया जाता था। अरबवासी इन कविताओं को 'मुल्लाकात' (Muallaqat) भी कहा करते थे। छठी सदी के ऐसे सात मुल्लाकात आज भी उपलब्ध हैं। वे सभी क्रमिक रूप से लिखे गये हैं जिसे 'कसीदा शैली' (Qasida Style) कहते हैं। वे प्रेम-परक तथा युद्ध परक हैं। कवि लाविद (Labid) की एक कविता का सार यह है कि एक सैनिक युद्ध के बाद गाँव वापस आता है और पाता है कि उसकी झोपड़ी खाली पड़ी है और उसकी पत्नी किसी पर-पुरुष के स्वामीत्व में रह रही है। एक दूसरी कविता में अरब की औरतों के दर्प का उल्लेख किया गया है जो युद्ध में लड़ने के लिये प्रस्थान किये गये अपने पतियों को इन शब्दों में ललकारती हैं :

"ऐ औरतों के संरक्षक ! अपनी तलवार की तीक्ष्ण धार से शत्रुओं का सिर काटो। हमारे पैरों के नीचे मुलायम गलीचे हैं, ग्रीवा में हीरे के हार हैं और हमारा शरीर सुगन्धित इत्र से सुवासित है। अगर तुम विजयी बनकर वापस आओगे तो हम अपने इन सारे सौन्दर्य एवं कमनीयता से तुम्हें अंकपाश में भरकर आलिंगन देंगे, अगर कायर बनकर युद्ध से भाग आओगे तो हम तुमसे नफरत करेंगे।[19]

इमरूलकैश (Imrulqais) नामक एक कवि ने विशुद्ध प्रेम को अपनी कविता का विषय बनाया। अतः स्पष्ट कि इस काल में भाषा और साहित्य का जिसमें केवल युद्ध और प्रेम का उल्लेख किया जाता था, संतोषप्रद विकास हुआ।

---

19. Lady A. Blunt and W. S. Sir; The Seven Golden Odes of Pagan Arabia, p 41

अरब में कविता और वाद्ययंत्र साथ-साथ विकसित हुए। कवियों की कविताओं को वाद्ययंत्रों पर गाया भी जा सकता था। बाँसुरी, शहनाई और खंजड़ी कवियों तथा अरबों के प्रिय यन्त्र थे। नाचने-गानेवाली लड़कियाँ लोगों का मनोरंजन किया करती थीं और विशेष अवसरों पर उनका नाच-गान चलता था। इन अवसरों पर पुरुष नशीली चीजें खाकर मदहोश हो जाते थे और जश्न का पूरा लाभ उठाते थे। घस्सानी (Ghassanid) राजा राजमहल के सदस्यों के मनोरंजन के लिये नाचने-गानेवाली लड़कियों को बुलाया करता था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि जब 624 ई० में मुहम्मद साहब के विरुद्ध मक्का के लोगों ने प्रस्थान किया तब वे अपनी थकान मिटाने के लिए इन मनोरंजनकारी लड़कियों को साथ लेते गये थे। इस काल में छोटे-छोटे गेय गीत लिखे जाते थे जिन्हें पेशेवर लड़कियाँ वाद्ययंत्रों के सहारे गाया करती थीं।

यह आश्चर्य की बात है कि जब अरब में सभ्यता की किरणें फैली नहीं थीं तब भी अरबवासी भाषा-साहित्य में बहुत दूर तक विकास कर लिये थे। उनकी असभ्यावस्था पर सभ्य देशों के लोग उन्हें पिछड़ा हुआ मानते थे, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में असभ्य अरबों ने ही उन देशों के लोगों के हृदय और मस्तिष्क को प्रभावित किया। उनकी साहित्यिक श्रेष्ठता को इतिहासकार पी० के० हिट्टी ने भी स्वीकार किया है और यह लिखा है कि दुनिया के अन्य लोगों ने अरबों की तरह उस युग में न तो साहित्य का सृजन किया और न उनकी तरह प्रेम-परक साहित्य लिखकर लोगों के हृदय की रागात्मक प्रवृत्तियों को झकझोर सकने में समर्थ हुए।[20]

अरबवासियों ने कला के क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से विकास नहीं किया, किन्तु उनका साहित्य इस बात की पुष्टि करता है कि उनमें कलात्मक अभिरुचि का अभाव नहीं था। उनकी भावना-प्रधान साहित्यिक रचनायें कलात्मक रुचि को स्पष्ट करती हैं। अगर यूनानियों की ग्रीक भाषा ने उनकी मूर्त्ति-कला और स्थापत्य कला को गौरव प्रदान किया तो अरबों के कासीदा ने उनकी कला-प्रियता को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया।[21]

---

20. No people in the world, perhaps, manifest such enthusiastic admiration for literacy expression and are so moved by the world, spoken or written, as the Arabs. Hardly any language seems capable of excercising over the minds of its users such irresistible influence as Arabic. —*P. K. Hitti*; 90.

21. If the Greek glorified primarily in his statues and architecture, the Arabian found in his Ode (*Qasidah*) and the Hebrew in his psalm a finer mode of self-expression. —*Ibid*,

राजनीतिक स्थिति

धर्म और समाज की तरह अरबों का राजनीतिक जीवन भी असंगठित था और वे राजनीति के क्षेत्र में पिछड़े हुए थे। केवल शहरी ही कुछ राजनीतिक सूझ-बूझ रखते थे, अवशेष सारे बद्दू राजनीतिक तत्वों एवं सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे। अरबवासी, जो 'साराकेनी' (Sarakenoi)कहे जाते थे, 'सारासेन' के नाम से भी जाने जाते थे। 'सारासेन' (Saracen) शब्द की व्युत्पति अरबी शब्द शारकीयूम' (Sharqiyun) से हुई है जिसका अर्थ होता है पूरब के लोग (Easterners । आखिर ऐसे कौन से कारण थे जिनके चलते सारासेन राजनीती तक दृष्टि से पिछड़े रह गये ? इसका कारण यह था कि यातायात के सुलभ साधनों के अभाव के कारण और अरबों की इस समझ के कारण कि अरब के अलावा अन्य कोई श्रेष्ठ प्रदेश नहीं है, अरब के लोग अन्य देशों से कटे-कटे रहे और उनका सम्पर्क बहुतेरे देशों से न हो सका। यही कारण था कि इस्लाम के पूर्व सारे सारासेन अपना राजनीतिक विकास न कर सके। पुनश्च, अरबवासी अपने ही कबीले के प्रति निष्ठावान बने रहे और उन्होंने अन्य लोगों से कभी भी सम्पर्क कायम करने का प्रयास नहीं किया।[22] अतः वे एक केन्द्रीय शक्ति का अथवा सुदृढ़ राजनीतिक संगठन का गठन न कर सके।

हाँ, मक्का में एक राजनीतिक सरकार बन गयी थी जो राजनीति में सितारों की तरह टिमटिमा रही थी। यह सही है कि मक्का की सरकार आधुनिक सरकारों की तरह पूर्ण गठित नहीं थी, किन्तु इसने भविष्य में राजनीतिक विकास के लिये बिहान ला दिया था। यहाँ कबीला के प्रधान लोगों ने एक समिति का गठन कर लिया था जिसने सरकार के कार्यों के सम्पादन में मदद देना प्रारम्भ कर दिया था।

सच तो यह है कि अरब देश कबीलों के संगठन से बना था और यहाँ का प्रत्येक कबीला एक स्वतन्त्र ईकाई (सरकार) के रूप में काम करता था। प्रत्येक कबीला एक शेख के अधीन था और शेख ही उसके शासन की व्यवस्था करता था। कबीला का शासन प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर चलता था। लोग अपने शेख को मिल-जुलकर चुन सकते थे और उसे पदच्युत भी कर सकते थे। क़बीला के प्रधान व्यक्ति मिलकर आपसी झगड़ों का निपटारा कर लिया करते थे और प्रत्येक कबीला अपने लोगों के हितों तथा मर्यादा की रक्षा करना अपना प्रधान कर्त्तव्य मानता था।

अज्ञानता के इस युग में अन्य राजनीतिक संस्थाओं का गठन नहीं हो पाया था। राष्ट्र, राष्ट्रीयता, आदि जैसे शब्दों के अर्थ से अरबवासियों को कुछ

---

22. Arabia as a political unit before Mohmmed, existed only in the careless nomenclature of the Greeks... .The Arab felt no duty or loyalty to any group larger than his tribe....—
—*Will Durant*; p. 157.

लेना-देना नहीं था। वे तो केवल अपने खानदान और कबीले की दुनिया तक ही सीमित थे। सम्पूर्ण अरब को एक शासन-सूत्र में बाँधने की कल्पना उन्होंने इस युग में कभी भी नहीं की। यही कारण था कि मामूली प्रश्नों को लेकर भी दो कबीले के लोग आपस में झगड़ पड़ते थे और उनमें पारस्परिक मैत्रीभाव का अभाव हो जाता था।

उपसंहार :

किन्तु प्रकृति बड़ी ही रहस्यपूर्ण और समय बड़ा ही परिवर्तनशील है। मानव समुदाय का जो वर्ग सदियों तक अंधकार में भटक रहा था, वही एकाएक प्रकाश में आ गया, जो युगों से सोया हुआ था, वही अचानक जग गया। उसके उत्साह एवं पराक्रम, उसकी सभ्यता तथा संस्कृति को देखकर सारा संसार आश्चर्य के समुद्र में गोते लगाने लगा। वस्तुतः दुनिया के इतिहास में अरबों एवं अरब प्रदेश का जागरण तथा उत्कर्ष एक महान और अदभुत घटना है। किन्तु यह बिल्कुल आकस्मिक घटना नहीं थी। इसके लिये वातावरण अनुकूल था। अरब के लोग कोरे जंगली और असभ्य नहीं थे। हमने देखा है कि मरूस्थल के भाग के निवासी अव्यवस्थित तथा असंगठित जीवन अवश्य व्यतीत करते थे, किन्तु तटीय भाग के निवासी नगरों तथा ग्रामों में रहते थे और पशुपालन, खेती तथा व्यापार भी करते थे। व्यापार के सिलसिले में विदेशों से, अधिक नहीं तो कम ही सही, इनका सम्पर्क कायम था। इनके जहाज और कारवाँ विदेशी मालों से लदे रहते थे। भारत, मिस्र, सीरिया वगैरह से इन्होंने व्यापारिक सम्बन्ध कायम कर रखा था। मक्का और मदीना तो व्यापार के गढ़ थे ही। उकाज में विभिन्न देशों के व्यापारियों का जमाव भी होता था जो मालों का क्रय-विक्रय खूब करते थे। कुछ लोग औद्योगिक कार्यों में भी संलग्न थे। कुछ लोग अच्छे सैनिक भी थे और फारस तथा बिजेन्ताइन सेनाओं में भरती होते रहते थे। काबा में सारे सारासेन जमा होते थे जिससे एकत्व की भावना का, आज नहीं तो कल, जन्म होना ही था। अरबवासी यहूदी तथा ईसाई धर्म के प्रभाव में भी आ रहे थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनकी रगों में भी सेमेटिक वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा था जिस वंश ने पश्चिमी एशिया के अन्य भागों में उत्तम कोटि की सभ्यताओं का निर्माण किया था। भाषा तथा साहित्य में भी अरबवासियों ने विकास करना प्रारम्भ किया था और स्पन्दनशील कविताओं के लिये कवि पुरस्कृत होने लगे थे। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों में मुहम्मद साहब का आगमन हुआ जिन्होंने धार्मिक नेता और तत्पश्चात राजनेता के रूप में बद्दूओं को संगठित बनाने का, अरब की सभ्यता के विकास के लिये प्रयास करने का अमर संदेश दिया। परिस्थिति पिछड़े वातावरण में भी अनुकूल थी। सिर्फ जरूरत थी एक ऐसे रहबर की जो अपनी सक्रियता तथा प्रतिभा से सारे अरबों के मनोविज्ञान को प्रगति की दिशा में धावित होने के लिये मार्ग की खोज कर दे। मुहम्मद साहब ने यही किया।

इस प्रकार उपर्युक्त सन्दर्भों से हमें दो बातों की स्पष्ट जानकारी होती है। प्रथम यह कि, अरब (उत्तरी) के लोग बनजारे का जीवन व्यतीत करते थे। ये बनजारे या बद्दू राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और विभिन्न प्रकार के संगठनों से अपरिचित थे। वे प्रशासन, विधि-विधान, एकता, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य आदि की जानकारी नहीं रखते थे। द्वितीय यह कि, अरब के कुछ लोग (दक्षिणी) सभ्य थे, जागरूक थे, उन्नति के हिमायती थे। ऐसे लोग जाहिलियत युग में भी कृषि-कर्म से परिचित थे, व्यापार तथा व्यापारिक संघों से उनका लगाव था, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से वे लाभान्वित थे और जीवन के अनेक क्षेत्रों में वे उन्नति कर चुके थे। अतः अज्ञानता के इस युग में भी सारा का सारा अरब प्रदेश सभ्य देशों से कटा-कटा नहीं था और उनसे उसका सम्पर्क कायम था।[23]

---

23. Despite the regression of this period Arabia was not wholly isolated from the civilised world, but lay rather on its fringes. —*Bernard Lewis*; p. 26.

अध्याय 3

हज़रत मुहम्मद और इस्लाम (570-632)

(Prophet Mohammed & Islam (570-632)

जस्टिनियन की मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद अरेबिया के एक छोटे शहर में, जो लालसागर के निकट था, एक महामानव का जन्म हुआ जो बिजेन्टाईन सम्राट से भी अधिक विश्व-इतिहास को प्रभावित करने वाला था वह महामानव मुहम्मद था जिसने एक ऐसे नये धर्म का प्रतिपादन किया जो विश्व में ईसाई धर्म का प्रतिद्वन्दी बना और उससे प्रतिस्पर्धा करने लगा। ठीक उसी समय इस नये धर्म के खलीफाओं ने एक ऐसे विशाल साम्राज्य की नींव डाली जिसके अन्तर्गत बिजेन्टाइन साम्राज्य के सीरिया, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन भी आ गये और जिसका विस्तार भारत की पूर्वी सीमा तक भी हो गया। इस साम्राज्य ने आगामी सदियों में ऊँची सभ्यता का विकास किया। आज इस्लाम के साम्राज्य का पतन हो गया है, फिर भी लाखों लोग इस्लाम धर्म के समर्थक हैं और हजरत मुहम्मद के अनुयायी हैं। हजरत मुहम्मद के जीवन-कार्यों मे सबसे बड़ा कार्य यह है कि उन्होंने अरब के रेगिस्तान में धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्ति लाकर प्रायद्वीप तथा उसके निवासियों के जीवन में एक युगान्तकारी परिवर्त्तन लाया और खण्ड-खण्ड में बँटे हुए अरबी कबीलों को संगठित करके उन्हें विकास के पथ पर अग्रसरित कर एक नयी दिशा, एक नयी चेतना दी। चेतनशील इस महामानव ने अपने जीवन का एक ही ध्येय बनाया—अरब देश का एकीकरण करना और एकेश्वरवाद का प्रतिष्ठान करके अरबों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाना। अरब के धार्मिक तथा राजनीतिक रंगमंच का अभिनेता बनते ही मुहम्मद साहब ने एक ही नारा दिया—ला इल्ल हू इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूल उल्लाह। यह साधारण नारा नहीं था। धार्मिक एकता को यह शक्ति राजनीतिक संगठन का और तत्पश्चात राज्य का और पुनः साम्राज्य का निर्माण और विस्तार करने वाली थी।

जीवन-कथा

मुहम्मद साहब के प्रारंभिक जीवन की जानकारी के साधन कम हैं। स्वयं मुहम्मद ने भी किसी प्रकार की आत्मकथा नहीं लिखी। इब्न इशाक नामक एक इतिहासकार ने 8 वीं सदी में पहली पुस्तक का प्रकाशन (मुहम्मद की जीवनी से संबंधित) कराया। इस रचनाकार के शोध-कार्य को इब्न हिशाम ने आगे बढ़ाया और हजरत के प्रारंभिक जीवन से संबंधित कुछ नयी सामग्रियों को ढूँढ़ निकाला। फिर, एक बिजेन्ताईन इतिहासकार 'थियोफेंस' ने भी मुहम्मद की जीवनी लिखी। इन्हीं साधनों के आधार पर मुहम्मद साहब के प्रारंभिक जीवन के संबंध में हमें जानकारी मिलती है।

हजरत मुहम्मद का जन्म 570 ई० में मक्का नगर में कुरैश कबीला के हाशिम परिवार में हुआ था। इनके कबीला के सदस्यों ने इन्हें 'अमीन' कहकर पुकारा जिसका अर्थ होता है 'विश्वासी'। कुरान में इन्हें दो नाम से पुकारा गया—मुहम्मद और अहमद (कुरान, 3 : 133, 33 : 40 : 48 : 29), पर ये 'मुहम्मद' या 'मोहम्मद' नाम से लोकप्रिय हुए।

इनका जन्म एक साधारण तथा गरीब परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला था और माता का नाम अमीना (Amina) था। इनके जन्म के कुछ ही महीने पूर्व उनके पिता का देहान्त हो गया था और जब वे छः वर्ष के हुए तब माता भी चल बसी। मृत्यु के समय उनके पिता पैतृक संपत्ति के रूप में केवल पाँच ऊँट, कुछ बकरियाँ, एक झोपड़ी तथा एक गुलाम छोड़ गये थे जो शिशु मुहम्मद की जीविका के साधन बने। पिता एवं माता के निधनोपरान्त मुहम्मद के लालन-पालन का भार उनके दादा अब्दुल्ला मुत्तालिब के वंशों पर आ पड़ा, जिनकी उम्र 76 वर्ष की थी। दादा भी जल्द ही चल बसे। उनके मृत्योपरान्त मुहम्मद साहब की देखभाल उनके चाचा अबू तालिब ने की। इन दोनों ने उनका लालन-पालन किया, किन्तु उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का उन्होंने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया।[1] किन्तु उनकी निरक्षरता उनकी प्रतिभा-वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट सिद्ध न हो सकी। बचपन से ही इनमें होनहार के लक्षण दिखलायी पड़ने लगे थे और उन्हें अपने नाम के अर्थ के अनुरूप 'सर्व प्रशंसित' होना ही था।

शिक्षा के अभाव से जो कमी मुहम्मद साहब के जीवन में आयी थी, उसे यात्रा तथा अनुभव ने पूरा किया। बचपन से ही मुहम्मद को विदेश-यात्रा का मौका मिला। अपने चाचा अबू तालिब के साथ ऊँटों का कारवाँ साथ लिये वे बसरा (सीरिया) की यात्रा दो-दो बार किये। एक बार वे खदीजा के सेवक के रूप में व्यापार के सिलसिले में बसरा गये थे। यात्रा के दौरान उन्होंने ईसाई तथा यहूदीयों मनीषियों के सम्पर्क में आकर ज्ञानार्जन भी किया। कहा जाता है कि यात्रा के क्रम में ही उनकी भेंट बहीरा नामक एक ईसाई यति से हुई थी जिसके उपदेशों को इन्होंने हृदयंगम किया और उनसे सबक ली।

मुहम्मद साहब के कतिपय कथन यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि उनके चाचा की आर्थिक दशा सन्तोषप्रद नहीं थी और प्रारंभ में मुहम्मद साहब को भी प्रारम्भिक जीवन में आर्थिक क्लेशों का सहन तथा सामना करना पड़ा। यही कारण था कि विश्व के इस मसीहा को भी जीवन-संचालन के लिये सांसारिक पुरुष की तरह काम खोजना पड़ा। उन्होंने कभी-कभी रेगिस्तान में शहतूत चुनना प्रारम्भ किया और भेड़ों को भी चराने का कार्य किया। इस पर भी जब जीवन की गाड़ी का चलना संभव प्रतीत नहीं हुआ तब उन्होंने स्थायी नौकरी की खोज करने का उपक्रम किया। यह शुभ संयोग ही था कि मदीना में ही खदीजा नामक एक विधवा के यहाँ उन्हें नौकरी मिल गयी। मुहम्मद की कार्य-

1. Sir W. Muir; *Life of Mohammed*. p. 512

कुशलता के कारण इस व्यवसायी औरत ने उनपर अटूट विश्वास करना प्रारम्भ किया और अन्त में उन्हें अपना शौहर बना डाला। मुहम्मद के सम्पर्क में आने के पूर्व खदीजा ने दो शादियाँ की थीं और दोनों शौहर स्वर्गगामी हो गये थे। खदीजा के अपने पूर्ववर्ती शौहरों से भी सन्तानें थीं। मुहम्मद साहब ने परम्परा के अनुसार खदीजा से शादी करना अनुचित नहीं समझा। शादी के समय खदीजा की उम्र 40 वर्ष की थी और मुहम्मद केवल 25 वर्ष के थे। फिर भी बेगम मृत्यु काल तक शौहर के प्रति वफादार बनी रही। मुहम्मद से खदीजा को अनेक पुत्रियाँ और दो पुत्र पैदा हुए। दोनों पुत्र बचपन में ही स्वर्ग सिधार गये और पुत्रियों में फातिमा अधिक प्रसिद्ध हुई जिसका विवाह कालान्तर में अबू-तालिब के पुत्र अली से हुई जो शादी के समय अनाथ हो गया था। इतिहास में खदीजा एक नेक औरत, एक शरीफ पत्नी और एक कुशल व्यापारी के रूप में प्रसिद्ध है जिसने मुहम्मद साहब के प्रति वफादार रहते हुए उनके आध्यात्मिक चिंतन में काफी सहयोग दी और मुहम्मद साहब भी अपनी अनेक पत्नियों में केवल खदीजा को ही उत्तम पत्नी के रूप में स्मरण किये रहे।[2]

खदीजा से विवाह हो जाने के उपरान्त मुहम्मद साहब के जीवन में एक नया मोड़ आया। इसके बाद ही इनके जीवन की दिशाएँ निश्चित हुईं और वे वास्तविक जीवन तथा इतिहास के प्रवेश-द्वार पर खड़े हुए। कुरान के अनेक सन्दर्भ इस बात का उल्लेख करते हैं कि मुहम्मद साहब को अब जठराग्नि में जलना नहीं पड़ा और वे निर्बाध तथा निर्विघ्न होकर आध्यात्मिक चिन्तन में लग गये। अब मुहम्मद साहब ने मक्का से तीन मील दूर पहाड़ी के किनारे 'हीरा' नामक गुफा में चिन्तन के क्षणों को बिताना प्रारंभ किया और कुछ दिनों तक निरन्तर उपवास करके जीवन के शाश्वत सन्देश की खोज में लग गये। मक्का में ईसाइयों तथा मदीना में यहूदियों की संख्या अधिक थी। इन दोनों जातियों के धार्मिक विचारों से मुहम्मद साहब अत्यन्त प्रभावित हुए थे। खदीजा का भतीजा वरका इब्न नावफाल (Waraqah ibn Nawfal) ने, जो हिब्रुओं और ईसाइयों की धर्म पुस्तकों का गहरा अध्ययन किया था, मुहम्मद साहब को अत्यधिक प्रभावित किया था। इन प्रभावों के फलस्वरुप मुहम्मद साहब ने अनुभव करना प्रारम्भ किया था कि मूर्तिपूजक अरब प्रदेश में एक नये धर्म की आवश्यकता है—एक ऐसे धर्म की जो उसके सारे कबीलो का एक कबीला में संगठन कर सके और प्रायद्वीप को एक राष्ट्र [illegible] द सके। मुहम्मद साहब के पूर्ववर्ती उपदेशक भी यही चाहते थे, किन्तु वे सफल न हो सके। मुहम्मद कर्त्तव्यनिष्ठ एवं दृढ़व्रतयी थे, इसलिये अपने ध्येय की पूर्त्ति करने में उन्हें सफलता मिली।

गुफा में मुहम्मद साहब का मन्थन, मनन और अभ्यासन का कार्य चलता रहा। एक रात (610 ई० में) उन्हें अचानक यह आकाशवाणी सुनायी पड़ी :

---

2. Khadija was a good women, a good wife, a good merchant. She remained loyal to Mohammed through all his spiritual vicissitudes and amid all his wives he remembered her as the best. —*Will Durant*; p. 162.

"अपने खुदा की, जिसने सृष्टि की है, प्रशंसा (गुणगात) करो ।"[3] यह पहली आकाशवाणी थी । मुहम्मद ने इस घटना का उल्लेख, महमूद इब्न इशाक के कथनानुसार, इस प्रकार किया :—

जब मैं सोया हुआ था, सिल्क के आवरण से शरीर को ढँके हुए, जिसपर कुछ लिखावट थी, देवदूत जिब्राइल आया और मुझको कहा : 'इस लिखावट को पढ़ो'। मैंने उत्तर दिया : 'मैं नहीं पढ़ सकता हूँ।' तब उसने उस आवरण को कड़े हाथों से मोड़कर इतना अधिक दबाव दिया कि मैंने समझा कि मैं मर गया हूँ तब उसने मुझे मुक्त किया और कहा : 'अब पढ़ो।' ... ...तब मैंने जोर से पढ़ना शुरू किया और तब अन्त में मुझको अकेला छोड़ गया। इसके बाद मैं नीन्द से जग पड़ा और मुझे ऐसा लगा कि वे शब्द मेरी छाती पर अंकित हो गये हैं । तब मैं चल पड़ा और पहाड़ के आधे रास्ते में खड़ा हो गया। तब मैंने एक आकाशवाणी सुनी : "ऐ मोहम्मद,! तुम अल्लाह के संदेशवाहक हो और मैं जिब्राइल हूँ।" मैं अपना सिर आसमान की ओर उठाकर देखने लगा और यह पाया कि जिब्राइल मानव रूप में आकाश के एक ओर अपना चरण-चिन्ह छोड़ गया है और यह कह रहा है : "ऐ मोहम्मद ! तुम अल्लाह के सदेशवाहक हो और मैं जिब्राइल हूँ" [4]

आगे चलकर इस रात को 'शक्ति की रात' (Laylat ate-gadr) कहा जाने लगा। थोड़े फतरा के बाद यह दूसरी कथित आकाशवाणी हुई थी जिसे सुनते ही मुहम्मद साहब उद्वेलित होकर घर की ओर भागे और खदीजा को सारी घटना सुना डाली। हमें इस बात के प्रमाण प्राप्त हैं कि खदीजा ने इसे इलहाम के रुप में स्वीकार किया और मुहम्मद साहब को इस सन्देश के प्रसार के लिये उत्साहित किया।

अपने आह्वान एवं सन्देश में मुहम्मद साहब ने स्वयं को मसीहा बतलाया, अल्लाह का रसूल बतलाया। मुहम्मद साहब पैगम्बर थे और उनके आसपास जिब्राइल की आवाजों की घंटियाँ बजने लगीं। उन्होंने लोगों के समक्ष खुदा को सर्वशक्तिशाली, सर्वप्रिय एवं सृष्टिकर्त्ता के रूप में उपस्थित किया। उन्होंने यह उपदेश देना प्रारंभ किया कि सृष्टि नश्वर है और सृष्टिकर्त्ता अनश्वर। उन्होंने यह उपदेश दिया कि खुदा ने सृष्टि की रचना करते समय नैतिक उत्तरदायित्व की भावना का भी सृजन किया ताकि लोग नेक बन सके और पड़ोसियों के प्रति नैतिक आचरण का प्रदर्शन कर सकें। खुदा की ताकत की दुहाई देते हुए उन्होंने यह कहा : "ईश्वर एक है, अनेक नहीं। वह सृष्टिकर्त्ता है। एक कयामत का दिन है। जो ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं उन्हें उस दिन बहिश्त में बेहतरीन इनाम मिलता है और जो उन्हें ठुकराते है उन्हें दोजख में भीषण यातनायें

---

3. "Recite thou in the name of Thy Lord who created."
—*Kuran*; 96; 3-5.

4. R. A. Nicholson; *Translations of Eastern Poetry and Prose*, p 38-40

मिलती हैं।"[5] यही शाश्वत सत्य पैगम्बर मुहम्मद के समय नंगा हुआ था और कर्त्तव्य ने उन्हें इस बात के लिये वाध्य किया कि मक्कावासियों को जो बहुदेववादी थे और एक दूसरे को लूटते थे, इस सत्य से परिचित करावें। उन्होंने यह अमर सन्देश किया कि "पाक इन्सान वही है जो खुदा के प्रति वफादार है, उसकी इबादत करता है, अपने पापों से छुटकारा पाने के लिये उससे माफी माँगता है, अपने पड़ोसियों की सहायता करता है, फकीर की जिन्दगी जीता है और दौलत की लालच नहीं करता है।" मुहम्मद साहब ने कहा कि ऐसा ही व्यक्ति खुदा की ताकत और खुबियों को पहचान सकता है और यह जान सकता है कि इन्सान खुदा के बिना कुछ भी नहीं है। मुहम्मद के ये सन्देश ही इस्लाम है और इन संदेशों को स्वीकार करने वाला ही पाक मुसलमान कहलाता है।

मक्का में मुहम्मद (570-622)

इस्लाम के सिद्धान्तों के विस्तार के लिये खुदा के इस रसूल ने अपने आप को एकाग्रता और दृढ़ता के बिन्दु पर स्थिर किया। उन्होंने सारे अरबों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये खुद को 'खुदा का रसूल' बतलाया और उनका समर्थन प्राप्त करने के लिये कबीलों को शिक्षा देने लगे। प्रारम्भ में किसी भी दल ने मुहम्मद साहब के उपदेशों का उत्कट विरोध नहीं किया, किन्तु धीरे-धीरे उनके ही कबीला के लोगों ने उनका विरोध करना प्रारम्भ किया। लोगों ने उनपर हँसना प्रारम्भ किया, उन्हें प्रताड़ना दी और उनकी हत्या का भी षड़यन्त्र रचा गया। फिर भी निर्भीक होकर हजरत मुहम्मद वहिश्त की खुशियों तथा दौलत की तकलीफों का उपदेश देते रहे, एकेश्वरवाद का शखनाद करते रहे। धीरे-धीरे अब उनके शिष्य भी तैयार होने लगे।

खुदा की खुबियों का गायक, ईसानों का मसीहा और खुदा का रसूल अब रहवर के रुप में स्वीकार किया जाने लगा। सर्वप्रथम खदीजा ने ही मुहम्मद साहब का शिष्यत्व स्वीकार किया। उसने मूर्ति-पूजा बन्द कर दी और एक ईश्वर में अपनी आस्था प्रकट की। खदीजा का समर्थन मिलते ही अब अन्य लोग भी मुहम्मद को समर्थन देने लगे। अली, अबू बक्र, उमर, हमजा, और उस्मान ने उनके उपदेश को स्वीकार करके तदनुरुप आचरण करना प्रारंभ किया। गुलाम जैद भी मुहम्मद के प्रारंभिक शिष्यो में एक था। इसके अतिरिक्त जुबैर, साद और तलाहा नामक व्यक्ति भी मुहम्मद का समर्थन करने लगे। उनके प्रारंभिक शिष्यों में मक्का के अन्य परिवारों के सदस्य भी शामिल थे। उनमें से एक पुत्र का पिता मक्का का प्रसिद्ध कोषाध्यक्ष था, दूसरे का पिता एक धार्मिक नेता था और अन्य दो व्यक्ति मखजूम कबीला के शेख के भतीजे थे जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया।

---

5. God is one He is all-powerful. He is the Creator of the universe. There is a Judgement day. Splendid reward in Paradise await those who carry out God's commands and terrible punishment in hell for those who disregard them.

—*P. K.Hitti*, p 113.

पर जिस मक्का में मुहम्मद साहब को इलहाम हुआ और उनके समर्थक मिले उसी मक्का में उनके विरोधी भी इस्लाम के विरुद्ध अपना दल तैयार कर लिये। जब पैगम्बर मुहम्मद ने यह एलान किया (615 ई०) कि मूर्त्ति-पूजा व्यर्थ है और एक खुदा को छोड़कर सारे देवी-देवता शक्तिहीन हैं तब उनके विरुद्ध सुदृढ़ जनमत तैयार होने लगा। अब विरोधियों ने उनके कार्यों में बाधा उपस्थित करना प्रारम्भ किया। उनपर गालियों की बौछार की जाने लगी और उनके समर्थकों पर उच्छिष्ट भोजन फेंके जाने लगे। कुछ समर्थक तो बुरी तरह पीटे भी गये। अबू बक्र को काफी अपमान सहना पड़ा। मखजूम कबीला का शेख अबू जहला पैगम्बर के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। इस कबीला से पैगम्बर को आर्थिक सहायता मिला करती थी जो अब बन्द हो गयी। अबू तालिब जो इस्लाम का कट्टर समर्थक बन गया था, अनेक प्रकार से धमकाया गया। लेकिन तालिब पर जो मुहम्मद साहब का चाचा और हाशिम कबीला का शेख था, अबू जहल की धमकी का तनिक भी असर नहीं पड़ा। अबू जहल ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। उसने कुरेश कबीला से संधि कर ली और हाशिम तथा मुत्तालिब कबीलों के सदस्यों का बहिष्कार करना प्रारम्भ किया क्योंकि वे इस्लाम के समर्थक बन गये थे। पर इस कार्य में भी जहल को सफलता नहीं मिली। बहिष्कृत कबीलों के सदस्यों ने सीरिया से व्यापार कर अपनी आर्थिक सम्पन्नता अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बने रहे। मुहम्मद साहब के विरोधी कबीलों की संधि भी अधिक दिनों तक कायम न रह सकी। मुहम्मद साहब और उनके इस्लाम को नष्ट करने के उनके सारे स्वप्न चकनाचूर हो गये।

दूसरी तरफ पैगम्बर मुहम्मद भयंकर यन्त्रणाओं के बाद भी मक्का से तत्काल पलायन नहीं किये। मक्का में उन्हें शाश्वत संदेश मिला था, मक्का में वे रसूल और मसीहा बने थे और यहीं उन्होंने अपने शिष्यों का दल तैयार किया था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि मक्का उनकी जन्म भूमि थी जिसके प्रति उनका मोह था। अतः मार खाकर और गालियाँ सुनकर भी वे मक्का में बने रहे। उन्होंने विधवा सउदा (Sauda) तथा आयशा (Aisha) से विवाह भी किया। आयशा अबू बक्र की पुत्री थी जिसकी उम्र सात वर्ष की थी। वे 620 ई० में मदीना से काबा आये व्यापारियों को अपना अमर सन्देश सुनाया। मदीना वापस जाकर व्यापारियों ने उनके दैवी एवं दिव्य ज्ञान का प्रचार किया जिसे मदीनावासियों ने पसन्द किया। सन् 622 में 730 व्यक्ति, जो उनके ज्ञान से प्रभावित हुए थे, मदीना से मक्का आये और पैगम्बर को मदीना आने के लिये आमंत्रित किये। उन्होंने मसीहा को यह विश्वास दिलाया कि मदीना में उनकी पूरी हिफाजत की जायेगी और उनके उपदेशों को अंगीकार किया जायेगा। मुहम्मद ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि अगर वे ईश्वर के संदेशों को सही अर्थ में स्वीकार करेंगे तो उन्हें बहिश्त में इनाम मिलेगा।

किन्तु मुहम्मद तथा इस्लाम के विरुद्ध बगावत की रफ्तार बढ़ती ही जा रही थी। विरोधियों ने उनके कयामत के दिन की काफी आलोचना की और उसमें अविश्वास प्रकट किया। एकेश्वरवाद का संदेश अच्छी तरह मक्का में जड़ नहीं पकड़ सका। मक्कावासी सदियों से अनेक देवी-देवताओं के अस्तित्व में विश्वास

करते आ रहे थे। वे एकाएक इस विश्वास का मोह छोड़ नहीं सकते थे। बढ़ते विरोध ने मुहम्मद साहब को भी शिथिल बना डाला था और वे थकने लगे थे। उनके दो पक्के समर्थक खदीजा और अबू तालिब भी चल बसे थे। अबू तालिब के बाद हाशिम कबीलों का नया शेख अबू लहाब बना था जो मुहम्मद की रक्षा करने में असमर्थ था। अतः मुहम्मद साहब ने स्वयं को अकेला होना महसूस करना प्रारम्भ किया। उन्होंने यह महसूस करना प्रारम्भ किया कि वे मानसिक उदासीनता तथा शारीरिक क्षीणता के शिकार होते जा रहे हैं। दूसरी तरफ मक्का में कुरैशों का निरन्तर प्रतिरोध बढ़ता जा रहा था और एक भी व्यक्ति ऐसा नजर न आ रहा था जो मसीहा की रक्षा कर सके। इसी समय उमैय्या कबीले का नेता अबू सूफयान (Abu Swfyan) कुरैश कबीला का शेख बन बैठा जिसने मुहम्मद के अनुयायियों को कैद करना प्रारम्भ किया। उसे इस बात का डर था कि मुहम्मद साहब के कारण मक्का तथा काबा के सम्प्रदायों में संघर्ष छिड़ सकता है। इस कारण उसने मुहम्मद साहब की हत्या ही कर देने की योजना बनाने लगा। ऐसी स्थिति में अब इस्लाम के प्रवर्त्तक के समक्ष एक मार्ग था—मक्का का परित्याग कर अन्यत्र जाकर अपने प्राणों की रक्षा करने के साथ-साथ इस्लाम का प्रसार करना।

सर्वप्रथम मुहम्मद साहब ने मक्का का परित्याग कर उसके निकटवर्ती नगर तईफ में अपना प्रधान कार्यालय बनाने का निर्णय लिया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। यहाँ भी उन्हें घात-प्रतिघात का सामना करना पड़ा। विवश होकर उन्होंने पुनः स्थानान्तरण की बात सोच डाली और इस बार याथ्रीब (Yathrib) जो बाद में 'मदीनात-ए-रबी' (City of the Prophet) कहलाया, जाना निश्चित किया। यह प्रदेश मक्का से दो सौ मील उत्तर-पूर्व दिशा में अवस्थित था। यहाँ अनेक कबीलों का संगठन मौजूद था और प्रदेश अंधकार में भटक रहा था। कबीलों के लोगों का जीवन और समाज विभिन्न कुप्रथाओं और कुरीतियों का शिकार था और लोगों में एकता का सर्वथा अभाव था। इस प्रदेश में भूमि का अभाव था और भूमि के स्वामित्व के प्रश्न को लेकर कबीलों के सदस्य आपस में झगड़ा करते रहते थे। ऐसे कबीलों में आवज, खजराज, नादिर, खुरेजा और केनुका अधिक उल्लेखनीय थे। मुहम्मद ने अवसर पाकर खजराज कबीला के लोगों के साथ अपने नये धर्म पर वाद-विवाद किया तथा मदीना में शरण पाने के प्रश्न को उठाया। दूसरी बार जब याथ्रीब के लोग धर्मयात्रा के सिलसिले में मक्का आये तब मुहम्मद साहब ने उनसे पुनः बातचीत की। इस बार लगभग 620 तीर्थयात्रियों ने मुहम्मद साहब के इस नये धर्म में विश्वास प्रकट किया और रसूल के शिष्य बन गये। उन्होंने अपने इस नये मसीहा को विश्वास दिलाया कि वे विभिन्न मूर्त्तियों की पूजा करने का इरादा छोड़ देंगे, चोरी और अपहरण के कार्यों का परित्याग करेंगे, अन्य बुरे कार्यों से दूर रहेंगे, अपने शिशुओं की हत्या नहीं करेंगे और पड़ोसियों से मैत्र्य संबंध बनाये रखने की चेष्टा करेंगे। मदीना वापस लौटकर इन हाजियों ने मुहम्मद की शिक्षा का प्रसार अपने लोगों के बीच करना प्रारम्भ किया और इस बात का प्रचार किया कि उनके जीवन को अच्छा बनाने के लिये अरब में एक नये मसीहा ने जन्म लिया है। तीसरे वर्ष जब धर्मयात्री पुनः मक्का की यात्रा पर आये तब वे भी वापस लौटकर कथित तथ्य की पुष्टि किये। फलतः धीरे-धीरे मुहम्मद साहब अनेक कबीलों के लोगों के हृदय में घर कर गये और उन्होंने उनके प्राणों की रक्षा करने का बीड़ा उठाया

622 ई० में याथ्रीब के 75 व्यक्तियों का एक शिष्टमण्डल मक्का गया और मुहम्मद साहब को याथ्रीब आने के लिए आमन्त्रित किया। शिष्टमण्डल के सदस्यों ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि वे न केवल उन्हें संरक्षण देंगे अपितु उनकी शिक्षाओं का प्रचार भी करेंगे। जब मक्का में इस आमन्त्रण, संरक्षण तथा शिक्षा प्रसारण की खबर पहुँची तो कुरैशों के क्रोध की सीमा टूट गयी और वे मुहम्मद की जान का ग्राहक बन गये। परिस्थति की प्रतिकूलता का अन्दाजा करके मुहम्मद साहब ने अपने अनेक शिष्यों को याथ्रीब भागकर प्राणों की रक्षा करने का संकेत दिया। जब शिष्यों के पलायन और याथ्रीब में उनके शरण लेने की खबर कुरैशों ने सुनी तब वे और भी आगबबूला हो गये और बिना विलम्ब किये मुहम्मद की हत्या करने का उपक्रम करने लगे। हत्या के षड्यन्त्र का पता लगते ही मुहम्मद साहब अपने शिष्य अबू बक्र के साथ मक्का के निकट अवस्थित थार (Thaur) नामक गुफा में जा छिपे। जब कुरैशों ने मुहम्मद के पलायन करने और छिप जाने की सूचना पायी तब उन्होंने उन्हें ढूँढ़ना प्रारम्भ किया। इसी समय उन्होंने मुहम्मद साहब के दूसरे शिष्य अली के साथ दुर्व्यवहार किया जो छिप नहीं पाये थे। कुरैशी हजरत मुहम्मद को ढूँढ़ने में असफल हो गये। दो दिनों तक गुफा में रहकर हजरत साहब ने तीसरे दिन चुपचाप दो ऊँटों की सहायता से याथ्रीब पहुँच गये। उनका याथ्रीब में प्रवेश 2 जुलाई, 622 ई० को हुआ। याथ्रीब में प्रवेश के समय ही लोगों ने उनका अपार स्वागत किया और प्रत्येक दल के लोग एक के बाद एक यह कहते हुए चिल्लाये : "ए मसीहा ! यहाँ रोशनी फैलाओ। यहाँ हमलोगों के साथ निवास करो।"[6] लोगों ने उनके ऊँट को बीच में ही रूकने के लिए पकड़ा, किन्तु मुहम्मद साहब ने बड़ी कूटनीति से उनको कहा : "जहाँ ऊँट अपने आप पड़ाव लेगा वहीं वे अपना घर बसायेंगे क्योंकि वही जगह ईश्वर ने उनके लिए चुना होगा" जहाँ ऊँट ने पड़ाव लिया, मुहम्मद साहब ने वहीं एक मस्जिद तथा दो मकान का निर्माण किया। एक मकान साउदा के लिए और दूसरा आयशा के लिये बनाया गया था। बाद में नयी शादियाँ करने के बाद यहाँ उन्होने अन्य मकान भी बनाये। कुछ दिनों के पश्चात् हजरत मुहम्मद अली भी याथ्रीब आ गये।

जुलाई 2, (622 ई०) को इस्लाम के इतिहास में 'हिजरत' (Hijra) कहा गया। याथ्रीब को 'मदीनात अल-रबी' के नाम से पुकारा गया और 'मदीना' नाम अधिक लोकप्रिय हुआ। कालान्तर में अन्य दो सौ मक्कावासी मदीना आकर बस गये। अब नये धर्म के प्रसार का मार्ग खुल गया था।

हिजरत, जहाँ से मुसलमानों का पहला साल आरम्भ होता है, पैगम्बर मुहम्मद तथा इस्लाम के प्रसार-कार्य में एक युगान्तकारी तिथि के रूप में स्वीकार

---

6. Alight here, O Prophet !.....Abide with us.
at Baladuri, Abu—Abas; Origins of the Islamic State, vol I, S 1.

किया जाता है। इसके साथ ही मुहम्मद के मक्कावास का जीवन समाप्त हुआ और मदीनावास के रूप में एक नये जीवन की शुरुआत हुई और उनके जीवन में एक मोड़ आया।[7] इस तिथि से ही मुसलमानों का संवत प्रारम्भ होता है। अपमानित व्यक्ति के रूप में मुहम्मद साहब ने अपनी जन्म भूमि का परित्याग किया था और एक प्रतिष्ठित राजनेता के रूप में अपनी माता की जन्म भूमि मदीना में प्रवेश किया था। मक्का का फकीर अब मदीना का राजनीतिज्ञ मुहम्मद बन गया। मुहम्मद अब मसीहा ही नहीं, कूटनीतिज्ञ भी थे।

मदीना में मुहम्मद (622-630)

सच्चे अर्थ में मदीना में ही हजरत मुहम्मद को अपने व्यक्तित्व का विकास करने तथा इस्लाम की जड़ जमाने का मौका मिला। यहाँ वे एक साथ ही सुधारक, संगठनकर्त्ता और प्रशासक थे। मदीना में उनके आने के पूर्व असभ्यतावस्था थी। यहाँ का सामाजिक संगठन दयनीय स्थिति में था। यहाँ विभिन्न नियमों का प्रचलन नहीं था। लोग शासन और शासक से परिचित न थे। यहाँ के दो प्रधान कबीले सदैव आपस में झगड़ते रहते थे। वे थे आवज तथा खजराज। इन दोनों फिरकों ने मुहम्मद को मदीना आने के लिये आमन्त्रण दिया था और अपने झगड़ों को समाप्त करने के लिए उनको मध्यस्थ बनाया था। मुहम्मद ने किसी भी अरबी फिरके का नेता होने का दावा नहीं किया। इस कारण उनके पास कोई राजनीतिक शक्ति नहीं थी। किन्तु उन्होंने जिस मुस्लिम सम्प्रदाय (मिल्लत) की स्थापना की, वह धीरे-धीरे सभी फिरकों से श्रेष्ठ और शक्तिशाली बन गया। उन्होंने धीरे-धीरे मदीना क्या सारे अरब को राजनीतिक तथा धार्मिक एकता के सूत्र में बाँध दिया। इसके लिए उन्होंने युद्ध भी किये। स्वयं मुहम्मद ने कोई स्थायी सेना नहीं रखी थी। उनके कोई स्थायी शरीर-रक्षक न थे, न कोई खजाना था और न कोई स्थायी दफ्तर। उनके सभी कार्य स्वयंसेवकों द्वारा अथवा विभिन्न अवसरों पर नियुक्त किये गये उनके प्रतिनिधियों के द्वारा किये जाते थे। मुहम्मद अपने समर्थकों के परामर्श को सुनते थे और उनको अपनी आलोचना तक करने का अधिकार देते थे। पर प्रत्येक विषय में अन्तिम निर्णय उन्हीं का होता था। इस प्रकार इस्लाम के प्रसार के लिए उन्होंने एक राजनीतिक व्यवस्था और एक राज्य की भी स्थापना की। ऐसी व्यवस्था करने का अवसर उन्हें मदीना में ही मिला।

पैगम्बर मुहम्मद का मदीना में पहला कार्य था मस्जिद का निर्माण करना। इस्लाम की दुनिया में यह पहली मस्जिद थी जिसका निर्माण पैगम्बर ने अपने हाथों से किया। उन्होंने इसके निर्माण के लिए अपने सहयोगियों की भी मदद अवश्य ली। साधारण ढंग की यह पहली मस्जिद अपनी सादगी के लिये प्रसिद्ध थी। मस्जिद के निर्माण में ईंट और मिट्टी का व्यवहार किया गया था और इसकी छत के निर्माण

---

7. The Hijrah with which the Makkan period ended and the Madinese period began, proved a turning point in the life of Muhammed.

—P. K, Hitti; p 116.

में ताड़ के पत्ते लगाये गये थे। मस्जिद का निर्माण इस्लाम के जड़रोपण का प्रतीक बना। इसके आगे बैठकर उपदेशक ने उपदेश देना प्रारम्भ किया और जाहिलियत को दूर कर समाज में, धर्म में परिवर्त्तन लाकर एक शानदार अरब का निर्माण करने का प्रयास किया। अब इस्लाम का स्वरुप बदल गया। अब यह संघर्षशील धर्म बन गया और मसीहा एक राजनेता के रूप में अवतरित हुए।[8]

मदीना में दूसरा काम था समाज का संगठन करना, जाति-भेद को दूर करा गृह-युद्ध के बुरे परिणामों से मदीना के लोगों को परिचित कराना। मुहम्मद ने सामाजिक संगठन के लिए जाति-भेद की जड़ पर ही कुठाराघात करना प्रारंभ किया। सम्प्रति मदीना में तीन जाति (दल) के लोग थे : मुहाज्जरिन (Exiles), अंसार (Supporters) और यहूदी (Jews)। प्रारम्भ के दोनों फिरकों के सदस्य पैगम्बर मुहम्मद के समर्थक थे। मुहाज्जरिन मक्का का त्याग कर मदीना चले आये थे। असार मदीना के ही मूल निवासी थे जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था और मुहम्मद साहब का समर्थन करना प्रारंभ किया था। यहाँ आवज और खजराज सदैव आपस में झगड़ते रहते थे। ऐसे विघटित तथा बिखरे समाज का संगठन करना साधारण काम नहीं था। किन्तु मुहम्मद ने इस कार्य में सफलता प्राप्त की। उन्होंने कबीलों का परिसमापन किया और आपसी युद्ध को नुकसानदेह बतलाया। नव गठित समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग 'अंसार' कहकर पुकारे गये। हजरत साहब ने मुहाज्जरिनों और अंसारों में भी मेल करा दिया और उनके बीच आपसी सामाजिक संबध कायम हुए। कबीलों की परिपाटी की जगह एक समाज ले ली और इस संगठन ने आगे की सफलता के लिये द्वार खोल दिया।

सामाजिक एकता के संस्थापन के उपरान्त मुहम्मद साहब का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य था मदीना में शान्ति तथा सुव्यवस्था का राज्य कायम करना और उचित आधार पर अरब राष्ट्र का सृजन करना। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए उन्होंने एक जनता के अधिकार-पत्र (Charter) की घोषणा की जिसमें मुसलमानों को न केवल अधिकारों का अपितु कर्त्तव्यों के भी सिद्धान्त दिये गये और उनकी रुपरेखा बनायी गयी। इस अधिकार-पत्र ने खानदानी झगड़ों को समाप्त कर दिया, कानून की दुनियाँ का निर्माण किया, अराजकता तथा अव्यवस्था का विनाश किया और शान्ति तथा सुव्यवस्था का वातावरण तैयार किया।

मदीना में मुहम्मद साहब का एक अन्य महत्वपूर्ण काम था यहूदियों से शान्ति-समझौता करके उन्हें अपना समर्थक बनाना और अरब राष्ट्र के उत्थान में उनकी सहायता लेना। प्रारंभ में यहूदियों ने पैगम्बर मुहम्मद की शिक्षाओं और इस्लाम का विरोध किया। उन्होंने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बतलाया एवं मुसलमानों

---

8. In the years following the Hijra, the character of Islam changed individually. It became a fighting religion and the prophet a political leader.

—W. K. Ferguson and G. Brown: Survey of European Civilization, part-I, p 151.

से अपने को अलग रखा। मुहम्मद अरब राष्ट्र की प्रगति के लिये किसी भी फिरका का विरोध करना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने यहूदियों को भी अपना पक्षधर बनाने का प्रयास किया और उन्हें इस कार्य में सफलता मिली। उन्होंने खुले हृदय से यहूदियों के धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों के कुछ अंश को अपनाकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया। अब्राहम के मजहब और मक्का की मस्जिद में निवास करने वाले खुदा में यकीन करके हजरत मुहम्मद ने इस्लाम में भी संशोधन किया। अब यहूदियों की तरह इस्लाम के समर्थक भी जेरुसलेम की ओर मुँह करके इबादत करना प्रारम्भ किये। यहूदियों की तरह वे भी दोपहर की नमाज पढ़ने लगे और उपवास करना प्रारम्भ किये। शुक्रवार को यहूदियों की तरह मुसलमानों ने भी महत्वपूर्ण दिन मानना प्रारम्भ किया। अन्त में कुछ समय के लिये यहूदियों से मुहम्मद को समझौता करने में सफलता मिल गयी। दोनों के बीच एक समझौता-पत्र तैयार किया गया जिसमें यह बात कही गयी कि यहूदियों का न तो अपमान किया जायेगा और न उन्हें किसी प्रकार की यन्त्रणा ही दी जायेगी; मुसलमानों की तरह वे भी समान अधिकारों का उपभोग करेंगे और कार्यालयों के कार्य में उनकी सहायता ली जायेगी; मुसलमानों की तरह साथ मिलकर वे एक मिश्रित राष्ट्र के संगठव में मदद करेंगे और अपने धर्म के अनुसार आचरण करने में स्वतन्त्र रहेंगे और दुश्मनों से मदीना की रक्षा करने में वे मुसलमानों की सहायता करते हुए शत्रुओं से लड़ेंगे।[9] मदीना के यहूदियों के सारे क़बीलों ने इस समझौते को स्वीकार किया। पर यह समझौता स्थायी सिद्ध न हो सका। यहूदियों ने मदीना में अधिकार-पत्र की उपेक्षा की और अरब के इस नये धर्म का विरोध करते रहे। उन्होंने कुरैशों से भी, जो इस्लाम के शत्रु नहीं थे व्यापारिक सम्बन्ध कायम रखा। अब विवश होकर पैगम्बर मुहम्मद को भी अपनी यहूदी नीति में परिवर्तन लाना पड़ा जिन्होंने मदीना की सुरक्षा के नाम पर विरोधियों कोस जाएँ दी थीं। अतः यहूदी भी ठंढ़े पड़ गये।

मुहम्मद की शिक्षा तथा आचरण ने मदीना के धर्म में भी परिवर्त्तन लाया। मदीनावासी मुत्तिपूजक तथा बहुदेववादी थे। मसीहा के प्रभाव में आकर उन्होंने अपने पुराने धार्मिक रीति रिवाजों का परित्याग कर दिया और एकेश्वरवाद में विश्वास करना प्रारम्भ किया। मदीना में ही इबादत की पद्धति तैयार हुई जो आजतक वर्त्तमान है। उन्होंने एक ही मस्जिद में इबादत करने के लिये सारे मुसलमानों को नसीहत दी और अपनी पहली ही सभा में यह एलान किया : "अल्लाह सर्वश्रेष्ठ है (Allah is most great) और इस संबंध को सारे मुसलमान दुहराये। धार्मिक एकता का यह महान प्रतीक था। मुहम्मद ने तीन बार झुककर इबादत की और

9. Well Dwrant, p 170 Khudabakhsh, History of Arabs p. 10

इसकी भी नकल उनके अनुयायियों ने की। झुकने का अर्थ था खुदा के प्रति अपने को समर्पण करना जिसनें इस्लाम के रूप में नया विश्वास दिया था। प्रार्थना की इस पद्धति को सारे मुसलमान आज तक निभा रहे हैं।

सच्चे अर्थ में मुहम्मद साहब सम्पूर्ण अरब का एकीकरण करना चाहते थे और लोगों की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनीतिक कुरीतियों को समाप्त कर एक परिष्कृत समाज की रचना करना चाहते थे। धार्मिक बंधन का सत्रपात करके उन्होंने शासन संबंधी तथा सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की और कबीलों को एक सूत्र में बांधकर अरब राष्ट्र के पृष्ठभमि का निर्माण किया। इस्लाम के आधार पर कालान्तर में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई जिसने ऐसी उत्तम सभ्यता-संस्कृति को जन्म दिया जिसका प्रभाव समस्त संसार पर पड़ा। सामाजिक तथा व्यक्तिगत अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण करके उन्होंने मदीना वालों को एक संगठित तथा शासित जीवन जीने का पाठ पढ़ाया। उन्होने भ्रातृत्व भावना का विकास किया, बच्चों के प्रति उदार बने रहने की शिक्षा दी, विधवाओं तथा अनाथों की रक्षा करने का संदेश दिया और जानवरों के प्रति रहम दिखलाने का उपदेश दिया। सामाजिक जीवन को सरल और सुविधायुक्त बनाने के लिये मुहम्मद साहब ने पुरोहित वर्ग का वहिष्कार किया। उन्होंने मदीना के समाज में प्रचलित कुछ प्रथाओं से भी समझौता किया।

विजेता मुहम्मद (630-31)

अभी तक मुहम्मद साहब प्रवर्त्तक, सुधारक, प्रशासक और संगठनकर्त्ता थे, किन्तु वे विजेता नहीं थे। मदीना में वे विजेता के रूप में भी प्रकट हुए। उनका विजयी चरित्र उन्हें एक साथ ही कूटनीतिज्ञ और विजेता के रूप में प्रकट करता है और इस्लाम को राजनीतिक राज्य के रूप में परिवर्त्तित कर देता है। मदीना में ही जंगे बद्र की पृष्ठभूमि तैयार हुई और इस्लाम को राज्य के रूप में तथा मसीहा को राजनीतिज्ञ के रूप में आंका जाना संभव हो गया।

मदीना में जब पैगम्बर मुहम्मद की लोकप्रियता बढ़ने लगी और उन्हें एक के बाद एक सफलता मिलने लगी तब मक्का के लोग मदीना के लोगों से शत्रुता करने लगे। दूसरी तरफ मदीना के लोग भी मक्कावासियों से जले-भुने थे क्योंकि उन लोगों ने मसीहा तथा उनके अनुयायियों को सताया था और उन्हें विभिन्न प्रकार की यन्त्र-णाएँ दी थीं। अतः मदीनावासियों ने मक्का पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लेने का उतावलापन दिखलाना प्रारंभ किया। जब ग्रीष्म ऋतु और बसन्त ऋतु आ धमका और व्यापार के लिये कारवाँ उत्तरी दिशा में सीरिया की यात्रा करने लगे तब मदीना के हथियारवाले लोगों ने मक्का के व्यापारियों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। सन् 623 ई० को कुछ मुसलमान मुहम्मद साहब की आज्ञा पाकर मक्का और तईफ के बीच गुजरने वाले मक्का के व्यापारियों के कारवाँ पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से एक मक्कावासी जान से हाथ धो बैठा और दो से धन लेकर उन्हें छुटकारा दे दिया गया। जीविका चलाने के लिये धन की आवश्यकता थी और व्यापारियों को लुटकर धन की प्राप्ति करना कोई गुनाह नहीं था।

कुरैस व्यापारियों के कारवाँ पर, जो सीरिया गया था, मुहम्मद साहब ने अपने सिपाहियों के सहयोग से छिपकर आक्रमण करना चाहा। इस कारवाँ की यात्रा अबू सूफयान के नेतृत्व में हुई थी। सीरिया से कारवाँ की वापसी पर मुहम्मद साहब ने उस पर 305 सैनिकों, 0 ऊँटों और 2 घोड़ों की सहायता से आक्रमण करने का निर्णय लिया। पर सुफयान की बुद्धिमानी ने अपने कारवाँ को बचा लिया। उसे किसी तरह कारवाँ पर किये जाने वाले आक्रमण का पता चल गया। अतः उसने उसके रक्षार्थ मक्का से सैनिकों को बुला लिया।

मदीना से दक्षिण-पश्चिम बीस मील की दूरी पर स्थित बद्र (Badr) में मक्का के करीब 900 सैनिक हथियारों से लैश होकर मुहम्मद साहब को ललकारे (624 ई०) और दोनों दलों में संघर्ष छिड़ गया। मदीना के सैनिकों की संख्या न्यून थी, पर पैगम्बर मुहम्मद के प्रेरक भाषण तथा सफल नेतृत्व के कारण मदीना वालों को विजय मिली। मदीना के केवल 14 सैनिक युद्ध में काम आये और मक्का के 50 सैनिक मारे गये तथा उतने ही कैद किये गये। लूट में 14 घोड़े, 150 ऊँट, अनेक कवच और अन्य युद्ध-सामग्रियाँ मक्का वालों को हाथ लगी। अबू सूफयान और मुहम्मद के नेतृत्व में लड़ी गयी यह बद्र की लड़ाई थी। यह कहा जाता है कि अगर मुहम्मद ने स्वयं इसका नेतृत्व नहीं किया होता तो जंगे बद्र में मदीनावालों की शिकस्त होती और इस्लाम यहीं मर जाता।

जंगे बद्र मुहम्मद के जीवन-कार्यो और इस्लाम के लिये एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। इतिहासकार फ़िथर ने इसे निर्णायक युद्ध की संज्ञा दी है। मदीनावालों ने इसे एक चमत्कार कहा क्योंकि मक्का के सैनिकों की तुलना में उनके सैनिक नगण्य थे और फिर भी उन्होंने फतह पायी थी। अतः ईश्वर की सर्वोपरिता तथा शक्ति में उनका दृढ़ विश्वास हो गया। उन्होंने यह भी जान लिया कि उनकी सामूहिक शक्ति और साधन के समक्ष कठिन मार्ग भी सरल बन सकता है। अतः उन्होंने अपनी शक्ति और साधनों, दोनों में वृद्धि लाना प्रारम्भ किया ताकि अगले मोर्चा में वे मक्का को जीत सकें और वहाँ भी मसीहा तथा उनके मजहब की अहमियत कायम कर सकें। संक्षेप में मुहम्मद की शक्ति बढ़ी। यह इस्लाम की सफलता की कड़ियों में पहली निर्णायक लड़ाई की एक कड़ी मानी जाती है।[10]

इस लड़ाई ने मुहम्मद को एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में प्रकट किया और उनके व्यक्तित्व में निखार लाया। मुहम्मद के नेतृत्व में जंगे बद्र की सफलता की खबर सारे कबीलों में बिजली की तरह फैल गयी। कबीलों ने मुहम्मद साहब को एक विलक्षण पुरुष के रूप में स्वीकार करना प्रारम्भ किया। उनको यह विश्वास हो गया कि निश्चित रूप से मुहम्मद एक असाधारण पुरुष हैं और उनके पास ईश्वरीय शक्ति है, तभी तो न्यून संख्या वाले सैनिकों को विजय मिली है। अतः लोगों ने जंगे बद्र के बाद मुहम्मद को रहबर के रूप में स्वीकार

10 This Ghazwat Badr laid the foundation of Muhammed's temporal power. Islam had won its first and decisive military victory. —P. K. Hitti. p 117

किया और उनके एक संकेत पर कुर्बान हो जाने को तैयार रहने लगें। मुहम्मद की महानता, मर्यादा और मर्दानगी की चर्चा अरब प्रदेश में सर्वत्र होने लगी और उनका व्यक्तित्व और भी निखर उठा।

बद्र की फतह ने भविष्य के लिए अभिनव किये जानेवाले रंगमंच तथा लड़ी जानेवाली लड़ाईयों के लिए एक पद्धति का भी सृजन किया। अगली लड़ाईयों में सफलता पाने के लिये मदीनावासी शक्ति एवं साधनों को जुटाना प्रारंभ किये और सुदृढ़ स्तम्भों पर रंगमंच तैयार किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त मदीना वालों को धन कमाने की एक नयी पद्धति मिली। युद्ध में लट के धन का पाँचवा भाग बँटवारे के बाद मुहम्मद साहब को हिस्से के रूप में मिला था। इस धन को अपने लिये उन्होंने खर्च न कर उसे जरूरतमन्द लोगों के बीच बाँट दिया और धन का कुछ अंश राज्य-प्रशासन के संचालन में लगा दिया। अरब के लिये यह एक नयी घटना थी। एक व्यक्ति के संकेत पर मर-मिटना और लूट के धन को दूसरों के बीच बाँट देना—यह पहली घटना थी जिसे लोगों ने देखा। धन कमाने की लालच भी बढ़ी। अतः लोग इस बात के लिये आतुर रहने लगे कि पैगम्बर मुहम्मद के नेतृत्व में आगे भी जंग हो और वे अधिक-से-अधिक दौलत के मालिक हो।

इस घटना का दूरगामी प्रभाव भी पड़ा। मुहम्मद साहब की शक्ति तथा ईश्वरीय चरित्र पर मदीना वालों ने अपने स्थायी विश्वास की मुहर लगा दी और इस विश्वास का लाभ मुहम्मद साहब ने आगे की घटनाओं में उठाया। फिर, मदीना वालों ने मूर्तिपूजक मक्कावालों को शिकस्त देने का संकल्प ले लिया और मक्का में भी एकेश्वरवाद के प्रसार की भावी पृष्ठभूमि का निर्माण जंगे बद्र की वारदात के समय हो गया। मुहम्मद साहब के निधनोपरान्त बीस वर्षों के अन्दर जब खलीफाओं ने, जिनका इतिहास अगलें अध्याय में पढ़ा जायेगा, इस्लाम के साम्राज्य का निर्माण और विस्तार किया तब बद्र की फतह की अहमियत और भी साफ तौर पर जाहिर हो गयी। इस्लाम के विस्तार के लिये लड़ी गयीं यह पहली लड़ाई प्रेरक बनी और लोगों के हौसलें को और भी बुलन्द किया।

भविष्य में घटने वाली घटनाओं की रूपरेखा बद्र की लड़ाई ने पहले ही तैयार कर दी और उनकी झलक पहले ही देखी जाने लगी। यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो गया कि मुहम्मद साहब अपने जन्म-प्रदेश मक्का में इस्लाम का अवश्य प्रचार करेंगे और सारी दुनिया को रोशनी देनेवाला मसीहा अपनी जन्मभूमि को ही अंधकार में नहीं रखेगा। मुसलमानों को यह भी विश्वास हो गया कि मुहम्मद साहब को अपने उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य ही सफलता मिलेगी। इस युद्ध ने मुहम्मद की मजहबी ताकत में भी वृद्धि ला दी। यह पहली एवं निर्णायक लड़ाई थी जिसमें इस्लाम को सफलता मिली थी। दैवी शक्ति से अभिहित मुहम्मद के नेतृत्व ने सफलता दी थी। यह सही है कि बद्र की हार का प्रतिशोध सूफयान के नेतृत्व में मक्का वालों ने उहूद की लड़ाई में लेने का प्रयास किया और मुहम्मद साहब को रणभूमि में बुरी तरह जख्मी कर दिया, किन्तु वे सफल रहकर भी असफल रहे और उनकी विजय अस्थायी सिद्ध हुई। अब इस्लाम धर्म ही नहीं, राज्य भी था।

अपनी बढ़ती लोकप्रियता से लाभ उठाकर मुहम्मद साहब ने अपनी स्थिति और भी सुदृढ़ करने का प्रयास किया। उन्होंने पड़ोस के अनेक खानाबदोश कबीलों से संधियाँ कर ली। इसी समय अहूद की लड़ाई के दो वर्ष पश्चात् सूफयान ने पुनः मदीना पर आक्रमण किया। लेकिन पन्द्रह दिनों तक घेरा डालने के बाद भी जब कुछ फल नहीं निकला तब सुफयान को विवश होकर मक्का वापस होना पड़ा। किन्तु अब मक्कावालों ने मदीना पर बार-बार आक्रमण करना प्रारम्भ किया। इन निरन्तर आक्रमणों को रोकने में मदीना के लोग असमर्थ थे और इस तथ्य को मुहम्मद साहब भी जान रहे थे। इसीलिए मुहम्मद साहब ने तेजी से मदीना में संगठन का काम करना आरंभ किया ताकि वहाँ के लोग और सैनिक शक्ति सम्पन्न होकर न केवल मक्का वालों से अपनी रक्षा कर सकें अपितु मक्का को जीत कर वहाँ इस्लाम का प्रसार भी कर सकें। मदीना के यहूदी अहूद की लड़ाई से प्रसन्न थे क्योंकि वे भी इस्लाम के विरोधी थे। इसीलिये मुहम्मद साहब को इस बात का पक्का विश्वास था कि मक्का के विरुद्ध यहूदी मदीनावालों की सहायता नहीं करेंगे। यह भी आशंका थी कि युद्ध छिड़ जाने पर यहूदी मक्का की सहायता कर सकते थे। इसलिए मुहम्मद साहब के समक्ष एक ही रास्ता था—मदीना से यहूदियों का निष्कासन कर दिया जाय। मुहम्मद साहब ने इसी रास्ते को अपनाना आवश्यक समझा। यहूदियों पर पहला आक्रमण किया गया और कुरैश जाति के छः सौ यहूदियों को मार डाला गया। बचे-खुचे यहूदियों ने मदीना से निकाल दिया गया। इस घटना के एक साल पूर्व ही यहूदियों ने नादिर शाखा के लोगों को मदीना से खदेड़ दिया गया था और उनकी सारी सम्पत्ति और भूमि जब्त कर ली गयी थी। निष्कासित यहूदियों ने खैबर में आकर बसना प्रारम्भ किया।

यहूदियों के निष्कासन के बाद मदीना में अब ऐसा एक भी दल नहीं था जो मुहम्मद और इस्लाम का विरोध कर सके, अब बड़ी आसानी से मुहम्मद साहब मदीना वालों का संगठन कर सकते थे और उनकी शक्ति में वृद्धि ला सकते थे। मुहम्मद साहब को इस कार्य में बड़ी सफलता मिली। 627 ई० तक उन्होंने मदीना में धार्मिक तथा सैनिक संगठन का कार्य पूरा कर लिया। मदीना का यह संगठित समाज 'अल-अहजाब' कहलाया। मुहम्मद और मदीनावाले अब इतने संगठित तथा शक्तिशाली हो गये कि वे न केवल अपनी रक्षा कर सकते थे अपितु मक्का पर आक्रमण कर उसपर अधिकार भी कर सकते थे।

627 ई० के बसन्त के मौसम में मुहम्मद साहब को यह सूचना मिली कि मक्का के लोग उनसे संधि-वार्ता करने को तैयार है। किन्तु यह वार्त्ता ठोस न हो सकी और मुहम्मद साहब मक्का पर अभियान करने की योजना बनाने लगे।

अपने करीब एक हजार समर्थकों को लेकर मुहम्मद साहब ने तीर्थयात्रा के लिए मक्का को चल दिया। मक्का के कुछ लोगों ने भी उनकी पहुँच होने पर उनका समर्थन किया। आम लोगों के अतिरिक्त उमर इब्न अजलस तथा खालिद इब्न अल-वालिद नाम के दो सैनिक अफसरों ने भी उन्हें अपना नेता स्वीकार कर लिया। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुहम्मद का कट्टर विरोधी सूफयान ने भी गुप्त रूप से ईश्वर-भक्त मुहम्मद साहब के समर्थकों से मधुर सम्बन्ध कायम कर उनका मित्र बन गया।

परिस्थिति की अनुकूलता ने मुहम्मद साहब को सफलता के सोपान पर चढ़ते जाने में सहायता की। देखादेखी मक्का के बद्दू जन भी मुहम्मद साहब के पक्षधर बनने लगे। मौका पाकर पैगम्बर ने भी उनपर इस बात के लिए दबाव डालना प्रारंभ किया कि वे इस्लाम को स्वीकार कर लें। किन्तु इसी समय (630 ई०) एक छोटी-सी घटना ने मक्का और मदीना के बीच लड़ाई छिड़ने की फिजा तैयार कर दी। मुहम्मद साहब का सम्मान और स्वागत करने के ध्येय से अबू सूफ्यान नगर से बाहर निकल गया। उसने उन कैदियों को रिहा करने का आदेश प्राप्त कर लिया जो आत्म-समर्पण करने वाले थे। नगर में प्रवेश करने पर मुहम्मद साहब ने सारे लोगों को उपहार प्रदान किया और इसके बदले में मक्कावालों से वे इल्तजा किये कि वे मूत्तियों को नष्ट कर दें और मूत्ति-पूजा का रिवाज छोड़ दें। मुहम्मद साहब ने स्वयं 360 मूर्तियों को तोड़ डाला और प्रसन्न होकर यह उद्गार प्रकट किया कि "सत्य का आगमन हो गया है और मिथ्या का पलायन हो गया है।"[11] उन्होंने काबा के चारो तरफ स्थापित मूत्तियों को तोड़ा था। हिट्टी ने मुहम्मद की इस सफलता की बड़ी प्रशंसा की हैं। प्रवेश करते ही नगर में ऐसी प्राप्त सफलता का उदाहरण प्राचीन इतिहास में शायद ही मिलता है।[12] इसी समय इस्लाम स्वीकार करने के लिए उन्होंने तईफ पर दबाव डाला, पर तत्काल उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। परिस्थिति की सरलता ने मक्का और मदीना के बीच छिड़ने वाले संघर्ष को तत्काल रोक दिया। किन्तु इस बात को ठुकराया नहीं जा सकता कि जिस मदीना ने उनका भीषण विरोध किया था और आठ वर्ष पूर्व उन्हें मक्का का परित्याग कर देना पड़ा था, वही मक्का अब उनका समर्थन करने लगा था, उसी मक्का के लोगों के जीवन का वे स्वामी बन गये थे।[13]

लड़ाई लड़े बिना ही मुहम्मद साहब को मक्का में सफलता मिली थी। मूत्तियों को तोड़कर उन्होंने वहाँ एकेश्वरवाद का प्रचार किया था, सैनिक अफसर सूफयान तथा अन्य मक्कावासी उनके समर्थक बन गये थे और मदीना की तरह मक्का में भी उनकी प्रतिष्ठा कायम हो चली थी। किन्तु इस अप्रत्याशित सफलता की उपलब्धि के बावजूद उन्होंने मक्का में निवास नहीं किया और संकट के समय पनाह देनेवाले नगर मदीना लौट आये। अगले दो वर्ष उन्होंने मदीना में सफलता ही सफलता पायी। मदीना आते ही उन्होंने अपने अधूरे कार्य को पूरा किया। उन्होंने यहाँ के चार कबीलों—रिफ्यूजी, हेल्वसे, हिपोक्राइट और यहूदी—में एकता कायम करने का प्रयास किया। हेल के शब्दों में "मदीना आकर पैगम्बर अब शिक्षा तथा विश्वास के उपदेशक न होकर शांति-संस्थापक बन गये।"

---

11. Truth hath come and falsehood hath vanished.

—Baladuri, pp 35-36. P. K. Hitti, pp 60-61.

12. Hardly a triumphal entry in ancient annals is comparable to this. —P. K. Hitti, p 118.

13. The buffered preacher who had fled from Mecca eight years before was now master of all its life. —Will Durant; p 171.

मुहम्मद साहब संगठन तथा शासन के लिए अनवरत परिश्रम करते रहे। कुछ हल्के विरोध के बाद लगभग समस्त अरेबिया ने मुहम्मद की सत्ता तथा धर्म को स्वीकार कर लिया। ट्रान्सजोर्डन, बहराइन, अमन वगैरह देशों में इस्लाम की पहुँच होती जा रही थी। मुहम्मद साहब यह अनुभव करते जा रहे थे कि अरेबिया द्रुतगति से एक बड़ी मजहबी बिरादरी में तबदील होता जा रहा है—एक ऐसी बिरादरी जिसके सृजन में भाषा, रीति-रिवाज आदि के साथ-साथ धर्म का अधिकाधिक सहयोग मिल रहा है। सन् 631 ई० में उन्होंने जोरदार शब्दों में यह एलान किया कि कोई भी मूत्तिपूजक मक्का की यात्रा नहीं कर सकता है और अरब के जो कबीले इस्लाम को स्वीकार नहीं करेंगे उनके साथ की गयी संधियाँ भंग कर दी जायेगी। उन्होंने कुरैशों के विरोध को भी समाप्त किया। 628 ई० में ही अपने 1400 समर्थकों के साथ उन्होंने मक्का-यात्रा में उनसे (कुरैशों) हुदेबिया का समझौता (Pact of Hudaybiyah) किया था और इस समझौते के अनुसार मक्कावासियों और मुसलमानों को यह आश्वासन दिया गया था कि उनके साथ एक समान व्यवहार किया जायेगा। इस समझौते ने मुहम्मद को अपने ही कबीले से होने वाली लड़ाई को रोक दिया। इसी कबीले के दो सैनिक अफसर मुहम्मद साहब के समर्थक बन गये थे जिनका उल्लेख किया जा चुका है। यह मुहम्मद के चरित्र की महानता तथा सफलता ही मानी जायेगी कि इब्न जुहार नामक एक कवि ने जो मुहम्मद का कट्टर विरोधी था और अपनी कविताओं में उनका विरोध करते आ रहा था, इस्लाम स्वीकार कर लिया और इस प्रवर्त्तक का प्रशंसक बन बैठा। मुहम्मद साहब ने यूनानी सम्राट्, फारस के बादशाह और हीरा तथा धसान के शासकों की सेवा में शिष्ट-मण्डल भेजकर उनसे इस्लाम स्वीकार करने के लिये आग्रह किया था।

मदीना में रहते हुए ही मुहम्मद साहब ने प्रशासन (सरकार) संगठन में अपने समय को लगाया। उन्होंने कानून (Legislation) की रचना की, न्याय प्रशासन की विधाओं को स्पष्ट किया और अरेबिया के सामाजिक, धार्मिक तथा सैनिक संगठनों में एकता लाने का प्रयास किया। उनकी सबसे बड़ी देन उनकी तिथि-तालिक (Calender) है जिसे अरबों तथा यहूदियों ने स्वीकार किया। साल को उन्होंने बारह महीनों में बाँटा। मुहम्मद साहब कोई वैज्ञानिक विधि-निर्माता नहीं थे और उन्होंने प्रत्यक्षत: किसी संहिता (Code) की रचना नहीं की। उन्होंने समय-समय पर अधिघोषनाएँ (Edicts) की और वे ही विधान बनती चली गयी।[14] ये भी अधिघोषनाएँ उनकी अपनी न थीं प्रत्युत देवदूत द्वारा वे उद्घोषित की गयी थीं। मदीना के मजिस्ट्रेट ने समस्त अरब को पहली बार प्रशासन दिया।

629 ई0 में करीब 2000 मुसलमानों का काफिला लिये मुहम्मद साहब काबा के दर्शन के लिये मक्का गये। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। उन्होंने मक्कावासियों के साथ एक विशेष संधि की, पर शीघ्र ही उन्होंने इस संधि को तोड़

14. Koran, iip 100/D. B. Macdonald; Development of Muslim Theology, Jurisprudence, and Constitutional Theory, p 69.

डाला। परिणामस्वरूप 630 ई0 में मुसलमानों ने मक्कावालों को परास्त किया। तीन महीनों के पश्चात मदीना वापस आने पर पैगम्बर अस्वस्थ रहने लगे। उनके सिर में असह्य पीड़ा हुई और इसी पीड़ा के कारण 8 जून, 632 ई० को वे चल बसे। मृत्यु-शैय्या पर पड़े मुहम्मद के चेहरे पर प्रसन्नता चिर जमान थी। अपने उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें पूर्ण सफलता मिली थी। एक बार उन्होंने यह उद्गार प्रकट कियाथा : आज मैंने आपके धर्म (इस्लाम) को पूर्णता की चोटी पर पहुँचा है दिया और इसे आपके लिये दिया है।"[15]

इस्लाम के सिद्धान्त

सेमेटिकों ने जिन तीन दैवी धर्मो का विकास किया उनमें कुरान को अहमियत देने वाला धर्म इस्लाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है जो यहूदी धर्म से मिलता-जुलता है, जो पुरान टेस्टामेंट (OldTestament) पर आधारित है। पर तीसरे धर्म क्रिश्चियन (ईसाई) से अधिक सादृश्य नहीं रखता है जो नये टेस्टामेंट (New Testament) पर मुनहसिर है। फिर भी इस धर्म के भी अनेक पहलू इस्लाम के सिद्धान्तों में भी समाहित हैं। धीरे-धीरे एक स्वतन्त्र तथा विशेष विश्वास के साथ यह धर्म विकसित हुआ। इस पूर्वी धर्म में कावा और कुरान प्रखर तत्व के रूप में निर्धारित हुए।

इस्लाम के मूल तत्वों (Tenets) की व्याख्या मुस्लिम धर्मशास्त्रियों ने तीन शब्दों का अन्तर बतलाते हुए किया है। वे शब्द हैं इमान (Iman religious belief), इबादत (Ibadat-a cult of worship) और एहसान (Ihsan-right-doing)। ये तीनों मिलकर धर्म कहलाते हैं जिसे मुस्लिम धर्मशास्त्री दीन (Din-religion) के नाम से पुकारते हैं। ईश्वर के साथ यह दीन इस्लाम है।[16] अधिक स्पष्ट रूप से इस्लाम धर्म वह है जिसमें ईश्वर सर्वोपरि है, जिसके काबा तथा कुरान निर्णायक तत्व हैं और जिसमें इमान, इबादत और एहसान आधार-स्तम्भ हैं।

इमान खुदा अथवा ईश्वर को सर्वोपरि बतलाता है। ईश्वर के साथ उसके देवदूत (angles), उसके संदेशवाहक (Messanger), उसकी पुस्तक (book) और कयामत के दिन (last day) शामिल हैं।

अतः इस्लाम का पहला ओर सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है :ला इल्लाह इल्लल्लाह (no God whatsoever but Allah)। इस्लाम में ईश्वर का सिद्धान्त सबसे बड़ा माना गया है। वास्तव में सभी मुस्लिम धर्मशास्त्रियों ने अल्लाह को ही अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है और सिर्फ उसे ही सच्चा ईश्वर बतलाया है।[17] वह 99

---

15. Today I have perfected your religion and completed my favours for you and chosen Islam as religlon for you.

—William Muir The life of Mohammed, p 23.

16. Verily the religion (din) with God is Islam.

—Koran 3 : 17.

17. He is the one true God. —Koran.

उत्तम नामों से पुकारा गया है। ईश्वर ही सबसे बड़ा सत्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली और सर्वव्यापी है, ऐसा कुरान या 'शरा' बतलाते हैं। अदृश्य रूप में अनेक गुणों वाला यह ईश्वर ही सब कुछ है। अतः सारे लोगों (अरब के) को अनेक देवताओं की इबादत न करके मुर्ति पूजा का त्याग करते हुए इसी एक ईश्वर की इबादत करनी चाहिये। अतः इस्लाम पूर्ण समर्पण का सन्देश देनेवाला धर्म है। ईश्वर की इच्छा के समक्ष पूर्ण समर्पण कर देना ही इस्लाम है और जो इसमें विश्वास करते हैं, ईश्वर में पूरी अस्था करके स्वयं को उसके रहमों-करम पर छोड़ देते हैं, वे ही मुसलमान हैं। मुहम्मद अथवा इस्लाम का यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त सर्वाधिक क्रान्तिकारी है और इसी में इस्लाम की शक्ति छिपी हैं। बहुदेव वाद की जगह एकेश्वरवाद का सिद्धान्त देकर मुहम्मद साहब ने अरेबिया में उस धार्मिक एकता की पृष्ठभूमि का निर्माण किया जो भविष्य में सामाजिक एकता और राजनीतिक संगठन की दहलीज खड़ा करने वाला था और जो धार्मिक इस्लाम को राजनीतिक इस्लाम में परिवर्तित करने वाला था।

ईश्वर के विचार (Concept) से संबंधित देवदूत का भी सिद्धन्त है जो इस्लाम का एक अन्य प्रमुख तत्व है। देवदूतों में इस्लाम जिब्राइल (Gabriel) को सर्वश्रेष्ठ मानता है जो दैवी रहस्यों का खजाना है, जो पवित्रता की आत्मा रखता है और जो विश्वासी दूत है। इस जिब्राइल को मुसलमान उतना ही महत्व देते हैं जितना अपने पैगम्बर को।

इमान का दूसरा प्रसिद्ध सिद्धान्त ईश्वर के संदेशवाहक अथवा रसूल से संबंधित है। इस्लाम में मुहम्मद साहब को अल्लाह का रसूल बतलाया गया है और वह भी अन्तिम रसूल। मुसलमानों को ऐसा कहा गया कि मुहम्मद साहब अन्तिम रसूल हैं और उनके बाद अब कोई रसूल पैदा होने वाला नहीं है। वे सारी दैवी शक्तियों से समान्वित हैं और इसलिये वे दिव्य पुरुष हैं। एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की तरह 'अन्तिम रसूल' का सिद्धान्त भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। मुसलमानों की दुनिया में अब कोई रसूल पैदा होनेवाला नहीं था, अतः इस अन्तिम रसूल में उनका पूर्ण विश्वास जमा, और यही कारण था कि मुहम्मद के एक इशारे पर वे मर मिटने को तैयार हुए। इस्लाम के प्रारम्भिक प्रसार में और इस्लामी राज्य के निर्माण तथा संस्थापन में 'अन्तिम रसूल' के सिद्धान्त ने कम योगदान नहीं किया।

ईश्वरीय उपादानों में, इस्लाम के अनुसार, कुरान भी एक है जो 'पाक' (पवित्र) माना गया है। यह विश्वास धावित है कि कुराण म ईश्वर के शब्द-(कलाम) हैं और यह मानव-कृति नहीं है। सारे मुसलमान यह विश्वास करते हैं कि स्वर्ग से जिब्राइल ने आकर ईश्वर के अलफाजों को मुहम्मद को कहा और मुहम्मद ने उन्हें जिब्राइल से लिखवाया। अतः कुरान का अर्थ ही केवल प्रेरक नहीं है अपितु उसका प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक शब्द प्रेरणा का स्रोत हैं।

मुहम्मद ने ईश्वर की व्याख्या करने के क्रम में कयामत के दिन का भी सिद्धान्त दिया। इसे 'अन्तिम दिन भी कहा जाता है। यह दिन अवश्यम्भावी है, इसे आना ही है। इस दिन इन्सान इनाम या सजा पाता है। इस्लाम में यह कहा गया है

कि जो व्यक्ति ईश्वर के आदेशों को स्वीकार करता है वह स्वर्ग में उत्तम पुरस्कार पाता है और जो उनका (आदेशों का) तिरस्कार करता है उसे नरक में भयंकर दण्डों को झेलना पड़ता है।

मुसलमानों के धार्मिक कर्त्तव्य (इबादत) इस्लाम के पाँच स्तम्भों (five pillars) पर निर्भर करते हैं जिन्हें कुरान में 'अर्कान' (Arkan) कहा गया है। इनमें पहला अर्कान है : ला इल्लाह ईलल्लाह, मुहम्मद रसुल उल्लाह अर्थात अल्लाह को छोड़कर अन्य कोई देवता नहीं है और मुहम्मद उसके रसुल हैं। ये वे शब्द हैं जिन्हें नवजात शिशु के कानों में और मृत व्यक्ति को कब्र में सुलाते समय भी सुनाया जाता है। सुबह और शाम मस्जिदों की मीनारों से भी ये शब्द ही ऊँचे स्वरों में सुनाई देते हैं। जिसने इन शब्दों में विश्वास किया और उन्हें कण्ठ-स्वर दिया वही मुसलमान है।

दूसरा कलाम इबादत है। यह नियम बना कि प्रत्येक मुसलमान को मक्का (काबा) की ओर मुखातिब होकर दिन में पाँच बार नमाज पढ़ना है। नमाज के पढ़ने का वक्त इस प्रकार बनाया गया—सुबह, दोपहर, दोपहर के बाद, सूर्य डुबने पर और रात होने पर। अरबी भाषा में ही पाक-साफ होकर प्रत्येक मुसलमान को नमाज पढ़नी थी। सार्वजनिक नमाज पढ़ने का दिन शुक्रवार को बनाया गया। औरतों की नमाज के लिए अलग मस्जिद बनायी गयी। इस्लाम के इस सिद्धान्त ने समस्त अरबों में सामाजिक एकता (मजहबी भी) लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मुस्लिम समाज में बिरादरी की भावना (Fraternity) का निःसरण इसी सिद्धान्त से हुआ। अत नमाज स्थल (मस्जिद) मुसलमानों का अखाड़ा बना जहाँ एकत्व की भावना पनपी।[18]

तीसरा आर्कान है जकात (zakah) देना। यह कहा गया कि प्रत्येक मुसलमान का यह पावन कर्त्तव्य है कि वह फकीरों को दान (zakah) दे। कुरान में जकात की वसूली का भी उल्लेख किया गया है। यह एक धन पर लगाया गया टैक्स भी था जिसे राज्य के पदाधिकारी वसूल करते थे और यह प्रधान राजकोष में जमा होता था। इस धनराशि का खर्च गरीबों को दान देने, मस्जिदों को बनाने और प्रशासन के संचालन में किया जाता था। खर्च के मदों का उल्लेख क़ुरान (9: 60) में किया गया है। लगभग 2½% जमा धन के दृष्टिकोण से लिया जाता था।

चौथा कर्त्तव्य था उपवास करना। रमजान के महीने में मुसलमानों को सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास करने को कहा गया। हमें इस बात की सूचना नहीं है कि जमाना-ए-जाहिलियत में अरब के लोग उपवास करते थे अथवा नहीं, पर यहूदी

18. It developed in them (Muslims) the sense of social equality and the consciousness of solidarity. It promoted that brotherhood of comm nity of believers which the religion of Mohammad had theoretica ly s bstituted for blood relationship. The prayer ground thus became the first drill ground of Islam. —P. K. Hitti, p 132.

और ईसाई इस कर्त्तव्य का पालन अवश्य करते थे। इब्न हिशाम का मत है कि बद्दू एक महीने तक उपवास की क्रिया का सम्पादन नहीं करते थे और न हीरा गुफा में किसी प्रकार की तपस्या करते थे। मदीना में रमजान की परिपाटी प्रारम्भ होने के पूर्व पैगम्बर 10वीं मुहर्रम के दिन एक दिन का उपवास करते थे और यह उन्होंने यहूदियों से सीखा था।

हज (Hajj) अ खिरी और पाँचवा अर्कान है। यह नियम बना कि अपने जीवन काल में स्त्री और पुरुष कम से कम एक बार अवश्य मक्का की यात्रा हज करने के उद्देश्य से करें। हज सेमेटिको का एक पुराना रिवाज था जिसे मुहम्मद साहब ने भी स्वीकार किया।[19] हज के लिये मक्का पहुँचे लोगों को काबा के चारो तरफ घूमते हुए इन वाक्यों को बोलना पड़ता था :

"ए इस भवन के मालिक !" मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैं (हज के लिए) आया हूँ। ऐसा मत कहो कि मैं नहीं आया हूँ। मेरी गलतियों के लिये मुझे क्षमा दो, मेरे पिता को क्षमा दो, अगर तुम ऐसा कर सको। अगर नहीं तो अनिच्छुक रहकर भी मेरी गलतियों के लिये मुझे क्षमा दो क्योंकि तुम देख रहे हो कि मैं हज के लिये आया हूँ।[20]

इस संबंध में इतिहासकार डब्ल्यू स्मिथ ने ही दो बद्दू औरतों की उक्तियों का उल्लेख इस प्रकार किया है :

एक बद्दू औरत (हज के लिये) काबा को घूमते हुए यह कहती है : 'ए भद्र लैला, अगर तुम मेरे क्षेत्र में वर्षा करके फसल की प्रचुरता में वृद्धि करोगी तो मैं तुम्हारे लिए एक बोतल घी लाऊँगी जिससे तुम अपना केश-विन्यास कर सको।' यह सनकर दूसरी बद्दू औरत पहली औरत से पूछती है : "जैसा तुम कह रही हो", क्या वास्तव में एक बोतल घी भेजोगी ?" तब पहली औरत प्रत्युत्तर देती है : "अरे मैं तो उसे मूख बना रही हूँ। वर्षा हो जाने पर मैं उसके लिये कुछ भी भेजनेवाली नहीं हूँ।"

कथित उक्तियाँ इस बात का प्रमाण है कि प्रारंभिक काल में हज की शुरूआत होने पर लोग इसके प्रति निष्ठापूर्वक सच्ची भावना नहीं रखते थे। किन्तु यह सही है कि इस नियम के ईजाद ने विश्व के सारे मुसलमानों को और तत्काल अरेबिया के मुसलमानों को एक जगह एकत्र होने का अवसर दिया और इससे उनमें धार्मिक एकता तथा राजनीतिक जागरण की भावना आयी। लोग मध्य अफ्रीका, सेनेगल, लेबेरिया, नाइजीरिया आदि की यात्रा करते हुए मक्का पहुँचते थे।

19. W. Robertson Smith; Lectures on the Religion of the Semetics, 3rd edition by S. A. Cook, pp 80, 276.

20. "O Lord of this House. I testify that I have come. Say not that I have not come. Forgive me and forgive my father, if you will otherwise forgive me in spite of your unwillingness, for I have performed my pilgrimage, as you see."

कुछ तीर्थयात्री पैदल जाते थे तो कुछ ऊँटों की पीठ पर सवार होकर !' तीर्थयात्री रास्तों में नगरों और देशों से गुजरते हुए भौगोलिक लाभ तो उठाते ही थे, वे व्यापार का कार्य करते हुए आर्थिक लाभ भी प्राप्त करते थे। यमन, इराक, सीरिया तथा मिस्त्र से हज के लिये निकला कारवाँ व्यापार भी करते जाता था।

मुसलमानों की खरीजी शाखा ने 'जिहाद' (Holy War) को अर्कान की श्रेणी रखा है और इसे छठ्ठा स्थान दिया है। इस सिद्धान्त के कारण इस्लाम का विस्तार अत्यधिक पैमाने पर हुआ और वह विश्व की महान शक्तियों में एक हो गया। यह कहा गया है कि प्रत्येक खलीफा का धर्म है इस्लाम के क्षेत्रों की रक्षा करना। इस्लाम के क्षेत्र (dar-al-Islam) और युद्ध के क्षेत्र (the war territory) के बीच एक बिलगाव की दीवार होनी चाहिए और इस्लाम के क्षेत्र में विस्तार होते जाना चाहिए।

सच पूछा जाय तो इस्लाम के कथित कर्त्तव्य ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं के कारण धार्मिक एकता, सामाजिक बिरादरी, राष्ट्रीय जागरण और इस्लाम के राज्य की स्थापना तथा विस्तार की भावनाओं का जन्म हुआ और इस्लाम प्रारम्भ में धार्मिक कलेवर, मध्य में राजनीतिक कलेवर और अन्त में सांस्कृतिक कलेवर को धारण किया। अतः 'इस्लाम' का अर्थ तीन दृष्टियों से बना—मूलतः धर्म था, बाद में एक राज्य का रूप धारण किया और अन्त में एक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने लगा।[21]

इन कर्त्तव्यों के अतिरिक्त इस्लाम में छः विश्वास भी शामिल हैं। इन विश्वासों का निरूपण पैगम्बर मुहम्मद ने ही किया। वे हैं (1) खुदा सर्वव्यापी है, (2) फरिश्ते अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के हैं; इन्सानों को चाहिए कि वे अच्छे फरिश्तों का साथ दें, (3) कुरान पाक किताव है और इसे प्रत्येक मुसलमान को पढ़ना चाहिये, (4) खुदा ने लोगों को सभ्य तथा सुसंस्कृत बनाने के लिये अट्ठाइस पैगम्बरों को पैदा किया है जिनमें मुहम्मद अन्तिम पैगम्बर हैं, (5) आत्मा अनश्वर है और निधनोपरान्त आत्मा दोजख में सजा या बहिश्त में इनाम पाती है। बुरी आत्मा को दोजख में और अच्छी आत्मा को बहिश्त में जगह मिलती है, तथा (6) खुदा के इशारे से संसार चलता है। इन विश्वासों में प्रत्येक मुसलमान की आस्था होनी चाहिये।

मुहम्मद साहब ने व्यक्तिगत विश्वास और नैतिक आचरण पर बड़ा बल दिया। उन्होंने मुसलमानों को नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए परामर्श दिया। इस्लाम ने व्यक्ति में विश्वास तथा नैतिक आचरण की भावना का सृजन किया।[22]

---

21. The term Islam may be used in three senses : originally a religion; Islam later became a state, and finally a culture.

—P. K. Hitti. p 145.

22. Islam was the first to demand personal belief and personal morality.

—Kuran (Surs 53; 39-42. 31 : 32)

पैगम्बर के कुछ सामाजिक उपदेश शीघ्र लाभ पहुँचाने वाले थे। उन्होंने मादक पेयों तथा बुरे खाद्य-पदार्थों से मुसलमानों को पृथक रहने का सत्परामर्श दिया। द्यूतक्रीड़ा, मिथ्या आचरण और अनैतिक आचरण की उन्होंने निन्दा की। बच्चों तथा औरतों के प्रति सद्व्यवहार करने के लिए उन्होंने संदेश दिया। दासों के प्रति मुरौव्वत तथा रहम दिखलाने के लिये उन्होंने अपील की। उन्होंने विवाह संबंधी विशेष नियमों की रचना की और यह नियम बनाया कि एक मुसलमान अधिक से अधिक चार शादियाँ कर सकता है। विवाह को मर्यादित बनाने का श्रेय पैगम्बर को ही प्राप्त है। प्रजातन्त्र और बिरादरी की बात चलाकर मुहम्मद साहब ने निश्चित रूप से अरब के समाज से असमानता तथा संघर्ष को हटाने का प्रयास किया।

पैगम्बर मुहम्मद—अन्वेषक या समझौतावादी ?

पैगम्बर मुहम्मद को कुछ इतिहासकारों ने समझौतावादी (Compromiser) कहा है। ऐसा तर्क उपस्थित किया गया है कि उन्होंने जमाना-ए-जाहिलियत की अनेक परिपाटियों तथा रस्म-रिवाजों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। मक्का तथा मदीना में इस्लाम के प्रचार के बाद भी उन्हें यथास्थिति में धावित होने दिया तथा कुछ विश्वासों को इस्लाम के सिद्धान्तों के अन्दर ले लिया। मिसाल के तौर पर उन्होंने सामाजिक क्षेत्र के कबीलों के अस्तित्व को स्वीकार किया, भले ही उनका संगठन बनाकर 'अन्सार' के नाम से पुकारा। इसी प्रकार अज्ञानता के युग में बहुपत्नी-प्रथा प्रचलित थी और एक बद्दू मनमाने ढंग से अनेक स्त्रियों से विवाह करता था। मुहम्मद साहब ने विवाह की इस पद्धति को भी स्वीकार कर लिया और बहुपत्नी-प्रथा पर रोक नहीं लगायी, भले ही पत्नियों की संख्या निश्चित कर दी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि एक मुसलमान चार महिलाओं से शादियाँ एक के बाद एक, कर सकता है। तलाक का रिवाज भी समाज में प्रचलित था। मुहम्मद साहब ने सुधारक की मान्यता मिलने के बाद भी तलाक को स्वीकार किया। औरतों की जो स्थिति जाहिलियत जमाने में थी, वही स्थिति लगभग पैगम्बर की प्रसिद्धि के बाद भी बनी रही, भले ही उनके जीवन को मर्यादित करने के लिए उन्होंने महिला-जगत पर कुछ नियन्त्रण कायम किया।

धार्मिक क्षेत्र में भी कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि अज्ञानता के युग की अनेक धार्मिक चीजें इस्लाम के जन्म और उत्थान के पश्चात् भी विद्यमान रहीं। उदाहरण के लिये इस्लाम के पूर्व लोग देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करते थे और अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। मुहम्मद साहब ने देवताओं के प्रश्न पर समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया, भले ही अनेक की जगह एक को स्वीकार किया। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी बात यह है कि जाहिलियत जमाने का एक देवता अल्लाह को मुहम्मद साहब ने भी स्वीकार किया और इसी देवता की सर्वोदेरिता सर्वज्ञता और प्रमुखता कायम करने का प्रयास किया। जिस देवता में पहम्मद ने विश्वास किया उसका नामकरण उन्होंने 'अल्लाह' ही किया। फिर, मुधकार युग से ही मक्का में काबा की महत्ता कायम थी जिसके इर्द-गिर्द सैकड़ों अंवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित थी। मुहम्मद साहब ने इस्लाम को जन्म देने

के बाद भी 'काबा' का तिरस्कार नहीं किया और उसे अपने सिद्धान्तों में शामिल किया। इस्लाम के पाँच कर्त्तव्यों में एक कर्त्तव्य इबादत करना भी था। मुहम्मद साहब ने यह नियम बनाया था कि इबादत (नमाज) के समय मुसलमानों को मक्का (काबा) की ओर मुखातिब होना चाहिए। यह सन्दर्भ उन्हें समझौतावादी सिद्ध करता है। इसी प्रकार हज की परम्परा को भी उन्होंने स्वीकार किया और पहले की तरह लोगों को जीवन में कम से कम एक बार अवश्य ही हज करने के लिये काबा की यात्रा करना पुनीत कर्त्तव्य बतलाया।

राजनीति के कुछ बिन्दु भी मुहम्मद साहब को समझौतावादी सिद्ध करते हैं। मिसालतन यह तर्क दिया जाता है कि जाहिलियत जमाना लड़ाई-दंगों से खाली नहीं था। कबीलों के लोग पत्नी, जमीन, खून आदि के नाम पर आपस में लड़ बैठते थे, संघर्ष की फिजा तैयार कर देते थे। मुहम्मद साहब नें इस संघर्ष को दूर कर 'शान्तिदूत' नहीं बने। कबीलों के संघर्ष की जगह उन्होंने 'संगठित युद्ध' का श्रीगणेश किया। मक्का नगर पहले भी था, मुहम्मद के काल में भी रहा। मदीना का अस्तित्व पहले भी था, मुहम्मद ने भी उसे स्वीकार किया। अज्ञानता के युग के ये दोनों नगर मुहम्मद साहब के लिये भी आकर्षक नगर थे। हाँ, उन्होंने उन्हें नगर राज्य का, खासकर मदीना को, रूप दे डाला और मदीना के मजिस्ट्रेट बन बैठे। कबीलों के महत्त्व को वे खब समझते थे और इसीलिए उन्होंने उनसे (कुरैशों से) हुदैबिया का समझौता किया। कबीला उनके मस्तिक को कुरेदते रहे और मुहम्मद उनको समूल नष्ट न कर सके।

इन विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर मुहम्मद साहब को समझौतावादी कहा गया है। पर ऐसा समझना गलत है। समझौतावादी उसे कहा जाता है जो पहले की चीजों को यथावत स्वीकार कर लेता है और उनमें किसी प्रकार का हेर-फेर नहीं लाता है। मुहम्मद साहब ने ऐसा कभी भी नहीं किया। उन्होंने अज्ञानता के युग की अनेक विशेषताओं को अवश्य स्वीकार किया, किन्तु उनमें संशोधन एवं सुधार लाकर, नये रूप में सँवार कर स्वीकार किया। पहले की प्रचलित परम्परा के बुरे पहलुओं को उन्होंने त्याग दिया और कुछ संशोधन तथा नियन्त्रण के साथ उन्हें अपना लिया।

सामाजिक क्षेत्र के उन बिन्दुओं का जिनकी हम चर्चा कर चुके हैं, पुनः विश्लेषण करने पर ही हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि मुहम्मद समझौतावादी (Compromiser) नहीं अपितु अन्वेषक (Innovator) थे। संशोधनवादी ये पुरानी परम्पराओं में से कुछ को उन्होंने अवश्य अंगीकार किया और मुसलमानों को भी उन्हें स्वीकार करने का आदेश और परामर्श दिया, किन्तु उनका परिमार्जन करके और उनपर नियन्त्रण लादकर ही अपनाया। यह बात कही जाति है कि उन्होंने 'अन्सार' के नाम से कबीलों के अस्तित्व को कायम रहने दिया ऐसी बात नहीं। व्यापक रूप से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कबीलों को उन्होंने एक राष्ट्रीयता (Nationality, Race) के रूप में बदल डाला। अरब के सभी कबीला या वे जो उनके समर्थक हो गये, 'अन्सार' कहलाये। कबीला और राष्ट्रीयता

में काफी अन्तर होता है। देश के सारे सम्प्रदायों, मतों, फिरकों को मिलाकर अगर एक जाति का रूप दे दिया जाता है तो ऐसा करने वाला व्यक्ति अन्वेषक ही हो सकता है, समझौतावादी नहीं।

यह बात भी कही जाती है कि मुहम्मद साहब बहुपत्नीवाद, विवाह और तलाक को स्वीकार करने के कारण समझौतावादी है। यह मत भी यथार्थता से मेल नहीं खाता है। अज्ञानी बद्दु अनेक शादियाँ करते थे और वे जबाबदेह नहीं थे। मुहम्मद साहब ने इस प्रथा में भी सुधार लाया और यह नियन्त्रण कायम कर दिया कि एक मुसलमान चार से अधिक शादियाँ नहीं कर सकता है। विवाह की पद्धति तो और भी संशोधित की गयी। एक रात के लिए किसी औरत को पत्नी बनाकर एक बद्दु अपने यौन की संतुष्टि कर लेता था और दूसरी रात को वह उसे छोड़ भी सकता था। औरतों का कुछ भी महत्त्व नहीं था। ऐसा भी होता था कि बूढ़े पिता के मर जाने पर उसका जवान बेटा अपनी जवान माँ से भी विवाह कर लेता था। मुहम्मद साहब ने इस पर रोक लगा दी। यह नियम बना कि एक मुसलमान अपनी माँ और सगी बहन से विवाह नहीं कर सकता है। उसके अतिरिक्त विवाह को एक बंधन का, समझौता (Contract) का रूप दिया गया। एक मुसलमान शादी के समय यह कबूल करता था कि वह पत्नी का त्याग करने पर एक निश्चित धनराशि देगा। इस धन का स्वामिनी तलाक पाने वाली परित्यक्ता ही होती थी। अतः विवाह अब मनमौजी ढंग से नहीं, समझौते के आधार पर किया जाने लगा। इसी प्रकार तलाक भी अब आसान नही रहा और उसके लिए भी नियम बनाये गये। जाहिलियत जमाने में केवल तीन बार 'तलाक, तलाक, तलाक,' कहने पर ही पति को पत्नी से छुटकारा मिल जाता था। किन्तु मुहम्मद ने तलाक की शर्त्तों और परिस्थितियों की संरचना की। पुरुष (पति) उसी औरत (पत्नी) का तलाक कर सकता था जो बाँझ हो, रोग-ग्रसित हो, दुश्चरित्रा हो और परिवार की मर्यादा का हनन करती हो। विकृत रीति-रिवाजों और प्रथाओं में परिष्कार लाने वाले पैगम्बर को अन्वेषक मानना अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है।

पैगम्बर मुहम्मद ने औरतों की स्थिति में भी परिवर्त्तन लाया। यह परिवर्त्तन साधारण नहीं, असाधारण था। इस्लाम के उदय के बाद वे माँ, पत्नी बहन आदि के रूप में सम्मानित होने लगीं। पहले वे संघर्ष का कारण थी क्योंकि उनके स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करने पर किसी प्रकार की रोक नहीं थी और इस कारण कोई भी कामुक बद्दू कहीं भी एक औरत को पकड़कर अपनी काम-लिप्सा को तृप्ति कर लेता था। अब उनके स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करने पर रोक लगा दी गयी और उन्हें पुरुषों को संप्रभुता के अन्दर रहने की बात पर जोर दिया जाने लगा। यही कारण था कि मुहम्मद के काल में ही पहली बार प्रांगण (Yard) बनाने का रिवाज चल पड़ा। पैगम्बर ने खुद ऐसे प्रांगनों का निर्माण किया जो चारो तरफ से दीवारों से घिरा रहता था ताकि पर पुरुष की दृष्टि उनकी पत्नियों पर न पड़ सके। बुरका का रिवाज इसी संशोधन का नतीजा था। इस्लाम के उदय के बाद औरतों को अनेक अधिकार, सुविधायें, मर्यादा एवं सम्मान दिये गये। अतः इस बिन्दु पर भी पैगम्बर अन्वेषक सिद्ध होते हैं एवं संशोधनकर्त्ता माने जाते हैं।

मुहम्मद साहब ने आर्थिक क्षेत्र में भी नयी व्यवस्था लायी। जाहिलियत काल में यह नियम था कि अगर कर्जदार कर्ज की अदायगी न कर पाता था तो उसके परिवार पर महाजन का स्वामित्व कायम हो जाता था। मुहम्मद साहब ने इस रिवाज को समाप्त कर दिया। साथ ही उन्होंने यह भी नियम बनाया कि सहायता के नाम पर दी गयी धनराशि पर स्वामी सूद नहीं ले सकता है। मुहम्मद ने चल-अचल सम्पति से संबंधित विभिन्न विधियों का निर्माण किया जो उनके पूर्व प्रचलित नहीं था। इससे सम्पत्ति की महत्ता और सुरक्षा कायम हुई। राज्य को आय का चालीस भाग (1/40) दिया जाने लगा। अतः मुहम्मद इस दृष्टि से भी सुधारक है।

धर्म के क्षेत्र में भी पैगम्बर ने नयापन लाया। पहले के धर्म में देवताओं की प्रधानता थी। मुहम्मद साहब ने भी देवता को स्वीकार किया, किन्तु बहुदेववाद की जगह उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। पहले देवता शक्ल-सूरत वाले थे, किन्तु मुहमम्द का देवता (अल्लाह) निराकार था। 'अल्लाह' वस्तुतः जाहिलियत जमाने का देन नहीं था। मुहम्मद ने संभवतः इसी नाम को अभिहित किया, किन्तु इसी एक अल्लाह की सर्वोपरिता कायम की। मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हुए धार्मिक एकता की स्थापना की दिशा में उन्होंने अपना कदम बढ़ाया। इतना ही नहीं, उन्होंने आदिम कालीन कबीलों की तरह इन्सान और खुदा के बीच कड़ी का काम करने वाले पुरोहितों के वर्ग को भी ठुकरा दिया। यह कहना कि बद्दूओं की तरह उन्होने काबा को महत्ता प्रदान की, अक्षरशः सत्य नहीं है। काबा के पास की अनेक मूर्त्तियों का मंजन करके उन्होंने पुरानी धार्मिकता पर गहरी चोट की। संभवतः समस्त अरब निवासी काबा के प्रति सम्मान का प्रदर्शन करते थे। अगर काबा पर भी मुहम्मद की चढ़ाई होती तो उनके असल ध्येय—अरब को राष्ट्र का रूप देना—की संभवतः प्राप्ति जल्द नहीं होती। इसलिए दूरदर्शी हजरत ने काबा की मर्यादा कायम रखकर बुद्धिमानी की और सारे अरबों की भावना को जख्मी करने की बेवकूफी नहीं की। हज के संबंध में भी नियम बने। केवल पाक और एकेश्वरवादी मुसलमान ही हज को जा सकते थे। जाहिलियत जमाने में हज संबंधी ये बंधन नहीं थे। अतः धर्म के क्षेत्र में भी उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती युग से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया।

राजनीति का क्षेत्र भी संशोधित तथा परिष्कृत किया गया। शेख और उसका शासन समाप्त हुआ और उसकी जगह नगर राज्य और मजिस्ट्रेट कायम हुए। मदीना का यह धर्म धीरे-धीरे राज्य बनता गया। इस्लाम की शक्ति-वृद्धि के लिये थी, न कि अपने कबीला के लोगों को प्रसन्न करने के लिये, मुहम्मद साहब ने हुदैबिया का समझौता किया।

कथित सन्दर्भो के आधार पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मुहम्मद साहब एक महान अन्वेषक थे, सशोधनकर्त्ता थे, सुधारक थे और उनके अन्वेषक मस्तिस्क ने ही न केवल मक्का और मदीना में अपितु समस्त अरब में नये-नये परिवर्त्तन लाये और इन्हीं परिवर्त्तनों ने अरब को एक राष्ट्र का रूप दिया।

मुहम्मद साहब—एक सुधारक के रूप में

इस्लाम का यह पैगम्बर निश्चित रूप से विश्व के महान सुधारकों की श्रेणी में गिना जा सकता है। उनके उत्कर्ष के पूर्व अरेबिया बुराईयों का घर था, अन्धविश्वास और बर्बरता का शिकार था। वहाँ के समाज में असमानता थी, महिला जगत अमर्यादित था, दास-प्रथा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी, व्यभिचार नग्न रूप में नर्तन कर रहा था, शराबखोरी आम बात हो गयी थी, द्यूत-क्रीड़ा ने व्यापक रूप धारण कर लिया था और लोग प्रतिशोध की अग्नि में जलते मरते रहते थे। अरब के लोग जिस हद तक निम्न कोटि के हो गये थे वैसे निम्न अन्य देशों के लोग नहीं थे, अरब देश जितना अधिक असंगठित और बिखरा हुआ था उतना अन्य देश नहीं थे, यहाँ मूर्त्ति-पूजा की जड़ जितनी गहराई तक पहुँच गयी थी उतनी और कहीं नहीं। अरब पर काला धब्बा पड़ा था। मुहम्मद के पूर्व अन्य किसी भी मसीहा ने अरब की इन बुराईयों और समस्याओं को दूर करने के लिए, उनमें सुधार और संशोधन करने के लिए प्रयास नहीं किया था। यह मुहम्मद ही थे जिन्होंने पहली बार कठोरतापूर्वक इन बुराईयों पर आक्रमण किया और प्रायद्वीप की राजनीति, धर्म, अर्थ-व्यवस्था, समाज आदि में सुधार लाकर उसका काया-पलट कर दिया। वे महान सुधारक की तरह सुधारवादी कदम उठाये और अरब तथा अन्य देशों के लिये वरदान बन कर आये।[1]

पैगम्बर मुहम्मद ने सर्वप्रथम राजनीति के क्षेत्र में सुधार लाया। अरब के कबीले सदैव आपस में झगड़ते रहते थे और इस प्रायद्वीप पर यदा-कदा आक्रमण भी होते थे। इस कारण समस्त अरब में अशान्ति तथा अराजक स्थिति व्याप्त थी। पैगम्बर ने इन सारे झगड़ालू तथा लड़ाकू कबीलों में एकता की भावना लायी और सभी को सकता के सूत्र में बांधकर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण कर डाला। उन्होंने एक शासन के अन्दर समस्त अरब को संचालित कर दिया। मदीना को शासन का केन्द्र बनाया गया और यहाँ सरकार का संगठन किया गया। मदीना की यह सरकार समस्त अरब प्रायद्वीप की सरकार बन गयी। सरकार की नीति के निर्धारण में सारे लोगों को आमन्त्रित किया गया और उन्हें समान अधिकार दिये गये। पैगम्बर ने एक क्रम बद्ध कोड का भी निर्माण किया और समस्त प्रायद्वीप में शान्ति तथा सम्पन्नता के आगमन का द्वार खोल दिया। अरब अब 'एक देश, एक शासन' के रूप में परिवर्त्तित हो गया।

मुहम्मद साहब ने अरब के धार्मिक जीवन में भी सुधार लाया। राजनीतिक बिखराव की तरह अरब में धार्मिक भ्रष्टाचार और आडम्बर ने भी घर कर लिया था। अरबवासी सैकड़ों मूर्तियों की पूजा करते थे और इसलिये विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में बँटे हुए थे। वे अंधविश्वासी थे और गहरी रूढ़ि-

---

1. When the whole of Arabia was groaning under oppresson and torture, injustice and cruelty, vice and superstition Muhammad appeared as a blessing to the Arabs and the whole universe.

K. Ali; A Study of Islamic History, p 22

वादिता ने उनके दिल और दिमाग को ग्रस लिया था। अरबवासी कुछ देवताओं की पूजा करते थे और कुछ देवियों की। काबा में लगभग 350 मूर्त्तियाँ थीं जिनकी पूजा अरब के लोग किया करते थे। धार्मिक अनेकता तथा आडम्बर ने अरब को खण्ड-खण्ड कर डाला था। मुहम्मद साहब ने मूर्ति पूजकों को एक ईश्वर की आराधना करने के लिये उत्प्रेरित किया। मक्का में प्रवेश करके उन्होंने स्वयं कई मूर्तियों को भी तोड़ डाला था। उनके उपदेश के प्रभाव के कारण अरब के लोग धीरे-धीरे विभिन्न मूर्तियों की आराधना करना बन्द कर दिये और एक ईश्वर की पूजा करने लगे। धार्मिक एकता की भावना आते ही अरब राष्ट्र के रूप में परिणत होने लगा। लगभग 23 वर्षों के अन्दर ही भ्रष्ट और अधार्मिक अरब उन्नतशील और धार्मिक राष्ट्र के रूप में परिणत हो गया।[2]

हजरत ने अरब में आर्थिक सुधार का भी कार्य किया। अरब में एक वर्ग ऐसा था जिसके लोग आम लोगों का आर्थिक शोषण करते थे। ऐसे लोग वस्तुतः महाजन थे और कड़े दर पर सूद लेकर लोगों को रुपये दिया करते थे। मुहम्मद साहब ने सूद की प्रथा को बन्द कर दिया और जकात, सदा (Sadah) और फितर (Fitr) की प्रथा चलायी। उन्होंने समाज के लोगों के बीच धन का वितरण करना प्रारम्भ किया। इससे सूदखोरों को गहरा धक्का लगा। उन्होंने लोगों को व्यापार तथा खेती करने के लिये प्रोत्साहन दिया। इसके चलते भी लोगों की माली हालत अच्छी होने लगी। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित रूप देने में मुहम्मद के उपदेश कारगर साबित हुए।

मुहम्मद के सारे सुधारों में सामाजिक सुधार अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।[3] अरब के समाज से असमानता को दूर करने का सारा श्रेय उन्हें ही दिया जाता है। उन्होंने जन्म के आधार पर बँटे हुए वर्गों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने सारे कृत्रिम मतभेदों एवं फर्क को समाप्त कर डाला। कुछ खास लोगों ने अपने सामाजिक और आर्थिक लाभ के लिये समाज में मतभेद एवं जाति की दीवार का निर्माण कर डाला था। मुहम्मद साहब ने घोषणा की कि "सभी मनुष्य एक समान हैं और बड़ा वही है जो ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करता है और मनुष्यों की भलाई करता है।" ऐसा कहकर उन्होंने बिरादरी (बंधुता) की भावना का सृजन किया। अब अरब के समाज में धनी और निर्धन, बड़े और छोटे तथा काले और गोरे का फर्क जाता रहा और सभी एक दूसरे के भाई-भाई मानने लगे। उन्होंने यह भी कहा कि सारे पाक-साफ लोग ईश्वर के प्रिय है और ऐसे सारे लोग एक समान है। मुहम्मद ने एक राष्ट्र, एक राष्ट्रीयता का

---

2. Within a brief span of about twenty three years he transformed the impious Arabs into a religious nation.

—*Ibid*, p.69

3. Of all the reforms initiated by the Prophet of Islam the removal of social inequality was the most important and far reachiag in consequences. —*Ibid*

निर्माण करने के ध्येय से ही सामाजिक समानता कायम करने का प्रयास किया था।

हजरत मुहम्मद ने दास प्रथा का भी उन्मूलन किया। यह प्रथा अरब के समाज में पहले से ही चली आ रही थी। ग्रीकों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। रोमनों, यहूदियों और ईसाइयों में भी यह प्रथा घर कर गयी थी। इन देशों एवं जातियों के लोगों ने दासों की दशा में सुधार लाने के लिये किसी प्रकार का कदम नहीं उठाया था। मुहम्मद ही प्रथम सुधारक थे जिन्होंने दासों के जीवन में सुधार लाने का उपदेश दिया और तत्संबंधी कार्य भी किया। उन्होंने खुले शब्दों में यह कहा कि जो दासों का कल्याण करते हैं और उन्हें मुक्ति देते हैं वे ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा करते हैं। मुहम्मद के उपदेशों से गुलामों की स्थिति में परिवर्त्तन आया और समाज में उनका शोषण कम होने लगा। उन्होंने मिसाल प्रस्तुत करने के लिये गुलामों की खरीद की और उन्हें स्वतन्त्रता दे दी। उन्होंने लोगों से यह अपील की कि वे गुलामों के प्रति सहानुभूति दिखलावें और उनके साथ न्यायोचित व्यवहार करें।

दासों की तरह हजरत साहब ने औरतों की स्थिति को भी समुन्नत करने का प्रयास किया। इस्लाम के पूर्व अरब के किसी भी धर्म ने औरतों की स्थिति में सुधार लाने का किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं किया था। समाज के लोग उन्हें भोग एवं मनोरंजन का साधन मानते थे और उन्हें अपने जीवन का अंग नहीं समझते थे। ऊँची सभ्यता का दम भरने वाले एथेन्सवासी भी औरतों को ओछी नजर से देखते थे और वहाँ की औरतें पुरुषों की इच्छा का गुलाम थीं। उन्हें बाजार में बेच दिया जाता था अथवा परिवार के मुखिया की इजाजत पाने पर उनका हस्तान्तरण भी कर दिया जाता था। उन्हें न तो अपने पति के धन में और न पिता के धन में किसी प्रकार का हक था।

सर्वप्रथम मुहम्मद (इस्लाम) ने औरतों को साम्पत्तिक तथा अन्य सामाजिक अधिकार देने की बात कही। कुरान में यह बात कही गयी है कि जिस प्रकार पुरुषों को औरतों पर अधिकार है उसी प्रकार औरतों को भी पुरूषों पर अधिकार हैं।[4] मनुष्यों की तरह औरतों को भी अधिकार दिये गये और अब औरतें पुरुषों की बराबरी में आ गयीं। औरतों को सम्पत्ति में अधिकार दिया गया। सम्पूर्ण विश्व में एक मुस्लिम औरत को सम्पत्ति संबंधी जो अधिकार प्राप्त हैं उतने अधिकार अन्य जातियों की औरतों को प्राप्त नहीं हैं। मुहम्मद ने औरतों के प्रति सम्मान दिखलाया और लोगों को भी सम्मान दिखलाने के लिये आग्रह किया। उन्होंने कहा: "माँ के पैरों के नीचे स्वर्ग है और अपने पति के घर में पत्नी मालकिन है।"[5]

---

4. Women shall have the some rights over men as men have over them." —*Kuran.*

5. Paradise is under the feet the mother and the woman is sovereign in the house of her husband. —*Ibid*

उन्होंने यह भी कहा कि सर्वश्रेष्ठ वही है जो अपनी पत्नी के साथ सर्वश्रेष्ठ व्यवहार करता है।'[6] उन्होंने औरतों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी और उन्हें अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार भी दे दिया। अरब में लड़कियों की हत्या कर दी जाती थी। मुहम्मद साहब ने इस रिवाज को भी रोक दिया। अब वे पतियों के कठोर अत्याचार से भी सतायी नहीं जाने लगीं।

संक्षेप में मुहम्मद साहब ने समाज को परिष्कृत करने के लिए प्रशंसनीय उद्यम किया। शराब-सेवन रोक दिया गया। द्यूत-क्रीड़ा बन्द कर दिया गया और प्रतिशोध की भावना का दमन कर दिया गया। अरब के समाज में वस्तुतः एक क्रान्ति आ गयी थी।

मुहम्मद साहब—एक राष्ट्र-निर्माता के रूप में

मुहम्मद साहब एक समाज सुधारक ही नहीं थे अपितु राष्ट्र-निर्माता भी थे। वे पहला व्यक्ति थे जिन्होंने झगड़ने वाले विभिन्न कबीलों को एकता के सूत्र में बांधकर एक राष्ट्र के निर्माण का पृष्ठभूमि तैयार की। वे पहला व्यक्ति थे जिन्होंने समग्र जनता के सहयोग पर एक साम्राज्य कायम करने की परिकल्पना की। सारे लोगों का सहयोग पाने के लिए ही उन्होंने अरब में एक बिरादरी कायम किया। कबीलों के आपसी झगड़ों और मतभेदों को दूर किया। उन्होंने मदीना में रिपब्लिक की स्थापना की। भिन्नताओं एवं अनेकता को अभिन्नता और एकता में बदला और एक शरियत की रचना की। इसी शरियत के अनुसार बिना भेदभाव बनाये सारे लोगों पर एक समान शासन किया जाने लगा।

मदीना में अधिनियम-पत्र बनाकर मुहम्मद साहब ने मुसलमानों और गैर मुसलमानों के जीवन, धर्म तथा सम्पत्ति की सुरक्षा की गारंटी दे दी। वे प्रथय व्यक्ति थे जिन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के झगड़ों को समाप्त किया और देश में शान्ति तथा व्यवस्था कायम की। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव नहीं रखा और न पूर्ववर्ती मसीहों और पैगम्बरों की आलोचना ही की। उन्होंने विश्व के बड़े मजहबी मसीहों के व्यक्तित्व में विश्वास करने के लिये लोगों को कहा। मुहम्मद ने अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने स्वयं भी विभिन्न धर्मोंवाली औरतों से विवाह किया। सच पूछा जाय तो पैगम्बर सामाजिक एकता तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए पैदा हुए थे। मदीना में शासन की नींव पड़ते ही अरब के सारे वर्गों के लोगों ने उसे स्वीकार कर लिया और अन्ततोगत्वा किसी ने विरोध नहीं किया।

मुहम्मद साहब—एक प्रशासक के रूप में

मुहम्मद साहब ने राष्ट्र-निर्माण के लिए एक सुनियोजित प्रशासन का भी संगठन किया। अतः वे मात्र धार्मिक उपदेशक, एक सेनापति और एक कूटनीतिज्ञ ही नहीं थे प्रत्युत एक महान प्रशासक भी थे। उन्होंने दस वर्षों (622-32) तक

---

6. "The best of you is he who treats his wife best." —*Ibid.*

इस्लाम के राज्य का संचालन किया। इन वर्षों के अन्दर उन्होंने प्रशासन संबंधी जो भी कार्य किया वह एक महान उपलब्धि के रूप मे इतिहास में अंकित है।[7]

मुहम्मद साहब ने यह कहा कि इस्लामी राज्य का सर्वोपरि शासक अल्लाह है जिसने अपनी इच्छा को पैगम्बर के द्वारा कुरान में जाहिर किया। पैगम्बर ही अल्लाह का प्रतिनिधि है। कुरान के कायदे-कानून लागू हैं। ईश्वर का प्रतिनिधि होने के कारण पैगम्बर ही राज्य का शक्तिशाली शासक है जिसे सभी अधिकार प्राप्त हैं। जहाँ कुरान भी कुछ जगहों पर चुप हो जाता है वहाँ पैगम्बर की बात ही कानून हैं। ऐसी स्थिति में पैगम्बर ही संप्रभु हो जाता है। अतः उसके चरित्र में दो गुण शामिल है। एक तरफ वह धार्मिक नेता (पोप) है तो दूसरी तरफ शासक (सीजर) भी। अतः पैगम्बर ने इस्लामी राज्य का संप्रभु ईश्वर के प्रतिनिधि पैगम्बर को माना।

मदीना आने पर मुहम्मद साहब ने यहाँ एक मस्जिद का निर्माण किया जिसे 'मस्जिदन-नबी' अर्थात् पैगम्बर की मस्जिद कहा जाता है। यही मस्जिद इस्लामी राज्य का कार्यालय बनी। यह इबादत-खाना भी थी, सरकारी दफ्तर भी थी और पैगम्बर की अदालत भी थी। मुहम्मद ने सम्मिलित रूप से इस मस्जिद में नमाज भी पढ़ी और इमाम की हैसियत से सारा काम किया। यहीं बैठकर उन्होंने प्रशासन-सेवकों को पत्रों भी लिखा। यहीं बैठकर उन्होंने संधियों का मसविदा तैसार किया, संबंधी को क्रियात्मक रूप में ढाला और विदेशी दूतमण्डलों से भेंट की। इसी मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठकर उन्होंने कबालों के झगड़ों को निपटाया और न्यायाधीश का काम किया। मस्जिद से ही उन्होंने गवर्नरों तथा राजस्व पदाधिकारियों को आदेश भेजे। संक्षेप में उनकी मस्जिद ने सरकार की रूपरेखा तैयार कर दी क्योंकि वही सेक्रेटेरियट बन गयी थी। अब यह अनुमान करते देर न लगी कि पैगम्बर (शासक) को कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपायिका संबंधी सारे अधिकार प्राप्त हैं और वही इस्लामी राज्य का संप्रभु है, भले ही वह अल्लाह का प्रतिनिधि है।

मुहम्मद साहब ने सुचारु रूप से शासन के संचालन के लिये इस्लामी राज्य का विभाजन भी किया। अरब का एकीकरण करने के बाद मुहम्मद साहब ने प्रदेश को भौगोलिक आधार पर अनेक प्रान्तों में विभाजित कर दिया। ये प्रान्त मदीना, मक्का, तयमा, जनाद, यमन, उमान, नजरान, बहरायन और हदरामावत थे। मदीना को समस्त इस्लामी राज्य की राजधानी बनाया गया। इन प्रान्तों के शासन पर प्रत्यक्ष रूप से मुहम्मद साहब का अधिकार और नियन्त्रण था। प्रत्येक प्रान्त के शासन के लिए एक-एक गवर्नर को नियुक्त किया गया। जिसे 'वली' (Wali) कहा गया। वली की नियुक्ति पैगम्बर मुहम्मद ने की और वह उनके प्रति ही उत्तरदायी रहा। जिस प्रकार मदीना के शासन के लिये मुहम्मद खास-खास अधिकारों से अधिकृत थे उसी प्रकार इन प्रान्तों के शासन के

---

7. The work done within that short period will always be considered as one of the, most wonderful achievements recorded in history.

—Ameer Ali, *The Spirit of Islam*, p. 91

लिये गवर्नरों को भी अधिकार दिये गये थे। एक वली इमाम, न्यायाधीश, सेनापति, प्रशासक आदि सब कुछ था। गवर्नरों के अतिरिक्त मुहम्मद साहब ने आमिलों (Collectors), काजियों (Judges) आदि की नियुक्ति की। आमिल जकात की वसूली करता था। सदका नाम का एक पृथक पदाधिकारी था जो दानविभाग का ऑफिसर था। गवर्नरों का निर्वाचन कभी-कभी जनता भी करती थी।

इस काल में मुहम्मद साहब ने पहली बार राजस्व विभाग का संगठन किया। जाहिलिया काल में लोग इस विभाग के कार्य से अपरिचित थे। उन्होंने (मुहम्मद) पहली बार मदीना में वैतुल माल (Public Treasury) की स्थापना की। मुहम्मद के काल में राजस्व प्राप्ति के पाँच स्रोत थे। —जकात (Poor-tax) और सदका (Voluntary clums), जजिया (Capitation-tax), खराज (land-tax), गनीमा (Spoils of wars) और अल फे (State lands)। महत्व की दृष्टि से जकात को दूसरा स्थान कुरान में दिया गया। प्रत्येक सम्पन्न मुसलमान के लिए यह कर देना अनिवार्य था। जकात ऊँटों, अन्य जानवरों, अनाजों, फलों आदि पर लगाया जाता था। जजिया गैर मुसलमानों पर लगाया जाता था। यह सैनिक सेवा के बदले लगाया जाता था। गैर मुसलमान खराज भी दिया करते थे। जिन गैर-मुसलमानों के पास जमीन थी उन्हें भी खराज देना पड़ता था। खराज या गनीमा में विभिन्न हथियार, घोड़े तथा अन्य चल सम्पत्ति शामिल थी। युद्ध में छोड़े गये इन सामानों को मुसलमान ले लेते थे। इसका $\frac{4}{5}$ भाग (लूट का माल) मुस्लिम सैनिकों में बाँट दिया जाता था और अवशेष $\frac{1}{5}$ भाग खजाने में जमा किया जाता था जिसे अनाथों, मुहम्मद के नातेदारों आदि पर खर्च किया जाता था। विजित भूभागों से अल-फे वसूल किया जाता था।

मुहम्मद साहब दूरदर्शी थे। इस्लाम के प्रसार के लिये उन्होंने अपने जीवन काल में ही सेना का भी संगठन करने की कला को जन्म दे डाला। वे खुद सेनापति थे और लगभग 26 अथवा 27 लड़ाईयों एवं अभियानों में उन्होंने स्वयं भाग लिया था। उन्होंने सारी प्रसिद्ध लड़ाईयों का स्वयं नेतृत्व किया था। बदर की लड़ाई में वे स्वयं सेनापति थे। अहुद और मक्का की लड़ाईयों में भी उनका नेतृत्व मिला था। कुछ लड़ाईयों के लिये उन्होंने सेनापतियों की नियुक्ति की और उन्हें युद्ध-भूमि में भेजा। युद्ध की अनिवार्यता होने पर वे लोगों को खबर करते थे। मुहम्मद के जीवन के अन्तिम दिनों में इस्लामी राज्य के पास एक बड़ी सेना हो गयी। जहाँ इस्लाम की पहली लड़ाई (बदर) में मात्र 313 सैनिकों ने भाग लिया था वहाँ तबूक के अभियान में 30,000 सैनिकों ने हाथ बँटाया था। इसी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि मुहम्मद साहब ने एक विशाल सेना का संगठन बना डाला था। इतना ही नहीं, उन्होंने सैनिक अनुशासन के नियमों का भी इजाद किया। प्रत्येक सैनिक को नैतिकता की सीमा में रहना आवश्यक था। अनुशासन भंग करने वाले सैनिक को कड़ी सजा दी जाती थी।

कतिपय राजनीतिक तथा प्रशासन-सम्बन्धी कार्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि मुहम्मद साहब ने न केवल राष्ट्र का निर्माण किया अपितु कालान्तर में कायम होनेवाले मुस्लिम साम्राज्य की पृष्ठभूमि का भी निर्माण किया।

मूल्यांकण

अब से लगभग चौदह शताब्दी पहले अरब के तारों भरे आकाश के तले एक अनाथ गड़ेरिये का बालक अपना समय शहतूत चुनने और भेड़-बकरियों को चराने में बिताया करता था। यह कौन जानता था कि यही बालक ऊँटों को हांकनेवाले और मरूस्थल को पार करनेवाले काफिलों का मार्ग-प्रदर्शक बनकर सम्पूर्ण अरब का और फिर सम्पूर्ण संसार का मार्ग-प्रदर्शक बन जायेगा ? सच पूछा जाय तो पैगम्बर मुहम्मद विश्व के उन मनीषियों एवं महापुरूषों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने अपनी बिरादरी को, अपने राष्ट्र को तो मार्ग दिखालाया ही है, विश्व के अन्य देशों के लोगों का भी पथ-प्रदर्शन किया है। यह बात सही है कि मुहम्मद ने अपने अरब के लिये सर्वाधिक कार्य किया, मुसलमानों की जमात तैयार की, किन्तु यह भी सही है कि उनके नैतिक तथा सामाजिक उत्थान के उपदेश समस्त जनों पर, चाहे वे किसी भी देश के हों, लागू हो सकते हैं।

इतिहासकारों ने पैगम्बर मुहम्मद के चरित्र तथा उपलब्धियों का कटु-मधु विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इतिहासकारों का एक दल उन्हें धूर्त्त, कामुक और प्रलोभी के रूप में उल्लेख किया है और उन्हें सामाजिक सुधारक कम, राजनेता अधिक माना है। प्रसिद्ध इतिहासकार एच० जी० वेल्स तथा डेविस ने कथित रूप में ही पैगम्बर का उल्लेख किया है। वेल्स महोदय ने लिखा कि "मुहम्मद साहब कामुकता के शिकार थे और साधारण व्यवहार में भी उनकी धूर्त्तता झलकने लगती थी। उसने लिखा है कि मुहम्मद साहब घमण्डी, आत्मश्लाघी, अत्याचारी और अपने आपको भी ठगने वाले व्यक्ति थे।[23] इतिहासकार डेविस ने उन्हें विश्वासघाती और कठोर पुरूष की संज्ञा से अभिहित किया है। मुहम्मद की कामुकता का उल्लेख इतिहासकार वेल्स तथा विल डयूरा ने भी किया हैं। मुहम्मद ने आठ, या नौ या ग्याहर शादियाँ की थीं। हो सकता है कि विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देने के लिये या अरब की आवादी में बृद्धि करने के लिये उन्होंने अधिक शादियाँ की हों। हिट्टी के अनुसार आठ, विल डयूरा के अनुसार दस और अमीर अली तथा वेल्स के अनुसार भी मुहम्मद साहब कई पत्नियों के पति थे। वेल्स ने लिखा है कि खादीजा के निधनोपरान्त पैगम्बर ने दो शादियाँ कर डाली। एक थी अबू बक्र की पुत्री आयशा तथा दूसरी थी जैद (Zaid) की पत्नी जैनिब (Zainib)। सफिया (Safiyya) नाम की एक यहूदी महिला से भी उन्होंने विवाह किया। युद्ध में सफिया के पति को बन्दी बनाने ने बाद ही मुहम्मद साहब का 'झुकाव' सफिया को ओर हुआ था और उसे मुहम्मद साहब अपने तम्बू में लाये थे। वेल्स के ही शब्दों में "उन्होंने (युद्ध के बाद) औरतों को दिन की समाप्ति (संध्या) में देखा और सफिया ने पाया कि उनका (मुहम्मद) उसकी तरफ है और तब वह उनके तम्बू में ले जायी गयी।"[24]

---

23. ...he was vain, egotistical, tyrannous, and a self-deceiver.
—H. G. Wells; The Outline of History p 605.

24. He viewed the captured women at the end of the day, and she found favour in his eyes and was taken to his tent.
—H. G. Wells; pp 604-05

विल ड्यूरा ने उन्हें 'दस पत्नियों का पति' लिखा है ।[25] उसने लिखा है कि विभिन्न समयों में विभिन्न उद्देश्यों से उत्प्रेरित होकर मुहम्मद साहब ने अनेक शादियाँ रचायी थीं । अल्लाह का संदेशवाहक अन्त में मनुष्यों (औरतों) की सहायता से ही अपनी मंजिल पर पहुँच सकता था । उनकी इन शादियों (और रखेलों) की संख्या के कारण सारा पश्चिमी जगत आश्चर्य करता है, अपना मनोविनोद करता है और ईर्ष्या भी करता है ।[26] मुहम्मद साहब, आयशा के अनुसार, यह कहा करते थे कि दुनिया की तीन चीजें अधिक कीमती है—औरत, सुगंधित चीजें और इबादत । पता नहीं, औरतों को क्यों अधिक कीमती माना गया उन्होंने कुछ शादियाँ दया से द्रवित होकर अपने समर्थकों और मित्रों की विधवाओ से की थी । इसी बिन्दु पर उन्होंने उमर की पुत्री हफसा (Hafsa) से विवाह किया था । कुछ कूटनीतिक बातों को लेकर उन्होंने विवाह रचाया था । उमर को इस्लाम स्वीकार करने के लिये हफ्सा से और अबू सूफ्यान को अपना समर्थक बनाने के लिये उसकी पुत्री से उन्होंने विवाह किया था । कुछ शादियाँ उन्होंने पुत्र-प्राप्ति की आशा से की थी । खादीजा से उन्हें पुत्र थे, पर वे अकाल मृत्यु के शिकार हो गये थे । खुदा का यह बन्दा भी सांसारिकता से मुक्ति न पा सका था ! साधारण इन्सानों की तरह इस असाधारण पुरुष को, खुदा के रसूल को भी पुत्र चाहिये था ।

अगर मान भी लिया जाय कि मुहम्मद ने खास-खास अच्छे उद्देश्यों की पूर्ति के लिये शादियाँ की थी, फिर भी यह प्रश्न उठता है कि उन्होंने रखैलों को किसलिये रखा था । प्रायः सभी इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते है कि वैध पत्नियों के अलावा मुहम्मद साहब ने रखैलों को भी रखा था जो अवैध मानी जाती हैं । विल ड्यूरा ने उनकी दो रखैलों का उल्लेख किया है, वेल्स महोदय ने भी एक मिस्री रखैल का उल्लेख किया है जो मुहम्मद साहब की सेवा में थी और जिसने एक पुत्र को जन्म भी दिया था । शायद इस रखैल के पुत्र प्रजनन के कारण ही मुहम्मद साहब उसे अत्यधिक प्यार करते थे । पत्नियों अर्थात् औरतों के प्रति मुहम्मद साहब की कमजोरी स्पष्ट हो जाती है और इसीलिये यह माना जाता है कि वे कामुकता और सांसारिकता से ऊपर न उठ सके ।

इतना ही नहीं, खुदा का यह पुत्र सौन्दर्य-प्रेमी भी था । अपने को विभिन्न उपकरणों की मदद से सौन्दर्य-युक्त बनाने में चुस्त-दुरुस्त रहता था । विल ड्यूरा ने लिखा है कि अन्य मनुष्यों की तरह वे भी घमण्डी थे; अपने शारीरिक सौन्दर्य तथा आकर्षण में वृद्धि करने के लिये वे काफी वक्त लगाते थे । अपने शरीर को सुगंधित इत्रों से सुवासित करते थे, अपनी आँखों को रंगते थे, केश को (खिजाब से) काला बनाये रखते थे और एक अगूँठी धारण किये रहते थे जिस पर "मुहम्मद, खुदा का रसूल "अंकित रहता था ।[27]

---

25. Will Durant. p 172.

26. His ten wives and two concubines have been a source of marvel, merriment and envy to the Western world;

27. But, like all men. he was vain. He gave considerable time to his personal appearance, perfumed his body, painted his eyes, dyed his hair, and wore a ring inscribed "Mohammed the Messenger of Allah."
—I bid

समस्त अरब में शान्ति तथा संगठित जीवन का सन्देश देने वाला मसीहा अपने परिवार में ही शान्ति कायम न कर सका। अधिक पत्नियों एवं रखैलों के कारण उनका हरम आशन्ति का अखाड़ा बन गया था। यह मुहम्मद के कारण ही हुआ था। खदीजा की मौत के बाद औरतों में उनकी दिलचस्पी अधिक बढ़ गयी थी और गिरती अवस्था में तो वे औरतों के प्रति और भी आशक्त हो गये थे [28] उनके घर में रात-दिन कुहराम मचा रहता था। औरतें आपस में लड़ा करती थीं, एक-दूसरे से इर्ष्या करती थी और पैसों की सदैव माँग करती रहती थी।[29] औरत तथा शक्ति (power) के प्रति वे अत्यधिक खींचे रहते थे, भले ही वे सादगी की प्रतिमूर्त्ति थे।[30]

व्यक्तिगत जीवन की खामियों पर मुहम्मद साहब की सफलताएँ तथा उपलब्धियाँ आवरण डाल देती है और वे महान् पुरुषों की श्रेणी में ही गिने जाते हैं। उनके जीवन की सादगी, उनके धार्मिक कार्य, उनकी सामाजिक उपलब्धियाँ तथा राजनीतिक संगठन के कार्य स्तुत्य तथा सराहनीय हैं। इस दृष्टि से वे उद्धात्त चारित्रिक गुणों से समन्वित इन्सान तो थे ही, धार्मिक महापुरुष सामाजिक सुधारक, राजनीतिक विचारक तथा संगठनकर्त्ता और कूटनीतिज्ञ भी थे।

पैगम्बर के चरित्र में सादगी तथा अन्य गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। सादगी और सरलता उनके चरित्र के महान् गुण थे। वे एक साधारण झोपड़ी में निवास करते थे जिसकी छत पुआल और ताड़वृक्ष के पत्तों से बनी थी। यह 12 अथवा 14 फीट वृत्ताकार थी और मात्र 8 फीट ऊँची थी। दरवाजे पर बकरियों या ऊँटों के रोओं से बने पर्दे लटकते रहते थे। फर्नीचर और तकिये भी साधारण ढंग के ही होते थे। वे अपने फटे-पुरान वस्त्रों और जूतों की मरम्मत खुद किया करते थे, स्वयं आग जलाया करते थे, मकान की सतहों पर झाड़ू लगाया करते थे, परिवार की बकरियों को अपने आँगन में दूहते थे और खुद बाजार जाकर सामग्रियों को खरीदकर लाते थे।[31] वे चम्मचों की जगह अपनी उँगलियों को भोजन के समय व्यवहार में लाते थे। भोजन की सामग्रियों में खजूर, जौ की रोटी, दूध तथा शहद उल्लेखनीय हैं जिनका वे सेवन करते थे। शहद का सेवन वे कभी-कभी ही करते थे।[32] वे महान् रूप से शिष्ट थे, सभी के प्रति उदार थे। उनके व्यक्तिगत गुणों की प्रशंसा उनके मित्रों तथा समर्थकों के द्वारा की गयी है।[33] वे रूग्नों को सेवा करते थे और शवों को दफनाने वाले समारोह में शामिल होते थे। वे गुलामों

28. Until the death of Khadija, when he was fifty seems. to have been the honest husband of one wife but then, as many men do in their declining years, he developed a disagreeably strong in erest in women. —H. G. Wells. p 604.

29. Koran, XXXiii, 6.

30. Women and power were his only indulgence, for the rest he was a man of unsuning simplicity. —Will Durant, p 172.

31. S. K. Buksh; Studies, Indian and Islamic, p 6.

32. Lane-Poole; Speeches, XXX.

33. Courteous to the great, affable to the humble, dignified to the presumpfuous, indulgent to his aides, kindly to all but his foes-so his friends and followers describe him

—Ameer Ali; Spirit of Islam, p 210.

के निमन्त्रण को भी स्वीकार करते थे और उनके साथ भोजन करते थे। लूट तथा राजस्व के मदों से प्राप्त धन का अधिकांश भाग दान कर देते थे और अल्पांश ही अपने परिवार में खर्च करते थे। वे एकान्तवास पसन्द करते थे। कभी दुखी तथा कभी प्रसन्न-मुख नजर आते थे। वे कठोर तथा धोखेबाज हो सकते थे, किन्तु उनकी उदारता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यही कारण था कि उनके मित्र तथा समर्थक उनकी प्रशंसा करते थे और उनकी पूजा करते थे।

कुछ चारित्रिक त्रुटियों के रहने पर भी मुहम्मद साहब के चरित्र में एक प्रकार का चुम्बकीय आकर्षण था जो लोगों को अपनी ओर खींचता था और इसी कारण कुछ ऐसे लोग उनके मित्र बन गये थे जो उनपर जान तक लुटाने को तैयार रहते थे। क्या एक बुरे व्यक्ति को ऐसे अच्छे मित्र मिल सकते हैं? खदीजा ने जीवन भर पूरी निष्ठा के साथ उनका साथ दिया। अबू बक्र ने मुहम्मद साहब को संकट की घड़ियों में भी नहीं छोड़ा और उनकी सुरक्षा के लिए कष्टों तक का सहन किया। वेल्स के अनुसार "अबू बक्र ने निष्ठापूर्वक मुहम्मद साहब में विश्वास किय, किन्तु अन्य लोग अबू बक्र में विश्वास नहीं करते थे।" इसी प्रकार मुहम्मद अली भी मुहम्मद साहब के अनन्य भक्तों में एक थे और बुरे दिनों में भी उनके पक्के साथी बने रहे। सच तो यह है कि मुहम्मद साहब छली नहीं थे, यह ठीक है कि अल्लाह उनकी पीठ पर था और इस कारण उनमें अभिमान की भावना आ गयी थी।

मुहम्मद साहब का व्यक्तिगत जीवन कुछ और हो सकता था, किन्तु उनकी उपलब्धियाँ विश्व के लिये, विशेषकर मुस्लिम जगत के लिये धरोहर के रूप में है। वे धार्मिक क्षेत्र में मसीहा सिद्ध हुए। उनके उत्कर्ष के पूर्व सम्पूर्ण अरब में अंधकार फैला था, भले ही अरब का एक हिस्सा कुछ सभ्य था। जाहिल लोगों की जमात को उन्होंने इस्लाम के रूप में एक नया धर्म देकर निश्चित रूप से उनमें तथा उनके प्रदेश में नया तथा युगान्तकारी परिवर्त्तन लाया। इस बात को ठुकराया नहीं जा सकता कि इस्लाम अच्छे तथा सात्विक गुणों से भरा था।[34] इस्लाम अपने इन्हीं गुणों के कारण मूर्त्तिपूजक अरेबिया में अधिक कारगर और प्रभावशाली सिद्ध हुआ। इसने अरब में एकेश्वरवाद का प्रचार किया और बददूओं को एकेश्वरवादी बनाया। मुहम्मद ने मूर्त्ति पूजा का विरोध किया और स्वयं मक्का जाकर सैकड़ों मूर्त्तियों का भंजन किया। खण्ड-खण्ड बंटा अरब एकता की राह पर चलने लगा। काबा और हज के सिद्धान्त ने मुसलमानों को एक जगह एकत्र होने का अवसर दिया और इससे उनमें एक धर्म, एक देश, एक जाति तथा एकत्व की भावना आने लगी।

धार्मिक एकता के संस्थापन के लिये, इस्लाम के फैलाव के लिये मुहम्मद अधिनायक की तरह काम किये और दबाब तथा तलवार के बल को भी इस कार्य के लिये व्यवहार में लाया। अपने अनुयायियों से उन्होंने खुले शब्दों में यह कहा कि

34. There can be no denying that Islam possess many fine and noble attributes. —H. G. Wells; p 606.

वे अपने धर्म (इस्लाम) का, यदि आवश्यकता हो तो तलवार के जोर से भी, प्रचार करें। उन्होंने कहा : "तुममें से किसी के लिये भी सब प्रकार की अतिरिक्त नमाजें पढ़ने की अपेक्षा युद्ध के मोर्चे पर उपस्थित रहना कहीं अधिक अच्छा है।" मुहम्मद के विचारों से पहले पहल मक्का के बहुत से लोग चिन्तित हो उठे। व्यवसायियों को यह भय लगा कि अरबी कबीले मूर्त्तियों की पूजा करने के लिये मक्का आना बन्द कर देंगे। इस प्रकार उनके व्यवसाय को हानि पहुँचेगी। आदिमकालीन कवीलों के पुरोहित भी विरोधी थे, क्योंकि मुहम्मद धीरे-धीरे धर्म-परिवर्त्तन करवा कर लोगों को उनसे छीन रहे थे। मुहम्मद के कुछ पड़ोसियों का ख्याल था कि वे उन्मादग्रस्त हैं। धीरे-धीरे कबीले की आपसी फूट के कारण मुहम्मद मदीना के शासक हो गये और तब इस्लाम के प्रचार में उनको और भी सहुलियतें मिल गयी। वहाँ उन्होंने अनेक लोगों को धर्म-परिवर्त्तन करके मुसलमान बनाया। जिन्होंने इस धर्म-परिवर्त्तन का प्रतिरोध किया, उन्हें अपनी सम्पत्ति, अपनी स्वतन्त्रता, और अपने प्राणों तक से हाथ धोना पड़ा। मदीना के शासक के रूप में मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे मक्का के व्यापारियों के काफिलों को लूट लें क्योंकि वे मूर्त्तिपूजक काफिर थे। 630 ई0 में मुहम्मद की सेना ने मक्का को जीत लिया और इसके दो वर्ष बाद, मुहम्मद की मृत्यु से पहले, व्यवहारतः सारा अरब देश धर्म-परिवर्त्तन करके मुसलमान बन चुका था। सौ वर्ष के अन्दर ही विजेता अरबों का अर्द्ध चन्द्रयुक्त झण्डा एक समूचे साम्राज्य पर फहराने लगा था, जो रोमन साम्राज्य से भी अधिक विशाल था। संक्षेप में मुहम्मद साहब ने इस्लाम के माध्यम से और बल का प्रयोग करके भी धार्मिक एकता लायी। उस काल के लिये यह एक बहुत बड़ी सफलता थी। मुहम्मद के इस्लाम का ही यह प्रभाव है कि मुस्लिम जगत में धार्मिक एकता का वह भाव आजतक बना है और वे एक ही ईश्वर को मानते हैं। मस्जिदों की मीनारों से मुअज्जिन की पुकार श्रद्धालु मुसलमानों को प्रतिदिन पाँच बार नमाज के लिये बुलाती है। धार्मिक मुसलमान, जो दुनिया के सबसे बड़े एकदेवोपासक धर्म के पुजारी है, इस पुकार का उत्तर अवश्य देते हैं, चाहे वे कहीं भी क्यों न हों। वे झुककर घुटने के बल बैठ जाते है, अपना मुँह पवित्र नगर मक्का की ओर कर लेते हैं और अपने सिर भूमि पर झुका लेते हैं। गंभीरता के साथ उनमें से हर एक दुहराता है :

"अल्लाह के सिवाय और कोई देवता नहीं है और मुहम्मद उसका सन्देशवाहक है।"

धार्मिक एकता के साथ-साथ मुहम्मद ने मुसलमानों की आडम्बरीय चमक-दमक को दूर किया और पाँच कर्त्तव्यों का निर्धारण कर सबों को एक धार्मिक राह पकड़ा दी। एक राह के राही सारे मुसलमान हर वर्ष एक महीने धर्मनिष्ठ होकर सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त उपवास करते हैं। सप्ताह में एक दिन वे मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं और समर्थ मुसलमान जीवन में कम से कम एक बार मक्का भी यात्रा (हज) अवश्य करते हैं। अपनी सरलता तथा आडम्बरहीनता के कारण भी इस्लाम फैलता गया।

पैगम्बर मुहम्मद सामाजिक सुधारक भी थे। उन्होंने विवाह को मर्यादित किया और इसके लिये नियमन बनाये। तलाक को भी नियंत्रित करके उन्होंने सामाजिक जीवन से उच्छृंखलता दूर की। औरतों को मर्यादित जीवन देकर मुहम्मद साहब ने निःसन्देह प्रशंसनीय कार्य किया। औरतो को इज्जत मिली, उन्हें अनेक साम्पत्तिक तथा सामाजिक अधिकार मिले। स्वतन्त्र भ्रमण पर रोक लगाकर मुहम्मद ने औरतों को अनेक दुर्गुणों से बचाया। सामाजिक कलह एवं झगड़ों को दूर तक शान्ति तथा व्यवस्था का राज्य कायम किया। गुलामों और बच्चों के प्रति उन्होंने उदारता का प्रदर्शन करने के लिये आग्रह किया। अनाथों तथा विधवाओं की रक्षा करना मानवता बतलाया। उनके प्रयास के कारण ही अरेबिया का समाज बदल चला, उसका बिखराव समाप्त हुआ और उसमें संगठन आया। जुआ और शराब का, कलह और जलन का युग लद चुका था और अरब प्रदेश में नये समाज के संगठन का सूर्य उदय होने लगा था।

मुहम्मद साहब राजनेता थे, संगठनकर्त्ता थे और महान कूटनीतिज्ञ थे। उन्होंने मूलतः इस्लाम को एक धर्म के रूप में चलाया और बाद में वह राज्य के रूप में परिणत हो गया। उनके ही जीवन काल में धार्मिक इस्लाम राजनीतिक इस्लाम के रूप में परिवर्त्तित तथा विकसित हुआ। मदीना एक नगर राज्य बना और मुहम्मद साहब उसके मजिस्ट्रेट। एक कुशल संगठनकर्त्ता तथा कूटनीतिज्ञ की तरह उन्होंने कबीलों से संधियाँ की और उनका एक संगठन बनाने का प्रयास किया। कभी-कभी तलवार उठाकर लड़ाईयाँ लड़कर भी उन्होंने अपना आधिपत्य, अपना धर्म स्वीकार करने के लिये मक्कावालों या यहूदियों पर दबाव डाला। एक कूटनीतिज्ञ की तरह उन्होंने विदेशी राज्यों से भी सम्बन्ध कायम करने का प्रयास किया और इसके लिये कतिपय राज्यों में शिष्टमंण्डलों को भेजा। उनके प्रयास तथा शक्ति के प्रभाव के कारण ही जाहिलियत अरब के लोग सभ्य बने, एक संगठित जीवन का सुख लूटने लगे और उनमें राजनीतिक जागरण आया। उन्होंने न्यायधीश का भी काम किया और लोगों की समस्याओं का निदान करने लगे। अतः वे एक लड़ाकू तथा न्यायक भी थे।[35] उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र को जन्म दे डाला जैसा किसी ने देखा भी नहीं था, एक ऐसे धर्म की ईजाद कर दी जो अपने विस्तार में ईसाई धर्म और यहूदी धर्म से भी आगे बढ़ गया और एक साम्राज्य के संस्थापन की नींव डाल दी।[36]

---

35. He was an umcrupulous warrior, and a just judge.
—Will Durant, p 17:.

36. Wihin a brief span of mortal life Mohammad called forth out of unpromising material a nation never united before, in a country that was hither to but a geographical expression; established a religion which in vast areas superseded Christianity and Judaism and still claims the adherence of a goodly portion of the human race; and laid the basis of an empire that was soon to embrace within its far-flung boundaries the fairest provinces of the then civilised world.
—P. K. Hittl, pp 121-22.

मुहम्मद साहब की शिक्षाएँ उपयोगिता के निकट थी। यही कारण था कि मरुभूमि में वातावरण की अनुकूलता के कारण उनकी शिक्षाएँ उर्वर सिद्ध हुई। अतः प्रभाव एवं अमिट छाप की दृष्टि से उनकी महानता पर विचार किया जाय तो मुहम्मद साहब इतिहास के महान पात्रों में आँके जा सकते हैं। बर्बर लोगों को आध्यात्मिक तथा नैतिक उच्चता प्रदान कर मुहम्मद साहब ने निश्चित रूप से अपना नाम अमर कर दिया। इस कार्य में अपने पूर्ववर्ती सुधारकों से अधिक सफल हुए। अपने सपनों को वास्तविक रूप में इतिहास का विरला पात्र ही समझने की चेष्टा करता है। पर मुहम्मद ने उन्हें अच्छी तरह समझा था और उन्हें साकार बनाने में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने अपने कार्यों की सफलता के लिये धर्म को ही इसलिये नहीं चुना कि वे खुद एक धार्मिक मनुष्य थे, बल्कि इसलिये कि धर्म ही तत्काल बद्दूओं को अनुप्राणित कर सकता था। उन्होंने उनकी कल्पना को, उनकी आशा को जगाया, कुरेदा और उदबोधन दिया और इस तरह का सम्भाषण दिया जिसे वे आसानी से समझ सकते थे। जब उन्होंने सुधार-आन्दोलन प्रारम्भ किया तब अरेबिया मूर्त्तिपूजों का मरुस्थल था, जब वे मृत्यु को प्राप्त हुए तब वह राष्ट्र बन चुका था। उन्होंने कटरता तथा अंधविश्वास को रोका, पर उसे प्रयोग में लाकर निर्माण का कार्य किया। यहुदी धर्म और ईसाई धर्म तथा अपने प्रदेश के सम्प्रदाय को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस्लाम के रूप में एक सरल धर्म दिया जो स्वच्छ और सुदृढ़ भी था, उन्होंने नैतिकता तथा जातीय गौरव की गाथा गायी जिसके कारण भविष्य में मुसलमानों ने सैकड़ों लड़ाईयाँ जीतीं, एक सदी के अन्दर ही एक विशाल साम्राज्य कायम किया और आज का आधा विश्व भी इस्लाम की शक्ति से अनुप्राणित है।[37]

37. If we judge greatness by influence, he was one of the giants of history. He undertook to raise the spiritual and moral level of a people harassed into barbarism by heat and fondless wastes, and he succeeded more completely than any other reformers, seldom has any man so fully realized his dream. He accomplished his purpose through rreligion not only because he himself was religious but because no other medium could have moved the Arabs of his time; he appealed to their imagination, their fears and hopes, and spoke in terms that they could understand. When he began, Arabia was a desert flotsam of idolatrous tribes; when he died it was nation. He restrained fanaticism and superstition, but he used them. Upon Judaism, Zoroastrianism, and his native creed he built a religion simple and clear and strong, and a morality of ruthless courage and racial pride, which in a generation marched to a hundred victories, in a centcry to empire, and remains to this day a virile force through half the world.

—Will Durant; p 174.

अध्याय 4

कुलफा-ए-राशिदीन
(Age of the Caliphs)

विश्व-इतिहास में इस्लाम का उत्कर्ष और फैलाव एक महत्वपूर्ण घटना है। अरब के रेगिस्तान में इसकी उत्पत्ति हुई तथा अरबों, ईरानियों और तुर्कों ने इसके प्रसार में मुख्य रूप से भाग लिया। मुहम्मद साहब ने उपदेशों तथा तलवार के आधार पर इस धर्म का विस्तार किया था जिससे प्रारम्भ से ही इसका स्वरूप एक सैनिक धर्म की भाँति हो गया। एक सौ वर्ष से भी कम समय में इसका तथा इसके समर्थकों के साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में अतलान्तक समुद्र से पूर्व में सिंध नदी तक और उत्तर में कास्पियन सागर से दक्षिण में नील नदी की घाटी तक हो गया जिसमें स्पेन, पुर्त्तगाल, फ्रान्स का दक्षिणी भाग, उत्तरी अफ्रीका, सम्पूर्ण मिस्र, अरब, सीरिया, मेसोपोतामिया, आर्मीनिया, ईरान, सम्पूर्ण मध्य एशिया, अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान, सिंध आदि सम्मिलित थे। तलवार की शक्ति पर आधारित इस्लाम की शक्ति को इतने थोड़े समय में प्रसार और उसकी विजय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। कुलफा-ए-राशिदीन के समय अभियान, विजय तथा विस्तार के कार्य प्रारम्भ हुए। विभिन्न छोटी-छोटी शक्तियाँ और धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं अपितु बड़ी-बड़ी शक्तियाँ और प्राचीन धर्म भी इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति के आगे झुकते चले गये। यूरोप के ईसाई राज्यों ने इस्लाम की शक्ति को रोकने के लिये विभिन्न प्रयत्न किये और यदि 716 ई० में कुस्तुनतुनिया के निकट थियोडिसस तृतीय ने तथा 732 ई० में टूर्स के युद्ध में चार्ल्स द हेमर (Charles the Hammer) ने इस्लाम की सेनाओं को परास्त करने में सफलता न पायी होती तो सम्भावतया सम्पूर्ण यूरोप इस्लामी सत्ता और धर्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाता। इसके पश्चात भी यूरोप इसके भय से मुक्त न हो सका। ऑटोमन तुर्कों ने एक बार फिर इस्लाम की शक्ति को यूरोप में फैलाया। रोमन साम्राज्य, कुस्तुनतुनिया, बाल्कन प्रदेश और सम्पूर्ण पूर्वी यूरोप इस्लाम की शक्ति के आगे झुक गये और ईसाई राज्यों के संयुक्त प्रयत्न तथा विभिन्न धर्मयुद्ध (Crusades) भी इस्लाम के तूफ़ान के सम्मुख असफल रहे। इसी इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति का मुकाबला भारत को भी करना पड़ा था। प्राय: तीन सौ वर्षों तक भारत ने अपने उत्तर-पश्चिम की सीमाओं पर इसे रोककर रखा, परन्तु अन्त में वह परास्त हो गया। इस्लाम के सैनिकों ने अन्य देशों की तरह भारत में भी प्रवेश किया।

मुहम्मद के निधन के उपरान्त इस्लाम के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता थी और मुहम्मद साहब के अधूरे कार्य को पूरा करना था। कुलफत-ए-राशिदीन के खलीफाओं ने इस अधूरे कार्य को पूरा करने का भार अपने सिर पर लिया।

इस्लाम के अनुयायियों ने नवोदित धर्म की नींव को और भी सुदृढ़ करने का उपाय सोचना प्रारंभ किया। निश्चित रूप से पैगम्बर के अभाव ने इस्लाम के विस्तार-कार्य के आगे प्रश्न चिन्ह-लगा दिया था और इस्लाम को एक धक्का-सा लगा था। इस्लाम के विरोधी भी पथ-प्रदर्शक के चले जाने से निर्भीक होकर सिर उठाने के लिये सुगबुगाने लगे थे। मक्का-मदीना की चहारदीवारी से बाहर इस्लाम को दुनिया बसानी थी और इसके लिये ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो महान कठिनाईयों की उपत्यकाओं से जूझते हुए इस्लाम का प्रसार करे और अरब के बाहर इसे लोकप्रिय बनावे। इस्लाम के लघु पौधे को पल्लवित तथा संवर्द्धित करने का काम बाकी था और इसी काम का भार 'खलीफा' (Caliph) के हाथों सौंपा गया।

खिलाफत क्या है ?

इस्लाम के प्रथम चार खलीफाओं की उपलब्धियों का उल्लेख करने के पूर्व 'खलीफा' तथा खिलाफत को समझना आवश्यक है।

'खिलाफत' (Caliphate) शब्द का अर्थ होता है 'उत्तराधिकार' (Succession)। इसी से खलीफा शब्द की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ होता है उत्तराधिकारी (Successor)। हजरत मुहम्मद के बाद जिस खलीफा की आवश्यकता का अनुभव किया गया और जिसकी नियुक्ति की गयी, इसका अर्थ था कि वह खलीफा (उत्तराधिकारी) मुहम्मद साहब का उत्तराधिकारी या सहायक था और उनके द्वारा प्रारभ किये गये कार्य को उसे पूरा करना था। उक 'हदीस' (Saying of the Prophet) में यह बात उल्लिखित है कि "मुहम्मद साहब ने यह कहा था कि पहले एक पैगम्बर के बाद दूसरा पैगम्बर पैदा होता था, पर अब कोई पैगम्बर पैदा नहीं होंगे बल्कि तुममें से ही कोई 'खलीफा' होगा।" जबतक मुहम्मद साहब जीवित थे उन्होंने उपदेशक का काम किया, विधि-निर्माता का काम किया, राजनेता का काम किया, प्रधान काजी की हैसियत से न्यायाधीश का कार्य किया और सेना का संचालन करके सेनापति का भी काम किया। सचमुच उनकी मृत्यु के बाद ऐसे उत्तराधिकार की आवश्यकता थी जो न केवल नये धर्म का विस्तार कर सके अपितु नये शासन की रूपरेखा को भी ठोस रूप दे सके। यही कारण था कि पैगम्बर के मृत्योपरान्त जितने भी खलीफा हुए उन्हें सारे अधिकारों से अभिहित किया गया। एक खलीफा राज्य का सर्वोच्च शासक, प्रधान काजी, जन-नेता और सेनापति आदि सब कुछ था। वह केवल पैगम्बर नहीं बन सकता था।[38] प्रशासन संबंधी सारे कार्य उसके नाम से किये जाने लगे। उसके नाम से धार्मिक योजनायें निकलने लगीं, सिक्कों पर उसके नाम उत्कीर्ण किये जाने लगे, उसके नाम से खुतबा पढ़ा जाने लगा और वह न्यायाधीश का भी काम करने लगा। खलीफा और खिलाफत की उत्पत्ति इसी सन्दर्भ में हुई।

---

38. The Caliph was the head of the State, supreme judge, leader in public worship, and commander-in chief of the army.

—*S. N. Fisher;* p 45

खिलाफत के साथ खलीफाओं का निर्वाचन होने लगा और इस निर्वाचन में जनतन्त्रवादी पद्धति अपनायी गयी। मुहम्मद अपना उत्तराधिकारी चुन सकते थे, पर उन्होंने स्वयं यह कार्य न करके मुसलमानों पर इसका भार छोड़ दिया। इसका विशेष कारण यह था कि अरबवासी स्वभाव से जनतन्त्रवादी थे और यही कारण था कि अपने जातीय संगठन में कबीले के मुखिया का वे चुनाव करते रहे थे। इतिहासकार निकालसन ने लिखा है कि अरबवासी वंशानुगत शासको के शासन से अपरिचित थे और राजा के अधिकारों को नहीं जानते थे। अतः कबीलों की चुनाव परम्परा को कायम रखते हुए हजरत ने स्वयं अपने उत्तराधिकारी का निर्वाचन नहीं किया।

खलीफा का चुनाव करने के लिए जनतन्त्रीय पद्धति अवश्य अपनायी गयी, पर उसके लिए कुछ विशेष योग्यतायें भी निर्धारित की गयीं। समसामयिक इतिहासकार इब्ने खालदून ने खलीफा की अर्हताओं का इस प्रकार उल्लेख किया है—(क) खलीफा पद के उम्मीदवार कुरैश कबीला के सदस्य हो, (ख) उम्मीदवारों को वयस्क होना आवश्यक है, (ग) वे शारीरिक रोगों एवं मानसिक विक्षिप्तता से मुक्त हो, (घ) वे साहसी, उत्साही और शक्तिशाली हो और शासन की रक्षा करने की क्षमता रखते हों, और (ङ) लोग उनकी वैअत (Homage) स्वीकार कर लिये हों। संक्षेप में, खलीफा वही व्यक्ति हो सकता था जिसमें धार्मिक कार्यों का संपादन करने और इस्लाम द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों का पालन करने तथा करवाने की पूर्ण क्षमता होती थी।

पैगम्बर के बाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण खलीफा ही होते थे जो राज्य के सारे अधिकारों से विभूषित थे। वह अनेक अधिकारों का उपभोग करता था। सिक्कों एवं जुम्मा (शुक्रवार) के खुतबों पर उनके नाम लिखे जाते थे। विशेष त्यौहारों एवं उत्सवों के अवसरों पर हजरत मुहम्मद की चादर (बुरदा) का प्रयोग करने का वही अकेला अधिकारी था। संक्षेप में उसके अधोलिखित कार्य एवं अधिकार बनाये गये : (1) इस्लाम की रक्षा एवं प्रचार करना, (2) जनता धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियों को बनाये रखना, (3) न्याय का काम करना, (4) पैगम्बर द्वारा निर्दिष्ट कार्यों का सम्पादन एवं उसके अनुसार आचरण रखना और रखवाना, (5) कुरानेतर विषयों के लिये 'फतवा' (नियम) बनाना, (6) धर्म एवं राज्य, दोनों का प्रधान होने के कारण धार्मिक तथा राज्य-संबंधी कार्यों का सम्पादन करना, (7) जरुरत होने पर इस्लामी जेहाद का एलान करना, (8) राज्य के विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति करना, (9) लगान तथा अन्य राजकीय करों को प्रजा से वसुल करना, (10) बैत उल-माल (खजाना) का प्रबंध करना, (11) सेना का संचालन करना, (12) गरीबों, अपाहिजों, विधवाओं और शिशुओं की रक्षा करना, आदि। इस प्रकार खलीका राजनैतिक तथा धार्मिक, दोनों दृष्टिकोणों से सर्वप्रधान होता था। अनेक अधिकारों से विभूषित होने का

अर्थ यह नहीं था कि खलीफा निरंकुश शासक था। वंशानुगत शासन की परिपाटी नहीं रहने के कारण निरंकुश होने की गुंजाइश नहीं थी। दूसरे शब्दों में इस्लामी राज्यों में खलीफा का निर्वाचन जनता के हाथ में देकर निरंकुशता की जड़ खोद डाली गयी।

स्पष्ट है कि इस्लाम में पैगम्बर के बाद खलीफा का पद महत्वपूर्ण एवं प्रधान हुआ और उसके आदेशों का पालन करना इस्लामी राज्य के प्रत्येक मुसलमान के लिए आवश्यक माना गया। विशेष जटिल अवसरों पर खलीफा की बुद्धि ही काम आती थी। इस्लाम का संविधान कुरान और हदीस हैं, फिर जिस विषय पर वह मौन हैं, वहाँ खलीफा को फतवा देने का अधिकार था। इस प्रकार इस्लामी खलीफा विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका-संबंधी अधिकारों को भी रखता था। खलीफा पर नियंत्रण भी कायम थे। उसके कार्यों पर सबसे बड़ा नियंत्रण कुरान तथा रसूल के आदेश थे। किसी भी तरह खलीफा उनके आदेश को ठुकरा नहीं सकता था। लेकिन यह स्थिति इस्लाम के उदय के प्रारम्भिक काल अर्थात हजरत अली तक ही कायम रही। उम्मैया वंश के काल में यह खिलाफत बादशाहत के रूप में बदल गयी।

खलीफाओं के काल में इस्लामी राज्य का अत्यधिक विस्तार हुआ। विस्तार वादी नीति के दो कारण थे—आर्थिक कारण और राजनीतिक कारण। अरब सदियों से आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ा था और उसके निवासी असन्तुष्ट तथा अशान्त थे। सीरिया, फारस तथा मिस्र के धनी क्षेत्रों ने मुसलमानों को ठीक उसी प्रकार आकर्षित किया जिस प्रकार जर्मन बर्बरों को रोम-साम्राज्य के उर्वर प्रान्तों ने। किन्तु अबतक मुसलमानों ने आक्रमण इसलिये नहीं किया था क्योंकि उनमें एकता नहीं थी। इसके अतिरिक्त आक्रमण करने के नये मार्गों का भी उन्हें पता नहीं था। इसके अतिरिक्त राज्य-विस्तार के कार्य के माध्यम से इस्लाम का प्रचार करना भी उद्देश्य था। इतिहासकार एच० जी० वेल्स ने लिखा है: "इस्लाम का प्रसार इस कारण भी हुआ क्योंकि यह एक श्रेष्ठ ढंग का सामाजिक और राजनीतिक संगठन बन चुका था। अबतक ऐसा विस्तृत, स्पष्ट और नये ढंग का किसी अन्य संगठन ने राजनीतिक विचार उपस्थित नहीं किया था और इसने अन्य संगठनों से अधिक बेहतर शर्तें मानव समुदाय के लिये रखा था। यही कारण था कि इसका प्रसार अधिक तेजी से हुआ।"

खिलाफत काल में चार प्रसिद्ध खलीफा हुए जिन्होंने इस्लाम का काफी विस्तार किया और इस्लामी राज्य के शासन के लिये समुचित व्यवस्था की। उनके नाम हैं अबू बकर, उमर, उसमान और अली।

अबू बकर (632-34)

ऊपर लिखा जा चुका है कि पैगम्बर मुहम्मद के मरणोपरान्त यह समस्या उठी कि उनका उत्तराधिकारी किसे बनाया जायेगा। वे निःसन्तान मरे थे। अगर

उनका पुत्र भी रहता तो शायद वे जनतन्त्रीय परम्परा का उल्लंघन कर उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं करते। इसलिए सारे मुसलमान खलीफा का निर्वाचन करने के लिए एकत्र हुए। इस समय अरब में प्रमुखतः चार दल थे जिनमें गहरा मतभेद था। वे दल थे मुहाजिर, अंसार, आसब अल नाज वअल तायिन और अली के समर्थक। इन सारे दलों के व्यक्ति खलीफा के पद के लिये अपने-अपने उम्मीदवार खड़ा कर रहे थे। मुहाजिरों का कथन था कि वे मुहम्मद की जाति के हैं और उन्होंने ही सर्वप्रथम इस्लाम को स्वीकार किया है, अतः उनके दल का ही कोई व्यक्ति खलीफा हो सकता है। अन्सार लोगों का दावा था कि उन्होंने मुहम्मद को आश्रय दिया है और इस्लाम की रक्षा की है। अतः उनमें से ही कोई व्यक्ति खलीफा बने। तीसरे, मक्का के आसब थे। उनका दावा था कि मुहम्मद भले ही उनका प्रदेश छोड़ दिये, पर वे मक्का के ही निवासी कहे जायेंगे। मक्का ने इस्लाम को जन्म दिया है, अतः इसके नागरिक ही इसका नेतृत्व भी करेंगे। अन्तिम अली का दल था। मुहम्मद की पुत्री फातिमा की शादी अली से हुई थी। अतः खलीफा का पद अली को ही मिलना चाहिये। इन चार दलों के अतिरिक्त कुरैश भी खलीफा के निर्वाचन में दिलचस्पी ले रहे थे। सूफयान ने इसका संगठन किया था और अपने को खलीफा पद का दावेदार मान रहा था। ऐसी स्थिति में खलीफ़ा का निर्वाचन होना मुश्किल-सा लग रहा था।

निर्वाचन में मुहाजिरों को विजय मिली। इस दल का अबू बकर जो 59 वर्ष का बूढ़ा था और मुहम्मद का श्वसुर था, निर्वाचन में विजयी हुआ। अबू बकर की विजय उचित थी। अपने धार्मिक गुणों एवं सामाजिक सेवा के चलते ही वह खलीफा के पद के लिये चुना गया। हजरत मुहम्मद की अस्वस्थता के समय उसने ही मस्जिद में नमाज पढ़े जाने का कार्य किया था और सारे मुसलमानों के नमाज पढ़े जाने की नेतागिरी की थी। अन्तिम दिन उसी ने मुसलमानों की सभा की अध्यक्षता भी की थी। मुहम्मद की अस्वस्थता पर मुस्लिम बिरादरी की देखभाल करना उसी ने प्रारम्भ किया था। अतः वह मुसलमानों में प्रिय बन गया था और उसने काफी सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली थी। खदीजा, अली वगैरह के साथ उसने भी इस्लाम स्वीकार किया था और दुःख के दिनों में भी वह पैगम्बर का मित्र और सलाहकार बना रहा। वह कुरैश जाति का सफल व्यापारी था और न्याय करने तथा उचित परामर्श देने में पटु था। इन समस्त गुणों के चलते ही अबू बकर को सफलता मिली। समस्त मसलमानों ने भी उसे अपना नेता मान लिया और उसे 'खिलाफत रसूल अल्लाह' कहकर पुकारा। अबू बकर ने भी अपने इस नाम को स्वीकार कर लिया। इसी समय से ही 'खलीफा' पद का आविर्भाव हुआ।

यद्यपि मुहम्मद साहब ने विभिन्न यन्त्रनाओं को सहते हुए अल्प काल में इस्लाम का प्रसार बड़ी तत्परता और लगन से किया था, फिर भी यह संभव न था कि अरब के सारे नागरिक इतनी जल्द इस्लाम को अंगीकार करके मुसलमान बन जाँय। यहीं कारण था कि जैसे ही पैगम्बर की मृत्यु की खबर बिजली की तरह अरब प्रदेशों में फैल गयी, वैसे ही इस्लाम-विरोधी तत्वों का आविर्भाव शीघ्र हो

गया और इस्लाम के विनाश के लिए अनेक दुश्मन उठ खड़े हुए। जिन लोगों ने कुछ ही महीनों पूर्व मूर्ति की पूजा की आदत का त्याग किया था, वे पुनः मूर्तिपूजक बन गये। अनेक लोगों ने 'जकात' देने से इनकार किया। अनेक व्यक्ति अपने को पैगम्बर कहकर लोगों को ठगने लगे। जोसेफ हेल के शब्दों में "अरेबिया पुनः पारस्परिक झगड़ों का केन्द्र बन गया। ऐसा लगने लगा कि मदीना के बाहर पैगम्बर के उपदेशों ने अपना कुछ भी प्रभाव नहीं छोड़ा है।" अतः अबू बकर के सामने भीषण समस्यायें थीं। उसे पैगम्बरी का दावा करनेवालों का अन्त करना था, जकात न देने वालों से पुनः जकात वसूल करना था, विद्रोही सरदारों को नेस्त-नाबूद करना था, और विभिन्न राज्यों को जीतकर इस्लाम का विस्तार करना था। वास्तव में इन सारी समस्याओं पर विजय प्राप्त करके ही विश्व के देशों की विजय की बात सोची जा सकती थी। हिट्टी का यह कथन बिलकुल सत्य है कि "विश्व को जीतने के पूर्व अरब को स्वयं को जीतना था,[2] उसे अपनी समस्यायों पर पहले विजय प्राप्त करनी थी।

इन समस्याओं के निवारण में अबू बकर को उसके सेनापति खालिद इब अल-वालिद को काफी सहायता मिली। उसकी तलवार ने सारी समस्याओं को जड़ से काट दिया

अबू बकर ने सर्वप्रथम मुसेलमा, कज्जाबा और तलहा आदि की ओर ध्यान दिया जो पैगम्बर होने का झूठा दावा कर रहे थे। खालिद इब्न-अल वालिद की तलवार ने इन पैगम्बरों को धूल चटा दी। बड़ी तेजी से उसने ताण्यी, आसद, घटफान और यमाम के बानू हनीफा को परास्त किया। उसने यारमूक की लड़ाई में मुसेलमा को परास्त किया। कहा जाता है कि मुसेलमा के साथ 40,000 सैनिक थे और उसने दो बार वालिद की सेना को पीछे ढकेल दिया था। पर अंत में वालिद की खूनी तलवार ने मुसेलमा के सैनिक को परास्त किया और झूठे पैगम्बर समाप्त हो गये।

अब अबू बकर के सामने दूसरी समस्या जकात वसूली की थी। कुछ लोगों ने वालिद की तलवार से डरकर नमाज पढ़ना स्वीकार कर लिया, पर जकात देना अस्वीकार किया। अबू बकर ने जकात वसूल करने की कमर कस ली। इस्लामी सेना ने ऐसे लोगों को परास्त किया और उनसे न केवल नमाज पढ़वायी गयी प्रत्युत जकात भी वसूल किया गया।

इस्लाम के प्रसार के लिये विद्रोही सरदारों का दमन करना भी आवश्यक था। मुहम्मद की मृत्यु के साथ ही अनेक भूखण्डों के सरदार बागी हो गये थे और बगावत का झण्डा खड़ा कर राज्य में यत्र-तत्र उत्पात मचा रहे थे। इनका

---

2. Arabia had to conquer itself before it could conquer the world.

P. K. Hitti, p 142.

दमन करने के लिए अबू बकर ने इस्लामी सेना के ग्यारह दस्ते बनाये और उन्हें हर दिशा में भेज दिया। प्रत्येक दस्ता के साथ अलग-अलग सेनापति था। बहरांईन, उमान, हजरमूवत और यमन आदि के विद्रोही सरदारों को परास्त कर इन दस्तों ने उन्हें अपने अधीन कर लिया।

इन समस्याओं के दमन में अबू बकर की सेना दस महीनों तक लगी रही। रिद्दा (विद्रोहियों से युद्ध) के ये युद्ध इस्लाम की प्रतिष्ठा को पुनः कायम करने के लिये प्रारम्भ किये गये थे जो कालान्तर में विजय-युद्ध में परिणत हो गये और अन्ततोगत्वा अरब की सीमा से बाहर इस्लाम-प्रसार के लिये लड़े गये युद्ध में परिणत हो गये।[3]

उपर्युक्त विवरण यह स्पष्ट करते हैं कि मुहम्मद के मृत्योपरान्त अरब में फैली विकट अराजक स्थिति का दमन अबू बकर जैसा योग्य व्यक्ति ही कर सकता था। अपने सशक्त व्यक्तित्व का परिचय देकर उसने इस्लाम के विरोधियों तथा विद्रोहियों का दमन किया और सारे अरब में एकता तथा व्यवस्था कायम की। उसने विश्व-विजय का मार्ग भी प्रशस्त किया।

अब अबू बकर ने इस्लामी राज्य के विस्तार के लिए प्रयास करना प्रारम्भ किया। ढ़ाई साल की खिलाफत में उससे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह इस्लामी राज्य का अधिक विस्तार करेगा। सच तो यह है कि इस कार्य के लिये उसे प्रचुर समय भी नहीं मिला। फिर भी अल्प काल में ही उसने कुछ वाह्य देशों पर आक्रमण करके इस्लामी राज्य की सीमा में विस्तार किया।

अरब की सीमा इस समय दो महान राज्यों की सीमा को छूती थी। एक ओर ईराक पर ईरान का अधिकार था और दूसरी ओर शाम (सीरिया) पर रोम का। अबू बकर इन प्रदेशों को जीतने की इच्छा लम्बे दिनों से करता आ रहा था क्योंकि ये दोनों राज्य अरब के इस्लाम के कट्टर शत्रु थे।

सर्वप्रथम अबू बकर की सेना ने ईराक पर आक्रमण किया। ईराक का गवर्नर हुरमूज था जिसे ईरान ने नियुक्त किया था। हुरमूज इस्लाम का कट्टर विरोधी था। यदा-कदा वह अरब की यात्रा किया करता था और वहाँ के निवासियों को इस्लाम के विरुद्ध भड़काया करता था। खालिद की सेना ईराक पर टूट पड़ी। उसके साथ अनेक लड़ाईयाँ लड़ी गयी जिनमें 'जंग सलासल' अधिक प्रसिद्ध है। इस लड़ाई में हुरमूज मारा गया और ईराक पर इस्लामी सेना का कब्जा हो गया।

अब ईरान की बारी थी। ईराक की हार से ईरान की कमर टूट गयी। ईराक की तरह इसने भी अरबों को इस्लाम के खिलाफ उभारना प्रारंभ किया। एक

---

3. Bernard Lewis; p. 62.

अरबी कबीला ने खुलकर इस्लाम का विरोध कर दिया। खालिद ने शीघ्र ही ईरान पर आक्रमण कर दिया। दजला और फरात नामक नदियों के किनारे युद्ध लड़ा गया। खालिद ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँट दिया और विद्रोही कबीला के सदस्यों को घेरकर कुचल डाला। अब सम्पूण ईरान पस्त हो गया और उसके हीरा आदि प्रदेशों पर खालिद का कब्जा हो गया। पर ईरान पर पूर्ण अधिकार खलीफा उमर के ही शासन-काल में संभव हो सका।

इसी समय शाम की सीमा पर भी युद्ध छिड़ गया। खालिद पहले ही शाम की ओर प्रस्थान कर चुका था। बाद में खलीफा ने अपने चार अन्य नायकों को भी सेना के साथ भेजा। 28,000 इस्लामी सनिकों ने अनेक स्थलों पर रोम के सैनिकों का सामना किया। तीन बार दोनों पक्षों की सेनाएँ आपस में जूझ पड़ी। अनेक स्थलों पर रोम के सैनिक परास्त हुए। तदमुर, तमर, अम्बार, अजनादीन आदि पर इस्लामी सेना का घेरा पड़ गया। अभी विजय भी न मिली थी कि खलीफा अबू बकर की मृत्यु हो गयी। विजय का कार्य अधूरा रह गया।

अबू बकर केवल विजेता ही नहीं था, प्रत्युत कुशल शासन प्रबन्धक भी था। अल्पकाल में ही उसने सारी समस्याओं का निवारण कर राज्य के शासन को सुचारू रुप से चलाने के लिये समुचित व्यवस्था की और जन-कल्याण-संबंधी अनेक कार्य भी किया।

हजरत अबू बकर ने अरब को सुव्यवस्थित शासन देने के लिये उसे विभिन्न प्रदेशों में विभक्त किया। प्रत्येक प्रदेश के शासन-संचालन के लिये अलग-अलग गवर्नरों की नियुक्ति की गयी और विभिन्न पदाधिकारी भी बहाल किये गये। प्राय: वैसे ही व्यक्तियों को महत्वपूर्ण पद दिये जाते थे जो मुहम्मद साहब के काल में ऐसे पदों पर नियुक्त थे। खलीफा ने अपने इन पदाधिकारियों पर कठोर नियन्त्रण भी कायम रखा। जो पदाधिकारी गलत कार्य करते थे अथवा शासन कार्य में शिथिलता का प्रदर्शन करते थे, उन्हें कठोर दण्ड भी दिया जाता था। अबू बकर की इस कठोर-नीति ने शासन को स्थायित्व प्रदान किया और शासनाधिकारियों को सतर्क रखा।

अबू बकर ने राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर भी ध्यान दिया। उसके काल में आर्थिक पहलुओं की देखभाल के लिये कोई पृथक विभाग नहीं था। नियम यह था कि जिस समय धन आता था, उसी समय उसे विभागों तथा जनता के बीच वितरित कर दिया जाता था। हजरत अबू बकर इस अर्थ-व्यवस्था में भी परिवर्तन लाना चाहते थे, पर समयाभाव के कारण वे इसमें विशेष परिवर्तन न ला सके। हाँ, जाते-जाते उन्होंने एक बेत-उल-माल (खजाना) का संस्थापन कर दिया जिसका लाभ द्वितीय खलीफा उमर ने ऊठाया।

खलीफ़ा ने सेना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं लाया, पर सेनापति का एक नया पद बनाया गया। सेना में एक परिवर्तन और आया और वह था युद्ध के लिये जाते समय सेना को विभिन्न दस्तों में बाँटना। राज्य की आय का कुछ भाग अब हथियारों की खरीद-बिक्री के लिये खर्च किये जाने लगे। खलीफा ने सैनिकों के जत्थों को रखने के लिये कुछ छावनियाँ भी बनवायी। इन छावनियों का वह स्वयं निरीक्षण किया करता था।

कर के संबंध में अबू बकर ने कुछ नये सिद्धान्तो का अनुशीलन किया। उन्होंने कर की वसूली में उदारता का प्रदर्शन किया। जजिया की दर इस तरह कम थी कि लोग आसानी से दे सकें। अगर इस कम दर की रकम भी कोई देने में असमर्थ था तो राज्य उसे छोड़ भी देता था। जो जिम्मी (Dhimmis) शारीरिक दृष्टिकोण से लाचार थे उन्हें भी कर देने से मुक्ति मिल गयी थी।

कथित संदर्भ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हजरत अबू बकर इस्लामी राज्य के संयोजन में बहुत सहयोग दिये। उन्होंने प्रशासन का ऐसा ढाँचा तैयार किया और अपने काल में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जिसने मुस्लिम राज्य के प्रसार और इस्लाम की लोकप्रियता की वृद्धि में अधिकाधिक सहायता दी। बर्नार्ड लेविस का यह कथन बिलकुल सत्य है कि "हजरत अबू बकर न केवल मुस्लिम सम्प्रदाय के अध्यक्ष थे प्रत्युत धर्म के भी नेता थे। उन्हें कार्यपालिका और सेना-संबंधी सभी अधिकार प्राप्त थे और उन अधिकारों का कार्यान्वयन कर उन्होंने इस्लामी राज्य की सीमा में वृद्धि और उसका संगठन किया।"

खुलफा-ए-राशिदीन के चार कट्टर खलीफाओं में हजरत अबू बकर पहला खलीफा थे जिन्होंने पैगम्बर के जीवन-अवसान के उपरान्त तलवार के बल पर इस्लाम की जड़ मजबूत की और उसका प्रसार किया। एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में कुरान लेकर अरब के मुसलमानों ने इस्लाम के विस्तार में अबू बकर का साथ दिया। खलीफा संकट की घड़ियों में घबड़ाने वाला व्यक्ति नहीं था। खुदाबक्स के शब्दों में "अबू में सदैव धार्मिक उत्साह बना रहता था और धर्म के नाम पर वह सबकुछ अर्पण करने के लिए तैयार रहता था। संकट की घड़ियों में वह स्थिर रहता था और उसपर बुद्धिमानी और दृढ़ता से विचार करता था।" उसने इस्लाम को, जो मूलतः एक धर्म था, एक राज्य के रूप में परिणत करने का श्रेय प्राप्त किया।

हजरत अबू का जीवन भी सरल और सादगीपूर्ण था। नवोदित इस्लाम के विकास के लिये वे दिन-रात कार्य करते थे। जन-कल्याण की भावना उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। रात्रि में राज्य का भ्रमण करना और लोगों के कष्टों की जानकारी प्राप्त करना उनके जीवन-कार्यों का एक प्रधान काम था। खलीफा बनने के पश्चात भी उन्होंने राज्य की आय का खर्च अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिये नहीं किया। उन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। खलीफा बनकर भी वे गलती करने पर लोगों से परामर्श लेने के लिए सदैव तैयार रहते थे। वे अपने

को किसी से भी श्रेष्ठ नहीं मानते थे । वे सभी लोगों के परामर्शों और सहायताओं को लेने के लिये तैयार रहते थे । वे कहा करते थे कि "अगर मैं ईश्वर और पैगम्बर की आज्ञाओं को मानता हूँ तब तुम भी (मुसलमान भी) मेरी आज्ञाओं को मानो, अगर मैं उनके नियमों को ठुकराता हूँ, तो मुझे तुम्हें आज्ञाकारी बनाने का कोई हक नहीं है ।"[4] उनकी मृत्यु पर अरब ने एक उपदेशक एवं नेता खो दिया ।

उमर (634-44)

हजरत अबू बकर की मृत्यु (23 अगस्त, 634 ई०) के बाद हजरत उमर इस्लामी राज्य के दूसरे खलीफा हुए । उमर का काल इस्लाम के विकास का काल था । प्रथम खलीफा के काल से ही राज्य-प्रसार का कार्य प्रारम्भ हो गया था । उमर को उसे पूर्णता प्रदान करनी थी । इस समय तक अरब में एकता और व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी और इस्लाम के विरोधियों का सफाया हो चुका था । अतः उमर के सामने केवल दो ही कार्य थे—राज्य का विस्तार करना और शासन का समुचित प्रबंध करना ।

वास्तव में हजरत उमर के काल में ही राज्य-विस्तार के लिये प्रमुख विजय-अभियान प्रारम्भ किये गये । इन अभियानों के चलते त्वरित गति से इस्लामी राज्य ईरान, हम्स, दमिश्क, आर्मीनिया, शाम, फिलस्तीन आदि तक फैल गया और इस्लाम केवल अरब का धर्म न रहकर अन्य देशों का भी धर्म बनने लगा ।

हजरत उमर ने सर्वप्रथम ईराक की ओर ध्यान दिया । अबू उबेदा के नायकत्व में खलीफा ने ईरान के विरुद्ध सेना भेजी । ईरान के शासक ने जिसका ईराक पर अधिकार कायम था, वीर रूस्तम को इस्लामी सेना का सामना करने के लिये सेना के साथ भेजा । रूस्तम की सहायता के लिये अन्य दो सेनानायकों, नरसी और जाबान को दो विभिन्न भागों की ओर से भेजा गया । लेकिन अबू-एबेदा की फौज ने इन दोनों सेनानायकों को परास्त किया । परिणामस्वरूप सेना-मन्त्री रुस्तम ने मरबान शाह के 4,000 सैनिकों ने इस्लामी सेना को इस बार परास्त कर दिया । हुजरत उमर को जब अपनी हार की सूचना मिली तब वह तिलमिला उठा । पर उसने हिम्मत नहीं हारी । उसने शीघ्र ही एक सुगठित सेना भेजकर हीरा के युद्ध में ईरानियों को परास्त किया । अब विजय प्राप्त कर

---

4. As I obey God and His Prophet, obey me; if I neglect the laws of God and the Prophet, I have no more right to your obedience.

—*Quoted by Ameer Ali*, p 22.

सारी मुसलमानी फौज इराक में घुस गयी, लेकिन ईरान की जनता में पुनः उत्साह का संचार हुआ। जिन क्षेत्रों पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया था उन क्षेत्रों की जनता ने विद्रोह कर दिया और वे सारे क्षेत्र मुस्लिम अधिकार से बाहर निकल गये। हजरत उमर ने पुनः कमर कसी। उन्होंने इस बार पुनः सेना का संगठन किया और साद-बिन इबी बक्कास को सेनापति बनाकर पुनः 20,000 सैनिकों का ईराक भेजा। ईरान की ओर से इस बार रूस्तम स्वयं लड़ा। कादसिया नामक स्थल पर कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। अन्त में इस्लामी सेना को विजय मिली। उत्साहित होकर सेना ने कादसिया से आगे की ओर प्रस्थान किया और बाबूल, कोसी, बहराशेर और मदायन पर अधिकार कर लिया।

अपनी इस पराजय से ईरान के लोग अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनके शासक ने इस्लामी सेना के विरुद्ध पुनः एक सेना भेजी। इस समय तक इस्लामी सेना ईरान की राजधानी स्टेफेन में प्रवेश कर चुकी थी और जून 637 ई० तक इस शहर को लूट लिया गया था। इतिहासकारों का अनुमान है कि लूट में करीब नौ अरब दरहम इस्लामी सैनिकों के हाथ लगे। 641 ई० तक निनवे के निकट स्थित मावशील पर अधिकार कर लिया गया। ईरानी सेना के पहुँचते ही नहावन्द में पुनः जमकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में साद का भतीजा नायक था जिसके अदभूत करतब एवं कुशल नायकत्व ने इस्लामी सैनिकों को विजयी बनाया। इस विजय के बाद खलीफा की फौज ने बसरा तथा कूफा की ओर से सुजिस्तान पर आक्रमण किया और इस पर पूर्ण अधिकार (640 ई०) कर लिया। इसी प्रकार ईरान की खाड़ी से पूरब स्थित पार्स प्रवेश पर बहराइन की ओर से आक्रमण किया गया। पार्स पर भी कब्जा कर लिया गया। 643 ई० तक खुरासान, मुकरान और ऑक्कस पर भी अधिकार कर लिया गया। अब ईरानी शासन का पूर्णतः अन्त हो गया।

शाम (सीरिया) के कुछ विभिन्न छोटे-छोटे भूभागों पर हजरत अबू बकर के काल में ही अधिकार कर लिया गया था। खलीफा बनते ही उमर ने इस पर पुनः आक्रमण कर दिया। इसका सेनापति खालिद बड़े नाटकीय अन्दाज से दमिश्क के निकट पहुँच गया। रोम की सेना से अनेक युद्ध हुए और परिणामस्वरूप अरदन और हुम्स की भी विजय हुई। इस विजय के बाद अब क्रमिक रूप से आक्रमण किये जाने लगे। बसरा, फिहल आदि पर जनवरी, 635 ई० तक अधिकार कर लिया गया। अब दमिश्क पर आक्रमण करने का मार्ग खुल गया। सितम्बर तक दमिश्क ने भी खालिद के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। दमिश्क को नये इस्लामी राज्य की राजधानी बना दी गयी। एक के बाद एक बालाबक्क, हिम्स, हमा आदि इस्लामी फौज के नायक की तलवार के आगे झुकते गये।

इस पराजय से रोम का शासक कैसर थियोडोर अत्यन्त उत्तेजित हुआ और खालिद को परास्त करने के लिये दो लाख सैनिको को भेजा। यारमूक की लड़ाई

में कैसर बुरी तरह परास्त हो गया[5] और इस पराजय ने शाम, अथवा सीरिया के भाग्य का फैसला कर दिया। यारमुक में रोम के हार जाने पर मुस्लिम सेना ने केसरीन, अन्तोकिया, कोरस आदि छोटे-छोटे स्थानों पर कब्जा जमा लिया। सीरिया के हाथ से निकल जाने पर रोम के शासक ने दुख भरी आवाज में यह अभिव्यक्त की : "ऐ सीरिया ! तुझे मेरी अन्तिम विदाई है। कितना सुन्दर शहर शत्रुओं के हाथ लगा है।" अबू-उबेदा सीरिया का गवर्नर नियुक्त किया गया। सीरिया की जनता भी इस्लामी शासन को पसन्द करती थी।[6] आगे चलकर अलेप्पो और जेरूसलेम भी इस्लामी झण्डे के नीचे आ गये। जेरुसलेम के पतनोपरान्त हजरत उमर विजयोत्सव मनाने के लिये जाबिया की सैनिक छावनी में पहुँचे। उत्सव की परिसमाप्ति पर सीरिया के शासन के लिये समुचित व्यवस्था की गयी। सीरिया को चार सैनिक जिलों में बाँट दिया गया जिनके नाम थे दमिश्क, हम्स, जोर्डन और फिलस्तीन। उम्मैया-शासन काल में यजिद प्रथम ने इन जिलों में एक और कासरीन का जिला जोड़ दिया।

फिलस्तीन के विजयोपरान्त खलीफा के सेनापति उमरो-बिजन-आस ने 63 ई० में बेतुल मुकद्दस का घेरा डाल दिया। पर युद्ध की घड़ी टल गयी क्योंकि वहाँ के ईसाइयों ने सन्धि कर ली।

अब मिस्र पर अभियान करने की बारी आयी। जिन दिनों मुस्लिम सेना की एक टुकड़ी साद के नेतृत्व में पूरबी प्रदेशों की विजय कर रही थी, उन्हीं दिनों उमरो-बिजन-आस के नेतृत्व में दूसरी टुकड़ी पश्चिम दिशा के प्रदेशों से युद्ध कर रही थी। उमरो मिस्र तथा उत्तरी अफ्रीका के भू-प्रदेशों पर कब्जा करना चाहता था। 15 जनवरी 640 ई० को उमरो ने पूरबी मिस्र के प्रवेश-द्वार फरमा पर आक्रमण कर दिया और आसानी से इस पर कब्जा जमा लिया। इसके बाद उसने बिलजेज पर आक्रमण कर उसपर भी अधिकार कर लिया। अब मुस्लिम सेना पुनः आगे बढ़ी और बेबीलोनिया पर कब्जा कर लिया। इन आक्रमणों एवं सफलताओं के फलस्वरूप बिजेन्ताइन सेना बुरी तरह बिखर गई। बेबिलोन का शासक थियाडोरस भागकर सिकन्दरिया पहुँच गया और वहाँ का शासक साइटस बेबिलोन में कैद कर लिया गया। उमरो ने अब बेबिलोन के शासक के समक्ष तीन प्रस्ताव रखे—वह मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर ले अथवा ईस्लामी राज्य को वार्षिक कर देने का वादा करे अथवा युद्ध के लिये पुनः तलवार उठावे। विवश होकर इस्लामी राज्य की संप्रभुता स्वीकार करके साइटस ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया और इसकी सूचना सिकन्दरिया जाकर थियोडोरस को दे दी। अब समस्त मिस्र पर इस्लामी झण्डा लहराने लगा।

---

5. *H. R. P. Dickson; The Arab of the Desert*, p 258.

6. *P. K. Hitti*, p 84.

उमर ने तलवार के बल पर एक विशाल इस्लामी राज्य की स्थापना कर डाली और 'इस्लामी राज्य का द्वितीय संस्थापक' कहलाने का श्रेय प्राप्त किया। इतना विशाल राज्य स्थापित हो जाने के उपरान्त सबसे बड़ी समस्या उसके सफल एवं सुव्यवस्थित शासन-प्रबन्ध की थी। हजरत उमर ने जिस अटूट उत्साह से राज्य का विस्तार किया था, उसी कुशलता से उसने शासन का संगठन भी किया। उसने एक ऐसे संविधान या शासन का संगठन किया जिसका अनुसरण पश्चात-कालीन खलीफाओं ने भी किया।

हजरत उमर ने शासन-सम्बन्ध के लिये मुख्यत: तीन नीति अपनायी :—(1) उसने अरब में केवल इस्लाम के अनुयायियों को ही जगह दी। उसका दृष्टिकोण था कि अरब एक पवित्र देश है जहाँ गैर-इस्लामी जातियों एवं लोगों को रहने का कोई अधिकार नहीं है। अत: उसने ऐसे नागरिकों को देश से निकाल दिया जो इस्लाम के समर्थक नहीं थे। (2) उसकी शासन-नीति का दूसरा उद्देश्य यह था कि सम्पूर्ण अरब के लोगों को एक सैनिक रूप के धार्मिक राज्य में संगठित कर दिया जाय और इस्लाम के अनुयायी मुसलमान अन्य लोगों से पृथक रहें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने अरब के मुसलमानों को यह आज्ञा दी कि वे गैर-अरबी राज्यों में अपनी जमीन्दारी कायम करें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये विजित देशों की जमीन अपहृत न कर वहाँ के निवासियों के पास ही रहने दी गयी। इसके पीछे यह ध्येय था कि अरब विदेशों में निवास करते और जिन्दगी गुजारते हुए अपनी कौमियत (राष्ट्रीयता) को न खो दें और दूसरी ओर उसने अपने शासन का आधार कृषि-वर्ग के लोगों को बनाया। (3) शासन की तीसरी-नीति यह थी कि केवल चल-सम्पत्ति और युद्ध-बन्दी ही माले-गनीमत में शामिल होंगे और उसमें भूमि सम्मिलित न की जायेगी। इन्हीं तीन नीतियों को आधार बनाकर हजरत उमर ने इस्लामी राज्य के शासन का संगठन किया।

खलीफा को शासन-कार्य में सहायता देने के लिये एक परिषद् का संगठन किया गया जिसका नाम था 'मजलिसे शुरा'। इस परिषद् का काम राष्ट्रीय समस्याओं पर खलीफा को सलाह भी देना था। इसकी सभा 'मसजिदे-नवब्बी' (मुहम्मद साहब की मस्जिद) में होती थी। जो भी मसले इस परिषद् में आते थे उन पर निर्णय देने के लिये सदस्यों का विचार लिया जाता था और बहुमत के आधार पर निर्णय होता था। मजलिसे शुरा को स्थापित कर हजरत उमर ने शासन में जनतन्त्र को कायम रखा। सदस्यों को वाचन-स्वतन्त्रता प्राप्त थी। खलीफा उनके विचार-स्वतन्त्र्य पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं रखता था।

शासन की सुविधा के लिये सम्पूर्ण इस्लामी राज्य का आठ सूबों और अनेक जिलों में विभक्त किया गया। इन सारे सूबों तथा जिलों में गवर्नरों तथा अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति की गयी अफ्रीका में तीन गवर्नर और ईराक तथा शाम में दो गवर्नर शासन का कार्य करने लगे। अपने कार्यों के लिये ये सारे पदाधिकारी खलीफा के प्रति उत्तरदायी थे। शासन के इन पदाधिकारियों की नियुक्ति

एक परिषद् करती थी जिसका नाम 'शूरा' था । नियुक्ति करते समय परिषद सावधानी बरतती थी और योग्य व्यक्तियों को ही शासन के पदों पर नियुक्त करती थी । पदाधिकारियों के क्रियाकलापों पर खलीफा कठोर नियन्त्रण एवं कड़ी नजर रखता था । एक बार किसी गवर्नर की गलती के कारण खलीफा ने उसे सौ कोड़े लगवाये । इसी प्रकार जब मुघरा (बसरा का गवर्नर) महत्वाकांक्षी बनकर अपनी अहमियत कायम करने का प्रयास किया तब खलीफा ने उसे पदच्युत कर दिया । बाद में जब मुघरा ने ईमानदार रहने का विश्वास दिलाया तब उसे पुनः गवर्नर के पद पर नियुक्त कर लिया गया । उमर के काल के बाद भी मुघरा अनेक वर्षों तक गवर्नर के पद पर रहकर शासन का कार्य करता रहा ।

खलीफा उमर इस्लामी राज्य की आर्थिक व्यवस्था के लिये भी कदम उठाया । हजरत अब बकर ने समयाभाव के कारण आर्थिक दृष्टिकोण से राज्य में व्यवस्था नहीं लायी थी । उसने केवल एक बैत-उल-माल का निर्माण किया था जिसका प्रयोग हजरत उमर ने किया । उमर ने अपने काल में अनेक बैत-उल-माल बनवाये । इन सभी बैत-ऊल-मालों का प्रधान कार्यालय मदीना का बैत-ऊल-माल था । सुबों से प्राप्त सम्पत्ति मदीना के ही बैत-उल-माल में जमा की जाती थी । राजकीय आय के प्रमुखतः तीन साधन थे—जकात, खिराज और जजिया । आय-व्यय का हिसाब रखने के लिए पृथक विभाग खोला गया जिसका नाम था "दीवान" ।

इस काल में कृषि-संबंधी सुधार भी लाये गये । शासन की दूसरी नीति के अनुसार खलीफा ने अपने विजित प्रदेशों की भूमि वहाँ के निवासियों के पास ही रहने दिया, पर उनकी कृषि की प्रगति के लिए विभिन्न प्रकार की राजकीय सहायतायें दी गयी । ईराक तथा ईरान की भूमि की पुनः पैमाईश करायी गयी और उन पर उचित कर लगाया गया । अनाज पर चुंगी कम ही दर पर निश्चित की गयी । बाबूल में खेती की उर्बरा शक्ति की बृद्धि के लिये अनेक नहरों का निर्माण किया गया । इन सारी नहरों में 'अमीर-उल-मोमनीन' नामक नहर सर्वोत्तम और सर्वाधिक प्रसिद्ध थी ।

हजरत उमर ने सेना के क्षेत्र में भी सुधार लाया । अभी तक इस्लामी राज्य में किसी प्रकार की स्थायी सेना नहीं थी । युद्ध के समय जब सैनिकों की आवश्यकता पड़ती थी तब सारे मुसलमान एकत्र होकर युद्ध-भूमि की ओर रवाना हो जाते थे । खलीफा उमर ने अब स्थायी सेना का प्रबन्ध किया और सैकड़ों सैनिकों को नियुक्त किया । यह पहला खलीफा था जिसने स्थायी सेना की आवश्य-कता का अनुभव किया । सेना का संगठन कबाएली दस्तों (Triblas Regiments) में किया गया । सारी सेना का प्रधान सेनाध्यक्ष खलीफा होता था । वहीं सेनापति की नियुक्ति करता था । सेना के छोटे-छोटे पदों पर भी उसने खुद लोगों को नियुक्त करना प्रारंभ किया । सेना के दो भाग थे—पैदल और घुड़सवार । युद्ध में इन दोनों भागों की सेना से काम लिया जाता था । उमर ने अपने विजित प्रदेशों में भी सैनिकों को रखा और सैनिकों के लिए वहाँ छावनियों का

निर्माण किया। ईराक, बसरा, कूफा, मिस्र, अफ्रीका आदि में ऐसी अनेक छावनियाँ बनायी गयी। सैनिकों का वेतन निश्चित किया गया और इसका भुगतान राज्य की ओर से किया जाने लगा। सैनिकों को सजा देने के भी कानून बनाये गये। युद्ध में कायरता प्रदर्शित करनेवाले सैनिकों को सजा भुगतनी पड़ती थी। मदीना एवं मक्का में भवनों का निर्माण किया गया जहाँ अवकाश-प्राप्त सैनिक रखे जाने लगे।

उमर के काल में न्याय के क्षेत्र में भी व्यवस्था लायी गयी। राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीपति 'काजी' कहलाता था जिसकी नियुक्ति खलीफा ही करता था। उमर ने ही सर्वप्रथम काजी का वेतन निश्चित किया और उसे गवर्नरों के प्रभाव से मुक्त किया। न्याय इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार किया जाता था।

उमर ने अनेक शहरों का निर्माण कर अरब के सांस्कृतिक केन्द्रों में वृद्धि लायी। निचले ईराक में बसरा, मध्य ईराक में कूफा, सीरिया में जाबिया, फिलस्तीन में रामला और मिस्र में फुस्तात (काहिरा) नामक शहरों का निर्माण किया गया। इन शहरों के शासन संचालन के लिये गवर्नरों की नियुक्ति की गयी जो शासन करने के साथ-साथ करों की वसूली और शान्ति-संस्थापन का भी कार्य करते थे।

हजरत उमर ने चालु सम्पत्ति और बिन्दियों का जो युद्ध से प्राप्त किये गये थे, सैनिकों के बीच वितरण करने की परिपाटी चलायी। इस कार्य के लिये उन्होंने एक सार्वजनिक बैंक का निर्माण किया और यह बैंक सैनिकों के बीच इस सम्पति का वितरण करने लगा। हाँ, इसका कुछ भाग अन्य मुसलमानों के बीच भी बाँटा गया। आयशा को 12, 000 दरहम, पैगम्बर के साथियों को 5, 000 दरहम और निम्न तबके के शिशुओं को 200 दरहम दिये गये।

खलीफा उमर अपने सार्वजनिक कल्याणकारी कार्यों के लिये भी प्रसिद्ध है। अनजाने में ही उसने विभिन्न भवनों, मस्जिदों आदि का निर्माण करके कला का विकास किया। उसने संगमरमर तथा पत्थर को जोड़कर भी कुछ ईमारतों का निर्माण किया। उसने मस्जिदों, सड़कों, सरायों, मिलों और पुलों आदि का निर्माण किया। उसके ही काल में 'हिजरी सन्' का आरम्भ हुआ। इसी काल में सबसे पहले कारागार बने। खलीफा ने यह भी नियम बनाया कि जो व्यक्ति किसी मरुक्षेत्र को आबाद करेगा वही उस भूमि का स्वामी होगा। 644 ई० में हजरत उमर की हत्या कर दी गयी।

हजरत उमर की खलीफा पद पर नियुक्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। पौध के रूप में अबू बकर ने जिस इस्लाम को विकसित किया था, उमर ने उसे एक वृक्ष के रूप में विकसित किया। ऊपर लिखा गया है कि इस्लाम के विकास के लिये अधिकांशतः प्रधान लड़ाईयाँ उमर के काल में ही लड़ी गयीं। उमर ने केवल विशाल साम्राज्य की ही नींव डाली प्रत्युत कुशल शासन का प्रबंध भी किया। इसके काल में शासन में कुछ नये तत्व भी शामिल किये गये। उसने शासन में

दीवान के पद का ईजाद किया था और प्रान्तों के लिये खास-खास नियमों को लागू किया था।

उसकी मृत्यु से वास्तव में इस्लाम को महान क्षति हुई। वे कठोर एवं न्यायी शासक थे। उनमें काफी दूरदर्शिता थी और उनके चरित्र में अनेक गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। असभ्य अरबों का वास्तविक नेतृत्व करने की क्षमता उन्हीं में थी। उन्होंने लौह हाथों से शासन में सुव्यवस्था कायम रखी और असभ्य लोगों के अनैतिक आचरणों का दमन किया। वास्तव में वे खिलाफत युग के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक शक्तिशाली शासक थे।[7]

उसमान (644-656)

हजरत उमर की हत्या के उपरान्त उसमान तीसरा खलीफा बना। यह उमैय्या वंश के अफ्फान का पुत्र था। हाशिम वंश से, जो मुहम्मद साहब का परिवार था, उमैय्या वंश वालों का झगड़ा इस काल में प्रारम्भ हुआ। मुहम्मद के उत्कर्ष के दिनों में उमैय्या वंश के सदस्यों ने उनका विरोध किया था। मक्का के पतन के बाद ही उन्होंने इस्लाम स्वीकार किया था। खलीफा बनते ही उसमान जल्द ही अपने परिवार के प्रभाव में आ गया और शासन के अनेक पदों पर उमैय्या को नियुक्त करने लगा। हालाँकि हजरत अली की सहायता से ही वह खलीफा बन सका था; फिर भी उसने अली की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अन्ततोगत्वा उसका निर्वाचन इस्लाम की बर्बादी का कारण था। उसने मरवान को अपना सेक्रेटरी बनाया और उसके निर्देशन में शासन करने लगा। मरवान कट्टर उमैय्या था और एक बार उसे विश्वास भंग करने के कारण पैगम्बर मुहम्मद ने इस्लाम से बाहर निकाल भी दिया था।

हाशिम और उमैय्या परिवारों के पारस्परिक विरोध एवं मतभेद के बावजूद खलीफा उसमान ने राज्य-विस्तार की ओर ध्यान दिया। उमर के काल तक इस्लाम का विस्तार अन्य देशों में भी हो गया था और उसमान के मार्ग की सारी कठिनाईयाँ दूर हो गयी थीं। इसलिए हजरत उसमान को राज्य-विस्तार के कार्य में कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा।

---

7. The death of Omar was a real calamity to Islam. Stern but just, far-sighted, thoroughly versed in character of big people, he was especially fitted for the leadership of the unruly Arabs. He had held the halm with a strong hand, and severely repressed the natural tendency to demoralisation among nomadic tribes and semi-civilised people when coming in contact with the luxury and vices of cities......——Such was the greatest and most powerful ruler of the time.

——*Ameer Ali*. pp 43-44.

उसमान ने सेना का संगठन कर ट्रिपोली तराबलस की विजय करने के लिये भेजी। युद्ध कई दिनों तक चलता रहा। मुस्लिम सेना अनेक दस्तों में विभक्त थी जो शीघ्र ही सारे देश में फैल गयी। अन्ततोगत्वा तराबलस को झुकना पड़ा और उसके शासक को 25 लाख दीनार देकर उसमान से सन्धि कर लेने को बाध्य होना पड़ा।

अफ्रीकिया की विजय करने के लिये उसमान ने अब्दुल्ला बिन-जुबेर को भेजा। आधुनिक अलजजायर और मराक्श के क्षेत्र उस काल में अफ्रीकिया कहे जाते थे। बड़ी आसानी से इस देश पर भी 648 ई० में इस्लाम का झण्डा लहराने लगा।

स्पेन पर आक्रमण करने के लिए हजरत उसमान ने 649 ई० में आदेश दिया। लेकिन इसके कुछ ही प्रदेशों पर कब्जा होने के बाद खलीफा ने अभियान कार्य रोक दिया।

अब कबरस प्रदेश (साइप्रस) पर आक्रमण करने की योजना बनायी गयी। 650 ई० में उसमान की फौज ने इस प्रदेश पर आक्रमण कर दिया और उसकी फौज को परास्त किया। अन्त में दोनों के बीच एक राजनीतिक संधि भी हुई जिसके अनुसार ये शर्तें कायम हुई :—(1) कबरस सात हजार दीनार खिराज के रूप में मुस्लिम राज्य को देगा और (2) मुस्लिम शासक उसकी सतत् रक्षा करते रहेंगे।

652 ई० में उसमान की फौज ने पुनः अभियान कार्य आरंभ किया और जारजान, खुरासान तथा तबरिस्तान को जीत लिया। इनके अतिरिक्त ट्यूनिसिया, नूबिया, एशियामानर, लीबिया, फार्स, बल्ख, काबुल, गजना आदि पर भी आक्रमण किये गये। इस काल में सम्पूर्ण ईरान, अजरबैजान और अर्मेनिया के कुछ हिस्सों को जीत लिया गया।

शासन-प्रबन्ध के दृष्टिकोण से उसमान का काल महत्वपूर्ण नहीं है। सच तो यह है कि उसमान ने इस्लाम को एक नये रूप में उपस्थित कर उसे अपने लोगों के सम्पर्क में अधिक रखा। उसने अपने वंश एवं खून के लोगों को शासन में अधिकाधिक स्थान दिया। उसने अपने भाई अब्दुल्ला को मिस्र का गवर्नर नियुक्त किया। उसका एक दूसरा भाई अल वालिद इब्न-उकबा कूफा का गवर्नर बनाया गया। स्वयं हजरत उसमान का चरित्र भी उत्तम नहीं था। वह अपने गवर्नरों तथा समर्थकों से उपहार (नजराना) लिया करता था और व्यक्तिगत जीवन में उनका उपयोग किया करता था। बसरा के गवर्नर ने उसे नजराने के रूप में एक रूपवती कुमारी कन्या दी थी।

शनैः-शनैः उसमान की लोकप्रियता घटने लगी और उसका स्वार्थी चरित्र प्रगट होने लगा। कुरैश के तीन उम्मीदवार अली, तलहा और जुबैर उसका विरोध कर स्वयं खलीफा बनने का प्रयास करने लगे। मिस्र, कूफा, मदीना वगैरह में

उसमान के विरूद्ध बगावत होने लगी । अबू बकर के पुत्र मुहम्मद ने भी जो उसमान का विश्वासी मित्र था, विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया । मिस्र के विद्रोहियों ने मदीना आकर उसमान का खास महल घेर लिया । 656 ई० का यह घेरा इतना जबरदस्त था कि उसमान उसे तोड़ने में असमर्थ हो गया । विद्रोहियों ने राजभवन को ध्वस्त कर दिया और हजरत उसमान की हत्या कर डाली । उसमान पर आक्रमण करने वाला पहला व्यक्ति अबू बकर का पुत्र ही था जिसने मित्र बनकर भी जुलियस सीजर के मित्र ब्रूटस की भूमिका निभायी । उसमान के मरणोपरान्त करीब एक सप्ताह तक इस्लामी राज्य में अराजकता फैली रही । तत्काल अली को जो मुहम्मद साहब के दामाद थे, खलीफा चुन लिया गया जिसने शीघ्र ही शान्ति कायम कर दी ।

अली (656-661)

हजरत उसमान की दुखद मृत्यु के उपरान्त 23 जन, 656 ई० में अली निर्विरोध खलीफा चुन लिये गये । सीरिया को छोड़कर जिसका गवर्नर उमैय्या वंश का मुआविया था, समस्त मुस्लिम अरब के लोगों ने उन्हें अपना नेता स्वीकार कर लिया । सर्वसम्पति प्राप्त करने का कारण यह था कि हजरत अली एक सैनिक के रूप में अनेक लड़ाईयों में भाग लेकर अरबों का हृदय जीत लिये थे । अरबवासियों ने यह अनुभव किया था कि अली इस्लाम के रक्षक एवं उसके प्रसा के इच्छुक हैं । उन्हें शासन कला का भी अनुभव था और उसमान को भी अनेक प्रकार का परामर्श दिया करते थे । उसमानकालीन शासन व्यवस्था के निर्माण में अली का भी हाथ था । अली का व्यक्तिगत जीवन भी सरल तथा सीधा-साधा था । वे योग्य शासक के पक्ष में खलीफा का पद भी त्याग देने के लिये तैयार थे । ऐसी थी इस खलीफा की महानता तथा त्याग की भावना ।

पर यह सोचना गलत होगा कि इस पवित्र हृदय वाले खलीफा के समय कोई समस्या नहीं थी और उसके कोई शत्रु नहीं थे । यह सोच लेना कि इस दिव्य एवं पवित्र खलीफा के समक्ष सभी झुक गये, अक्षरशः सत्य नहीं है ।[8] हालांकि मुस्लिम प्रान्तों के गवर्नरों ने अली की संप्रभुता स्वीकार कर ली थी, पर अभी भी सीरिया का गवर्नर मुआविया, जो उमैय्या खून का था, अली को खलीफा नहीं मान रहा था । दमिश्क को राजधानी बनाकर मुआविया हजरत अली से लड़ने की तैयारी कर रहा था । अन्य गवर्नर भी धीरे-धीरे अली के खिलाफ स्वर देने लगे । इस विरोध का कारण यह था कि खलीफा बनते ही हजरत अली ने उन उमैय्या गवर्नरों को पदच्युत करना प्रारम्भ किया जिन्हें उसमान ने नियुक्त किया था । इतना ही नहीं, तलहा और जुबैर[9] नामक दो अन्य कुरैश हजरत अली का

8 One would have thought that all would have bowed before this glory so pure and grand; but it was not to be.
—*Sedillot.*

9—जुबैर की माता पैगम्बर मुहम्मद साहब के पिता की बहन थी ।

विरोध करने लगे। उन्होंने यह माँग की कि उन्हें कूफा और बसरा का गवर्नर बना दिया जाय। खलीफा ने उनकी माँग को ठुकरा दिया जिसका फल हुआ कि उन्होंने आयशा को अपनी ओर मिलाकर हजरत अली के विरुद्ध प्रत्यक्षतः तलवार उठा ली। आयशा की शादी जिस समय वह नौ अथवा दस वर्ष की ही थी, मुहम्मद साहब से हुई थी। कहा जाता है कि उसके चरित्र पर एक बार मुहम्मद अली ने शक किया था।

मुहम्मद अली ने सर्वप्रथम तलहा और आयशा की ओर ध्यान दिया। दोनों अली के विरुद्ध संगठित थे ही। आयशा का साथ भी उनको मिल ही गया था। 'खोरैना" में दोनों विरोधियों की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। आयशा ऊँट पर सवार थी जिसकी चारों तरफ अली की सेना भँवर की तरह चक्कर काटती हुई लड़ रही थी। इसीलिये यह युद्ध 'जमल-युद्ध (The Battle of Camels) के नाम से प्रसिद्ध है। इन विद्रोहियों का यह तर्क था कि हजरत अली उसमान के बध का पता लगाने में असफल हो रहे है और इसीलिये वे उनसे इस अपमान के खून का प्रतिशोध लेगें। लेकिन वास्तविकता कुछ और थी जिसके कारण तलहा, जुबेर और आयशा अली से अप्रसन्न थे। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

जमल-युद्ध में हजरत अली को विजय मिली। तलहा और जुबेर दोनों युद्ध में काम आये। आयशा को कैद कर लिया गया और उसे आदर के साथ मदीना भेज दिया गया। भविष्य में आयशा ने सिर नहीं उठाया और मदीना में ही बाईस वर्ष एकान्तवास कर चल बसी। इस प्रकार हजरत अली की पहली समस्या का समाधान हुआ। पर इस युद्ध के बाद ही गह-युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें अली उलझ कर रह गये। अली की खिलाफत का सारा काल गृह-युद्धों और आन्तरिक अव्यवस्था का काल था और यही कारण था कि इस गृह-युद्ध ने उन्हें राज्य-विस्तार करने का अवसर नहीं दिया।

हजरत अली को अब अपने महान शत्रु मुआविया, जो सीरिया का गवर्नर था, का सामना करना पड़ा। पर मुआविया ने उन्हें सिक्कीम के युद्ध में परास्त किया और खिलाफत को समाप्त कर उमैय्या वंश के शासन की नींव डाली।[10]

10. If the glorious name of being the first moslem, a comrade of the Prophet in exile, his faithful companion in the struggle for the Faith, his intimate associate, and his kinsman; if a true knowledge of the spirit of his teachings and of the book; if self-abnegation and practice of justice; if honesty, purity, and love of truth, if a knoweldge of law and science, constitute a claim to pre-eminenee, then all must regard Ali as the foremost Moslem: we shall search in vain to vain to find, either among hig predecessors (save one) or among his successsors those virtues with which God had endowed him.

—*Masudi*; *Tanbih*, p 306.

661 ई० को कूफा में अली की हत्या कर दी गयी।

हजरत अली की मृत्यु के साथ ही खिलाफत का गणतंत्रीय काल भी जो अबूबकर के समय से प्रारम्भ हुआ था, समाप्त हो गया। खिलाफतयुगीन चारों खलीफा अल राशिदीन (Orthodox) के नाम से मशहूर हैं जिनमें हजरत अली सर्वाधिक सरल एवं निश्छल थे। इतिहासकार कर्नल ओसबर्न के शब्दों में "अबतक के खलीफाओं में अली सर्वोत्कृष्ट हृदय रखनेवाले खलीफा थे। वास्तव में ईमानदारी और मानवता के सारे गुण उनके चरित्र में कूट-कूटकर भरे हुए थे। निर्धनों की सहायता करने में वे सर्वदा अग्रगण्य थे . पर उमर की दृढ़ता का इनमें अभाव था। अगर उमर की दृढ़ता का एक अंश भी इनमें रहता तो ये अरब की उदण्ड जातियों तथा अपने शत्रुओं का बड़ी सफलतापूर्वक दमन करते। इनकी सरलता तथा सहनशीलता को लोगों ने इनकी कमजोरी समझा और शत्रु सिर उठाने का दुःसाहस करने लगे।

लेकिन अली में बहादुरी की कमी न थी। अपनी बहादुरी के कारण ही उन्होंने "ईश्वर का सिंह" का खिताब पाया था। विद्वता में भी वे किसी से कम नहीं थे। उनकी विद्वता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी और लोगों ने इन्हें 'ज्ञान का सागर' माना था।

हजरत अली में प्रशासन करने की क्षमता थी। उमरकालीन शासन-व्यवस्था संबंधी कार्यों में अली का परामर्श अधिक था। काहिरा के बाजारों से लेकर दिल्ली तक उनके यश-गान आज भी गाये जाते हैं। अपने प्रशासन में उन्होंने औरतों को हमेशा संरक्षता प्रदान की। जब कभी दस्युओं द्वारा औरतों के पकड़े जाने की उन्हें खबर मिलती थी, वे खलीफा का सिंहासन छोड़कर उनकी मुक्ति के लिये दौड़ पड़ते थे। अपनी मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपने पुत्रों को प्रेम, दया, आत्म-त्याग इत्यादि की नसीहत दी थी। मरते समय भी उन्होंने अपने बधिक के प्रति दया दिखलाने का आग्रह किया था। अली के चरित्र में ऐसे ही अन्य अनेक गुण भरे पड़े थे। वे गौरव-युक्त मुसलमान, पैगम्बर मुहम्मद के अभिन्न साथी, इस्लाम के लिये खून बहाने वाले सिपाही, सफल कुरान-वेत्ता, न्यायी, ईमानदार और सच्चा-जन के मूर्त रूप एवं विधि-विज्ञान के विद्वान थे। स्वयं ईश्वर ने अनेक भव्य एवं उदात्त गुणों से उनका जीवन बनाया था।"

जन्म से पराकाष्ठा तक

अधिकांश इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि "इस्लामी राज्य की नींव पैगम्बर मुहम्मद ने कायम की, अबू ने उनका संगठन किया और उमर ने उसे विस्तृत कर पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।"[11] इतिहासकारों का यह कथन अक्षरशः सत्य है।

इस्लाम के प्रवर्त्तक पैगम्बर मुहम्मद थे। खदीजा से शादी करने के उपरान्त उन्होंने चिन्ताहीन होकर मनन करना प्रारम्भ किया और एक दिन उन्हें इलहाम

10. अली और मुआविया के बीच हुए संघर्ष का उल्लेख अगले अध्याय में पढ़ें।
11. K. Ali, p. 60

हासिल हुआ। उनका उपदेश इलहाम कहलाया और इस्लाम मानने वाले मुसलमान कहलाये। पैगम्बर के धर्म का ध्येय था अरब वालों को जाहिलि या युग से निकाल-कर उनमें सुधार लाना और उनका संगठन कायम कर इस्लाम का विस्तार करना। भीषण यन्त्रनाओं और सामाजिक अपमान को सहन करके भी मुहम्मद ने इस्लाम का प्रचार-कार्य जारी रखा। इस्लाम अनुयायी भी उनके निर्देशन में इस्लाम का प्रचार करने लगे। मदीना से चलकर इस्लाम मक्का आया और शनैः-शनैः यह राज्य का रूप धारण करने लगा। इस्लाम और राज्य, धर्म एवं राजनीति इस्लामी विधि के अनुसार दो नहीं, एक है। अतः यह कहना सत्य ही होगा कि पैगम्बर ने इस्लाम धर्म के ईजाद तथा प्रचार के साथ-साथ एक इस्लामी राज्य की नींव भी डाली। स्मिथ महोदय ने यह स्वीकार किया है कि मुहम्मद साहब तीन चीजों के संस्थापक माने जा सकते हैं—एक राष्ट्र के, एक राज्य के और एक धर्म के।

इस्लाम के जन्म के पूर्व सारा अरब जाहिल था। आपसी भेदभाव एवं एक दूसरे से प्रतिशोध लेने की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। हेल ने लिखा है कि अरबों में राष्ट्रीय एकता की भावना का नितान्त अभाव था। मुहम्मद साहब ने उनके आपसी भेदभाव एवं कलहों को दूर कर उनका संगठन कायम किया और विभिन्न कबीलों को एकता के सूत्र में बांधा। एक समय ऐसा आया कि वे लोग जो इस्लाम को स्वीकार कर लेते थे, एक झण्डे के नीचे आने लगे और वे मुसलमान बन गये। धीरे-धीरे इस्लाम का प्रसार होने लगा और इसके साथ ही, भीतर-भीतर एक आदर्श जन्म लेने लगा। आगे चलकर जब मक्का और मदीना में सम-झौता हो गया तब इस्लाम की सीमा बढ़ी और इसके साथ ही इस्लामी राज्य अब प्रगट होने लगे। विभिन्न कबीलों के मिल जाने से एक जाति बनी—इस्लाम और सारे मुसलमान एक ही धर्म को स्वीकार किये और वह था इस्लाम। मुसल-मान और इस्लाम ने इस्लामी राज्य बसाने में मदद किया। इस्लाम के प्रवर्त्तक पैगम्बर को सारे मुसलमान अपना राजनीतिक नेता भी मानने लगे। मुहम्मद उनके झगड़ों का निर्णय करने लगे। उन्हें विधि एवं शासन का ज्ञान देने लगे और यही ज्ञान तो आखिर राज्य-निर्माण का द्योतक था। हजरत मुहम्मद ने सेना का निर्माण किया और मक्का पर अभियान करके अभियान का रास्ता बनाया। ईरान तथा रोम के शासकों के पास इस्लाम स्वीकार करने के लिए अपने दूत भेजे और इस कार्य के द्वारा एक राज्य का दूसरे राज्य से संबंध कायम करने का सिलसिला बंधा। मुहम्मद की इन चमत्कारिक करतूतों ने सारे मुसलमानों को "एक शासन, एक राज्य, एक धर्म" स्वीकार करने की भावना दी और वे एक "मुस्लिम बिरादरी के भाई-भाई" बन गये।

स्पष्ट है कि इस्लाम के प्रसार के साथ ही उसकी पृष्ठभूमि में मुस्लिम अथवा इस्लामी राज्य की नींव पड़ रही थी। धीरे-धीरे जातीय संगठन की जगह राष्ट्रीय संगठन बन रहा था और लोग एक व्यक्ति पैगम्बर की आज्ञाओं को मान रहे थे। राज्य के विकास के लिये प्रधानतः तीन तत्वों की आवश्यकता पड़ती है—जनसंख्या की, भूमि की एवं संप्रभु की। मुसलमानों की संख्या बढ़ रही थी, उनके पास भूमि

भी थी और पैगम्बर उनके लिये संप्रभु का काम कर रहे थे। अतः यह सत्य है कि मुहम्मद ने इस्लाम के साथ-साथ इस्लामी राज्य की भी नींव डाली।

पैगम्बर ने जिस राज्य की नींव डाली, अबू बकर ने उसका संगठन किया। पैगम्बर के मृत्योपरांत इस्लाम की नींव हिलने लगी थी और सामाजिक स्थिति पुनः डाँवाडोल हो रही थी। इस्लाम के विरोधी पुनः सिर उठाना प्रारम्भ कर दिये थे। झूठे पैगम्बर जन्म लेने लगे, जकात देना बन्द कर दिया गया और विद्रोही सरदार इस्लाम का खून करने के लिये तैयार हो गये।

ऐसी परिस्थिति में अबू बकर का खलीफा पद पर आसीन होना इस्लाम के लिये वरदान सिद्ध हुआ। हाँलाकि खलीफा अबू को कम ही काम करने का अवसर मिला, फिर भी उसी काल में उन्होंने अशान्ति एवं अराजकता का दमन कर इस्लाम की हिलती हुई नींव को स्थायित्व प्रदान किया। मुमूर्षु इस्लाम को उन्होंने नवजीवन प्रदान किया। जब सारे विद्रोहियों एवं झूठे पैगम्बरों का दमन हो गया तब अबू बकर ने इस्लामी राज्य का शासन भी संगठित किया। धर्म एवं राजनीति दोनों का प्रधान बनकर खलीफा ने सेना के पदाधिकारियों की नियुक्ति, आर्थिक प्रबन्धों आदि में सुधार करके राज्य को संगठित कर दिया। नवोदित इस्लामी राज्य अब प्रगति-पथ पर बढ़ चला।

हज़रत अबू बक्र ने इस्लामी राज्य के विस्तार की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी जिसके फलस्वरूप उमर को विस्तार-कार्य में काफी सहुलियत हुई। उसने इस्लामी राज्य के विस्तार के लिये अधिकाधिक अभियान कार्यों का प्रारम्भ किया और दस वर्षों के अन्दर ईराक, सीरिया, मिस्त्र, जेरूसलेम आदि पर अधिकार करके इस्लाम को विश्व-व्यापी स्वरूप देने का प्रयास किया। इसके काल में इस्लामी राज्य की सीमा दूर-दूर तक फैल गयी। इस्लाम की सेना जहाँ-जहाँ लड़ी, इस्लाम के राज्य का विस्तार वहाँ-वहाँ हुआ। राज्य-विस्तार के पश्चात् हजरत उमर ने उसकी शासन-व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया। यह राज्य सदैव अपनी विशाल सीमा कायम रखे, इसके लिये उसने इस्लामी राज्य का संविधान बनाया। संवैधानिक नियमों के अनुसार समूचे राज्य का शासन चलने लगा और इस्लाम तथा उसके राज्य की जड़े गहराई तक पहुँच गयीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस्लामी राज्य की बुनियाद पैगम्बर मुहम्मद ने डाली थी, उसका संगठन अबू बकर ने किया था और उसका विस्तार उमर ने किया।

इस्लाम के प्रसार के कारण

पैगम्बर मुहम्मद के स्वर्गवासी होने के उपरान्त महज तीन दशक (632-661) के अन्दर ही इस्लाम एक अजेय शक्ति के रूप में अवतरित होगा और रोमन साम्राज्य से भी अधिक विशाल मुस्लिम साम्रज्य कायम हो जाएगा, यह स्वप्न में भी कोई सोच नहीं सकता था। पर ऐसा ही हुआ। खलीफाओं ने एक हाथ में कुरान

और दूसरे हाथ में तलवार लेकर अबाध गति से अरब के अतिरिक्त अन्य देशों की विजय की ओर उनकी अजेय सेना विजय पर विजय पाती गयी। मुहम्मद साहब ने जो सामाजिक क्रान्ति ला दी थी, उनके परिणाम उनकी मृत्यु के बाद परिलक्षित होने लगे और उन्होंने जिस धार्मिक क्रान्ति की नींव डाली थी, उसके परिणामस्वरूप विशाल मुस्लिम साम्राज्य का सृजन हुआ। अरब के समक्ष, सीरिया, ईराक, ईरानी साम्राज्य, मिस्र, लिबिया, त्रिपोली और रोम साम्राज्य आदि सभी मुस्लिम सैनिकों के समक्ष घुटने टेक दिये। उत्तरी अफ्रीका, बल्ख, हेरात, गजनी, समरकन्द, अफगानिस्तान, स्पेन और फ्रांस आदि अनेक देशों में इस्लाम के प्रसार हो गये। जहाँ कहीं खलीफा के सैनिकों के चरण पहुँचे, वहाँ कुरान का बोलवाला कायम हो गया।

आखिर इस चमत्कार का रहस्य क्या था? इस्लाम को अपने प्रसार में अभूतपूर्व सफलता क्यों मिली? इस्लाम की शक्ति कुछ वर्षों के लिए अजेय क्यों सिद्ध हुई? मुहम्मद साहब ने ऐसा कौन सा मंत्र दे डाला था जिसके कारण कुरान के मुअज्जिन की पुकार और तलवार की झनझनाहट एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका के देशों में कम ही वर्षों के अन्दर सुनायी पड़ने लगी?

इतिहासकार नैथेनियल प्लैट तथा म्यूरियल जीन ड्रमण्ड ने इस्लाम के इस आश्चर्यजनक प्रसार के कारणों को विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है: "कुरान (को मानो), कर (दो) या फिर तलवार (के घाट उतरो), यह थी मुसलमानों की उनके धर्म को न माननेवाले सब लोगों को चेतावनी। युद्ध करने वाले मुसलमानों के लिए कुरान का आश्वासन था कि उनके पाप क्षमा कर दिये जायेंगे और उन्हें स्वर्ग में खूब आनन्द प्राप्त होगा। किन्तु इस्लाम के साम्राज्य की वृद्धि का एकमात्र कारण काफिरों (इस्लाम को माननेवालों) के विरुद्ध जिहाद (धर्मयुद्ध) ही नहीं था। बंजर मरुस्थल के अरब कबीले अपने पड़ोसी राज्यों की उपजाऊ खेती की जमीनों पर बड़ी, ईर्ष्या की नजर गड़ाये हुए थे। उन गैर-मुसलमानों के साथ, जो कर (जजिया) देते थे, साधारणतया सहिष्णुता का बर्ताव किया जाता था। उन्हें अपने विद्यालयों, देवमंदिरों, भाषाओं और कभी-कभी अपनी स्थानीय सरकारों तक को बनाये रखने की अनुमति मिल जाती थी। करोड़ों लोगों ने इसलिये भी उत्सुकता के साथ धर्म-परिवर्तन स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसका अर्थ यह था कि उन्हें आगे कर (खराज) न देना पड़ेगा। इतना ही नहीं, धर्म-परिवर्त्तन से वे नौकरियाँ पाने के पात्र बन जाते थे। यदि वे दास या अर्द्ध दास होते, तो इस प्रका धर्म-परिवर्त्तन करके स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर सकते थे। चूँकि जात-पात के बजाय इस्लाम सब मनुष्यों को समान मानता है, इसलिए यह नीची जाति के हिन्दुओं को अच्छा लगा।"[12]

कथित सन्दर्भ पर सूक्ष्म रूप से विचार किया जाय तो इस्लाम के प्रसार के प्रमुख कारण, स्पष्ट हो जाते हैं। वे हैं धार्मिक कारण, राजनीतिक कारण, आर्थिक कारण तथा सैनिक कारण।

12—प्लैट और ड्रमंड, 'विश्व का इतिहास' (हिन्दी संस्करण) पृ० 175.

चूँकि इस्लाम मूलतः एक धर्म था, इस कारण इसकी धार्मिकता ने लोगों (मुसलमानों) को इसके प्रसार के लिये उत्प्रेरित किया। इस्लाम एक सरल किन्तु प्रेरक धर्म था। इस धर्म ने सादगी तथा शुद्धाचरण पर बल दिया था। इसमें धार्मिक भ्रातृत्व तथा अनुशासन की भावना भी जगायी थी। इसमें अमीर-गरीब, अछूत-सवर्ण आदि का भेदभाव नहीं था। इस कारण अनेक लोगों का झुकाव अपने आप इस धर्म की ओर हुआ। फिर, मुहम्मद साहब ने उपदेश, तलवार, दबाव और समझौता के माध्यम से अपने जीवन-काल में इस्लाम का प्रचार भी किया था। वास्तव में वे इसे विश्व-धर्म का रूप देना चाहते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियों (अबू बकर, उमर, उसमान तथा अली) ने उनके स्वप्न को पूरा किया और तलवार के बल पर कुरान (धर्म) की दुनियाँ बसायी। इसके अतिरिक्त नये बने मुसलमानों में इस्लाम के प्रचार के लिए काफी उत्साह तथा जोश था। अतः ऐसे लोगों के कारण भी इस्लाम का फैलाव संभव हो सका। अनेक देशों के लोग बहुदेववादी थे, अंधविश्वास के शिकार थे, पाखण्डों एवं पण्डितों के चक्कर में थे। उन लोगों को एकेश्वरवाद का सिद्धान्त देनेवाला यह धर्म जो पुरोहितों को भी कोई स्थान नहीं दे रहा था, अपनी सरलता तथा सादगी के कारण बड़ा प्रिय, अति सुखकर लगा। अतः इन धार्मिक तत्वों ने इस्लाम की लोकप्रियता में काफी वृद्धि कर दी। मुहम्मद के समर्थक उनमें गहरा विश्वास करते थे और वे युद्ध से कम और मुहम्मद से अधिक प्रेम करते थे। ऐसे कट्टर लोगों ने मसीहा के धर्म का विस्तार जी-जान से किया। अपनी कट्टरता के कारण वे इस बात में विश्वास करते थे कि अगर इस्लाम के प्रचार में वे धर्म-युद्धों (Holy wars) में काम भी आयेंगे तो उन्हें स्वर्ग मिलेगा।[13] मुहम्मद के ऐसे कट्टर नेताओं और समर्थकों की संख्या हजारों में थी। अतः इस्लाम का प्रसार होना ही था।

राजनीतिक तत्वों ने भी इस्लाम के विस्तार में सहयोग किया। जिन दिनों अरब में इस्लाम के कारण उत्कर्ष तथा संगठन आ रहा था और अरब एक शक्तिशाली राज्य के रूप में खलीफाओं के नेतृत्व में उभर रहा था, उन दिनों विभिन्न राज्यों में बिखराव तथा अराजकता का आगमन हो रहा था और उनकी शक्ति छीजती जा रही थी। युग का कभी का शक्तिशाली रोमन साम्राज्य अपना दम तोड़ रहा था। वहाँ अनेक छोटे-बड़े सरकार विद्रोह कर रहे थे और अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम करने की दिशा में उन्मुख थे। इसी प्रकार ईरान भी विघटित हो रहा था और उनकी केन्द्रीय सत्ता इतनी शक्तिशाली नहीं रह गयी थी कि वह उत्साह से भरे अरब के सैनिकों की शक्ति का सामना कर सके। फारस तथा बिजेन्ताइन युद्धों

---

13. The Moslem leaders were passionate disciples of Mohammod, prayed even more than they fought, and in time inspired their followers with a fanaticism that accepted death in a holy wars an open sesame to paradise.

Will Durant, p. 188.

तथा विनाशकारी तत्वों के चलते अपनी शक्ति का बहुतांश खो चुके थे। वे विघटन के कगार पर आकर खड़े हो गये थे। इन राज्यों में कर में वृद्धि की जा रही थी जबकि शासक जनता को न तो स्वस्थ प्रशासन दे रहे थे और न संरक्षण ही। अतः कथित दोनों देशों की जनता अपनी सरकारों से सहानुभूति रखती थी। सीरिया और मेसोपोतामिया के अधिकांश निवासी अरब जाति के थे। इस कारण वे अरब के सैनिकों तथा इस्लाम के प्रति सहानुभूति रखते थे। इसलिये इन राज्यों में मुसलमानों का तथा इस्लाम का प्रसार संभव था। यहाँ सैनिकों को अधिक कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा। अतः राजनीतिक स्थिति की अनुकूलना ने इस्लाम के प्रसार के लिये ऊर्बर भूमि प्रदान की।

आर्थिक तत्वों ने भी इस्लाम के विस्तार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। अरब मरूप्रदेश था जहाँ सामग्रियों का उत्पादन अधिक नहीं हो पाता था। अतः लोग हरे-भरे तथा उपजाऊ प्रदेशों को जीतकर अपने आराम और विलासप्रिय प्रसाधनों की पूर्त्ति करना चाहते थे। हिट्टी ने लिखा है कि इस्लाम के लिये लड़कर स्वर्ग जाने की भावना भले ही हो, पर अरब के लोग उर्बर प्रदेश को जीवन के निर्वाह, विलासिता की पूर्त्ति तथा आराम की सामग्रियों के लिये जीतना चाहते थे।[14] इसी इतिहासकार ने स्पष्ट शब्दों में यह लिखा है कि आर्थिक आवश्यकताओं ने, न कि धार्मिक कठट्‌रता ने, बद्‌दूओं के झुण्डों को आक्रमण करने के लिये उत्प्रेरित किया और आक्रमणों में सफलता इसलिये मिली क्योंकि सेना में अधिकतर बद्‌दू ही थे।[15] कुछ आधुनिक इतिहासकार यथा सेतानी (Cactane), बेकर (Becker) और अन्यों ने इस्लाम के प्रचार में आर्थिक तत्वों को अधिक महत्व दिया है। अरबी इतिहासकार बलादूरी ने इस बात को उल्लेख किया है कि सीरिया-अभियान के समय खलीफा अबू बकर ने मक्का, तईफ यमन तथा नेज्द और हेज्जाज के निवासियों और अरबों को 'पवित्र युद्ध' प्रारम्भ करने के लिए लिखा जिसमें उसने यूनानियों से लट में धन प्राप्ति होने की भी बात लिखी। इससे सिद्ध होता कि धन प्राप्ति की लालसा ने अरबों को ईस्लाम-प्रसार के लिए उकसाया। अरबों के आक्रमण से अपने देश फारस की रक्षा करनेवाला सेनानायक रूस्तम भी इसी विचार का समर्थक है। उसने मुस्लिम दूत के समक्ष यह उक्ति व्यक्त की :

---

14. The passion to go to heaven in the next life may have been operative with some, but the desire for the comforts and luxuries of the civilized regions of the Fertile Crescent was just as strong in the case of money.

—*P. K. Hitti,* P 144.

15. Not fanaticism but economic necessity drove the Bedouin hordes, and most of the armies of conquest were recruited from the Bedoins, beyond the confines of their arid abode to the fair lands of the north. —*Ibid.*

" मैंने सुना है कि जीविकोपार्जन के साधनों को जुटाने के लिए तथा दरिद्रता के कारण आक्रमणकारी आक्रमण करने के लिए वाध्य हुए है।" 16 कवि अबू तमाम (abu-Tammam)ने 'हादशा' (Hamdsah) नामक एक वृति में एक कविता लिखी है जिसका आशय यह है कि "स्वर्ग की भूख ने नहीं बल्कि रोटी तथा खजूर की भूख ने बद्दुओं को आक्रमण करने के लिए उत्प्रेरित किया है।"17

अगर अरबों के पास तगड़ी सेना न रहती तो ईस्लाम का प्रसार कदापि न होता। सैनिकों में अधिकांशतः बद्दू थे जो कठोर, कर्मठ और कर्त्तव्यनिष्ठ थे ही कट्टर मरने की प्रवृति भी रखते थे। उनके खलीफा भी लड़ाकू और निर्भीक थे। अबु बकर तथा उमर अपनी वीरता के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सैनिकों का नेतृत्व किया और हाथों में तलवारें भी उठायी। मुसलमान सैनिकों के सेनापति तो और भी करतब दिखलानेवाले थे। खालिद और साद नामक दो सेनापतियों ने इस्लाम का विस्तार सफलतापूर्वक किया। ईसाई धर्म के प्रसार में उपदेश के माध्यम से जो सेवायें संत पाल तथा संत पीटर ने दीं, वैसी ही सेवा तलवार के माध्यम से खालीद तथा साद ने इस्लाम के प्रसार हेतु दी। खालिद की सेवायें अविस्मरणीय है। मुस्लिम सेनानायकों के इतिहास से खालिद का नाम सर्वंव चमकता रहेगा।'18

इन तत्वों के अलावा विल ड्यूरा ने नैतिक उत्तरदायित्व को भी इस्लाम के विकास का एक अन्य तत्व बतलाया है। जिन्होंने इस्लाम तथा इस्लाम के इन्सान (मुहम्मद) में सच्चे हृदय से विश्वास किया, उनका यह नैतिक कर्त्तव्य था कि उनका प्रसार करें, इस्लाम के झण्डे को दूर-दूर तक फहराये और मुहम्मद का यशगान करें। इसका एक ही उपाय था—तलवार के बल पर देशों को जीतना और उनके निवासियों को मुसलमान बनाना। यही कारण है कि दबाव और दमन का सहारा लेकर खलीफाओं, उनके सेनानायकों तथा सैनिकों ने इस्लाम का प्रसार किया और विजित देशों की जनता को मुसलमान बन जाने के लिये वाध्य किया।

---

16. "I have learned that ye were forced to what ye are doing by nothing but the narrow means of livelihood and by poverty."

—*Ibid (Quoted)*.

17. No, not for Paradise didst thou the nomade life forsake, Rather, I believe, it was the yearnig after bread and dates. —*Ibid*.

18. The name of Khalid stands out as the brightest star in a constellation of able and devoted Moslem generals.

—*H. G. Wells*; p. 610

किन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि इस्लाम धर्म फैलाने की यह ललक मुसलमानों में सदा बनी रही और लूट का माल पाकर अथवा सम्पन्न नगरों पर, देशों पर अधिकार जमाकर सारे मुसलमान धनी हो गये और उनकी सारी दरिद्रता समाप्त हो गयी। चार खलीफाओं का जमाना इस्लाम के विस्तार और जोश, उत्साह का जमाना अवश्य था, किन्तु इसके बाद प्रतिद्वन्द्वी खलीफाओं का काल आया और इन खलीफाओं के कारण मुस्लिम बिरादरी में, मुस्लिम राज्य में साम्राज्यिक अथवा प्रशासनिक महत्वाकांक्षा के कारण फूट पड़ गयी। मुस्लिम साम्राज्य के कई भाग अन्ततः अपने आपको स्वतन्त्र राष्ट्र समझने लगे थे। मुहम्मद के उत्तराधिकारी अपने आपको खलीफा कहते थे और इस कारण मुहम्मद की तरह ही वे भी निरंकुश धार्मिक और साथ ही राजनीतिक शासक भी थे। मुहम्मद की मृत्यु के कुछ ही समय बाद मुस्लिम राजधानी मदीना से बदलकर दमिश्क और बाद में बगदाद हो गई। प्रतिद्वन्द्वी खलीफाओं के बीच घरेलू युद्ध इन स्थानान्तरों के कारण थे। शीघ्र ही वहाँ तीन राजधानियाँ बन गईं, जिनमें से प्रत्येक का खलीफा यह दावा करता था कि वही मुहम्मद का असली उत्तराधिकारी है। एक राजधानी तिगरिस नदी पर स्थित बगदाद में थी, दूसरी स्पेन में कार्दोवा में और तीसरी मिस्र में काहिरा में। अन्ततः इस्लामी विश्वास का धार्मिक चूना ही इस साम्राज्य को जोड़कर इकट्ठा बनाये रहा। यह सही है कि कभी इस्लामी राज्य और साम्राज्य बना, अंधकार युग को आलोकित करने में मुसलमानों ने सहायता दी, मुस्लिम वाङ्मय और भाषा अनुप्राणित किये, किन्तु मध्ययुग से चली आ रही कुछ मुस्लिम समस्याएँ बाधित रहीं। आज करोड़ों मुसलमान दरिद्रता, रोग और निरक्षरता से त्रस्त होकर जीवन-यापन कर रहे हैं। मुस्लिम प्रगति में इस ह्रास का कारण क्या है? मुसलमानों ने एक विशाल साम्राज्य को कायम किया था, किन्तु उन्होंने उसके बहुत थोड़े से ही भाग को उपनिवेश बनाया। ग्यारहवीं शताब्दी से शुरू करके अरब साम्राज्य का बहुत बड़ा भाग क्रमशः अपेक्षाकृत, कम सभ्य, सिल्जुक और उसमान तुर्कों द्वारा जीत लिया गया। मुस्लिम शासक उत्तरोत्तर स्वेच्छाचारी होते गये। उनमें से बहुतेरे तो एकदम नालायक थे। गृह-युद्धों तथा कबीलाई झगड़ों ने मुस्लिम एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया था। विदेशी आक्रमणों और शताब्दियों तक विदेशी नियंत्रण ने मुस्लिम जगत की शक्ति को सोख लेने में योग दिया। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि प्रारम्भिक हजरत अली तक के खलीफाओं के काल तक इस्लाम तथा इस्लामी राज्य अजेय शक्ति बनकर अपनी अजेयता का झण्डा फहराते रहे और ललकार का बिगुल बजाते रहे।

———

अध्याय—5

उमैय्या वंश का संस्थापन और मुआविया

(Establishment of the Umayyad Dynasty and Muawiya)

खुलफा-ए-राशिदीन का अन्त और उमैय्या वंश की स्थापना इस्लाम की कहानी का दूसरा परिच्छेद है। इस परिच्छेद ने अरब में एक युगान्तकारी घटना का सृजन किया जिसका स्वप्न में भी मुसलमानों ने ख्याल नहीं किया था। इस परिच्छेद का नायक सीरिया का उमैय्या वंशीय गवर्नर मुआविया था जिसने खिलाफत की परिसमाप्ति कर उमैय्या वंश का शासन कायम किया। मुआविया के शासन के प्रारम्भ के साथ ही इस्लामी राज्य में एक मूल परिवर्तन आया। गणतंत्र समाप्त हुआ और वंशानुगत शासन एवं शासकों का युग आया। निर्वाचन की प्रणाली का परित्याग कर अब शासकों ने अपने पुत्रों एवं बन्धुओं को खलीफा पद के लिये मनोनीत करना प्रारम्भ किया अतः उमैय्या वंशीय शासन जिसने इस्लाम के इतिहास में एक नया मोड़ लाया, इस्लाम के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है।

उमैय्या वंश की स्थापना

उमैय्या वंश का संस्थापक मुआविया था। वह सीरिया का गवर्नर था जिसकी नियुक्ति उमर ने की थी। उसकी आकांक्षाएँ अनन्त थीं जो आकाश को चूम रही थीं। वह केवल सीरिया का गवर्नर बनकर ही सन्तुष्ट नहीं था। वह कुछ और प्राप्त करना चाहता था। वह सम्पूर्ण अरब का स्वामी बनाना चाहता था। अपनी इच्छा के अनुसार इस्लामी राज्य एवं शासन का निर्देशन करना चाहता था। अबतक खलीफा इस्लाम तथा इस्लामी राज्य का वास्तविक शासक नहीं था। वे इस्लामी विधियों, खुदा और पैगम्बर से प्रभावित थे और उन्हें अपने राज्य में श्रेष्ठ मान रहे थे। मुआविया शासक बनकर अपनी विधियों से, अपने सिद्धान्तों से प्रभावित होकर शासन करना चाहता था। इसका अर्थ यह नहीं कि वह मुसलमान नहीं था और पैगम्बर में आस्था नहीं रखता था। लेकिन उसका रास्ता अलग था, उद्देश्य दूसरा था। पुरानी लीक का परित्याग कर वंशानुगत शासन कायम करना उसका मुख्य उद्देश्य था। वह यह भी चाहता था कि सारे नियंत्रणों से मुक्त होकर खलीफा शासन करें और राजतन्त्रीय व्यवस्था को कायम कर अपने अधिकारों में वृद्धि करें। इस संबंध में वह सचेत था और यही कारण था कि हजरत अली के काल से ही वह अपने वंश का शासन स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील था।

उमय्या वंश की स्थापना के लिये मुआविया को खिलाफत के काल में दो कार्य करने पड़े—अली से सिफ्फीन का युद्ध और अली के उत्तराधिकारी हसन से समझौता। अपने इन दोनों शत्रुओं की परिसमाप्ति के बाद ही वह अपने वंश के शासन की नींव डालने में सफल हो सकता था।

हमने पिछले अध्याय में इस बात की चर्चा की है कि हजरत अली के सामने प्रधानतः दो समस्यायें थीं—तलहा और जुबेर को परास्त करना तथा मुआविया की शक्ति का दमन करना। अपनी पहली समस्या का समाधान करने में उन्हें सफलता मिली थी। अब दूसरे शत्रु मुआविया की शक्ति का दमन करना था। 657 ई० में हजरत अली ने इस दुर्द्धर्ष शत्रु की शक्ति से लोहा लेने के लिये प्रस्थान किया। उत्तरी सीरिया की फरात नदी के किनारे स्थित सिफ्फीन नामक स्थल पर दोनों की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। मुआविया पहले से ही युद्ध की तैयारी कर रहा था। उसमान की हत्या के चलते हजरत अली की काफी बदनामी हुई थी और लोगों ने यह कहना प्रारम्भ किया था कि इस हत्या में अली का भी हाथ है। मुआविया ने भी इस मौके से फायदा उठाया और उसने दमिश्क की मस्जिद में हजरत उसमान के खून के छींटों से भरी कमीज और उनकी पत्नी की कटी हुई ऊँगलियों को दिखलाकर लोगों को भड़काया और उन्हें उत्तेजित किया। मुआविया को अपने उद्देश्य में कामयाबी हासिल हुई और लोगों ने हजरत अली की बैअत से इनकार किया। उन्होंने यह माँग की कि अली हजरत उसमान के कातिलों का पता लगावें या उसमें भाग लेने का इकरार करें। लेकिन बात कुछ और ही थी। मुआविया स्वयं खलीफा बनना चाहता था। वास्तविक प्रश्न यह था कि इस्लाम की संप्रभुता किसके हाथ में रहे—कूफा के शासक अली के हाथों में या दमिश्क के गवर्नर मुआविया के हाथों में ? इसी का निर्णय सिफ्फीन के युद्ध में हुआ।

50, 000 ईराकी फौज का सामना सीरिया की मुआविया-फौज ने डटकर किया। निस्सन्देह अली की विशाल फौज के सामने एक प्रान्त का गवर्नर अपनी फौज के साथ खड़ा रहने में असमर्थ था। पर मुआविया कूटनीतिज्ञ था। अली की विशाल फौज का अन्दाज लगाकर मन ही मन उसने अपनी हार स्वीकार कर ली। इसीलिये उसने एक चाल चलकर अली से तत्काल समझौता करके अपनी संगठित एवं संचित शक्ति को नष्ट होने से बचा लिया ताकि वह बाद में अली के उत्तराधिकारी से युद्ध कर सके। हजरत अली को विजय मिलने ही वाली थी कि मुआविया की ओर से भालों में कुरान की सैकड़ों प्रतियाँ ऊपर उठा दी गयी जिसका अर्थ था संधि की माँग। दयालु अली ने लड़ाई रोककर मुसलमानों का खून बहने से रोक दिया। अब दोनों दलों में समझौता कराने के लिये दो व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की गयी। यह कहा गया कि अल्लाह के शब्दों के अनुसार समझौता किया जायेगा। अबू मूसा अशारी हजरत अली की ओर से और उमर इब्न-अल-अस मुआविया की ओर से मध्यस्थता के लिये नियुक्त हुए।

लेकिन समझौता सफल न हो सका। चतुर उमर ने अली के विरुद्ध निर्णय दिया। दूसरी तरफ मूसा ने अली को खलीफा पद पर बने रहने का निर्णय लिया जिसे मुआविया ने मानने से इनकार किया। इस गत्यावरोध से अली को दो प्रकार की क्षतियाँ उठानी पड़ी—एक तो विजय-श्री से हाथ धोना पड़ा और दूसरे, खारजी वर्ग का जन्म हुआ जिसके लोग अली और मुआविया दोनों का विरोध करना प्रारम्भ किये। अली के जो समर्थक समझौता के लिये तैयार नहीं थे, वे ही अपने को खारजी कहने लगे। अतः अली के अपने ही समर्थक उनकी गलती से खिलाफत के विरुद्ध हो गये। अली को उदास होकर राजधानी कूफा लौट आना पड़ा।

अली कफा में शान्ति की नींद नहीं सो सके। खारीजियों ने उनका निरन्तर विरोध करना प्रारम्भ किया। कुरान अथवा अल्लाह के शब्दों के अनुसार होनेवाला समझौता टट गया था, इसलिये खारीजियों ने अली को पापात्मा कहना प्रारंभ किया। फलतः हजरत अली का सारा मान घट गया। खारीजियों ने अली के खिलाफ खुलकर विद्रोह भी कर दिया जिससे वाध्य होकर अली को उनके खिलाफ तलवार उठाने की जरूरत भी पड़ गयी। अनेक खारीजी मौत के घाट उतार डाले गये और अनेक बहराईन तथा अहसा भागकर अपने प्राण बचाये। बहराईन तथा अहसा में उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर अली का विरोध करना पुनः प्रारंभ किया।

इधर हजरत अली अपनी घरेलू समस्या में उलझकर अपने ही समर्थकों की हत्या कर रहे थे, उधर भीतर ही भीतर राज्य के पदाधिकारी और मध्यस्थ मूसा अली के विरूद्ध षड़यन्त्र की रचना कर रहे थे। उमर, जो मुआविया की ओर से मध्यस्थ नियुक्त हुआ था, एक चालाक तथा धर्त्त व्यक्ति था। वह अपने स्वामी मुआविया को किसी भी तरह खलीफा के पद पर नियुक्त करना चाहता था। उसने हजरत अली से मुलाकात की और उसे इस बात के लिये तैयार कर लिया कि इस्लाम की गौरव-वृद्धि तथा प्रसार करने और वे-वजह खून-खराबी को रोकने के लिये एक तीसरे व्यक्ति को ही खलीफा के पद पर चुन लिया जाय। निष्कपट हृदयधारी अली को भी यह बात अच्छी लगी। मुस्लिम राज्य के संवर्द्धन के लिये उन्होंने खलीफा के पद का भी त्याग कर देने में उदारता, तत्परता दिखलायी। तीसरे व्यक्ति का चुनाव करने के लिये मूसा को ही नियुक्त किया गया। अली इस बात से अनभिज्ञ थे कि उनका ही समर्थक मूसा षड़यन्त्रकारियों से जा मिला है। समारोह का आयोजन होने पर मूसा ने यह घोषणा की—"मैं खलीफा के पद से अली को च्युत करता हूँ——"और अभी वे वाक्य पूरा किये भी नहीं थे कि उमर ने स्वयं उठकर यह वाक्य जोड़कर उसे पूरा कर दिया—"मैं अली की पदच्युति को स्वीकर करता हूँ और उनके रिक्त स्थान पर मुआविया को नियुक्त करता हूँ।" उमार की ढिठाई और षड़यन्त्र ने खलीफा के समर्थकों को उत्तेजित कर दिया। तत्काल संघर्ष की घड़ी टल गयी। दोनों पक्षों के लोग एक दूसरे प्रतिशोध लेने की शपथ लेते विदा हुए। मूसा मदीना चले आये, उमर दमिश्क चला गया। बाद में मुआविआ ने मूसा को अच्छी पेन्शन दी।

इस षडयन्त्र के उपरान्त दोनों पक्षों में यदा-कदा अनियन्त्रित छोटी-छोटी मुठभेडे होती रहीं। अली को केवल मुआविया पर ही ध्यान नहीं देना पड़ता था, उन्हें पूरब के खारीजियों से भी उलझना पड़ जाता था। अतः वे अब मुआविया की शक्ति का दमन करने में नितान्त असमर्थ थे। मुआविया ने उनकी उलझनप्रद घरेलू समस्याओं से फायदा उठाया। उसने सीरिया में तो अपनी शक्ति में अधिकाधिक वृद्धि की ही, मिस्र को भी जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। अभी वह खलीफा बन भी नहीं पाया था कि लोगों ने उसे खलीफा कहना प्रारंभ कर दिया। ऐसे ही अवसान की परिस्थिति में एक खरीज ने 27 जनवरी, 661 की ई० को अली की हत्या कर दी। अली के पीछे उनकी विधवा पत्नी और दो पुत्र (हसन और हुसेन) रह गये।

सिफ्फीन के पश्चात मुआविया की शक्ति और भी बढ़ चली। अब वह नायक के रूप में मुसलमानों के बीच प्रसिद्ध हुआ। सीरिया तथा मिस्र में उसने अपनी प्रभुता कायम कर ली थी। किन्तु तत्काल इस्लामी राज्य में कमजोरी आ गयी। अली के समर्थक उसके विरुद्ध हो गये। अली की हत्या के बाद अब कोई ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति खलीफा नहीं बना जो मुआविया के बढ़ते हुए उत्कर्ष पर नियंत्रण कायम कर सके।

हजरत अली के मरणोपरान्त ईराक की जनता ने राजधानी कूफा में उसके ज्येष्ठ पुत्र इमाम हसन को खलीफा के पद पर बैठाया। हसन के काल में खिलाफत के नाटक का अन्तिम पटाक्षेप हुआ। मुआविया के साथ उमैय्या वंश की स्थापना होने पर एक नये नाटक की शुरूआत हुई। जैसे ही हसन को लोगों ने खलीफा पद के लिये निर्वाचित किया वैसे ही दमिश्क में मुआविया ने भी अपने आपको खलीफा घोषित किया। हसन की प्रतिभा क्षीण हो गयी और वह स्वयं को खलीफा पद पर बनाये रखने में असमर्थ हो गया।

इस अवसर से मुआविया ने फायदा उठाया। उसने बिजली की गति से ईराक पर आक्रमण कर दिया। एक म्यान में दो तलवारों की जगह कहाँ थी? एक ही राज्य के दो खलीफा किस प्रकार हो सकते थे? विवश होकर हसन को मुआविया की सेना का सामना करना पड़ा। उसने कैस को सेनानायक बनाकर एक सेना के साथ मुआविया के विरुद्ध भेजा और कुछ समय बाद स्वयं भी प्रस्थान किया। जैसे ही उसकी सेना मदाइन पहुँची वैसे ही यह अफवाह फैल गयी कि मुआविया की सेना ने कैस की सेना को परास्त कर दिया है और कैस युद्ध में काम आया है। इस अफवाह से हसन की सेना ने विद्रोह कर दिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि सेना स्वयं अपने खलीफा को शत्रुओं के हाथों सुपुर्द कर देगी। भग्न हृदय लिये हसन कूफा लौट आया और अपने सैनिकों की गद्दारी पर पश्चाताप कर खलीफा पद से त्यागपत्र देने की बात सोचने लगा। इसी समय उसे इस बात का भी पता चला कि उसके खास दरबारी उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं और उसके शत्रु की मदद कर रहे हैं।

मुआविया ऐसे ही मौके की ताक में था। उसने हसन के समक्ष गद्दी छोड़ देने का प्रस्ताव रखा। अन्त में दोनों के मध्य एक समझौता हो गया जिसके अनुसार यह निर्णय हुआ कि खलीफा का पद मुआविया को दे दिया जाय जिस पर वह आसीन होगा। समझौता के बाद हसन अपने परिवार के सदस्यों के साथ मदीना चला गया और मुआविया की ओर से पेन्शन पाने लगा।[1] कट्टर खलीफाओं के युग का अब अन्त हो गया। पर दुर्भाग्यवश पदच्युत हसन न तो पेन्शन का ही उपयोग कर सका और न अपने अनुज के सिर पर ताज ही देख सका। 669 ई० में उसे मुआविया के पुत्र यजीद ने सम्भवतः गरल पान कराकर मार डाला।

---

1. तबारी के अनुसार हसन को 5 लाख दरहम एवं ईराक के एक सूबे की लगान पेंशन के रूप में दी गयी।

हुसन की मृत्यु के संबंध में इतिहासकारों के दो मत हैं। एक मत यह है कि हुसन यौन-प्रिय था और शानदार हरम में औरतों के साथ ऐश-आराम किया करता था। अपने जीवन-काल में उसने एक सौ औरतों से विवाह किया और उनका तलाक भी किया। इसीलिये इब्न असाकीर ने उसे 'मितलक' (A great divorcer) की संज्ञा दी है। उसके हरम की एक असंतुष्ट औरत ने मौका पाकर उसकी हत्या कर दी। इतिहासकार हिट्टी इसी मत के समर्थक हैं।[2] दूसरा मत इससे भिन्न है। इसके अनुसार हुसन की हत्या उसकी पत्नी जुदा ने की। मुआविया ने जुदा को यह प्रलोभन दिया कि अगर वह अपने पति की हत्या कर देगी तो वह अपने पुत्र यजीद से उसकी शादी कर देगा तथा मल्लिका बना देगा। जुदा मुआविया के बहकावे में आकर अपने पति की जान ले बैठी। प्रायः सभी मुसलमान भी इसी मत को मानते हैं। हुसन की मौत के पीछे जो भी कथा हो, पर यह सत्य है कि अब मुआविया का रास्ता निष्कण्टक हो गया और वह इस्लामी शासन की बागडोर सँभालकर खलीफा बन बैठा। उसने उमैय्या वंश के शासन की नींव डाली और खलीफा की हैसियत से शासन करने लगा।

मुआविया (661-83)

मुआविया ने खलीफा बनते ही दमिश्क को अपनी राजधानी घोषित की और कूफा का सारा आकर्षण सिमटकर दमिश्क आ गया। खलीफा के रूप में उसने इस्लामी राज्य का विस्तार किया और शासन का संगठन कर समस्त अशान्तियों एवं उपद्रवों को कुचल डाला। मुआविया की उपलब्धियों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है —अभियान-कार्यों को प्रारम्भ कर उसने इस्लामी राज्य की सीमा में अभिवृद्धि की और अशान्ति का दमन किया और सीमा-वृद्धि के बाद सफल गृह-नीति के द्वारा सम्पूर्ण शासन का संगठन किया।

विद्रोहों के दमन और राज्य-विस्तार के लिये एक अच्छी सेना की आवश्यकता थी। मुआविया को सैन्य संगठन का पहले से ही अनुभव था। सीरिया का गवर्नर रहकर उसने अपने इसी अनुभव के कारण खलीफा अली से लोहा लेने की हिम्मत की थी। जैसे ही उसने सेना का पुनर्संगठन किया, वैसे ही उसने उन शक्तियों के विरुद्ध प्रस्थान किया जो उसका विरोध कर रही थी। इसी सिलसिले में उसने इस्लामी राज्य की सीमा में भी विस्तार लाया।

सर्वप्रथम बिजेन्टाइन राज्य के विरुद्ध हथियार उठाये गये। इस बिजेन्टाइन साम्राज्य से मुआविया का यह पहला संघर्ष नहीं था। जिन दिनों वह सीरिया का गवर्नर था, उन्हीं दिनों उसने उत्तरी सीरिया से बिजेन्टाइन सेना को खदेड़ दिया था, दो-दो बार बिजेन्टाइन बेड़ों को परास्त किया था और साइप्रस पर अधिकार कर लिया था। इस बार पुनः उसने बिजेन्टाइन राज्यों पर अभियान कर दिया और उसकी सेना ने अनातोलिया को रौंद डाला। कुस्तुनतुनिया की तरफ से बास्फोरस

2. P. K. Hitti , pp 189-90.

पार कर उसके एक सेनापति ने 668 ई० में कालसेडोन में प्रवेश किया। उसी वर्ष कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण करने के लिये मुआविया ने एक सेना भेजी। लेकिन भूखण्डों एवं समुद्र से घिरे रहने के कारण कुस्तुनतुनिया पर उमेय्या शासक का अधिकार कायम न हो सका। लेकिन इस घेरे ने बिजेन्ताइन सेना की शक्ति को काफी नष्ट कर दिया।

इसी समय मुआविया को सीरिया में ही अपने एक शत्रु से लोहा लेना पड़ा। यह शत्रु अब्दुर्रहमान था जो सीरियनों में लोकप्रिय था। उसकी यह लोकप्रियता मुआविया की दृष्टि में खटक रही थी क्योंकि वह भविष्य में उसके लिये खतरा उपस्थित कर सकती थी। मुआविया ने अपने इस शत्रु को युद्ध में हराकर षड़यन्त्र के द्वारा मार देना अच्छा समझा। अपने उद्देश्य में वह सफल भी हो गया और उसकी हत्या करवा दी। सीरिया के लोग दहशत से चुप हो गये। सीरिया के विद्वान और धार्मिक पुरुष अब तटस्थ रहना ही अच्छा समझे। अब उन्होंने सार्वजनिक समस्याओं एवं राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा करनी बन्द कर दी। इस्लाम की विधियों का अध्ययन करने, साहित्य तथा कला का विकास करने तथा धर्म का प्रचार करने में उन्होंने अपना समय लगाना प्रारम्भ किया।

मुआविया का विरोध हजरत अली के समर्थक भी कर रहे थे। वे खिलाफती शासन के घोर समर्थक थे और अबू बकर तथा उमर को ही अपना वास्तविक खलीफा मानते थे। इन लोगों को बड़ी मुश्किल से नहरवान की लड़ाई में कुचलकर अली ने अपना समर्थक बनाया था। अहसा तथा मध्य एशिया के क्षेत्रों में निवास करते हुए वे भ्रामक सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। मुआविया के काल में भी उन्होंने सिर उठाना प्रारम्भ किया। उन्होंने मुआविया से लोहा लेना भी प्रारम्भ किया और काल्डिया तथा ईराक पर आक्रमण कर दिया। अब मुआविया को उनके विरुद्ध प्रस्थान करना पड़ा। उसने उनपर आक्रमण किया और उनकी शक्ति का पूर्ण दमन कर दिया। वे इस तरह बुरे ढंग से पीटे गये कि उन्हें मरूभूमि में शरण लेने को बाध्य होना पड़ा।

खिलाफत काल में ही उत्तरी अफ्रीका के कुछ भाग पर इस्लामी फौज ने अधिकार कर लिया था। मुआविया ने इस क्षेत्र पर पुनः अधिकार कर इस्लामी राज्य की सीमा बढ़ायी। अफ्रीका का विशाल भूखंड इन दिनों तीन भागों में विभक्त था—दूरवर्ती पश्चिमी भाग, निम्न स्तरीय पश्चिमी भाग तथा खास 'इफ्रिका। इन सारे भागों में सेमेटिक तथा अरब की अन्य जातियाँ निवास करती थीं। मुआविया ने इन भागों पर यह कहकर आक्रमण किया कि वह अपनी अरब जातियों को अपने अधिकार में करना चाहता है। उसने शीघ्र ही सेना एकत्र कर अकबा के नेतृत्व में एक दस्ता अफ्रीका भेज दिया। अकबा को सर्वत्र ही विजय मिली और उसने सारसेनी अफ्रीका को अपने अधीन कर लिया।

लेकिन अफ्रीका के उत्तरी भागों पर अकबा का स्थायी अधिकार कायम न रह सका। यद्यपि ट्यूनिस के उत्तर स्थित काहिरा नामक नगर में सैनिक

अड्डा भी बनाया गया था जिससे अफ्रीका की भयंकर जातियों का आक्रमण न हो सके, फिर भी युद्ध-कला में प्रवीण होने के कारण इन जातियों ने अकबा को घेर लिया। लेकिन अकबा चूहे की तरह जाल में फँसकर मरने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने इन जातियों से जमकर युद्ध किया और अन्त में युद्ध-भूमि में ही शहीद हो गया। उसके अधिकांश सैनिक भी इस युद्ध में काम आये। कुछ सैनिक मिस्र भागकर अपने प्राण बचाये। काहिरा पर अफ्रीकियों ने अधिकार कर लिया और वहाँ अरबों का प्रभाव समाप्त हो गया।

मुआविया ने विजयी क्षेत्रों में पनपते हुए अन्य विद्रोहों का भी दमन किया। हिरात, काबूल, बल्ख आदि के विद्रोहों को कुचल दिया गया और शान्ति कायम की गयी।

उमैय्या काल में दो तरफ से हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया गया। सर्वप्रथम मोहलिब ने खैबर के मार्ग से काबुल होते हुए हिन्दुस्तान की भूमि पर कदम रखा और कुछ सीमा-प्रान्तों की विजय की। उसकी मृत्यु के पश्चात अन्य सेनानायकों की अधीनता में सिन्ध में विजय का कार्य चलता रहा। इस्लामी फौज ने कैकान, कंधार आदि पर अधिकार कर लिया।

अब तुर्किस्तान पर आक्रमण करने का आयोजन किया गया। खुरासान का उमैय्या गवर्नर उबैदुल्ला बिन जियाद को यह कार्य सुपुर्द किया गया। उसने तुर्किस्तान के अनेक भागों पर अपना कब्जा जमा लिया। तदोपरान्त नफी आदि के नेतृत्व में बुखारा, समरकन्द आदि पर मुआविया का कब्जा कायम किया गया। इसी काल में अत्यधिक ऊर्बर प्रदेश रोड्स तथा अखाड पर भी मुस्लिम अधिकार कायम हो गये।

गद्दी पर आसन जमाने के साथ ही मुआविया ने खारजी लोगों के विद्रोह को भी दबाया था। 663 ई० में खारजी-सरदार फखा ने गुफा के निकट विद्रोह कर दिया। अमीर मुआविया ने उसका दमन करने के लिये सेना की एक टुकड़ी भेजी, पर वह टुकड़ी स्वयं पराजित हो गयी। इस हार के बाद मुआविया ने कूफा की जनता के नाम एक खुला पत्र लिखा और यह कहा कि फखा के विद्रोह में उनका भी हाथ है। उसने पत्र में जनता को धमकी देते हुए यह भी कहा कि अगर वे उसे गिरफ्तार नहीं करेंगे तो उन पर आक्रण किया जायेगा। कूफा की जनता ने डर कर फखा को गिरफ्तार करवा दिया। अपने नेता की गिरफ्तारी के बाद भी खारजी मुआविया को शान्ति की नींद सोने नहीं दिये। उन्होंने अब्दुल्ला और हौसनव का नेता चुनकर मुआविया से लड़ने का काम जारी रखा। अन्त में कूफा के गवर्नर मूगीरा ने खारजियों की शक्ति का दमन किया। 665 ई० में एक बार पुनः मस्तूरद की नेतागिरी में खारीजी मुआविया से युद्ध किये। पर उनका यह नेता मारा गया और उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

इस प्रकार मुआविया ने अभियान कार्यों को प्रारम्भ कर आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों का दमन किया और अपनी स्थिति दृढ़ बनाने के साथ-साथ इस्लामी राज्य का विस्तार भी किया। लेकिन मुआविया अभी एक काम नहीं कर सका-

था—उमैय्या वंश का अस्तित्व कायम रखने के लिये अपने पुत्र के राज्यारोहण की घोषणा। अपने उत्तराधिकारी की घोषणा में ही वह वंश के जीवित रहने की झलक देखता था। इस कार्य को भी उसने इसी समय पूरा कर देने का संकल्प लिया।

मुआविया अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इस कार्य में गवर्नर मुगीरा ने उसकी सहायता की और याजीद को उत्तराधिकारी बनाने के लिये उसी ने परामर्श दिया। अबतक खलीफा के पद की पूर्ति निर्वाचन प्रणाली के द्वारा की जाती थी और कोई भी खलीफा अपने उत्तराधिकारी को अभी तक मनोनीत नहीं किया था। मुआविया ने उत्तराधिकारी के प्रश्न को मनोनयन के द्वारा सुलझाकर निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर दिया और इसके साथ जनतंत्रीय प्रणाली भी समाप्त हो गयी। मुआविया ने हसन से समझौता किया था और यह वादा किया था कि उसके भाई हुसेन को खलीफा के पद पर नियुक्त किया जायगा। उत्तराधिकार-निर्णय करना हसन से गद्दारी करनी थी। पर मुआविया ने इन सारी समस्याओं पर सोचना छोड़ दिया। उसने यजीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसके पुत्र को भविष्य में खलीफा के रूप में सर्वप्रथम ईराक और खुरासान के लेफिटनेंट 'बसतादं ने स्वीकार किया। प्रारम्भ में ईराक की जनता ने मुआवजा के इस कार्य को इस्लामी सिद्धान्तों के खिलाफ बतलाया और यजीद को खलीफा मानने से इनकार किया। लेकिन उत्कोच देकर मुआविया ने उन्हें अपना पक्षधर बना लिया। जो लोग यजीद को खलीफा मानने के एकदम विरुद्ध हो गये उन्हें धमकी देकर मुआविया ने अपने पक्ष में कर लिया। सीरिया की जनता ने भी यजीद को उत्ताधिकारी के रूप में स्वीकार लिया।

लेकिन ईराक एवं सीरिया की स्वीकृति मिल जाने से ही यजीद के उत्तराधिकार मनोनयन पर समस्त मुस्लिम अरब की मुहर नहीं लगी। मक्का, मदीना तथा हेज्जाज की जनता का इकरारनामा पाये बिना यह काम पक्का नहीं हो सकता था। अतः मुआविया इस मनोनयन पर धार्मिक मुहर लगाने के लिये मक्का-मदीना की यात्रा पर निकला। यहाँ भी यजीद के उत्तराधिकार को उसने स्वीकार करा लिया। लेकिन चार व्यक्तियों ने यजीद के उत्तराधिकार निर्णय को मानने से इनकार कर दिया। वे थे अली के कनिष्ठ पुत्र हुसेन, उमर के पुत्र अब्दुल्ला, अबू बकर के पुत्र अब्दुर्रहमान और जुबेर के पुत्र अब्दुल्ला। पर इससे अब कुछ होना-जाना नहीं था। सैकड़ों मुसलमानों को मुआविया ने यजीद के पक्ष में रजामन्द कर लिया था।

अरब में उपद्रवों का दमन करके एवं इस्लामी राज्य की सीमा में विस्तार लाकर अब मुआविया ने प्रशासनिक सुधार की ओर ध्यान दिया। वह केवल एक कूशल विजेता ही नहीं था प्रयुक्त सफल शासन-प्रबन्धक भी था।

अपने राज्य के शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये मुआविया ने उसे अनेक भागों में बांट दिया जिसमें निम्नलिखित प्रमुख भाग थे :—(1) सीरिया फिलस्तीन, (2) कुफा (ईराक सहित), (3) बसरा (ईरान, सीजिस्तान, खुरासन,

बहराईन, अमन और नेज्द तथा यमाम सहित, (4) आर्मीनिया, (5) हेज्जाज, (6) करमान और हिन्दुस्तान के सीमान्त के जिले, (7) मिस्र, (8) अफ्रीका और (9) यमन तथा दक्षिण अफ्रीका के अवशेष भाग। धीरे-धीरे मुआविया ने सारे प्रान्तों को भी मिलाकर केवल पाँच प्रान्तों का ही संगठन किया। बसरा और कूफा को मिलाकर ईराक का निर्माण किया गया और कूफा को इसकी राजधानी बनायी गयी। ईराक में ईरान तथा पूर्वी अफ्रीका के भी कुछ हिस्से मिलाये गये। इसी हेज्जाज, यमन तथा मध्य अरेबिया को मिलाकर एक वृहत प्रान्त का निर्माण किया गया। जजीरा, आर्मीनिया, अजरबैजान और पूर्वी एशियामाइनर के कुछ भागों को मिलाकर एक तीसरा प्रान्त बनाया गया। निम्न एवं ऊपरी मिस्र को मिलाकर चौथा और स्पेन, सिसली तथा अन्य प्रायद्वीपों को मिलाकर पाँचवा प्रान्त बनाया गया। इन प्रान्तों के शासन के लिये तीन प्रधान पदाधिकारी नियुक्त किये गये जिनके तीन प्रधान काम थे—शासन तथा सेना का संचालन करना, टैक्स वसूल करना और धर्म का प्रचार करना। इन पदाधिकारियों को 'अमीर' (गवर्नर) कहा गया। गवर्नरों को जिलों में आमिलों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। पर इसके लिये यह आवश्यक था कि वे इस नियुक्ति की खबर खलीफा मुआविया को दे दें। अपने कामों एवं शासन के लिये वे केवल खलीफा के प्रति उत्तरदायी थे।

मुआविया ने टैक्स-संबंधी सुधार भी लाया। लगान-विभाग के लिये अमीर के अतिरिक्त एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति की गयी जो 'साहिब अल खराज' कहलाता था। खिलाफत के समय लगान-प्राप्ति के जो जरिये थे, वे मुआविया के काल में भी कायम रहे। इनमें प्रधान लगान थी प्रधान लोगों द्वारा राज्य को दिया गया धन। स्थानीय शासन के सारे खर्च स्थानीय करों से ही पूरा किये जाते थे। खर्च के उपरान्त जो धन अवशेष रह जाता था, उसे खलीफा के पास भेज दिया जाता था। मुसलमानों को जो भत्ते दिये जाते थे, उनमें से $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत मुआविया ने काट कर राज्य की आय में कुछ वृद्धि कर दी। भूमि पर जजिया टैक्स लगाया गया और उनकी उर्बर शक्ति के अनुसार प्रत्येक खेतिहर से 4, 2 या 1 दिनार लेने का एलान किया गया। पुराने करिन्दे ही कर-वसूली का काम करते रहे। राज्य की आय-वृद्धि का एक स्रोत लूट का धन भी था। मुआविया ने सीरिया, ईराक और उत्तरी अफ्रीका आदि को पद्दलित करते समय उनकी अपार सम्पदा पर भी कब्जा जमा लिया था। हिजरत के समय से इस्लामी राज्य की अर्थ-व्यवस्था का संगठन नहीं किया गया था। मुसलमान यदा कदा अनियमित रूप से ही टैक्स दिया करते थे। मुआविया ने इस अनियमितता को दूर कर वित विभाग को व्यवस्थित किया।

इस काल में न्याय एवं विधि को भी व्यवस्थित किया गया। अबू बकर के काल में केवल मुस्लिम बिरादरी के लिये ही विधियाँ बनी थीं और गैर-मुस्लिम लोगों के झगड़ों का फैसला उनके धार्मिक नेता ही किया करते थे। मुआविया ने अब विधिवत काजियों (न्यायधीशों) को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। फकीर वर्ग के लोग काजी के पद पर नियुक्त किये जाते थे क्योंकि इस वर्ग के लोग अधिक शिक्षित, विद्वान और कुरान के प्रगाढ़ विद्वान होते थे। काजियों की नियुक्ति खलीफा के द्वा

भी होती थी। पर विभिन्न प्रान्तों में गवर्नर ही उनकी नियुक्ति करते थे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि केवल गवर्नर ही न्याय का काम किया करते थे। खलीफा, सेनापति, गवर्नर आदि के अधीन भी न्यायालय थे जो न्याय का काम किया करते थे। काजियों की नियुक्ति के लिये यह आवश्यक था कि वे धर्मशास्त्र एवं विधि का ज्ञान रखें। काजी न्यायतर कार्यों का भी सम्पादन करते थे। धार्मिक संस्थाओं की देख रेख करना, धार्मिक सभाओं का आयोजन करना, यतीमों एवं गरीबों की खबर रखना, पागलों की सहायता करना आदि कार्य भी उन्हें करने पड़ते थे।

मुआविया को ही रजिस्ट्री कार्यालय का निर्माण करने तथा डाक विभाग खोलने का श्रेय प्राप्त है। अल-बरीद (डाक-विभाग) का प्रधान काम रिकार्ड बनाता तथा उन्हें सुरक्षित रखना था। मूल प्रति कहीं भेजने के पूर्व इसकी एक प्रति इस विभाग में रख ली जाती थी। कालान्तर में उमैय्या वंश के शासक अब्दुल मलिक के काल तक इस विभाग में काफी सुधार आया और दमिश्क में इसका प्रधान कार्यालय खोला गया।

(5. सैन्य-संगठन के क्षेत्र में भी मुआविया ने नाम कमाया। किसी भी खलीफा से उसने कम अच्छे ढंग से सेना का संगठन नहीं किया। सीरिया की प्रधान सेना को उसने काफी सुसज्जित एवं संगठित किया। मुआविया की इस सेना के सैनिकों की दक्षता एवं शिष्टता की चर्चा इस काल में अनेक देशों में की जाती थी। उमैय्या सेना में विभिन्न जातियों के सैनिक थे। सेना प्रमुखतः पाँच दस्तों में बँटी थी। आगे चलकर उमैय्या शासक मरवान द्वितीय ने इन सारे भागों को नष्ट कर एक ही दस्ता (Troop)रखा जिसे 'कुर्दूश' कहा गया।

अप्रिल, 600 ई० में मुआविया की मृत्यु हो गयी।

इतिहासकार हिट्टी ने मुआविया को अरब शासकों में पहला शासक माना है जिसने शासन में नयी-नयी विधाओं को लागू किया। इसी इतिहासकार ने उसे अब तक (661 के पूर्व तक) के सर्वश्रेष्ठ शासकों में एक कहा है।[3] वह पहला शासक था जिसने अपने बाहु-बल और कूटनीति से जनता के द्वारा चुने गये खलीफा को परास्त किया था, वह पहला शासक था जिसने प्रचलित शासन को बदल कर अपने वंश का शासन कायम किया और इसी ने शासन में नये-नये सिद्धान्तों को लाकर इस्लाम को एक नये मोड़ पर खड़ा कर दिया। हिजड़ों की सेवा लेना, दरबारियों से घुल-मिलकर रहना, उत्तराधिकारी का मनोनयन करना आदि कुछ ऐसे नये कार्य थे जिनकी शुरूआत मुआविया के काल से ही प्रारम्भ हुई।[4]

---

3. He was not only the first but also, one of the best of Arab kings. —P. K. Hitti, p 198.

4. "He was the first who preached seated to the people, the first who appointed enuchs for his personal service and the first with whom, his courtiers jested familialy.

—Ameer Ali (Quoted) ; pp 81-82.

मुआविया को अरब के सर्वश्रेष्ठ शासकों में स्थान दिया जाता था। इसका कारण यह है कि उसने श्रेष्ठ शासकों की तरह ही इस्लामी राज्य के विस्तार तथा प्रशासन के लिये कार्य किया। उसने बुद्धिमानी से गवर्नर के पद को प्राप्त किया और इस्लाम का विस्तार किया। उसने बिजेन्ताइनों से युद्ध किया और साइप्रस, अनातोलिया- सीरिया, उत्तरी अफ्रीका आदि पर अधिकार किया। उसने राज्य के अन्तर्गत जन्म लेने वाले विद्रोहों का दमन किया। राज्य-विस्तार के बाद उसे प्रशासन को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। केन्द्रीय प्रशासन के सफल संचालन के लिये राज्य को विभिन्न भागों में बाँटकर उनके लिये गवर्नरों की नियुक्ति की। राजस्व-व्यवस्था में सुधार लाया, न्याय एवं विधि के प्रशासन को व्यवस्थित रूप दिया, रजिस्ट्री कार्यालय, डाक विभाग तथा रिकार्ड कार्यालय का निर्माण किया। राज्य के विस्तार तथा संरक्षण के लिये उसने सैनिक संगठन का भी कार्य किया। मुआविया का काल वास्तव में विस्तार तथा शान्ति का काल सिद्ध हुआ। गृह तथा विदेश नीतियों में उसे पूर्णतः सफलता मिली। [5]

अपने चारित्रिक गुणों की प्रखरता के कारण भी मुआविया सर्वश्रेष्ठ शासकों की श्रेणी में आंका जा सकता है। वह सहनशील था, किन्तु महत्वाकांशी शासकों की तरह अपनी योजनाओं तथा प्रशासनिक कार्यों में किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करता था। अमीर अली के शब्दों में "आवश्यकता के समय मुआविया उदार हो जाता था, धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन करता था, पर अपनी योजनाओं तथा महात्वाकांक्षाओं की दुनियाँ में वह बाहरी तत्वों और शक्तियों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था। [6] सच्चे हृदय से वह अपनी प्रजा का शुभ-चिन्तक तथा हितैषी था। वह इस्लाम के विस्तार तथा प्रजा की सुख, शान्ति तथा प्रगति का इच्छुक था तथा इनके लिये सदैव परिश्रम किया करता था। इबादत के बाद प्रतिदिन प्रातः काल में वह राज्य का भ्रमण किया करता था। मसूदी ने उसकी दिनचर्या का उल्लेख किया है जिससे जाहिर होता है कि कुशल शासकों की तरह मुआविया सदैव राज्य-कार्य के सम्पादन में लगा रहता था। राज्य-भ्रमण के उपरान्त वह मंत्रियों को प्रशासन-संबंधी परामर्श देकर जलपान करने बैठ जाता था। जलपान के वक्त ही वह विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों द्वारा अपनी सेवा में लिखे गये राजकीय पत्रों को सुनता था। पत्र पढ़ने का काम उसका एक विशेष सचिव करता था। दोपहर में वह खुद आम इबादत का एलान करता था और सारी

5. On the whole Muawiyah's rule was prosperous and peaceful at home and successful abroad.

—Ibid, p 82.

6. ......Lavishly liberal when necessary, outwardly observant of all religious duties, but never permitting any human or divine ordinances to interfere with the prosecution of his plans or ambitious—such was Muawiyah.

—Idid, p 82.

जमात के साथ मस्जिद में नमाज पढ़ता था। मस्जिद में भी वह समय को व्यर्थ नहीं गँवाता था। वहाँ भी वह लोगों की शिकायतें सुनता था। इसके बाद राज-भवन आकर दरबार के लोगों को अपना दर्शन देता था और तब दिन का भोजन करता था। थोड़ा विश्राम करके वह पुन: संध्याकालीन इबादत की रस्म पूरा करता था और तब पुनः मन्त्रियों को प्रशासन-संबंधी परामर्श दिया करता था। शाम का जलपान वह दरबार में ही कर लेता था और इसके बाद पुन: आम लोगों से मिलता था जो उसका स्वागत करते थे। इस प्रकार मुआविया एक निष्ठावान मुसलमान तथा कुशल शासक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी घबराता नहीं था और क्रोध, अदूरदर्शिता, हठधर्मिता तथा कठोरता को परे हटाकर अपने आपको संतुलित कर लेता था। [7] एक बार मुआविया ने स्वयं यह घोषणा की थी : 'जहाँ मेरा चाबुक पर्याप्त है वहाँ मैं तलवार का प्रयोग नहीं करता हूँ और जहाँ मेरे शब्द ही काफी हैं वहाँ मैं चाबुक को भी प्रयोग में नहीं लाता हूँ।"[8]

कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में मुआविया आलोचना का भी पात्र है। कतिपय बिन्दुओं पर उसकी आलोचना की जाती है। उसके विरूद्ध एक आरोप यह आरोपित किया जाता है कि उसने इस्लाम का शुद्ध धर्म के रूप से परिवर्त्तित कर दिया और उसे धर्म-निरपेक्षता का रूप दे दिया और खिलाफत अल-नबिया (Prophetic) को मूलक (Temporal Severeignty) में बदल दिया।[9] मुहम्मद ने जिस इस्लाम का निरूपण किया था, वह खास रूप में था, अधिक धार्मिक था। उस रूप को, उस कट्टर धार्मिकता को मुआविया ने रहने नहीं दिया। इतिहासकार मुआविया को इस्लाम का प्रथम मलिक (Malik = शासक) मानते हैं। ऐसा कहकर वे मुआविया से घृणा करते हैं और उसकी आलोचना करते हैं। मलिक शब्द से अरब के लोग घृणा करते थे और इसका प्रयोग गैर-अरब शासकों के लिये करते थे। इतिहासकार तबारी ने आलोचनात्मक दृष्टि से ही लिखा है कि मुआविया ने मकसूर (A sort of power inside the mosque reserved for exclusive use of the caliph) का प्रयोग किया और शुक्रवार की दोपहरी नमाज को बैठे-बैठे ही पढ़ने का रिवाज निकाला जो इस्लाम के विरूद्ध है। इब्न खाल्दून ने यह आरोप लगाया है कि मुआविया पहला व्यक्ति था जिसने निर्वाचन पद्धति को समाप्त किया और हजरत अली से गद्दी का अपहरण कर मुहम्मद साहब के नियमों की अवहेलना करते हुए 'शरीर अल्क-मुल्क' (To institute a royal throne) की रचना की। अतः वह इस्लाम का विरोधी था।

---

7. His prudent mildness by which he tried to disarm the enemy and shame the opposition, his slowness to anger and his absolute self control left him under all circumstances master of the situation. —P. K. Hitti, p 187.

8. "I apply not my sword where my lash suffices, nor my lash where my tongue is enough......" —Ibid, (Quoted).

9. Ibid.

किन्तु मुआविया के विरुद्ध लगाये गये ये सारे आरोप सत्य नहीं हैं। सच तो यह है कि वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और मात्र गवर्नर के पद से ही संतुष्ट न था। जिस प्रकार इंग्लैंड में ऑलिवर क्रोमवेल ने और फ्रास में रौबिस्पियर ने अपनी अनन्त महत्वाकांक्षाओं के कारण गद्दी पर अधिकार कर लिया तो इसे बुरा क्यों माना जायेगा ? इतिहास में ऐसी घटनायें घटती रही हैं। इस्लाम के शासन में खान्दानी शासन की परम्परा लाकर भी उसने इस्लाम की अवहेलना नहीं की। मुहम्मद साहब को वह रसूल मानता रहा, इस्लाम का विस्तार भी अपने पूर्ववर्ती खलीफाओं की तरह करता रहा और इस्लामी सभ्यता तथा संस्कृति का भी विस्तार किया। अतः मुस्लिम बिरादरी के लोग भले ही उसकी आलोचना करें, पर इतिहासकारों की दृष्टि में वह भी इस्लाम का सपूत था और कुछ खलीफ़ाओं की तरह सफल खलीफा तथा कुशल प्रशासक भी था। सच तो यह है कि उसने इस्लाम को परिष्कृत किया और उसकी धार्मिक कट्टरता को दूर किया। उसने राजसत्ता पर अधिकार अवश्य किया, किन्तु राजपद को गौरवान्वित करके राजभय का निर्माण किया। सीरिया के लोग उसे एक नेक इन्सान, नेक दिलवाला व्यक्ति मानते हैं। दमिश्क के अलसागीर में बनी उसकी कब्र आज भी हज़ारों लोगों द्वारा पूजी जाती है।

मुआविया के उत्तराधिकारी

मुआविया के निधनोपरान्त जो अमीर खलीफा के पद पर आये उनके यजीद (681-683), मरवान प्रथम (683-685), अब्द अल-मलिक (685-705), अल-वालिद (705-715), सुलेमान (715-717) उमर द्वितीय (717-20), यजीद द्वितीय (720-24) हिशाम (724-43), अल वालिद द्वितीय (743-44), इब्राहिम (744), यज़ीद तृतीय (744) और मरवान द्वितीय (744-750) उल्लेखनीय हैं। इनमें भी अधिकांश शासक केवल नाम मात्र के लिये उल्लेखनीय थे, कुछ ही शासक ऐतिहासिक उपलब्धियों के लिये प्रसिद्ध थे। इनमें अब्द अल-मलिक तथा उसके चार उत्तराधिकारियों के शासन-काल में उमैय्या वंश की शक्ति तथा विकास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।[9] वालिद तथा हिशाम का काल इस्लामी राज्य के विस्तार के दृष्टिकोण से अत्यन्त प्रसिद्ध है। ट्रान्सऑक्सियाना, स्पेन, उत्तरी अफ्रीका के विभिन्न राज्य आदि सब के सब उमैय्या राज्य के अंग बन गये। अतलान्तक से पिरेनीज तक और सिन्धु तथा चीन तक इस्लामी राज्य का विस्तार हो गया। इन शासकों ने प्रशासन का विशुद्ध अरबीकरण भी किया। शुद्ध अरबी मुद्राओं का निर्माण किया गया और विशाल भवनों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया। अतः मुआविया के बाद के कुछ महत्वपूर्ण खलीफाओं की उपलब्धियों का अध्ययन करना आवश्यक है।

---

9. Under Abd-al Malik's rule and that of the four sons who succeeded him the dynasty at Damascus reached the maridian of its power and glory.

—Ibid p 206.

यजीद (681-83)

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि मुआविया ने अपने जीवन-काल में ही अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। अतः मुआविया की मृत्यु के बाद उसका पुत्र यजीद खलीफा (681) बना। यजीद का राज्यारोहण संकट की घड़ियों में हुआ था। इसीलिये उसे चैन की नींद सोने का कभी भी अवसर नहीं मिला और वह अपने शत्रुओं के दमन के लिये सदैव प्रयत्नशील रहा।

यजीद के काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है करबला की लड़ाई। अरब के सारे लोगों ने यजीद की खिलाफत को स्वीकार नहीं किया था। मुआविया ने जब याजीद को खलीफा पद के लिये मनोनीत कर दिया तब हुसेन (अली का छोटा पुत्र), अब्दुला (उमर का पुत्र), अब्दुर्रहमान (अबू बकर का पुत्र) और अब्दुला (जुबैर का पुत्र) ने इस नयी परिपाटी का विरोध किये। इनमें से उमर के पुत्र अब्दुला ने कुछ समय के उपरान्त यजीद को खलीफा पद के लिये स्वीकार कर लिया, किन्तु अन्य तीन निरन्तर उसका विरोध करते रहे। ईराक ने भी यजीद का विरोध किया और मुआविया की मृत्यु होते ही हुसेन को खलीफा पद के लिये दो खलीफा पैदा हो गये। पर एक म्यान में दो तलवारों की जगह नहीं होती है। अब लड़ाई ही निर्णय कर सकती थी कि दोनों में से कौन खलीफा के पद पर बना रहेगा। इसी का परिणाम था करबला का जंग।

यजीद से निपटने के लिये हुसन ने अपनी सेना के साथ कूफा की ओर प्रस्थान किया। कूफा से करीब पच्चीस मील उत्तर-पश्चिम में स्थित करबला में हुसेन की सेना को सेनापति साद के पुत्र उमर ने घेर लिया। उबैदुल्ला इराक का गवर्नर था जिसने हुसेन की सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिये उमर को चार हजार सैनिकों के साथ जाने के लिये आदेश दिया था। हुसेन की सेना 10 अक्टूबर, 680 ई० को घेर ली गयी। उमर के सैनिकों ने हुसेन के सैनिकों को बुरी तरह परास्त किया और उन्हें तलवार के घाट उतार दिया। हुसेन भी लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुआ और उसके सिर को काटकर यजीद के पास भेज दिया गया। यजीद को उस कटे सिर को देखकर पश्चाताप हुआ और उसने उसे हुसेन की बहन और पुत्र के पास भेज दिया। संबंधियों ने करबला में ही हुसेन को दफना दिया। अरब के इतिहास में यह घटना 'करबला की लड़ाई' के नाम से विख्यात है।

करबला की घटना हुसेन की शहादत के कारण मुस्लिम जगत में प्रसिद्ध हो गयी। उमैय्या शासन के लिये यह साधारण-सी घटना हो सकती थी, किन्तु शिया सम्प्रदाय के उत्कर्ष में इस घटना ने आग में घी का काम किया। प्रति वर्ष मुहर्रम के पहले दस दिनों तक शिया धर्मावलम्बी मातम मनाते हैं। करबला में हुसेन की शहादत को अमर बनाने के लिये मकबरा का निर्माण किया गया जो शियाधर्मावलम्बियों को सतत प्रेरणा देता रहा और आज भी दे रहा है। इस घटना के कारण उमैय्या शासन का एक स्थायी शत्रु वर्ग शियाओं के रूप में तैयार हो गया जिसने कालान्तर में उसके पतन में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। कुरान की तरह करबला का स्मरण किया जाता है। करबला के बाद यजीद की खिलाफत कायम हो गयी।

किन्तु यजीद को शीघ्र ही एक नये संकट का सामना करना पड़ा। अब्दुल्ला इब्न-अज-जुबैर (मक्का-निवासी) ने मदीनावालों को भी अपने पक्ष में मिलाकर उमैय्या शासन का विरोध करना प्रारम्भ किया और विद्रोह का शंखनाद कर यजीद को ललकारा। यजीद भी चुपचाप डरकर बैठने वाला व्यक्ति न था। उसने अपने 12,000 सैनिकों को, जो सिर्फ सीरिया के थे, मुस्लिम अल-अकबा के नेतृत्व में जुबैर को सबक सिखलाने के लिये भेज दिया। जुबैर के साथ कुरैश और अंसार थे। 683 ई० में जुबैर के सैनिक बुरी तरह राजकीय सैनिकों के द्वारा पराजित हुए। इस पराजय ने यजीद को निष्कंटक बना दिया और लोग उसकी शक्ति का लोहा मानने लगे। सभी कुरैश और अंसार भी उसे खलीफा मान लिये।

मदीना-फतह के उपरान्त मुस्लिम अल-अकबा ने मक्का की ओर प्रस्थान किया। पर मक्का पहुँचने के पूर्व ही वह चल बसा। उसके उत्तराधिकारी सेना-नायक इब्न नुमेर ने दो महीनों तक मक्का को घेर रखा। किन्तु खलीफा यजीद के स्वर्गवास होने की खबर सुनकर उसने घेरा उठा लिया और राजधानी दमिश्क वापस लौट आया।

यजीद अपने पिता की तरह योग्य शासक नहीं था। यह सही है कि संकट के क्षणों में उसने अपने वंश के शासन को सुरक्षा दी और राज्य के विद्रोह का भी दमन किया, किन्तु वह ऐयाशी तथा कामक शासक था। वह शराब का प्रेमी था, संगीत से मनोरंजन करता था और आमोद प्रदान करनेवाली क्रीड़ाओं का शौकीन था। कहा जाता है कि एक असन्तुष्ट रखैल ने उसकी हत्या (11 नवम्बर, 683 ई०) कर दी।

मुआविया द्वितीय (683 ई०)

मुआविया द्वितीय ने अपने पिता यजीद के मरणोपरान्त खलीफा के पद को संभाला। किन्तु राजसुख का उपभोग करना उसके नसीब में न था और शीघ्र ही वह स्वर्गवासी हो गया। इसके काल से ही उमैय्या शासन पतनोन्मुख हो चला और पतन के चिन्ह प्रकट होने लगे। उत्तरी सीरिया, मेसोपोटामिया तथा ईराक के कबीलों ने विद्रोह कर दिया। उनका विद्रोह अन्त तक कायम रहा।

मरवान (683-85)

मुआविया द्वितीय के बाद हजरत उसमान का चचेरा भाई मुआविया द्वितीय शासन का खलीफा बना। मुआविया द्वितीय एक योग्य उमैय्या था, इस कारण उसे ही खलीफा का पद दे दिया गया। मरवान के गद्दी पर आते ही मरवानी उमैय्या वंश के शासन की स्थापना हुई।

मरवान के शासन ने इस्लाम की प्रतिष्ठा कायम रखी। उसके काल में मिस्र पर अधिकार कायम किया गया। किन्तु इसका काल भी विघटनकारी तत्वों के जन्म का काल सिद्ध हुआ। उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर संघर्ष का वातावरण तैयार हो गया। कुछ लोग यजीद के पुत्र को खलीफा का पद देना चाहते थे

कुछ अब्द, अल-मलिक को खलीफा के पद पर नियुक्त करना चाहते थे जो मरवान का पुत्र था।

मरवान के निधनोपरान्त उसके पुत्र मलिक ने कुछ लम्बे वर्षों(685-705) तक शासन किया। इस शासक को भी आन्तरिक संघर्षों के दौर से गुजरना पड़ा।

मलिक तथा उसके चार पुत्रों (उल-वालिद, सुलेमान, यजीद द्वितीय और हिशाम (705-748) के काल में इस्लामी राज्य का विस्तार अत्यधिक हुआ। इस काल में पूरब के राज्यों की विजय का भार अल-हिज्जाज को और पश्चिमी के राज्यों की विजय का भार मूसा इब्न-नसर को दिया गया

हिज्जात ईराक का गवर्नर था जिसने जुबैर को कुचलकर अपनी योग्यता के पुरस्कार स्वरुप गवर्नर का पद पाया था। इस बहादुर ने सीरिया तथा ईराक के विद्रोहों का दमन किया और पूरब दिशा में इस्लामी राज्य के विस्तार में सफलता प्राप्त की। उसने उमान क्षेत्र को जो फारस की खाड़ी के सामने अवास्थत था, जीत लिया। सिजिस्तान तथा काबुल के गवर्नर खलीफा की संप्रभुता स्वीकार किये और उमैय्या शासक को कर देने लगे। उसने खुरासान पर भी अधिकार कायम कर लिया और उसका दामाद वहाँ का शासक बना दिया गया।

अल-वालिद का काल इस्लामी विस्तार के दृष्किोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस काल में इस्लामी विजेता आक्सस नदी को भी लांघ गये। उसके सेना-नायक कुतयबा ने 705 ई0 में बल्ख पर, 706-09 में बोखरा तथा उसके पाश्ववर्ती प्रदेशों पर और 710-12 में समरकन्द तथा ख्वारिज्म पर अधिकार जमा लिया। कहा जाता है कि वालिद के सैनिक मध्य एशिया पर भी टूट पड़े और फरगना को कब्जे में कर लिये। आक्रमण के दौरान अनेक बौद्धमठों का विध्वंस किया गया और लोगों को मुसलमान बनाया गया।

हिज्जाज के दामाद मुहम्मद इब्न अल-कासिम ने छः सैनिकों के साथ भारत के सिंध प्रदेश पर धावा बोल दिया। सन् 712 ई0 तक मकरान, बलूचिस्तान तथा सिंध के क्षेत्र मुस्लिम आक्रमणकारियों के कब्जे में आ गये। सिंध के क्षेत्र में उनकी सफलता असंदिग्ध रूप में मिली। कासिम ने देवल, निरून, मुल्तान आदि नगरों पर मुसलमानी झण्डा फहरा दिया।

दूसरी तरफ बिजेन्ताइनों से उमैय्या शासन के सैनिक संघर्ष कर रहे थे। इस समय (692 ई0) बिजेन्ताइन सम्राट जस्टिनियन द्वितीय शिथिल पड़ गया और मुसलमानी सेना के द्वारा सैलेशिया में परास्त किया गया। सैनिकों ने कप्पाडोसिया के प्रसिद्ध दुर्ग तवाना पर कब्जा जमा लिया। सेनापति 'मुसलमान' ने सार्डिस तथा पेरगामोस पर अधिकार किया और तदुपरान्त कुस्तुतुनिया को घेर लिया। किन्तु कुस्तुनतुनिया का घेरा उठा लेना पड़ा क्योंकि सैनिकों की खाद्य सामग्रियाँ समाप्त हो गयी और बुल्गारों ने भी आक्रमण कर दिया था। आर्मीनिया पर भी मुसलमानों ने कब्जा जमा लिया।

दूसरी तरफ अरब सेनापति मूसा इब्न- नसर ने पश्चिम में साम्राज्य-विस्तार का कार्य किया। 640-43 में मिश्र को जीत लिया गया और इसके बाद पश्चिम में इफ्रीकिया पर आक्रमण किया गया। सेनापति अकबा ने अफ्रीका में पश्चिम की ओर प्रस्थान किया और अल्जीरिया तक जा पहुँचा। यहीं बिस्करा नगर में अकबा की मृत्यु हो गयी। गवर्नर हसन इब्न अल-नुमान अल-गसानी (693-700) ने इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव जमा लिया। उत्तरी अफ्रीका के समुद्र-तटीय प्रदेशों पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया और अब मूसा यूरोप के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों पर कब्जा जमा सकता था। 711 ई0 में मूसा ने स्पेन में प्रवेश करके इबेरियन प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। किन्तु 732 ई0 में चार्ल्स मार्टेल ने टूर्स तथा प्वयाटियर्स के बीच मुसलमानों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

कथित सन्दर्भों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि उमैय्यों ने इस्लाम का विस्तार करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। मुआविया, यजीद, मलिक और वालिद योग्य शासक थे जिनके नेतृत्व में न केवल अरब प्रायद्वीप के निकटवर्ती राज्य ही बल्कि उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिणी-पश्चिमी यूरोप भी इस्लामी राज्य के अधीन आ गये। अतः राज्य-विस्तार के दृष्टिकोण से उमैय्या काल इस्लाम के इतिहास का एक विशिष्ट काल है।



अध्याय 6

उमैय्याकालीन समाज

(Society under Umayyads)

उमैय्यायुगीन मुस्लिम राज्य की शासन-व्यवस्था का हमने मुआविया की शासन-अवस्था के क्रम में अध्ययन किया है। मुआविया द्वारा स्थापित एवं निर्मित प्रशासनिक अवयव उसके उत्तराधिकारियों के काल में भी कायम रहे और उन्हीं के द्वारा शासन चलता रहा। इस अध्याय में हम इस काल के सामाजिक संगठन का अध्ययन करेंगे।

उमैय्या काल में समाज मुख्यतः चार वर्गों में विभक्त था। वे वर्ग हैं: शासक वर्ग, मवाली, जिम्मी एवं गुलाम। इन सभी वर्गों के लोग अपनी-अपनी आर्थिक क्षमता एवं सुख-सुविधा के अनुसार जीवन-यापन करते थे। इन सभी वर्गों का पृथक-पृथक अध्ययन करना आवश्यक है।

शासक वर्ग

उमैय्या समाज का शीर्ष वर्ग शासकों का था जिनमें खलीफा के परिवार के सदस्य और अरब विजेता शामिल थे। इस वर्ग के लोगों की निश्चित संख्या वतलाना कठिन है। इतिहासकार लौरेन्स के अनुसार वालिद प्रथम के शासन-काल में केवल राजधानी दमिश्क और उसके जिलों में शासक वर्ग के लोगों (मुसलमानों) को वार्षिक वजीफे दिये जाते थे। ऐसे लोगों की संख्या करीब 45,000 थी। इसी प्रकार मरवान प्रथम के समय हुम्स तथा उसके जिलों के पदाधिकारियों को वजीफे दिये जाते थे और इनकी संख्या 20,000 थी। इन्हीं दो विवरणों से स्पष्ट है कि शासक वर्ग में सारे मुसलमान थे जो राजनीतिक अथवा प्रशासनिक शक्ति का उपभोग एवं उपयोग करते थे। निस्संदेह इनकी संख्या अपरिमित रही होगी और इनका जीवन समाज के अन्य लोगों के जीवन से अधिक सुखी और खुशहाल रहा होगा।

शासक वर्ग में खलीफा को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। उसका जीवन मनोरंजनपूर्ण था और दिन-रात वह मनोरंजनकारी प्रसाधनों से आवेष्टित रहता था। मुआविया को जब कभी शासन कार्यों से अवकाश मिलता था, वह किस्सा एवं कविता का श्रवण कर अपना मनोरंजन करता था। इस्लाम के जन्म के पूर्व घटित होनेवाले युद्धों की कहानियाँ सुनने में वह अधिक रूचि दिखलाता था। यमन से उसने एक कहानीकार आबीद इब्न शरया को दमिश्क बुलाकर उससे पौराणिक वीरों की कहानियों को अनेक रातों सुना। कहानी सुनने वालों की जमात भी खलीफा के आस-पास बैठी रहती थी। जमात के लोगों को गुलाब का शर्बत पिलाया जाता था और यह रस्म दमिश्क में आज तक प्रचलित है। पूर्वी शहरों में भी यह रिवाज अभी तक कायम है।

अमीर मुआविया के उत्तराधिकारियों का जीवन अत्यन्त विलासपूर्ण रहा। यजीद प्रथम ने शराब का प्रचार किया और उसके द्वारा प्रचार किया शराब पीने का फैशन पश्चातकालीन खलीफाओं के काल में भी प्रचलित रहा। यजीद प्रथम इस युग का असाधारण शराबी था। लोग उसे 'यजीद-अल-खुमार' (Yazid of wines) कहकर पुकारते थे।[1] शराब पीने के समय उसका साथ उसका बन्दर, जिसका नाम अबू-कैस था, देता था। कहानी के अनुसार यजीद प्रतिदिन, वालिद प्रथम हर दूसरे दिन, हिशाम प्रत्येक शुक्रवार को और अब्दअल-मलिक एक महीना में एक बार शराब पीते थे। शराब के नशें में खलीफा जीवन-मरण को भुल जाते थे। यजीद द्वितीय गायिका हबाब की मृत्यु के बाद शराब के नशे में इतना उत्तेजित हुआ कि उसने जान दे दी।[2] वालिद ने शराब के नशे में चूर होकर कुरान को अनेक टुकड़ों में फाड़कर फेंक दिया था। शराब की यह फिजा इस बात का सबूत है कि शासक वर्ग विलासी थे और और आनन्द की खोज में शराब की बोतल थामते थे।

ऐसे विलासपूर्ण वातावरण में संगीत, नृत्य आदि का प्रचलन होता स्वाभाविक था। शराब ने भले ही खलीफाओं में अनैतिकता का संचार किया, पर दूसरी तरफ संगीत एवं नृत्य कला का भी विकास हुआ। वालिद द्वितीय के काल में संगीत की दुनियाँ सिमटकर दमिश्क आ बसी थी। संगीत के आयोजन एवं नृत्य के प्रदर्शन में इस खलीफा ने जनता का धन पानी की तरह बहाया।

खलीफाओं तथा उसके दरबारियों के अन्य मनोरंजनकारी साधन भी थे जिनमें शिकार, घुड़सवारी और पासा-क्रीड़ा अधिक महत्त्वपूर्ण थे। उमैय्या शासन के अन्तिम वर्षों में ईरान में से मुसलमान पोलो खेलने की विधि सीखे। अब्बासी शासकों के काल में पोलो का खेल सर्वाधिक प्रिय हुआ। शिकार करना उमैय्या शासकों को अत्यन्त भाता था। यजीद प्रथम केवल असाधारण शराबी ही नहीं, प्रत्युत कुशल शिकारी था। इस्लामी शासकों में वह पहला शासक था जिसने चीता को घोड़े के चूतड़ पर चढ़ने में प्रशिक्षित किया। उसने अपने सारे शिकारी कुत्तों के पैरों में नुपुर पहनाया और प्रत्येक कुत्ता की सेवा के लिये एक-एक गुलाम नियुक्त किया। फखरी के अनुसार घुड़सवारी उमैय्या शासकों को अत्यधिक पसन्द थी। वालिद (अब्द-अल-मलिक का पुत्र) ने सर्वप्रथम सार्वजनिक घुड़दौड़ की प्रथा प्रारम्भ की। उसका भाई और उत्तराधिकारी सुलेमान घुड़दौड़ में और भी दिलचस्पी लेता था। एक बार उसने घुड़दौड़ की राष्ट्रीय प्रतियोगिता की जिसमें उसकी जान चली गयी।[3] हिशाम ने 4000 घोड़ों को रखने की व्यवस्था की थी और एक बार सारे घोड़ों को दौड़ के लिये आयोजन किया था। उसकी पुत्री भी घुड़सवारी करने का आनन्द उठाती थी। मुर्गों की लड़ाई भी इस काल में प्रचलित थी। वालिद प्रथम और उमर द्वितीय अपने शासन काल में इसे बन्द करा दिये थे।

1. यजीद और जहाँगीर मुसलमानों में पक्के शराबी माने जाते हैं।

2. P. K. Hitti, p 208

3. Ibn al-Jawazi; Sirat Umar, p 56.

शासक वर्ग के परिधान बेशकीमती होते थे। विपुल धनराशि का स्वामी होने के कारण इस वर्ग के लोग आसानी से अच्छे-अच्छे परिधान खरीदने में समर्थ थे। वालिद द्वितीय धाघरेदार लम्बा कुरता पहना करता था जिनके किनारों पर स्वर्ण की जड़ायी की गयी रहती थी। बेल-बूटे खचित पायजामा भी वह धारण करता था। सुलेमान का पायजामा भी कीमती होता था। अन्य पदाधिकारी के परिधान भी कीमती एवं आकर्षक होते थे।

शासक वर्ग प्रायः शहरों में निवास करते थे। इसीलिये अपनी सुख-सुविधा के लिये उन्होंने शहरों में सारा प्रबन्ध कर लिया था। दमिश्क, हुम्स, अलप्पो आदि शहर शासक वर्ग के लोगों से भरे रहते थे। सिल्क का परिधान पहनकर घोड़ों की पीठ पर बैठते हुए इन शहरों की गलियों में, विशेषकर दमिश्क में, इन्हें कभी भी इस काल में देखा जा सकता था। शर्बत और मिष्ठान्न बेचने वालों की आवाज भी इन गलियों में गुंजती रहती थीं और वे सम्पन्न लोगों के घरों में चले जाते थे। दमिश्क में पानी का सुन्दर प्रबन्ध था। शहर की सात नहरों में सतत सलिल धारा बहती रहती थी। खलीफाओं तथा अन्य शासक वर्ग के लोगों के भवन इन शहरों में आसमान को छूते थे। इन भवनों में, विशेषकर राजभवन में, स्वर्ण एवं संगमर्मर के काम लिये रहते थे। सतहों एवं दीवारों पर बेशकीमती पत्थर जोड़े गये थे। सुनहले एवं उजले रंगों से छतों की निचली सतहों को रंगकर आकर्षक बनाया जाता था। वाटिकाओं में पक्षी हमेशा कलरव करते रहते थे।

संक्षेप में शासक वर्ग के लोग सुखी थे। उनका जीवन ऐश-आराम में लगा रहता था। उनके पास निवास करने के लिये विशाल अट्टालिकाएँ थीं, भोजन करने के लिये सर्वोत्तम खाद्य-सामग्रियाँ थीं और पहनने को कीमती तथा आकर्षक परिधान थे।

मवाली

उमैय्या समाज में दूसरा वर्ग मवालियों का था। ये नये मुसलमान थे जो इस काल में या इससे पूर्व ही इस्लाम स्वीकार कर लिये थे। उमैय्या समाज में इन्हें वे सारे अधिकार प्राप्त थे जो इस्लामी शहरियों को प्राप्त थे। लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण से युद्ध-बन्दी और पुरुष, औरतें और शिशु सबके सब दास बना लिये जाते थे। धीरे-धीरे सम्पूर्ण मुस्लिम जगत में दासों का व्यापार चलने लगा। इस्लामी राज्य जैसे-जैसे विस्तृत होता गया, गुलामों की संख्या में वैसे-वैसे वृद्धि होती गयी।

वे गुलाम एक देश का न होकर विभिन्न देशों के होते थे। इसलिए उनकी शारीरिक बनावट, रंग एवं कीमतें अलग-अलग होती थीं। पूरब या मध्य अफ्रीका के गुलाम काले होते थे। इसी प्रकार फरगना तथा चीन के गुलामों का रंग पीला होता था। निकट-पूर्व और पूर्वी-दक्षिणी यूरोप के देशों के गुलाम उजले होते थे। इसी प्रकार इन गुलामों की कीमतें भी भिन्न-भिन्न होती थीं। स्पेन का एक गुलाम एक हजार दिनार पर बिकता था और एक तुर्की गुलाम की कीमत केवल छः सौ दिनार

थी। इस्लाम के अनुसार अगर एक गुलाम औरत एक गुलाम मर्द या अपने पति को छोड़कर किसी अन्य मर्द के सहवास से बच्चा पैदा करती थी तो वह बच्चा भी गुलाम ही होता था। अगर एक गुलाम मर्द के सहवास में आकर कोई गैर-गुलाम औरत बच्चा पैदा करती थी तो वह बच्चा गुलाम नहीं माना जाता था।

उमैय्या शासकों और राजकुमारों के पास हजारों-हजार गुलाम थे जो सेवा-कार्य में लगे रहते थे। इब्न अल आथीर ने लिखा है कि मूसा इब्न नुसायर को अफ्रीकिया से 3,00,000 गुलाम मिले थे जिनमे से 60,000 गुलाम उसने वालिद को दे दिया था। स्पेन से वह 30,000 कुमारियों को पकड़ लाया था और वे सभी गुलाम बना डाली गयी थी। सोगदियाना से कुर्तवा ने 1,00,000 लोगों को बन्दी बनाकर गुलाम बनाया था। मक्का के निवासियों को सारे अधिकार उपलब्ध नहीं थे। प्रायः जमीन्दारों को समस्त उमैय्या शासकों के काल में खिराज (Land Tax) देना पड़ता था, चाहे वे इस्लाम के अनुयायी हो या किसी अन्य धर्म के। खलीफा उमर-बिन-अब्दुल अजीज से पहले इस्लाम मानने वाले मुसलमानों की काफी संख्या नहीं थी और उसने मावलियों से भी खिराज लेना बन्द कर दिया था। इन मावलियों में इस्लाम के प्रति सच्ची श्रद्धा की भावना थी और कोई-कोई मवाली तो खलीफा से भी अधिक धार्मिक हृदय रखता था।

सांस्कृति के क्षेत्र में भी नये मुसलमान प्रगति किये थे। इनमें अधिकांशतः यहूदी और नसरानी थे और इन जातियों ने बहुत पहले ही शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में उन्नति कर ली थी। इसलिए जब इस्लामी समाज में उनका समावेश हुआ तब उन्होंने सबसे पहले इस्लामी कला तथा शिक्षा का काफी विकास किया। जब सांस्कृतिक क्षेत्र में इनकी महत्ता कायम हो गयी तब प्रशासन तथा राजनीति में अपने-आप इनकी पूछ होने लगी। इस काल में समाज तथा राजनीति में इनकी मान-मर्यादा काफी बढ़ी और राजनीति में भी वे भाग लेने लगे। इस्लामी समाज में शादी करके उन्होंने मुसलमानों में अपना पूर्ण विलयन कर दिया और इस प्रकार उनकी नसली (Superiminence) भी समाप्त हो गयी।[4] स्पष्ट है कि सारे अधिकारों का व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपयोग न करके भी मवाली इस्लामी समाज में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिये थे।

जिम्मी

उमैय्या समाज का तीसरा वर्ग जिम्मी (Dhimis) कहलाता था। जिम्मियों के संरक्षण का सारा उत्तरदायित्व खलीफाओं पर निर्भर करता था। खलीफाओं की कृपा पर जिम्मी जीते-मरते थे। यही कारण था कि उनकी कृपा पाने के लिए जिम्मी आतुर रहा करते थे। इस वर्ग में दूसरे धर्मों के मानने वाले, विशेषतः ईसाई, यहूदी और साबिनयस आदि शामिल थे। जिम्मी वे लोग थे जो मुसलमान नहीं थे, पर मुसलमानों से संधि कर लेते थे और मुसलमान शासक उनकी रक्षा का दायित्व लेते थे। उसके बदले वे मुसलमान शासक को निश्चित कर देते थे।

4. P. K. Hitti, pp 232-33.

पहले के पैगम्बरों द्वारा संस्थापित धर्मों को जिम्मी मानते थे। कुरान में इनका उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। इसलिए ऐसी आशा की जाती है कि पैगम्बर मुहम्मद इन जिम्मियों को खुदा का भक्त और उपासक मानते होंगे।

मुसलमानों को निश्चिंत कर देकर जिम्मी अपनी सुरक्षा खरीद लेते थे। मुस्लिम शासक उन्हें अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताएँ भी प्रदान किये थे। अपने फौजदारी और दीवानी झगड़ों का न्याय भी उनके धार्मिक प्रदर्शक करते थे। मुस्लिम काजियोंके निर्णय की उन्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। इस तरह उन्हें न्याय में भी सुविधाएँ प्राप्त थीं। प्रारम्भ में यह सुविधा उनलोगों तक ही सीमित थी जिन्हें कुरान में 'किताब वाला" (Ahl al-kitab) कहा गया है। पर शीघ्र ही अग्नि के उपासकों, मूर्तिपूजकों आदि को ये सुविधायें दी गयी। इस तरह उमैय्या समाज में जिम्मी कथित सुविधाओं का उपयोग करते हुए अच्छे ढंग से जीवन-यापन कर रहे थे। इस्लामी राज्य को भी इनसे अच्छी आय हो जाती थी और दूसरे मुसलमान न होकर भी वे इस्लाम की संप्रभुता स्वीकार किये हुए थे।

लेकिन जिम्मियों को ये सारी सुविधायें सदैव उपयोग करने का अवसर नहीं मिला। उमर द्वितीय ने एक नियम (Covenant) निकालकर विभिन्न धर्मावलम्बियों की सुविधाओं का अपहरण कर लिया। यह पहला और अकेला खलीफा था जिसने ईसाई जनता पर अपमानजनक नियन्त्रण को लागू किया।[5] उसने सार्वजनिक सरकारी कार्यालयों से ईसाई जनता को निकाल बाहर किया, उन्हें पगड़ी धारण करने की मनाही कर दी, सिर के आगे का बाल काटने का नियम बनाया, चमड़े की करधनी को कमर में लपेटकर एक विशेष प्रकार का वस्त्र पहनने का नियम निकाला और बिना जीन के घोड़ों पर चढ़ने का आदेश दिया। इतना ही नहीं, उमर के नियमों को मानकर अब वे पूजा के लिये मन्दिर का निर्माण नहीं कर सकते थे और न पूजा के समय जोर से आवाज निकाल सकते थे। उसकी घोषणा के अनुसार अगर एक मुसलमान किसी ईसाई को जान से मार डालता था तो उसे केवल अर्थ-दण्ड का भागी होना पड़ता था। ईसाई की दरखास्त की सुनवाई हत्यारे के खिलाफ अदालत में कभी नहीं हो सकती थी। यहूदियों पर भी ये सारे सरकारी नियन्त्रण कायम थे और उन्हें भी सरकारी कार्यालयों से बाहर निकाला गया।[6]

लेकिन जिम्मियों की यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रही। हिशाम के काल में ईराक के गवर्नर खालिद इब्न-अब्दुला अल-कासरी ने ईसाइयों को प्रसन्न करने के लिये कूफा में एक गिरजाघर का निर्माण किया। ईसाइयों तथा यहूदियों को पुनः पूजा के लिये भवनों का निर्माण करने का अधिकार दिया और जरथुष्ट्र धर्मावलम्बियों को भी शासन के पदों पर नियुक्त किया।[7]

---

5. al-Ibashini; al-Mustatraf, vol, I, pp. 100-101.

6. Abu Yusuf; Kharaj, pp. 152-53.

7. A. S. Tritton; the Caliphs and their non-Muslim Subject pp. 5, 35.

गुलाम

उमैय्या समाज का निम्नतर वर्ग गुलामों का था। इस्लाम ने गुलामी का अन्त तो नहीं किया, पर गुलामों में सुधार लाने का महत्त्वपूर्ण कदम अवश्य उठाया। इस्लाम ने अपने मुसलमानों को दास बनाने से मनाही की है, लेकिन उन विदेशी गुलामों को आजाद भी नहीं करता है जो इस्लाम स्वीकार कर लेते हैं। युद्ध में जो लोग बन्दी बनाये जाते थे उन्हें दास बनाकर बेच दिया जाता था। युद्ध में शायर उमर इब्न अबी-रबी की सेना में 70 से भी अधिक गुलाम थे। एक उमैय्या राजकुमार की सेवा में एक हजार से कम गुलाम नहीं रहते थे।

परिवार का स्वामी एक गुलाम औरत को रखैल के रूप में रख सकता था, लेकिन उसे उससे विवाह करने की आजादी नहीं थी। रखैल के बच्चे गुलाम नहीं होते थे और उसपर उनके पिता का अधिकार होता था। लेकिन उस रखैल का सामाजिक स्तर ऊँचा हो जाता था। उसकी बिक्री नहीं होती थी और मरने के समय वह गुलामी से मुक्त की जाती थी। गुलामों को मुक्ति देना एक अच्छा काम समझा जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि मुक्तिदाता को जन्नत में इनाम मिलता है। मुक्ति-प्राप्त गुलाम की स्थिति किसी जिम्मी से कम ऊँची नहीं मानी जाती थी। स्पष्ट है कि उमैय्या समाज में गुलामों की स्थिति भी अधिक असन्तोषप्रद नहीं थी। उनका जीवन भी सुखी था। उनके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप यही था कि वे गुलामी की जंजीर में जकड़े रहते थे। पर जीवन की अन्य सारी सुविधायें उन्हें प्राप्त थीं।

उमैय्याकालीन सामाजिक वर्गों के लोगों के जीवन का अध्ययन करने से स्पष्ट पता चलता है कि राज्य में सम्पत्ति की गंगा बह रही थी और समाज आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न एवं स्वतन्त्र था। ऐसे वातावरण में सामाजिक जीवन में विलासिता का आगमन स्वाभाविक ही था।

नगर-समाज

इस सम्पन्नता ने विभिन्न नगरों की प्रगति में अभूतपूर्व सहयोग दिया। इस काल में मक्का तथा मदीना की काफी प्रगति हुई और दौलतमन्द लोगों का यहाँ जमाव होने लगा। ऐसे लोगों का इन शहरों में निवास होने के कारण यहाँ विशाल अट्टालिकाओं का निर्माण किया गया और प्रत्येक प्रकार के विलासप्रिय साधन जुटाये गये। मदीना की प्रतिष्ठा इस युग में काफी बढ़ी। पैगम्बर मुहम्मद साहब को इसी नगर में दफनाया गया था, इसलिये सर्वप्रथम इसका विकास होना स्वाभाविक ही था। इस्लामी नियमन और इस्लामी परम्परा की स्थापना सर्वप्रथम इसी नगर में की गयी। अनास-इब्न-मलिक, अब्दुल इब्न-उमर, इब्न-अल-खत्ताब[8] आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों ने यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया। उनके प्रयास से

---

8. Cambridge History of Islam, p 199
खत्ताब द्वितीय खलीफा उमर का पुत्र था।

मदीना में विज्ञान की अभूतपूर्व उन्नति हुई। मक्का का प्रसिद्ध व्यक्ति अब्दुल्ला-इब्न-अल-अब्बास था जिसे 'अबू-अल-अब्बास' कहा जाता था। वह पैगम्बर मुहम्मद का चचेरा भाई था और अब्बासी खलीफाओं का पूर्वज। इस्लामी कानून एवं कुरान की जानकारी उससे अधिक अन्य किसी को नहीं थी। उसने हदीसों की रचना करके अपनी विद्वता की धाक जमायी थी। हेज्जाज के इन दोनों शहरों की इस काल में काया पलट हो गयी। राजनीति से मदीना के लोग दूर रहकर अब कला एवं संस्कृत का विकास करने लगे। हसन और हुसैन तथा अन्य दौलतमन्द लोगों ने यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया। शहरों के अन्दर विशाल भवन एवं बाहर भव्य दुर्ग बनाये गये। धनी मदीना के सारे लोग विलासिता के सागर में डूब गये। मदीना की नकल मक्का ने भी की और यहाँ के लोग भी विलासी होने लगे। धर्म-यात्रियों ने इन शहरों की यात्रा करना प्रारम्भ किया और उनके पैसों ने उनकी विलासिता की वृद्धि में काफी सहयोग दिया। पर प्रचुर धन की वृद्धि ने इन शहरों की पवित्रता को समाप्त कर दिया। संसारिक सुखों एवं विलासिता में यहाँ के निवासी लिप्त रहने लगे और गान एवं संगीत के लय यहाँ की गलियों में सुने जाने लगे।[9] बाहर से आने वाले धर्म-यात्रियों के चलते मदीना में आमोद भवन बनाये गये। ईरान तथा सीरिया के अनेक लोग मक्का में आकर निवास करने लगे और उनके द्वारा यहाँ काव्य-साहित्य का विकास किया गया। गुलाम औरतों ने मक्का के धनी लोगों का मनोरंजन गान के द्वारा करना प्रारम्भ किया। भड़कीली एवं भव्य पोशाकों में सुसज्जित इन औरतों ने धनिकों की यौन-भावना को भी काफी उभाड़ा और अनेक कामुक व्यक्ति इन्हें रखैल के रूप में भी रखने लगे। सुगंधित इत्रों एवं शराबों से यहाँ का वातावरण मादक रहने लगा।

मक्का तथा मदीना में कुछ ऐसी भी मुस्लिम महिलायें थीं जो समाज की सम्पन्नता तथा काल की कलात्मक उन्नति को जाहिर करती हैं। सईदा सकीना इस काल की प्रसिद्ध महिला थी जो अपनी सुन्दरता, बुद्धिमत्ता एवं चतुरता के लिये प्रसिद्ध थी। यह शहीद हुसैन की पुत्री और अली की पौत्री थी। इसके निवास-स्थल पर विद्वानों एवं कवियों की जमघट लगी रहती थी। उम्मूल बानीन, जो वालीद प्रथम की बेगम और उमर द्वितीय की बेटी थी, इसकी दूसरी लब्ध-प्रतिष्ठ औरत थी। अपने पति पर इसका काफी प्रभाव था और जनता के कल्याण के लिये वह उसे प्रेरित करती रहती थी। हेज्जाज में एक बार उसने विद्वतापूर्ण भाषण दिया था जो आज भी इतिहास में प्रसिद्ध है। रबिया इस युग में अपनी धार्मिकता के लिये विख्यात थी और 'अच्छाइयों की माता' कही जाती थी। जेरूसलेम की 'तोर' नामक पहाड़ी पर इसकी कब्र आज भी द्रष्टव्य है। आयशा की प्रसिद्धि भी कम न थी। इसके पिता पैगम्बर मुहम्मद के विशिष्ट मित्र थे और उसकी माँ अबू

---

9. With this increased flow of wealth the two Holy cities became less holy. They developed into a centre of worldly pleasure and gaiety and a home of secular Arab music and song.

—p.K. Hitti, p 237.

बकर की पुत्री और इसकी बहन पैगम्बर की बेगम थी। यह तलहा की पुत्री आनी सुन्दरता एवं मधुर भाषण के लिये प्रसिद्ध थी। जब कभी वह आम लोगों के बीच आती थी, उसका प्रभाव उन पर सकीना से अधिक पड़ने लगता था। अपने जीवन में उसने तीन शादियाँ की थीं। सकीना का पति मूसा-इब्न-अज जुबैर ही इसका पति था और दोनों महिलाओं में काफी प्रतिस्पर्द्धा थी। महिला जगत का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उमैय्या काल में समाज का प्रत्येक भाग सुखी एवं सम्पन्न था। चतुर्दिक विलासप्रिय प्रसाधनों की प्रचुरता थी और शराब की मदाकता तथा संगीत की मधुरता से सारा वातावरण रंगीन एवं आकर्षक नजर आता था। शराब लोगों का शरीर थी, संगीत उनकी आत्मा और विलासिता उनकी सन्तानें। 10

---

10. "Wine is as the body; music as the soul, and joy is their off-spring"

—Famer; Arabian Music; p 24.

अध्याय—7

उमैय्याकालीन संस्कृति
(Culture Under Umayyad)

उमैय्या काल का सांस्कृतिक विकास इस्लामी इतिहास की एक अमूल्य निधि है। इस्लामी राज्य संप्रभु उमैय्या थे, उनका सांस्कृतिक विकास केवल उमैय्या विद्वानों के प्रयास से ही नहीं हुआ प्रत्युत अनेक जातियों के प्रयास से ही यह संभव हो सका। ईरानी, अरबी, इस्लामी सीरियन आदि सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का समन्वय इस काल में हुआ और सभी सभ्यताएँ मिलकर अरबी सभ्यता कहलायीं। हाँ, उमैय्या काल में यह सभ्यता अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। इतिहासकार बैरोन कारा डि वॉक्स ने लिखा है कि अरबों ने उच्चतर बौद्धिक जीवन और विज्ञान के अध्ययन को उस युग में जीवित रखा जबकि पश्चिम ईसाई जगत बर्बरता से युद्ध करने में भयंकर रूप से व्यस्त था। उनका यह कार्य 9 वीं एवं 10वीं शताब्दी में पराकाष्ठा पर पहुँच गया।"[1] खिलाफते राशिदा (खुलफा-ए-राशिदीन) के काल में ही सांस्कृतिक विकास का बीजारोपण हुआ था जो उमैय्या काल में विकसित होकर बढ़ने लगा और अब्बासी काल में एक विशाल वृक्ष के रूप में प्रकट हुआ।

उमैय्या काल में संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में हुए विकास को निम्नलिखित सन्दर्भों में देखा जा सकता है :

काव्य

इस्लाम के आविर्भाव के पूर्व भी अरबों ने काव्य-कला का विकास किया था। सच तो यह है कि यही एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें वे सफल हुए थे। काव्य और कवि उनके जीवन के प्रमुख अंग बन गये थे। लेकिन काव्य-कला के विकास की यह सरिता निरन्तर प्रवाहित न हो सकी। इसका विकास इस्लाम के उदय-काल से लेकर उमैय्या काल के आविर्भाव तक स्थगित हो गया। मुहम्मद साहब काव्य-कला के उत्कर्ष के विरोधी थे। वे कुरान में इस बात की चर्चा किये कि कवि निरुद्देश्य भटकते हैं और उनके जीवन का (काव्य की) झूठी कल्पना से सम्पर्क है, न कि जीवन की सच्चाई से। वे ऐसी बातें करते हैं जो निरर्थक हैं। फलतः खिलाफते रशिदा तक काव्य-कला का बीज अँकुरित होकर ही रह गया और पनप कर वृद्धि नहीं कर सका।

---

1. The Arabs kept alive the higher intellectual life and the study of science in a period when the Christian West was fighting desperately with barbarism. The zenith of their activity may be placed in the ninth and tenth centuries.

—H. G. Wells; The Outline of History, p. 62.

जैसे ही उमैय्या काल आया, काव्य का अंकुरित बीज पौधे के रूप में बढ़ने लगा। उमैय्या समाज आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न था और प्रारम्भ में ही उमैय्या शासन की जड़ को दृढ़ बनाने के लिये मुआविया जैसे सफल अमीर का आविर्भाव हो गया था। ऐसे सफल समाज के निवासियों एवं खलीफाओं के जीवन में रंगीनियों का होना स्वाभाविक था। फलतः इस काल में शराब, संगीत एवं कविता ने सारी फिजा को मादक बना दिया। मुआविया स्वयं काव्य-प्रेमी था और कविता-श्रवण का उसे अपार शौक था। उसका पुत्र अमीर यजीद तथा अन्य पश्चातकालीन खलीफा कविता के साथ शराब का भी रसास्वादन करने लगे और शराब ने संगीत, नृत्य तथा कविता के उत्तरोत्तर विकास के लिये स्वाभाविक पृष्ठभूमि का निर्माण किया। उमैय्याकालीन समृद्धशाली वातावरण में एक बार पुनः काव्य-पौध को पल्लवित और संवर्द्धित होने का अवसर मिला।

उमैय्या काल में काव्य के तीन रूप विकसित हुए—प्रेम-परक काव्य, राजनीतिक-परक काव्य और प्रान्त-परक काव्य।

अरबी काव्य में पहली बार प्रेम-काव्य (Love Poetry) की रचना की गयी। इस समय पश्चिमी जगत प्रेम-काव्य से अपरिचित था, लेकिन उमैय्या का राज्य इसका चरमोत्कर्ष विकास कर चुका था। प्रेम-काव्य का ही दूसरा नाम गजल है। इस युग का पहला और प्रसिद्ध प्रेम-गीत लिखने वाला कवि उमर इब्न-इबी रबिया था। उसकी कविताओं में प्रेम-रस से सराबोर भावनाओं एवं उत्साह की झलक दिखलायी पड़ती है। वह केवल गजल लिखने में ही पारंगत नहीं था बल्कि प्रेम करने में भी उस्ताद था। मक्का-मदीना में तीर्थयात्रा पर आने वाली युवतियों से वह प्रेम करने की फिराक में रहता था। यही नहीं, सकीना जैसी सुन्दर महिला का प्यार पाने के लिये भी वह प्रयास करता था।[2] उसकी उद्दाम भावना और अतृप्त भूख की झलक उसकी कविताओं में देखने को मिलती है। स्पष्टतः उसकी सारी कविताओं में स्वच्छन्द प्यार का मनुहार है। यह कुरैश कबीला का कवि था।

जमील इस काल का दूसरा शायर था जो शुद्ध एवं सरल प्रेम-गीत लिखने में सिद्धहस्त था। यमन उसकी जन्मभूमि थी और ईसाई उसकी जाति। पर यमन को छोड़कर वह हैज्जाज में आकर बस गया था। वह अपने ही कबीले की एक युवती 'सुबनिया' से प्रेम करता था। इसीलिये उसकी अधिकतर कवितायें इस प्रेमिका को संबोधित करके लिखी गयी हैं अरब के गवैये प्रेम-भावना से ओत-प्रोत उसकी कविताओं को बड़े लय से गाते हैं।

---

2. Ibn-Qutaybah; Shir, p 349.

कैस (मजनूं) इस युग का पागल प्रेमी था। यह 'मजनू-लैला' के नाम से विख्यात था, पर इसका मूल नाम कैस इब्न-अल मुलाव्वा था।[3] वह गेय गीत का कवि था। अपने ही कबीले की लैला नामक युवती से वह अगाध प्रेम करता था। किंवदन्ती है कि कैस अपनी प्रेमिका के प्रेम की प्राप्ति में पागल हो गया और लोगों ने उसे 'मजनूं' कहना प्रारम्भ किया। लैला के पिता ने उसकी शादी एक अन्य व्यक्ति से कर दी। कैस इस आघात को सहन न कर सका और मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो गया। अपनी प्रेमिका की शादी हो जाने के बाद पागल की दशा में मजनूं अपने जीवन के अवशेष दिन अर्द्ध-नग्न होकर घाटियों एवं पहाड़ों पर घूमते हुए गुजार दिया। अपने जन्म-स्थल नेज्द में अपनी प्रेमिका की एक झलक देखने के लिये वह कभी-कभी गीत गाते हुए दिखाई पड़ता था। उस समय लैला-मजनूं असंख्य अरबी, फारसी तथा तुर्की कहानियों का विषय बन गये। उनकी कहानियाँ आज भी विश्व के देशों में कही-सुनी जाती हैं।

प्रेम-गीत के अतिरिक्त इस युग में राजनीतिक भी रचे गये। ऐसे गीतों की रचना सर्वप्रथम याजीद के काल में हुई। जब मुआविया ने याजीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तब कवि मिस्कीन उद-दारमी को इस अवसर पर एक गीत की रचना करने का आग्रह किया गया। कवि ने आग्रह स्वीकार कर सभा-स्थल पर उपस्थित उमैय्यों को एक कविता सुनायी।[4]

इस काल में हम्माद अल-रविय्या ने इस्लाम के पूर्व रचे गये गीतों का संकलन किया। हम्माद कूफा में पैदा हुआ था। उसे अरबी भाषा का काफी ज्ञान था। वालिद द्वितीय के काल में जाहिलियत काल की कविता का पाठ करने पर उसने खलीफा से एक लाख दरहम पुरस्कार के रूप में पाया था। हम्माद की सबसे बड़ी देन उसका काव्य-संकलन है जो 'मुलाकात' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस काल में प्रादेशिक कविता का संसार भी विस्तृत हुआ। इस क्षेत्र के कवि थे अखतल, फरजदक और जहीर जो ईराक के निवासी थे। इन्होंने कसीदा (Odes) और हिज्व (Satire) दोनों की रचना की।

अखतल समस्त इस्लामी कवियों में प्रथम माना जाता है। संभवतः यह मुआविया का दरबारी कवि था। वह ईसाई धर्म का अनुयायी था और उमैय्या वंश का समर्थक।[5] उसकी कवितायें अनेक अनुबंधों की होतीं थीं। भाषा की शुद्धता एवं शैली की सटीकता उसकी कविता की विशेषताएँ थी।

फर्जदक अब्द-अल, मलिक का दरबारी कवि था। मलिक के बाद वह वालिद, सुलेमान और यजीद द्वितीय के दरबार में भी रहा। फर्जदक और जहीर में प्रतियोगिता रहती थी और दोनों अपनी कविताओं में एक दूसरे के लिये कड़वे शब्दों का प्रयोग करते थे। दोनों कसीदा और हिज्व लिखने में सिद्धहस्त थे।

---

3. Al-Kutubi; Fawat al-Wafayat, p 172.
4. Ibn Qutaybah, p 347.
5. Ibid pp. 301-4

जहीर अपने काल का सबसे बड़ा व्यंग्यात्मक कवि था और हुज्जाज का दरबारी कवि था।

संगीत

कविता और संगीत में माँ-पुत्री का संबंध है। कविता के विकास के साथ-साथ इस काल में संगीत का भी विकास होना स्वाभाविक था। यजीद के काल से लेकर उमैय्या वंश के अंतिम शासक तक संगीत कला की उन्नति होती रही। उमैय्या शासकों के मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन संगीत ही था। उमैय्या-शासकों के पूर्व ही मक्का में आर्थिक सम्पन्नता के चलते संगीत-विद्या का काफी विकास हो चुका था। उमैय्यों के आगमन के साथ इसका विकास और भी उत्तरोत्तर होता रहा। इस्लाम के पूर्व कारवानी (Carvan), जंगी (Marbal), मजहबी (Religion) और इश्क़िया (Amorous) नामक गीत प्रचलित थे। लेकिन अरबों का दिलचस्प गीत कारवानी गीत था जिसे 'हुदी' कहा जाता था। संगीत राग का विकास अरब गीतकार इसी हुदी से मानते हैं। इस संबंध में एक दन्तकथा भी प्रचलित है। कहा जाता है कि 'मुजर' नामक एक व्यक्ति एक बार अपने ऊँट से नीचे गिर गया जिससे उसका हाथ टूट गया। नीचे वह दर्द से 'या यदाहु, या यदाहु' (O, my hand, O, my hand) कहकर चिल्लाता रहा। ऊँट के पैर रखने की आवाज से उसकी चिल्लाहट की आवाज मिलती थी। इसी ताल पर दोनों की आवाज चलती रही और 'हुदी' ताल बन गया।[6]

दक्षिण एवं उत्तरी अरब की प्राकृतिक विभिन्नता के साथ-साथ उनके संगीत के प्रकार एवं वाद्यन्त्रों में भी विभिन्नता थी। पर इसके संबंध में हमें अल्प ज्ञान प्राप्त है। इस्लाम के उदय के पूर्व हेज्जाज में मुजहर, बाँसुरी, शहनाई, डफ आदि वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग होता था। इस्लाम के उदय के उपरान्त अरब-संगीत पर विदेशियों का प्रभाव पड़ा और 'हीरा' से ईरानियों का संगीत-यन्त्र 'ऊद 'नजर' नामी-गिरामी व्यक्ति द्वारा लाया गया। अरब के साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस्लाम के पूर्व कुछ औरतें गाने का पेशा करती थीं। एक बीर अरबी 'सरवर' की मृत्यु पर उसकी बहन 'खनसा' ने नौहे (शोक-गीत) लिखी थी जो गेय थे। हालाँकि पैगम्बर मुहम्मद और प्रारंभ के खलीफा संगीत के विरोधी थे, पर उमैय्या-काल से यह सारा विरोध जाता रहा। समाज में 'मुखन्नस' (पेशेवर गवैयों का दल) लोगों का उदय हुआ। मुखन्नस हाथों में मेंहदी रचाते थे और औरतों की भाव-भंगिमा की नकल करते थे। मुखन्नसों ने संगीत को मुखरित किया।

तुवेस इस्लामी वक्त के संगीत का जनक माना जाता है। अरब-संगीत में ताल एवं सुरों को इसी गवैया ने प्रारंभ किया। तम्बूरे पर पहली बार गीत गाने का भी प्रचलन इसीने लाया। इब्ने सुरीज विश्व के बड़े गवैयों में गिना जाता है। यह तुवेस का पुत्र था और मक्का के प्रसिद्ध संगीतज्ञ सईद इब्ने मुसज्जा का परम प्रिय शिष्य था। इसी सुरीज ने सर्वप्रथम छड़ी की सहायता से ताल-सूर का ज्ञान

---

6. P. K. Hitti; pp. 272-73.

दिया। सईद इब्न मुसज्जा उमैय्या काल का तीसरा प्रतिष्ठित संगीतकार था। ईराक तथा रोम के रागों का इसी ने अरबी में प्रयोग किया। शुद्ध राग एवं गान की विधियो का निर्माण भी इसीने किया था। अल-गिरीद एक अन्य संगीतकार था जो सईद इब्न मुसज्जा का शिष्य था। इब्न-मुहरिज जो ईरानी वंश का था, अरब की सर्वसाधारण जनता में काफी लोकप्रिय था। माबद उमैय्या खलिफाओं का दरबारी कवि था। और वालीद प्रथम, याजीद द्वितीय तथा वालीद द्वितीय के दरबार की शोभा बढ़ा चुका था। जमीला इस्लाम की पहली गायिका थी जो महिला-जगत से आयी थी। यह मदीना की स्वतन्त्र औरत थी और 'कला की रानी' कही जाती थी। इसके गृह पर मक्का एवं मदीना के संगीतज्ञों की सदैव बैठक हुआ करती थी। इन संगीतज्ञों में अधिकांश उसके शिष्य थे। प्रेम-गीत का कवि उमर इब्न-अबी-रबिय्या भी बैठक में भाग लिया करता था। हबाब तथा सलाम उसके प्रिय शिष्य थे जिन्हें यजीद द्वितीय भी प्यार करता था। जमीला गवैयों, कवियों, नर्त्तकियों, प्रशंसकों आदि का जुलुस लेकर मक्का की यात्रा किया करती थी। अन्य कला-प्रेमी महिलाओं के गृहों में भी ऐसे आयोजन यदा-कदा होते रहते थे।

उमैय्या काल में नये-नये वाद्य-यन्त्रों के ईजाद भी हुए। विदेशों से इस काल में सम्बन्ध होने के कारण इन यन्त्रों की संख्या में वृद्धि भी हुई। इन यन्त्रों में मिगरिफा, बुक, शहनाई, डफ, ढोल झांझ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मिगरिफा एक प्रकार की भजन माला थी। बुक का आकार सींघ की तरह होता था। तबला या ढोल लगभग एक ही होते थे।

मक्का एवं मदीना में संगीत-मण्डली का भी आयोजन किया जाता था। यहाँ के वाशिन्दों के संगीत की शौक का पता केवल एक उदाहरण से लग जाता है। हुनैन अल-हीरी नामक एक प्रसिद्ध गवैया मक्का आया जो ईर की गवैयों का सिरताज था। इसका संगीत सुनने के लिये सुकैना की छत पर लोगों की भीड़ इतनी अधिक बढ़ गयी कि छत ही गिर गयी और गवैया नीचे दबकर मर गया। एक तथ्य यह भी मिलता है कि यहाँ गानेवालों की एक मण्डली भी थी जो हज पर आनेवाले लोगों को संगीत सुनाकर उनका मनोरंजन करती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि उमैय्या काल में मक्का के लोग और विशेषकर मदीना-निवासी संगीत की रक्षा करते थे।[7] दमिश्क के दरबार में मक्का और मदीना से ही गायकों को भेजा था।

यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिये कि उमैय्या वंश के दूसरे खलीफा यजीद प्रथम के काल से ही संगीत और शराब का दौर प्रारम्भ हुआ और इसी खलीफा ने सर्वप्रथम दमिश्क में वाद्य-यन्त्रों का प्रचार किया। अपने दरबार में उसने संगीत-

7. Thus did Makkah, and more particularly at Madinah, become in the Umayyad period a nursery of song and a conservatory for music.

—Aghani, volii, p 237

आयोजन करना प्रारम्भ किया। खलीफा अब्दुल मलिए ने इब्ने मुसज्जा, वालिद ने मबाद तथा इब्ने सुरीज और हिशाम ने हुनैन नामक कलाकारों को दरबार में रख कर संरक्षणता प्रदान की। यजीद द्वितीय ने हबाव तथा सलाम को संरक्षणता देकर कविता तथा संगीत को विकसित किया। वालिद द्वितीय जो स्वयं शहनाई बजाता था और संगीत रचता था, अनेक गवैयों को अपने दरबार में रखता था। मबाद भी उसके दरबार का रत्न था। मक्का और मदीना में इस खलीफा के शासन काल में, संगीत की प्रगति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी।

चित्रकारी

इस्लामी सिद्धान्त के अधिकांश विद्वान जिनमें पैगम्बर मुहम्मद भी आते हैं, चित्रकारी को अधार्मिक मानते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि मनुष्यों एवं जानवरों का चित्र बनाने का विशेषाधिकार केवल ईश्वर को है और अगर कोई मनुष्य (चित्रकार) उनका चित्र बनाता है तो वह ईश्वर-निन्दक और अपवित्र है। हदीस में पैगम्बर साहब ने भी यह उक्ति व्यक्त की है कि कयामत के दिन चित्रकारों को ही कठिन सजा का भागी होना पड़ेगा। इसीलिए हम किसी मस्जिद, राजभवन या किताबों पर मनुष्य अथवा जानवर के चित्रों को नहीं देखते हैं। उनकी साज-सज्जा केवल फूल-पत्तियों से की जाती है और इसीलिए मुस्लिम कला में हम केवल फूल, वृक्ष, वनस्पति और रेखांकित चित्रों को ही पाते हैं।

उमैय्या शासकों ने इन सारी मान्यताओं का त्याग किया। उनकी चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना "कैसरे-आमरा" की दीवार पर उत्कीर्ण नक्काशी है। यह इस युग के खलीफाओं का हमाम (Bath-room) तथा विलास-स्थल था। इसमें छः शासकों के सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इस चित्र में स्पेन के शासक रोडेरिक का भी चित्र चित्रित है। दो चित्रों के ऊपर सीजर और नेगस के भी चित्र बनाये गये हैं। इन चित्रों में सासानी कला का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कुछ ऐसे भी सांकेतिक चित्र बने हुए हैं जिनको देखने से ऐतिहासिक, सामरिक, दार्शनिक तथा कविता-सम्बन्धी भावनाओं की झलक मिलती है। एक शिकार का चित्र भी बनाया गया है जिसमें एक सिंह को एक जंगली गदहे पर झपटते हुए दर्शाया गया है। नर्तकियों, गायकों तथा विलास-प्रिय लोगों के कुछ नंगे चित्र भी बनाये गये। मनुष्यों तथा जानवरों के चित्रों को उभाड़कर उमैय्या चित्रकारों ने प्रचलित कला को काफी प्रभावित किया। इस काल में कपड़े का रोजगार करने वाले व्यापारियों, फूलदान से निकलती हुई पत्तियों, अंगूर, खजूर के वृक्ष, मरुभूमि के पक्षियों, चमकीले पत्तों आदि के भी चित्र बनाये।

स्थापत्य

इस्लाम के आविर्भाव के पूर्व स्थापत्य कला का भी अच्छी तरह विकास नहीं हुआ था। लेकिन जैसे-जैसे अरब का विश्व के देशों से संबंध कायम होता गया, वैसे-वैसे यह कला भी अरब में विकसित होती गयी। एक मुस्लिम इतिहासकार का मत है कि मरुभूमि के निवासी स्थापत्य-कला की बारीकियों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। विदेशों से संबंध होने के कारण ही वे इनका ज्ञान प्राप्त कर सके। अरबी कलाकार

जिज्ञासु थे और इसीलिये वे जल्द इस कला में निपुण हो गय ।[8] दक्षिणी अरब के लोग सम्भवतः इस कला से कुछ परिचित थे। लेकिन उत्तरी अरबवासी अपने जीवन का अस्थिरता के चलते इससे अनभिज्ञ थे। दक्षिणी भूभाग में भी इस कला का विकास अधिकाधिक नहीं हो पाया था क्योंकि यहाँ के लोग भी भवनों में न रहकर तम्बूओं में ही रहा करते थे और बालुराशि को ही खोदकर कब्र का निर्माण कर लेते थे। हाँ, नखलिस्तान वाले भूभागों में वे धूप में पकायी गयी इंटों, खजूर की लकड़ी और मिट्टी की सहायता से अति साधारण और छोटे मकान बना लेते थे। यहाँ तक कि काबा जहाँ सारे मुसलमान सिजदा करते थे, भी साधारण ढंग से बनाया गया था। इस तथ्य से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अभी तक स्थापत्य-कला विकास के प्रथम चरण पर भी नहीं पहुँची थी।

उमैय्या काल में स्थापत्य-कला के विकास में भी चार चाँद लग गये। चूँकि उमैय्या भी मुसलमान ही थे, इसलिये उन्होंने सर्वप्रथम धार्मिक स्थलों एवं भवनों का निर्माण किया और इस कार्य से इस कला का बरबस विकास होने लगा। इतिहास यह बताता है कि धार्मिक भवनों एवं मस्जिदों के निर्माण से ही स्थापत्य-कला का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन होता रहा है। जैसे-जैसे वाह्य देशों का अरबों ने सम्पर्क प्राप्त किया, वैसे-वैसे उनके कलात्मक दृष्टिकोण में परित्तन आता गया। पश्चिम एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका से संबंध बढ़ने पर स्थापत्य-कला संबंध इनका भी बढ़ा। अभियान कार्यों के चलते उन्होंने न केवल कतिपय बाह्य प्रदेशों पर अपना अधिपत्य ही जमाया प्रस्तुत उन प्रदेशों के स्थापत्यकारों तथा अन्य कलाकारों पर भी उनका अधिकार कायम हुआ। फिर, उमैय्या खलीफा विलासी थे। भव्य अट्टालिकाओं एवं आकर्षक स्थलों के निर्माण के बिना उनकी विलासिता उदासीन रहती। अतः यह स्वाभाविक था कि वे ऐसे भवनो का निर्माण करें। इसके अतिरिक्त उनकी धार्मिक भावना एवं तत्संबंधी श्रद्धा ने भी उन्हें मस्जिदों के निर्माण की ओर प्रेरित किया। फलतः स्थापत्य-कला का उमैय्या काल में विकास होना ही था।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, स्थापत्य-कला पहले धार्मिक भवनों से निःसरित होती है। पैगम्बर मुहम्मद ने मिट्टी की ईंटों से इस्लाम की पहली मस्जिद की दीवार का निर्माण किया और तत्पश्चात खजूर के तनों से इसकी छत बनायी गयी। पर जब पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका से अरबों का संबंध कायम हुआ तब वे वहाँ के भव्य भवनों एवं मस्जिदों को अपनी नंगी आँखों से निहारे। विदेशों की विजय से वहाँ के कलाकारों का अरब में समावेश हुआ और उनकी सहायता से एक ऐसी कला का रूप बन गया जिसे 'इस्लामी' तथा 'मोहम्मदी' कला कहा जाता है। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न देशों के प्रभाव पड़े और शामी, मिस्री, ईराकी-ईरानी, अंदुलुसी-उत्तरी अफ्रीका आदि अनेक रूपों में अरबी कला अवतरित हुई।

विजित देशों में सबसे पहली मस्जिद बसरा में उतबा-इब्न-गजवान ने 637 ई० में बनवाई। बसरा का निर्माण भी उसने शिशिर-ऋतु में अपनी सेना को रखने के

---

8. S. F. Mahmud; Short story of Islam, p. 184.

लिये किया। यह धार्मिक मस्जिद पहले खुले हुए स्थान पर बनायी गयी थी जिस पर नरकट का छप्पर डाला गया था। कालान्तर में अबू मुसा अंशारी ने जो खलीफा उमर का गवर्नर था, मिट्टी तथा धूप में सुखायी गयी ईंटों की सहायता से इसका पुनर्निर्माण किया। इस बार घास की छत इस मस्जिद में लगायी गयी। 638 अथवा 639 ई० में आक्रमणकारी साद इब्न-अबी-वक्कास ने एक दूसरा सैनिक कैम्प (कूफा) कायम किया जिसके प्रांगण में एक साधारण मस्जिद का निर्माण किया गया। मस्जिद से सटा हुआ दार-अल इमारा (Governor's Residence) का भी निर्माण किया गया। आगे चलकर जियाद ने जो मुआविया का वायसराय था, इस मस्जिद का पुनर्निर्माण किया और इसमें इस बार सासानी ढंग के स्तंभ लगवाये गये। मुहम्मद साहब के द्वारा मदीना में बनायी गयी इस्लाम की पहली मस्जिद से यह मस्जिद काफी मिलती-जुलती थी। अल-कूफा में 6 6 ई० में 'अली की मस्जिद' बनवायी गयी। इन मस्जिदों का नामोनिशान मिट गया है और उनके चिह्न देखने को नहीं मिलते हैं।

इस्लाम की एक अन्य मस्जिद का निर्माण 642 ई० में उमरो इब्न-अल-आस ने फुस्तात (अफ्रीका) में किया। अफ्रीका में पहली इस्लामी मस्जिद की नींव उसने डाली। इस मस्जिद में मेहराब नहीं बनायी गयी। आगे चलकर इस मस्जिद में उमरो ने व्याख्यान-मंच लगवाया जो उसे भेंट के रूप में नविया के ईसाई शासक ने दी थी। इस काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण मस्जिद काहिरा में 670 ई० में उकबा इब्न-नफी ने बनवायी। इस मस्जिद और गवर्नर भवन का निर्माण-कार्य उकबा ने प्रारंभ किया और 675 ई० में ये बनकर खड़े हो गये। इनके चारो तरफ लोगों के रहने के लिये अनेक मकान बनाये गये। उसके उत्तराधिकारियों ने इस मस्जिद का पुनः निर्माण बार-बार किया और अन्त में अघलबी जियादत अल्ला (817-38) के काल में यह पूर्ण भव्यता एवं आकर्षण को प्राप्त कर सकी।

उमैय्या काल में शनैः-शनैः मस्जिदों में पूजा की दिशा दिखलाने के लिये मेहरावें भी बनायी जाने लगी। मेहराब के निर्माण का श्रेय वालीद और उनके गवर्नर उमर इब्न-अब्द-अल अजीज को दिया जा सकता है। यद्यपि मुआविया के काल से ही कलाकारों ने मेहराबों का निर्माण करना प्रारंभ कर दिया था, पर उनमें अभी तक निपुणता नहीं आयी थी। सर्वप्रथम मदीना की मस्जिद में मेहराब बनायी गयी। कालन्तर में मेहराब मस्जिद का पवित्र अंग बन गयी।

इस युग में मस्जिदों के भीतरी भाग मकसूरा बनाये जाने लगे। मकसूरा का व्यवहार केवल खलीफा ही कर सकता था। खारीजियों के विद्रोह के समय से संरक्षण की आवश्यकता आ पड़ी थी। वे खलीफा पर भी आक्रमण कर बैठते थे।[9] यही कारण था कि मस्जिद के किसी एक भाग में कटघरा बना दिया जाता था जिसमें खलीफा नमाज पढ़ता था। ऐसा कहा जाता है कि मकसूरा बनाने का रिवाज मुआविया ने किया था।

9. Ibn-Khaldun; Muqaddamah, pp. 224-26.

इसी काल से मस्जिदों में 'मीनार' बनाने का भी रिवाज प्रचलित हुआ। मिस्र में खलीफा मुआविया के गवर्नर ने सर्वप्रथम मस्जिद में मीनार बनवायी। ईराक की बसरा-मस्जिद में उसके दूसरे गवर्नर ने जिसका नाम जियाद था, पत्थर की मीनार बनवायी। इसी प्रकार सीरिया तथा हेज्जाज में मीनार बनाने का प्रचलन वालिद ने प्रारंभ किया। उसके गवर्नर समर ने मदीना-मस्जिद में मीनार बनाकर एक नयी विशेषता लायी। अब मीनारें अधिक संख्या में बनने लगी। ये अनेक प्रकार की भी होती थी। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि मीनारों पर सिकन्दरिया के प्रसिद्ध मीनार फारोस का प्रभाव पड़ा था।

जेरूसलेम की कुबब्त उस-सोखरा नामक मस्जिद इस काल की एक भव्य कला-कृति है। मुस्लिम दृष्टिकोण से जेरूसलेम का अत्यधिक महत्त्व है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब का जब 'मेराज' (स्वर्गवास) हुआ तब यहाँ उनका स्थान बना था। इसीलिये महत्ता को ध्यान में रखकर खलीफा उमर ने यहाँ एक अति साधारण मस्जिद का निर्माण किया था। आगे चलकर अब्दुल मलिक ने यहाँ एक ऐसी मस्जिद का निर्माण करने का विचार किया जो ईसाइयों के बने गिरजाघर से अधिक आकर्षक और भव्य हो। अतः उसी ने 691 ई० में यहाँ कुब्बत-उस-सोखरा का निर्माण किया। इस मस्जिद का निर्माण ईसाई भवनों की सामग्रियों से किया गया था। इन भवनों को 614 में कोसरस द्वितीय ने आक्रमण करके ध्वस्त कर दिया था। जेरूसलेम के कारीगरों की सहायता से ही इस मस्जिद का निर्माण किया गया। पुरानी कला की शैली का परित्याग कर इसमें नयी शैली का प्रयोग किया गया। इसमें तरह-तरह के बेल-बूटे बनाये गये थे और मीनार को खूबसूरत बनाया गया था। स्थापत्य-कला के क्षेत्र में यह कृति अपनी अद्वितीय सुन्दरता के लिए विख्यात है।[10]

जेरूसलेम का 'मस्जिदे-अकसा' भी उमैय्याकालीन स्थापत्य-कला की एक अमूल्य धरोहर है। इसमें कुब्बत-उस-सोखरा और बड़े-बड़ फकीरों की कब्रें भी शामिल हैं। ये कब्रें अब्दुल मलिक से लेकर ऑटोमन साम्राज्य के शासक सुलतान सुलेमान तक विभिन्न शासकों ने बनवायी थी। यह 34 एकड़ के क्षेत्र में बनी हुई है। लेकिन अरबी साहित्य के अनुसार वास्तविक अकसा वह है जो मलिक सोखरा के निकट बनी थी। समयानुसार इसमें विभिन्न शासकों के द्वारा परिवर्त्तन होते रहे। संत मेरी (जस्टिनियन) के ध्वस्त गिरजाघर की सामग्रियों से अकसा का निर्माण किया गया था। आगे चलकर अब्बासी खलीफा मंसूर ने 771 ई० में इसका पुनः निर्माण किया। आगे चलकर धर्म-योद्धाओं तथा पुनः सलादीन ने 1187 ई० में इसकी मरमत की।

---

10. This was "an architectural monument of such noble beauty that it has scarcely been surpassed anywhere."

P. K. Hitti, p 264.

राजधानी दमिश्क को भी कला-कृतियों से सजाया गया। 705 ई० में खलीफा वालिद (मलिक का पुत्र) ने यहाँ एक सुन्दर मस्जिद का निर्माण किया। इस मस्जिद का निर्माण जूपीटर के मन्दिर-स्थल पर किया गया। इस मस्जिद पर ईसाई-कला का कितना प्रभाव पड़ा था, कहना मुश्किल है। इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि ईरान, हिन्दुस्तान तथा बिजेन्ताइन से स्थापत्य-कारों को बुलाकर और मिस्र से विभिन्न सामग्रियों एवं मसालों को मंगाकर इस मस्जिद का निर्माण किया गया था।[11] उसकी समस्त दीवारें श्वेत स्फटिक की थीं और विभिन्न ढंगों से उसे सजाया गया था। दीवारों को पच्चीकारी (Mosaic) में स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों को लगाया गया था और उन्हीं की सहायता से उन पर वृक्षों तथा शहरों के आकर्षक चित्र उभाड़े गये थे। यद्यपि 1069 और पुनः 1400 ई० में तैमूरलग ने इस मस्जिद में आग लगा दी थी और 1893 ई० में इसे पुनः बर्बाद करने का प्रयास किया था, फिर भी आक्रमणकारियों की थपेड़ सहकर भी यह मस्जिद विश्व की आश्चर्यजनक चीजों में गिनी जाती है।

मस्जिदों के अतिरिक्त उमैय्या शासकों ने अन्य भवनों का भी निर्माण किया। कुछ भवन राजकुमारों द्वारा भी बनवाये गये थे। ये अधिकतर जंगलों, मध्यप्रदेशों में बने हैं। हज्जा में मुआविया तथा मलिक द्वारा निर्मित भवनों का आजकल कुछ नामोंनिशां-बाकी नहीं है। उमैय्या काल में बने भवनों के भग्नावशेष सीरिया की सीमा पर आजकल भी देखने को मिलते हैं। इन्हीं भग्नावशेषों में यजीद द्वारा बनवाये गये भवन मुवक्कर के भी चिह्न मिले हैं। वालिद ने 712 ई० और 715 ई० के बीच कैसरे आमरा (The Little Palace) का निर्माण करवाया जिनकी दीवारों पर अद्भुत चित्र उत्कीर्ण हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उमैय्या काल में ललित कला के साथ-साथ स्थापत्य कला की काफी उन्नति हुई। आगे चलकर अब्बासी काल में यह अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी।

ललित एवं स्थापत्य कलाओं के विकास के अतिरिक्त उमैय्या युग में अन्य सांस्कृतिक विधाओं का भी विकास हुआ। अरबी व्याकरण, मजहबी कानून, तवारीख पत्र-लेखन तथा शिक्षा आदि उत्तरोत्तर विकास-पद पर बढ़ते गये।

अरबी व्याकरण

अरबी व्याकरण का विकास सर्वप्रथम ईराक के बसरा शहर में हुआ। बसरा और कूफा ईराक के दो प्रधान शहर सांस्कृतिक क्रिया-कलाओं के केन्द्र थे। व्याकरण का अध्ययन करने से लोग सही ढंग से कुरान का अध्ययन कर सकने में समर्थ हुए और सरकारी नौकरियों की उपलब्धि करने तथा पारस्परिक वार्त्तालाप के कार्य में भी उन्हें काफी सहुलियत हो गयी। अरबी भाषा का यहाँ वैज्ञानिक अध्ययन किया जाने लगा और तत्पश्चात् व्याकरण के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गयी।

11. H.I. Bell, Der Islam, p 274.

विदेशियों ने इस्लाम को स्वीकार किया था, उन्हें मुस्लिम साहित्य एवं सभ्यता की जानकारी के लिये व्याकरण का अध्ययन करना जरूरी हो गया। नये मुसलमान व्याकरण पढ़े बिना कुरान पढ़ नहीं सकते थे और सरकारी नौकरियों की उपलब्धि भी नहीं कर सकते थे।

अरबी व्याकरण का प्रणेता अबू-अल-असवाद अल-दुआली संभवतः बसरा का ही निवासी था। प्रसिद्ध जीवनीकार इब्न खाल्लीकन के अनुसार "हजरत अली ने ही अपने शासन-काल में दुआली को व्याकरण की रचना करने के लिये निर्देश दिया था। उसने संज्ञा, क्रिया और मात्रा को ध्यान में रखकर व्याकरण रचने का परामर्श दिया था।" अली के निर्देशन में दुआली ने ऐसे व्याकरण की रचना कर डाली। दुआली व्याकरण लिखते समय यूनानी दर्शन से भी प्रभावित हुआ था। अरबी साहित्य के विकास में उसके व्याकरण से काफी सहायता मिली।

बसरा का दूसरा प्रसिद्ध व्याकरणी खलील इब्न-अहमद था। उसने अपने जीवन काल के अरबी शब्दकोश का प्रणयन किया जिसका नाम था 'किताब-उल-ऐन'। इस विद्वान ने छन्दशास्त्र तथा उसके नियमों का ज्ञान दिया।

अहमद का छात्र सियूबिय. ने पहली वार क्रमिक ढंग से व्याकरण की रचना की और अपनी पुस्तक का उसने 'अल-किताब' नाम दिया। अरब में इस पुस्तक का अध्ययन आज भी होता है।

मजहबी कानून

कुरान के अध्ययन ने दो शास्त्रों को जन्म दिया। एक था भाषा विज्ञान और दूसरा था कोश-रचना विज्ञान। इनके अध्ययन के लिये 'हदीस' का अध्ययन किया जाने लगा और इसी हदीस से महजबी कानून का विकास हुआ। मुहम्मद साहब और उनके 'सहाबा' (विशेष मंत्र-सिद्धान्त) को ही हदीस कहा जाता है। कुरान के इन्हीं हदीसों से मुस्लिम धर्म के सिद्धान्त एवं कानून बनने लगे।

उमैय्या काल में जिन महजबी कानून एवं विधियों का निर्माण किया गया, वे केवल हदीस पर ही मुनहसिर नहीं थे प्रत्युत उन पर रोम के कानून का भी प्रभाव पड़ा था। इब्ने हसन बसरी तथा इब्ने-सहाब-उज्जहारी इस काल के मजहब के जानकार थे जिन्होंने अनेक विधियों को जन्म दिया। हसन बसरी हदीस बयान करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। इस काल में हदीस का ज्ञान इनसे अधिक अन्य किसी विद्वान को नहीं था। इस्लामी आन्दोलन के वास्तविक सृजनकर्त्ता यही था। सूफी और सुन्नी सभी इसकी विद्वता का लोहा मानते थे। अक्तुबर, 728 ई० को इसकी मृत्यु हुई। उस दिन सारे बसरा-निवासी शव को देखने के लिए उमड़ पड़े।[12]

12. इब्न खाल्लीकन का उल्लेख है कि शुक्रवार को बसरी की मृत्यु हुई थी और उस दिन एक भी मुसलमान नमाज पढ़ने मस्जिद में नहीं गया। इस्लाम के इतिहास में यह पहली असंभव घटना थी कि मुसलमान शुक्रवार को मृत बसरी को देखने के लिए नमाज तक न पढ़े।

इब्ने सहाब अध्ययन-प्रेमी थे और अल्लाह तथा धर्म पर पुस्तकों की रचना करने में दिन-रात संलग्न रहते थे। अध्ययन करते समय वे समस्त संसार, यहाँ तक कि अपनी बेगम को भी भूल जाते थे।

कूफा में अरबी-व्याकरण की दो संस्थाएँ स्थापित हो गयी थीं। अब्दुला इब्न-मसूद इस युग के महान मुहद्दिस (Compiler) थे और कहा जाता है कि उन्होंने 848 मुस्लिम विषयों (Tradition) की रचना की थी। कूफा का दूसरा विधि-वेत्ता अमीर इब्न-शराहील अल-शाबी था। इसकी स्मरण-शक्ति काफी तेज थी और 150 हदीस वे जवानी सुना जाते थे। अल-शाबी का छात्र अबू-हनीफा भी इस काल का विधि निर्माता था। मलिक ने अल-शाबी को एक महत्त्वपूर्ण सन्देश के साथ कुस्तुनतुनिमा के बिजेन्ताइन शासक के दरबार मे भेजा था।

इतिहास

इस काल में इतिहास की भी प्रगति हुई। वास्तव में उमैय्या शासकों ने ही इतिहास लिखने का रिवाज प्रारम्भ किया। मुसलमान हजरत मुहम्मद, पौराणिक वीरों आदि की गाथाओं की जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। इतिहास लिखने की आवश्यकता इस कारण से भी पैदा हुई। खजाने से प्रत्येक मुसलमान को वजीफा (stipend) मिलता था, अत: उनके पारिवारिक संबंधों की जानकारी रखना आवश्यक था। उमैय्या राज्य के विभिन्न जातियों के लोगों ने अपनी-अपनी जाति के उपलब्धियों का रिकार्ड रखना चाहा। इन विभिन्न कारणों के चलते ऐतिहासिक शोध कार्य एवं इतिहास-लेखन का कार्य इस युग में प्रारम्भ हुआ।

प्रारम्भिक कहानीकारों में उबेद इब्ने-शारिय्या का नाम पहले लिया जा सकता है जो जाहिलियत वक्त के बहादुरों की असंख्य कहानियाँ सुनाने में काफी दिलचस्पी लेता था। मुआविया के आमन्त्रण पर वह दमिश्क आया था और अमीर (मुआविया) को अरब के पुराने बादशाहों की कहानियाँ सुनाता था। मसूदी के काल में उसकी लिखी पुस्तक 'किताब-अल-मुलूक वा अखबार अल-मदीन' को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। इस विषय में 'वहब' (Wahb) और 'कब अल-अखबार (Kaba al-Akhbar) भी उल्लेखनीय हैं।

सरकारी-पत्र

खिलाफते रासिदा के काल में सरकारी पत्र लिखने का काम बहुत कम होता था। बड़ी कठिनाई से इस काल का कोई राजनीतिक पत्र मिलता है। ऐसे पत्र छोटे हैं। उमैय्या काल के उत्तरार्द्ध के खलीफाओं के सचिव अब्बुल हमीद अल-कातिब ने लम्बे पत्रों के लिखने का प्रचलन प्रारम्भ किया। इस काल के पत्रों को अलंकारिक बनाने में इस सचिव ने काफी सहयोग दिया।

शिक्षा

उमैय्या काल में शिक्षा भी व्यवस्था की गयी। खलीफा के पुत्रों की शिक्षा इस समय सीरिया में होती थी। साधारण तबके के लोग मस्जिदों में अपनी सन्तानों को शिक्षा दिलाते थे। कूफा में "जहाक" नामक व्यक्ति ने सबसे पहले एक मदरसा खोला जहाँ छोटे बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा दी जाने लगी। पर सच्ची बात यह

थी कि इस काल में राजकुमारों की शिक्षा के लिये विशेष व्यवस्था की जाती थी। अमीर मलिक अपने पुत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षकों को यह परामर्श देता था कि वे उन्हें तैरना, तीर चलाना, पढ़ना-लिखना आदि सिखलायें। इसी अमीर के काल से दरबार में राजकुमारों की शिक्षा के लिये शिक्षक नियुक्त होने लगे। मोवक्किल या ईसाई ही शिक्षक के पद पर नियुक्त किये जाते थे। उमर द्वितीय अपने पुत्रों की शिक्षा के संबंध में अधिक सचेत रहता था। व्याकरण के नियमों को जब उसके पुत्रों ने एक बार अवहेलना की तब उन्हें खलीफा ने कठोर सजा दी। उसने शिक्षकों को यह आदेश दिया था कि वे उसके पुत्रों को मनोरंजन से घृणा करने की शिक्षा दें। उमर द्वितीय ने प्रधान काजी यजीद इब्न-अबी हबीब को मिस्र भेजा था जिसने वहाँ एक सफल शिक्षक के रूप में प्रसिद्धि पायी।

विज्ञान

उमैय्या शासकों के काल में विज्ञान का जगत भी अत्यधिक अनुप्राणित हुआ। अरब जगत के लोग विज्ञान उसे ही मानते थे जो मजहब और शरीर के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता था और उनसे संबंधित था। पर हमें यह न भूलना चाहिये कि उमैय्या शासन के पूर्व से ही अरब के लोग विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और शास्त्रों से परिचित थे और उमैय्यों ने उनका केवल विकास किया। इस काल में चिकित्साशास्त्र, रसायनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा अन्य विधाओं का संतोषप्रद विकास हुआ।

अरब का चिकित्साशास्त्र मूल रूप में उमैय्यों के काल में ही प्रकाश में नहीं आया। यों जाहिलियत काल से ही अरबवासी अंधविश्वासी थे और तंत्र-मंत्र से रोगियों का उपचार करते समय कुछ खास औषधियों का भी प्रयोग करते थे। शहद को वे प्रधान औषधि मानते थे और इसे 'पैगम्बर मुहम्मद की दवा' (Prophet's medicine) कहते थे। अरबवासियों के इस अंधविश्वास तथा 'मुहम्मद की दवा' की आलोचना की गयी। इब्न-खाल्दून ने अपनी कृति 'मुकदमा' (Muqaddamah) में इस बात की चर्चा की है कि पैगम्बर को सिद्धान्तों तथा धार्मिक विधियों की शिक्षा देने के लिये भेजा गया था न कि दवाईयों का प्रचार करने के लिये।[13]

उमैय्या कालीन अरबवासी चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान यूनान तथा फारस से हासिल किये। फारस का भी चिकित्साशास्त्र मुख्यतः यूनान से ही प्रभावित था। उमैय्या के उत्कर्ष के पूर्व अरब में दो चिकित्सक प्रसिद्ध थे। वे थे तईफ के निवासी अल-से-हरीत इब्न खाल्दा और उसका पुत्र अल-नप्र। इब्न खाल्दा ने चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन फारस में रहकर किया था। इब्न अल-इब्री के अनुसार खाल्दा अरब का प्रथम व्यक्ति था जिसने विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार चिकित्साशास्त्र

---

13. The prophet was sent to teach religious laws and principles rather than medication.

Ibn-khaldun; Muqaddamah, p 412.

का अध्ययन किया और "अरबों का चिकित्सक" कहा जाने लगा था।[14] उसका पुत्र नद्र जो मुहम्मद की ममानी का पुत्र था, भी इस क्षेत्र में नाम कमाया और पिता-पुत्र दोनों ने मिलकर चिकित्सा विद्या का विकास किया।

उमैय्या शासकों ने यूनानी चिकित्सकों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। इनमें मुआविआ का व्यक्तिगत ईसाई चिकित्सक इब्न-उथाल (Ibn-Uthal) और अल-हज्जाज का यूनानी चिकित्सक तयादूक (Tayadhuq) अत्यधिक उल्लेखनीय हैं। याजुक युग का महान चिकित्सक था जिसने चिकित्साशास्त्र पर कुछ पुस्तकों की रचना भी की थी। बसरा-निवासी मसरजावा (Masarjawah) जो मूलतः यूनानी था, एक अन्य चिकित्सक था जिसने खलीफा मरवान इब्न अल-हकाम के काल में यूनानी भाषा में लिखी गयी एक पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में किया। यह पुस्तक मूल रूप में अहरून नामक विद्वान द्वारा लिखी गयी थी। खलीफा वालिद ने कुष्ट रोग के इलाज के लिए राज्य की ओर से प्रबन्ध किया और ऐसे रोगियों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। खलीफा उमर द्वितीय चिकित्साविज्ञान की प्रगति का उन्नायक था। ऐसा संकेत मिलता है कि उसने सिकन्दरिया से चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन का केन्द्र हटा दिया और अब इस शास्त्र का अध्ययन अन्तिओक तथा हरान में किया जाने लगा। निश्चित रूप से उमैय्या शासकों ने अपनी सेवा में चिकित्सकों को नियुक्त करके, पुस्तकों को अरबी भाषा में अनुवाद कराकर तथा इस विज्ञान के अध्ययन की व्यवस्था कर चिकित्साशास्त्र के विकास में सहयोग दिया।

उमैय्या काल रसायनशास्त्र के विकास के दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है। रसायनशास्त्र के क्षेत्र में अरबों की देन महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।[15] फिहरिस्त (Fihrist) के अनुसार यजीद (मुआविया का पुत्र) का पुत्र खालिद (Khalid) इस्लामी इतिहास का प्रथम विद्वान था जिसने यूनानी पुस्तकों के आदर्श पर अरबी भाषा में रसायनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र और चिकित्साविज्ञान पर पुस्तकों की रचना की और उनका अनुवाद किया। उमैय्याकालीन अन्य वैज्ञानिकों में जाकिर इब्न हय्यान और जाफर अली-सादिक उल्लेखनीय हैं। यह दुर्भाग्य है कि इस काल की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं और संभवतः नष्ट हो गयी हैं।

स्पष्टतः उमैय्या काल सांस्कृतिक विकास का काल रहा। राजनीतिक दृष्टि से उमैय्या भले ही गद्दी के अपहरणकर्त्ता माने जा सकते हैं, किन्तु प्रारम्भिक खलीफाओं की तरह वे भी सभ्य थे और साहित्य, कला, विज्ञान आदि के विकास में अभिरुचि लेते थे। इस्लाम को सांस्कृतिक रूप प्रदान करने में इस वंश के खलीफाओं के सहयोग पर आवरण नहीं डाला जा सकता है।

---

14. Al-khaldah was the first scientifically trained man in the peninsula and won the honorary title "the doctor of the Arabians."
—Ibid

15. Alcheny, like medicine, one of the few sciences in which the Arabs later made a distinct contribution, was one of the disciplines early developed. P. K. Hitti, p 255.

अध्यय—8

उमैय्या शासन का प्रभाव तथा महत्व

(Impact & Importance of the Umayyad Rule)

इस्लाम के इतिहास में उमैय्या शासन का अत्यधिक महत्व है। 661 ई० में जेरूसलेम के ईलिया नामक नगर में मुआविया खलीफ घोषित किया गया। मुआविया ने अपने जीवन काल में उमैय्या वंश के शासन की स्थापना कर तत्कालीन संयोजित एवं संगठित शासन-प्रणाली में स्वयं महान परिवर्त्तन लाकर एक क्रान्ति को जन्म दिया और कालान्तर में उसके उत्तराधिकारी भी उसमें कालक्रमानुसार परिवर्त्तन लाते रहे। अतः उमैय्या शासन की स्थापना ने शासन तथा शासकों के जीवन और राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं को काफी प्रभावित किया। सच्चे अर्थ में उमैय्यों का राज्यारोहण इस्लाम के इतिहास में महत्वपूर्ण है तथा यह एक युगान्तकारी क्रान्ति का सृजन करता है।[1]

उमैय्या वंश के शासन के संस्थापन का संबंध केवल वंश-परिवर्त्तन से ही नहीं है, बल्कि शासन-संबंधी सिद्धान्तों के प्रत्यावर्त्तन एवं नये प्रशासनिक सिद्धान्तों के प्रादुर्भाव से भी है। इन सिद्धान्तों ने खिलाफते रासिदा के चारों खलीफाओं द्वारा स्थापित धार्मिक साम्राज्य पर कुठाराघात किया और एक नये राष्ट्र को जन्म दिया।

उमैय्या शासन के महत्व एवं प्रभाव के पूर्ण स्पष्टीकरण के लिए हमें कट्टर खलीफाओं की शासन व्यवस्था की प्रकृति एवं खलीफाओं के जीवन का संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक है। मुहम्मद साहब ने नामांकन द्वारा अपने किसी भी व्यक्ति को इस्लाम के राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बनाया था। इस्लाम के अनुयायियों ने किसी योग्य एवं कुशल नेता को खलीफा के पद के लिए निर्वाचित कर दिया। दूसरे शब्दों में, मुहम्मद साहब के मरणोपरान्त जिस इस्लामी राज्य का संगठन खिलाफते राशिदा के जमाने में किया गया उसका आधार जनतन्त्रीय पद्धति था। खलीफा जनता द्वारा निर्वाचित होकर दो कार्य करता था—इस्लाम तथा इस्लामी राज्य का संरक्षण एव जनता का कल्याण तथा उसकी सर्वांगीण उन्नति। खलीफा के निरंकुश स्वभाव पर नियंत्रण रखने के लिए 'मजलिसे शूरा' थी और स्वयं खलीफा कुरान तथा इस्लाम के कायदे कानूनों एवं वसूलों से जकड़ा हुआ था। बैतुल माल का एकमात्र अधिकारी होकर भी वह उसकी मुद्राओं को अपने निजी कार्य में व्यय नहीं करता था। शराब और शरीर औरत से कोसों दूर रहकर वह

---

1. The accession of the Umayyad to power under Muawiya in 661 was really a landmark in the history of Islam.
— *Ameer Ali; p* 185.

इस्लाम के प्रचार एवं जनता की सेवा में अहर्निश दत्तचित्त रहता था। शासन का कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए इस युग में खून नहीं, योग्यता पर ध्यान दिया जाता था। खलीफाओं का जीवन सादगी एवं सरलता, ईमानदारी एवं उदारता, कर्त्तव्य-परायणता तथा धार्मिकता के गुणों से आद्योपान्त ओत-प्रोत रहता था। संगीत एवं सुन्दरी के मोहपाश में आबद्ध न होकर वे शासन की समस्याओं के सुलझाव में पसीना बहाते रहते थे।

उमैय्या शासन काल में पूर्ववर्ती शासन का सारा स्वरूप बदल गया। खिलाफते रासिदा लोकप्रिय निर्वाचन प्रणाली पर आधारित था, तो खिलाफते उमैय्या तलवार की ताकत पर। पहले के खलीफा जनता की इच्छा से प्रतिस्थापित होते थे, बाद के खलीका षडयन्त्र के माध्यम से आये थे। धार्मिकता का पूर्ण कलेवर धारण कर एक तरफ जहाँ रासिदा वक्त के खलीफा नैतिक जीवन व्यतीत करने के व्यसनी थे तो दूसरी तरफ उमैय्या शासक विलासिता के साधनों का उपयोग कर हरम की औरतों के सहवास में वेखबर पड़े रहने के आदी थे। इस काल के शासक अगर कुरान के हजारों हदीस का मनन करते थे तो दूसरे काल के शासक बैतुल माल के करोड़ों रुपयों को अपनी विलासिता में, जीवन को अधिकाधिक रंगीन बनाने में खर्च करते थे। रासिदा के अवसान के साथ नैतिकता का जमाना लद गया, उमैय्यों के आगमन के साथ अनैतिकता का बाजार खुल गया। अब खिलाफत बादशाहत में बदल गयी, खलीफा अमीर बन गये। इन समस्त परिवर्तनों को हम राजनीतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक बिन्दुओं में देख सकते हैं।

राजनीतिक प्रभाव

उमैय्या शासन में प्रचलित प्रशासन-व्यवस्था में परिवर्तन आया। इस संबंध में सर्वप्रथम हम वंश-परिवर्तन को ले सकते हैं। मुआविया के उत्कर्ष के साथ ही जहाँ एक रासिदा शासन की परिसमाप्ति हुई वहीं एक नये वंश—उमैय्या—के शासन की नींव पड़ी।

उमैय्या शासन की नींव पड़ते ही न केवल चारो खलीफाओं का शासन बदला और नये वंश (उमैय्यों) के शासन की नींव पड़ी, प्रत्युत शासन की रूपरेखा तथा उसकी प्रगति में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये। इस काल में खास प्रशासनिक सिद्धान्तों का निरूपण हुआ और नये सिद्धान्त क्रिया में आये।[2] प्रशासन में एकाएक दो परिवर्त्तन आ गये। एक तो जनतान्त्रिक शासन ने अन्तिम दम तोड़ दिया और दूसरे पैतृक उत्तराधिकारी का नियम प्रारम्भ हुआ। मुआविया के पूर्व गद्दी पर आनेवाले सारे खलीफाओं का निर्वाचन जनता ने किया था। मुहम्मद की

---

2. It (the accession of Unayyads) did not only mean a change of dynasty, rather it meant the reversion of a principle and the birth of certain new factors......... —*Ibid*, p. 72

मृत्यु के पश्चात् ही अबू बकर को जनता (मुसलमान) ने निर्वाचित कर शासन को जनतन्त्रीय आधार पर आधारित किया था और मुहम्मद साहब के दामाद अली अन्तिम निर्वाचित खलीफा थे। लेकिन अली की मृत्यु के साथ ही खिलाफत का गणतन्त्र काल जिसे अबू बकर ने प्रारम्भ किया था, समाप्त हो गया और मुआविया ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यजीद को उत्तराधिकारी मनोनीत कर पैतृक उत्तराधिकारी को आसीन करने की प्रणाली का सृजन किया। कालान्तर में आनेवाले शासकों के शासन का आधार भी यही प्रणाली बनी और तभी खलीफा अपने पुत्रों या भाइयों को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने लगे। उम्मैया खिलाफत इस्लाम के इतिहास में वंश का पहला शासन था और मुआविया उसका पहला शासक। निर्वाचन प्रणाली का त्याग और उत्तराधिकारी का मनोनयन शासन के क्षेत्र में नया समावेश था। इस प्रणाली से शासन के स्थायित्व को गहरा धक्का लगा। अबतक योग्य व्यक्ति ही खलीफा-पद के लिये निर्वाचित किये गये थे। निर्वाचन-प्रणाली को स्थगित कर मुआविया ने योग्य व्यक्ति को खलीफा बनाने से रोक दिया। उत्तराधिकार के नियम का अनुशीलन करने से अयोग्य पुत्र भी शासक बनने लगे जिससे शासन की सारी अच्छाई जाती रही तथा इसका स्थायित्व और गांभीर्य समाप्त हो गया। इतना ही नहीं, साम्राज्य की एकता भी इन प्रणाली के पेट में चली गयी। कभी-कभी ऐसा होता था कि एक खलीफा दो-दो उत्तराधिकारियों को मनोनीत कर देता था। पहला उत्तराधिकारी जब खलीफा बनता था तो वह अपने पूर्ववर्त्ती खलीफा द्वारा मनोनीत दूसरे उत्तराधिकारी के नामांकन को रद्द कर अपने पुत्र या किसी भाई को उसकी जगह मनोनीत कर देता था। इससे मनोनीत दोनों उत्तराधिकारियों में खलीफा पद के लिये संघर्ष छिड़ जाता था जिससे साम्राज्य की शान्ति भंग हो जाती था। स्पष्ट है कि निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर मुआविया ने जहाँ एक तरफ जनतन्त्र का गला घोंट दिया वहाँ दूसरी तरफ शासन में अनेक दुर्गुणों का भी समावेश किया। पहले की तरह साम्राज्य में अब न तो दृढ़ स्थायित्व था और न अटूट एकता ही।

उमैय्या शासन ने खलीफा के चरित्र एवं स्वभाव में भी परिवर्तन लाया। इस परिवर्त्तन ने शासन-व्यवस्था को भी प्रभावित किया। मुआविया के पूर्ववर्त्ती खलीफा लोकप्रिय समर्थन पर ही अपने पद पर टिके रहते थे। जनता द्वारा निर्वाचित शासक जनता द्वारा पदच्युत भी किया जा सकता था। ट्यूडर कालीन शासकों की तरह जनता तथा पार्लियामेंट की नब्ज पहचान कर ही राशिदा वक्त के खलीफा शासन करते थे। उनकी निरंकुश प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए 'मजलिसे शुरा' थी जिसके सदस्यों का सत्परामर्श मानने के लिए खलीफा सतत् उद्यत रहते थे। वे स्वतन्त्र होते हुए भी अल्लाह से डरते थे, कयामत के दिन उत्कृष्ट पुरस्कार पाने के लिए लोक-कल्याण करते थे और खुदा की आज्ञा मानते थे। यही नहीं, उन पर कुरान और इस्लाम की भी पाबन्दी थी। अल्लाह, कुरान एवं पैगम्बर मुहम्मद के नाम से ही वे संप्रभुता का उपभोग करते थे। उमैय्या काल के खलीफा अब निरंकुश तथा स्वतंत्र थे। उनकी निरंकुश प्रवृत्ति पर अवरोध रखनेवाली कोई राजनीतिक संस्था नहीं थी। मजलिसे शुरा समाप्त कर दी गयी और शासक स्वतन्त्र होकर शासन करने लगे। वे बैतुल माल की दौलत को अपने निजी कार्य में खर्च कर

सकते थे और अपना अस्तित्व सुरक्षित एवं अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपनी बिरादरी के लोगों का खून भी बहा सकते थे। फ्रांस की 1789 ई० की राज्यक्रान्ति के समय आतंककालीन राज्य के संस्थापक रोबिस्पियर ने एक सिद्धान्त अपनाया था : "स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए सभी की हत्या कर डालो।" खिलाफ़ते राशिदा की समाप्ति के बाद उमैय्या शासकों ने भी एक नीति का अनुसरण किया—"अपनी सत्ता के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए अपना खून भी नहीं पहचानो।" खलीफाओं की इस स्वतन्त्र एवं निरंकुश प्रवृति ने उन्हें कठोर एवं निर्दयी बना दिया और वे अपने विरोधियों पर खुलकर अत्याचार करने लगे। शक्ति पर आधारित राज्य के शासक अब शक्ति की ही पूजा करने लगे।

उमैय्या शासकों ने शासन को एकपक्षीय रूप प्रदान किया। योग्यता के आधार पर पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का रिवाज उठ गया और अब सगे-सम्बन्धी इन पदों पर बहाल किये जाने लगे। शासन में पक्षपात का आगमन होने से उसको पक्षाघात ही लगता है। पारिवारिक पक्षपात ने शासन की सारी चुस्ती, समस्त कला एवं समग्र कुशलता को विनष्ट कर दिया। यही कारण था कि मुआविया के बाद शासन को एक भी योग्य खलीफा नहीं मिला और उमैय्या शासन भीतर-ही-भीतर जर्जर एवं खोखला होता गया।

उमैय्या शासन काल में ही शिया सम्प्रदाय की नींव पड़ी। अली एवं हुसैन की हत्या ने उन्हें शहीद बना दिया तथा साथ ही उमैय्या शासकों के लिए अनेक शत्रुओं को भी खड़ा कर दिया। शिया अपने नेताओं की हत्या का प्रतिशोध लेने का नारा देते रहे और शासन में एक ऐसी दरार पड़ गयी जिससे उसे कभी भी स्थायित्व नहीं मिला। इस्लाम में मात्र शिया और सुन्नी वर्गों का ही जन्म नहीं हुआ प्रत्युत् अरबों के अतिरिक्त विजित देशों की जातियों को लेकर भी मतभेद आ गया। विजित देशों के लोग इस्लाम स्वीकार कर 'नव मुसलमान' बन रहे थे। पर उन्हें ओछी निगाहों से देखा गया। इनके लिए करों के विधान भी अलग थे। शिया और नव-मुसलमान उमैय्या राज्य की नींव में घून की तरह चिमटकर उसे चाटकर खोखला बनाने लगे। विभेद की यह सामाजिक परिपाटी बिल्कुल नयी थी। ऐसा विभेद परवर्ती शासकों के काल में भी विद्यमान रहा। सामाजिक एवं राजनीतिक एकता के दृष्टिकोण से यह विभेद वरदान नहीं अपितु अभिशाप था।

उमैय्या शासन का एक प्रभाव राजधानी के स्थलों पर भी पड़ा। अबतक मुस्लिम शासन का केन्द्र कूफा और मदीना में था, उमैय्या काल में यह केन्द्र दमिश्क हो गया। राजधानी परिवर्त्तन का सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि मदीना जहाँ इस्लाम ने जन्म लिया था, मुस्लिम राज्यों की कभी राजधानी नहीं बन सका और यहीं से राजधानी उठाकर उमैय्यों ने अपने को सुरक्षित भी कर लिया। दमिश्क में उमैय्या शासन के प्रबल समर्थक अधिक थे। इसीलिये दमिश्क को भी उन्होंने अपने शासन का केन्द्र बनाया।

नैतिक प्रभाव

उमैय्या शासन का प्रभाव केवल तत्कालीन राजनीति एवं शासन-व्यवस्था पर ही नहीं पड़ा प्रत्युत शासकों एवं शासितों का नैतिक चरित्र भी इससे प्रभावित हुआ। शासन पर पैतृक अधिकार कायम हो जाने से शासन में ढिलाई तो आयी ही, शासकों का दैनिक जीवन भी बदल गया। पुराने खलीफाओं के जीवन में नैतिकता एवं सात्विकता के सारे लक्षण विराजमान थे और सादगी उन्हें प्रिय थी। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि हज़रत उमर पोशाक के नाम पर केवल पायजामा और कमीज रखते थे और शयन के समय खजर के पत्तों से बिछावन का काम लेते थे। खलीफा अली मिहनत करके भोजन पाते थे। वे आदर्श जीवन के मूर्त्त रूप थे, ऊँचे तथा नतिक विचार रखने वाले महापुरुष थे और सच्ची धार्मिकता से सतत् अनुप्राणित थे। यह सारी आदर्शवादी नैतिकता और अनुकरणीय धार्मिकता उमैय्या काल में विलुप्त हो गयी। कुरान द्वारा वर्जित अधिकांश सिद्धांत क्रिया में आ गये। खलीफाओं, शाहजादों एवं दरबारियों का जीवन रंगीनियों से भर गया, विलासिता उनके जीवन एवं गृहों की शोभा बन गयी। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि शराब उनका जीवन था, संगीत उनकी आत्मा थी और विलासिता उनकी सन्तानें। उनकी रातें मनोरंजन के साधनों के साथ एवं विलासिता में गुजरने लगीं। खलीफाओं ने शराब की दरिया बहा दी। यजीद के काल में शराब पीने का रिवाज प्रारम्भ हुआ था जो उसके उत्तराधिकारियों के काल तक जनप्रिय हो गया। पिछले अध्याय में हम यह उल्लेख कर आये हैं कि यजीद रोज शराब-सेवन का आदी था, वालिद प्रथम प्रत्येक तीसरे दिन पीता था, हिशाम प्रत्येक जुम्मा (शुक्रवार) के दिन चढ़ाता था और अब्दुल मलिक महीना में एक बार स्वाद लेता था। मालिक इतना अधिक पीता था कि उसे होश में लाने के लिए औषधियों का व्यवहार कराया जाता था। वालिद द्वितीय के सम्बन्ध में यह बात विख्यात है कि वह शराब की हौज में तैरता रहता था और जी भरकर पीता था। एक बार कुरान पढ़ते समय उसने शराब-विरोधी सिद्धान्तों को पाया। इस पर वह इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने कुरान की उस प्रति को उसी समय फाड़कर फेंक दिया।

शराब के अतिरिक्त उमैय्या विविध विलासप्रिय प्रसाधनों को भी व्यवहार में लाते थे। वे संगीत, नृत्य, हरम एवं मधुर प्रेमिकाओं का सहवास पसन्द करने लगे। वालिद तथा हिशाम संगीत तथा नृत्य के महान प्रेमी थे। यजीद सुन्दर नर्त्तकियों से प्यार करता था। सलमा एवं हबीबा उनकी प्रिय प्रेमिकाएँ थीं। यजीद शिकार के पीछे दिवाना था। संक्षेप में खलीफाओं के जीवन की सारी नैतिकता समाप्त हो गयी और वे विलासी तथा कामुक हो गये। इससे उनमें अकर्मण्यता एवं शिथिलता आयी।

विपुल धनराशि ने शासकों के चरित्र की साधुता एवं अच्छी आदतों का मटियामेट कर दिया। प्रथम चार खलीफाओं का चरित्र धवल गुणों से सम्मपूरित था, वे सद्‌विचारी थे और सादगी उनके जीवन की महान विशेषता थी। "बैतुल

माल' का एक पैसा भी वे अपने कार्य में खर्च करना अधर्म मानते थे। राज्य के लोगों से प्राप्त सारी आय उन्हीं के कल्याण के लिए खर्च की जाती थी। लेकिन उमैय्या शासक प्रारम्भिक खलीफाओं की पवित्र परम्पराओं का त्याग कर दिये।[3] वे बैतुल माल की धनराशि को विलासप्रिय प्रसाधनों को खरीदने में खर्च करने लगे। जहाँ प्रारम्भ में यह धन-राशि सारे मुसलमानों की सम्पत्ति मानी जाती थी और खलीफा केवल उससे निश्चित वेतन लेते थे वहाँ अब सारी सम्पत्ति निजी स्वार्थ एवं कार्यों की पूर्ति में खर्च होने लगी। बैतुल माल की इस सम्पन्नता में खलीफा अपनी सज्जनता खो बैठे और उनके जीवन एवं चरित्र का नैतिक धरातल नीचे गिर गया। दरबार की शान-शौकत रखने एवं हरम की औरतों को प्रसन्न रखने में यह सम्पत्ति पानी की तरह बहायी जाने लगी।

इस काल में मक्का एवं मदीना की धार्मिकता समाप्त हो गयी और वहाँ के लोग भी विलासी हो गये। संगीत, शराब एवं नृत्य में बेखबर रहना यहाँ के लोगों का दैनिक कार्य हो गया। सम्पत्ति की इस बहुलता ने इन शहरों की पवित्रता को नष्ट कर दिया। सांसारिक सुखों के उपभोग का ये शहर केन्द्र बन गये जहाँ संगीत एवं गान के लय सुने जाने लगे। कुरान एवं हदीस की यह भूमि नाच एवं संगीत की रंगशाला बन गयी।

नैतिक जीवन को परिसमाप्त करने में गुलाम औरतों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उमैय्या काल में गुलामों की संख्या काफी बढ़ी जिसमें औरतें भी थी। गुलाम औरतें नाचने-गाने तथा घरों में घरेलू काम करती थी। कालान्तर में बड़े अमीरों की यौन तृष्णा की संतुष्टि का वे साधन बन गयीं। सुन्दर गुलाम औरतों को अब रखेल के रूप में भी रखा जाने लगा। इस पक्ष ने जीवन की सारी अच्छाईयों पर बुराई की काली चादर डाल दी।

सांस्कृतिक प्रभाव

उमैय्या शासन ने तत्कालीन संस्कृति को भी अत्यधिक प्रभावित किया। पर यह प्रभाव राजनीतिक एवं नैतिक प्रभावों से भिन्न था। राजनीतिक एवं नैतिक जीवन पर पड़े कुप्रभाव जीवन के सारे गौरव एवं शासन की सारी मर्यादा को नष्ट करने वाले थे। हाँ, केवल सैन्य संगठन की प्रशंसा की जा सकती है। आन्तरिक शान्ति एवं वाह्य आक्रमण को रोकने के लिये मुआविया ने जिस दृढ़ एवं दक्ष सैनिकों के दस्ते कायम किये, वे अनुकरणीय अवश्य थे। पर अन्य सारे प्रभाव दुष्परिणामों को ही प्रकट किये।

संस्कृति के क्षेत्र में उमैय्यों के शासन की कुछ खास देन है। खिलाफते रासिदा के काल में केवल नाममात्र का सांस्कृतिक विकास हुआ था। इस काल

3. The establishment of the Umayyad dynasty at Damacsus marked a clear break with the pious and tradition of earlier Caliphs. —Ibid, p 74·

के शासकों की दृष्टि में चित्रकारों को तो ऐसा सजा मिलती ही थी। लेकिन उमैय्या काल में कुरान के हदीसों एवं पैगम्बर मुहम्मद की नसीहतों को परे हटाकर संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का विकास किया गया। स्थापत्य के क्षेत्र में नयी-नयी शैली आयी। अनेक मस्जिदे बनायी गयीं जिनमें मेहराबों तथा मकसुरों का प्रयोग किया गया। ये प्रयोग नये थे जो आगे के वर्षों में भी प्रचलन में रहे। मीनार बनाने का भी पहली बार रिवाज इसी काल में प्रारम्भ हुआ। बसरा की मस्जिद, फुस्तात की मस्जिद, काहिरा की मस्जिद इत्यादि स्थापत्य कला की उत्कृष्टता की कुछ अनमोल कृतियाँ हैं। चित्रकारी का विकास भी इस काल में काफी हुआ। कैसरे आमरा की दीवार की चित्रकारी आकर्षक है। खलीफाओं ने हम्माम का निर्माण कर उसे चित्रित करवाया। इनमें शासकों के चित्र भी बनाये गये। इस्लाम के इतिहास में इसी काल में पहली बार जानवरों एवं पुरूषों के चित्र बनाये गये। इस काल में शिकार का चित्र बनाया गया जिसमें एक जंगली गदहे पर सिंह को झपटते हुए दिखालाया गया।

काव्य-कला के क्षेत्र में भी उमैय्या खलीफाओं ने अभूतपूर्व उन्नति लायी। प्रेम, राजनीति एवं प्रान्त पर काव्यों की रचना की जाने लगी। प्रेम-गीत पहली बार रचे गये। सकीना का प्रेमी उमर इब्न'इबी रबिय्या, सुबनिया का पागल प्रेमी जमील, लैला का विक्षिप्त दिवाना मजनू (कैस) आदि प्रेम के गीतकार थे। मिस्कीन-उद-दारमी राजनीतिक काव्य का कवि था। हम्माद गीतों का संकलनकर्त्ता था। अरवतल, फरजदक तथा जहीर ने प्रादेशिक काव्य का विकास किया।

संगीत में भी क्रान्तिकारी परिवर्त्तन आया। विलासी खलीफा संगीत का विकास रोककर अपने जीवन को आनन्द से पृथक नहीं कर सकते थे। खनसा गेय पदों को लिखने में सिद्धहस्त थी। मुखन्नस नामक एक गायक दल ही इस युग में पैदा हो गया था। तुवेस वस्तुतः संगीत का जनक था। तम्बूरे पर पहली बार इसी संगीतज्ञ ने संगीत की स्वर-लहरी छेड़ी। अल-गिरीद, माबद आदि इस युग के श्रेष्ठ गायक थे। महिलाओं ने भी संगीत विद्या को आगे बढ़ाने में पुरूषों का साथ दिया। जमीला, हबाब, सकीना आदि मधुर गायिकाएँ थीं।

अरबी व्याकरण की रचना पहली बार उमैय्या शासन काल में ही हुई। दुआली प्रसिद्ध वैयाकरणी था जिसने अली के काल में ही व्याकरण लिखने का कार्य प्रारम्भ किया था। इब्न अहमक एक अन्य व्याकरण-विद्वान था जो ईराक का निवासी था। सियूबिया नामक विद्वान ने पहली बार अरब का क्रमिक व्याकरण लिखा। उसकी पुस्तक 'अल किताब' अरब देशों में आज भी लोकप्रिय हैं।

इतिहास और धार्मिक विधियों का निर्माण-कार्य भी इस युग में आगे बढ़ा। शारिय्या पुराने बहादुरों का इतिहास लिखता था। सरकारी पत्रों को लिखने का प्रचलन भी इसी काल में प्रारम्भ किया गया। शिक्षा के अन्य क्षेत्र भी विकसित हुए।

विज्ञान के क्षेत्र में चिकित्साशास्त्र और रसायनशास्त्र का विकास किया गया। इब्ने असाल, तियाजूक और मासर जोया इस काल के प्रसिद्ध चिकित्सक

थे। खालिद बिन यजीद इस काल का प्रसिद्ध रसायनशास्त्री था जिसने पहली बार ज्योतिष, तिब (Science of Medicine) तथा रसायनशास्त्र पर पुस्तकों की रचना की। जफर अल सादिक इस काल का एक अन्य वैज्ञानिक था।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि उमैय्या शासन ने तत्कालीन और परवर्ती राजनीतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया। बगदाद, बसरा, कूफा, दमिश्क वगैरह नगर राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास के गढ़ बन गये। सच तो यह है कि उमैय्यो के आगमन से अरब में एक नया समाज, एक नया शासन ही कायम हो गया था। संस्कृति को छोड़कर अन्य सारे प्रभाव अधार्मिक तत्वों से उत्प्रेरित थे। जीवन में अच्छाइयों की ओर झुकाव नहीं रहा था। लोग विकास-प्रिय हो गये थे। उमैय्या वंश के बाद जितने भी वंशों के शासन स्थापित हुए, उन्होंने इन प्रभावों को, उमैय्या शासन के तथ्यों को विरासत के रूप में कुछ-न-कुछ अवश्य स्वीकार किया। खलीफा अब खलीफा न रहकर बादशाह बन गये। इस्लाम अब 'धर्म' न रहकर 'राज्य' और संस्कृति' में परिवर्तित हो गया। अब यह अरब राष्ट्रीयता का द्योतक न रहकर मुसलमानों की देशभक्ति का द्योतक बनता गया।[4]

---

4. Islam, then, rather than Arab nationalism was becoming the important factor in Moslem patriotism.

—Furguson aud Brunni. European Civilization p 156.

अध्याय—9

उमैय्या शासन का पतन

(Downfall of the Umayyad Rule)

मुआविया तथा उसके प्रारम्भिक उत्तराधिकारियों के काल में इस्लाम का निरन्तर विकास होता गया और यह अरब तथा अन्य प्रदेशों का धर्म बन गया : यह नवोदित धर्म कुछ ही वर्षों फैलकर व्यापक रूप धारण कर लेगा, यह किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। उमैय्या शासकों ने इस्लामी शासन के प्रारंभिक स्वरूप तथा खान्दान को अवश्य बदल डाला था, किन्तु प्रारम्भिक खलीफाओं की तरह उन्होंने इस्लाम के विस्तार में सक्रियता अवश्य दिखलायी थी। यही कारण था कि मुआविया को शक्ति का लोग लोहा मानने लगे थे और गद्दी का अपहरणकर्त्ता होकर भी मुस्लिम जगत में उसे प्रशंसा ही मिली थी। इस्लाम के विस्तार का कार्य अधूरा नहीं छोड़ा गया था और उमैय्या शासकों ने अपनी विदेश नीति का मूलमंत्र इस्लाम विस्तार करना ही बनाया।

किन्तु उमैय्या शासन के संस्थापन में ही उमैय्यों के पतन के बीज भी छिपे थे। यह बात लोग अभी तक नहीं भूल पाये थे कि मुआविया ने गद्दी का अपहरण किया है और पैगम्बर मुहम्मद तथा उनके प्रारंभिक नुमाइन्दों के साथ गद्दारी की है। अतः प्रारम्भ में ही मुसलमानों ने मुआविया तथा उसके शासन के विरूद्ध सिर उठाना प्रारम्भ कर दिया था। मुआविया ने मुसलमानों के खलीफा हजरत अली को धोखा देकर गद्दी हथिया ली थी और हसन को धमकी देकर उसे चुप रहने को वाध्य किया था। यही कारण था कि खारजी और हसन दोनों वर्गों के लोग मुआविया और उमैय्या शासन के विरोधी हो गये थे। यह सही है कि भारत के मध्यकालीन गुलाम वंशीय शासक बलबन की तरह मुआविया ने अपने विरोधियों का दमन किया था और अपनी लौह शक्ति का परिचय दिया था, किन्तु वह विद्रोहिनी भावना का दमन करने में सफल नहीं हो सका था। तत्काल उसकी कठोर नीति के कारण सर्वत्र शान्ति व्याप्त गयी थी, किन्तु यह स्थायी शानित नहीं थी। मानव-मन में भीतर-भीतर एक चिन्गारी सुलग रही थी जो मौका आने पर ज्वाला का रूप धारण कर समस्त उमैय्यों एवं उनके शासन को जलोंकर खाक कर देनेवाली थी। मुआविया के अयोग्य उत्तराधिकारियों ने विरोधिय को विद्रोह करने का और राज्य में विघटनकारी तत्वों को जन्म लेने का मौका दे दिया। वर्षों का संचित आक्रोश प्रकट होने लगा और मुहम्मद साहब के समर्थक अपहरणकर्त्ताओं के विरूद्ध जमात तैयार करने लगे। उमैय्या शासक के अन्तिम चरण में साधारण जनता को इस वंश के खलीफाओं से बहुत असन्तुष्ट देखकर तथा पतन के अन्य कारणों को एकत्रित पाकर हजरत मुहम्मद के एक चाचा अब्बास की सन्तान ने खिलाफत पर अपना मौरूसी अधिकार बतलाया और शीघ्र ही वह उमैय्या के विरूद्ध एक आन्दोलन का नेता बन गया। ईरान के मवाली

(नये मुसलमान) उमैय्या खिलाफत से उनके दुर्व्यवहार के कारण अप्रसन्न तथा असंतुष्ट थे। दूसरी ओर शिया (Shite) प्रारम्भ से ही उमैय्या वंश के विरोधी थे। परिणामतः अब्बासियों, शियों और खुरासान के लोगों के बीच होने वाले एक समझौते ने उमैय्या खिलाफत का अन्त कर दिया।

उमैय्या शासन के पतन के उत्तरदायी तत्व एक नहीं, अनेक थे। कुछ तत्वों का जन्म उमैय्या शासन के संस्थापन के समय ही हो गया था और कुछ तत्वों ने शासनावधि में जन्म लिया था। इन सारे तत्वों ने मिलकर उमैय्यों तथा उनके शासन को विनष्ट कर दिया। इन तत्वों की विवेचना करना आवश्यक है।

उमैय्या शासन का अजनतन्त्रीय स्वरूप उनके पतन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है। दो-चार शत्रुओं से कोई भी शासक संघर्ष कर सफल हो सकता है, पर सारी जनता को असंतुष्ट कर वह दीर्घ काल तक कायम नहीं रह सकता है। खिलाफतयुगीन जनतन्त्रीय शासन-पद्धति को विनष्ट करके उमैय्या शासन के संस्थापक मुआविया ने राजतन्त्रीय व्यवस्था कायम की। सच बात तो यह थी कि अरब के निवासी स्वभाव से ही जनतन्त्र-प्रेमी थे जिसका ज्ञान हजरत मुहम्मद साहब को था और यही कारण था कि उन्होंने स्वयं अपना उत्तराधिकारी नहीं चुनकर इसका भार अरबों पर ही छोड़ दिया था।[1] मुआविया ने अपने पुत्र को अपना उत्तराधिकारी चुनकर एक तरफ जनतन्त्रीय प्रणाली को समाप्त किया और दूसरी तरफ अरबों की स्वतन्त्रय भावना को जख्मी कर दिया। इतना ही नहीं उसका अजनतन्त्रीय शासन शक्ति में विश्वास करता था और तलवार के बल पर टिका हुआ था। कभी मुआविया ने अपने शासन में परिवर्तन लाकर खिलाफते रासिदा के नियमों पर चलने का प्रयास किया, पर उसके उत्तराधिकारी पुराने शासन से समझौता करने को कतई तैयार नहीं थे। इसलिए इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि यजीद के काल से ही वंश का पतन प्रारम्भ हो गया न कि एक सदी बाद से।"

"उमैय्या खलीफाओं का घृणित चरित्र भी उनके शासन के पतन का एक प्रमुख कारण था। मुआविया हिन्दुस्तानी बलवन की तरह राज्य की हिफाजत में यावज्जीवन लगा रहा। शासन की व्यवस्था करने में उसने बहुत ही कम समय का उपयोग किया। पर उसके उत्तराधिकारी कर्मठ न होकर विलासी थे, शासक न होकर भोगी थे।" वे विपुल धनराशि के स्वामी थे। धीरे-धीरे वे शराब पीने की लत पकड़ लिए, नृत्य एवं गान में जिन्दगी के वक्तों को गुजारने लगे, औरतों के आलिंगन से आबद्ध होकर शासन की सारी कला भूल पड़े, शिकार के पीछे हफ्तों

---

1. The concept of legitimate succession was foreign to the Arabs at the time and it is probable that even if Muhammad had left a son the sequence of events would not have been different. —Hell. p 199

राजधानी से दूर रहकर भटकने लगे।" खिलाफते रासिदा में ऐसी बातें नहीं थीं। सारे खलीफा ईमानदार और परिश्रमी थे। अरब की जनता ने जब खिलाफते उमैय्या में यह परिवर्त्तन देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही और उनकी असन्तुष्टि दिनानुदिन बढ़ने लगी।[2] "कोई भी शासन जनता के समर्थन पर ही अधिक दिनों तक टिका रह सकता है। जब जनता असन्तुष्ट थी तो तलवार के आधार पर उमैय्या शासन कितने दिनों तक चल सकता था ? कुछ शासकों के खून भी पाक नहीं थे। मुआविया के दो उत्तराधिकारी अनुचित औरतों (Free women) की सन्तान थे। अनैतिकता अवनति की जननी है, प्रगति की नहीं। अतः उमैय्यों का विनाश होना ही था।

करबला की घटना ने उमैय्यों के खिलाफ चलनेवाली आँधी को और भी तीव्र गति दे दी। समय की परख मुआविया को थी और इसीलिए वह 'तलवार' और 'जबान' दोनों से समयानुसार काम लेता था। पर उनके उत्तराधिकारी समय के पारखी नहीं थे क्योंकि उनमें दुरदर्शिता का नितान्त अभाव था। यजीद की अदूरदर्शिता ने शीघ्र ही उन मुसलमानों को उमैय्या वंश का विरोधी बना दिया जिन्हें बड़ी मुश्किल से मुआविया ने अपने पक्ष में मिलाया था। विलासी यजीद ने एक ऐसा कार्य किया जिसके चलते सारी मुस्लिम जनता उनके विरुद्ध हो गयी। उसने करबला के मैदान में पैगम्बर मुहम्मद के निवासे हुसैन और उसकी हत्या करवा दी। हत्या के उपरान्त भी उसने मृत शरीरों के साथ पाशविक खिलवाड़ किया। अनेक घावों से घायल होकर जब हुसैन का सिर गिर पड़ा तब उसे लेकर यजीद के पास भेज दिया गया।[3] उसके कटे सिर को उसने पुनः उसकी बहन और पुत्र के पास भेज दिया जो हुसैन को दफनाने के लिये दमिश्क आये थे। "हुसैन के खून ने उसके पिता हजरत अली के खून से अधिक शिया को उभाड़ा।" शिया धर्म इसी दिन अमर हो गया और इस धर्म की शक्ति का बीजारोपण भी इसी दिन

---

2. The characteristic vices of civilization, specially those involving wine, women and song, had seized upon the sons of the desert and were beginning to sap the vitality of the youthful Arab society. —P. K Hitti, p 280.

3. मुस्लिम जगत में हुसैन के रक्त-प्रवाहित सिर से संबंधित एक कहानी प्रचलित है। यह कहा जाता है कि हुसैन का कटा हुआ सिर स्वर्ण की थाली में यजीद के सामने प्रस्तुत किया गया। यजीद ने हुसैन के होठों को स्वर्ण-छड़ी से ठोकना (मारना) प्रारम्भ किया। जितनी बार वह उसके होठों पर मारता था उतनी ही बार हुसैन के मुख से कुरान के हदीस निकलते थे। इस हदीस ने सैनिकों और एकत्र हुई मुस्लिम जनता को काफी प्रभावित किया। उत्तेजना में आकर वे यजीद पर झपट पड़े। लेकिन किसी तरह महल से भागकर उसने अपनी जान बचायी। कहा जाता है कि रात में कभी भी यजीद को नीन्द नहीं आयी। अन्त में यजीद की मृत्यु हो गयी।

हो गया। शिया मुसलमानों ने इसी दिन हुसैन के खून का प्रतिशोध लेने का संकल्प किया और यही संकल्प उमैय्यों के विनाश का कारण बना।[4]

करबला की वारदात (10,680) के बाद इस्लामी राज्य में दो महान शक्तियों का उदय हुआ—शिया की शक्ति और खारीजी की शक्ति। शिया धर्मावलम्बी खून का बदला लेने के लिये कमर कस लिये। खारीजी प्रारम्भ में ही मुआविया तथा उसके शासन के विरुद्ध थे। जैसे ही उन्हें अवसर मिलता था, वैसे ही वे उमैय्या राज्य पर आक्रमण कर बैठते थे। ईराक में अराजकता और अशान्ति फैलाने में खारीजियों का ही प्रमुख हाथ था। इनकी देखा-देखी अन्य विरोधी दलों का भी शनैः-शनैः संगठन होने लगा। उमैय्या खलीफा शराब के नशे में चूर होकर इन विरोधी संगठनों की ओर ध्यान नहीं देते थे। यहाँ तक कि उनके अधार्मिक तथा अनैतिक कार्यों से सुन्नी मुसलमान भी उनसे असन्तुष्ट एवं अप्रसन्न रहने लगे। यजीद के बाद शिया तथा खारीजियों की शक्तियों ने उमैय्या शासन की नींव को खोखला बनाने में काफी सफलता प्राप्त की और राज्य-भवन धीरे-धीरे धराशायी होने लगा।

उमैय्या अमीर मुआविया ने उत्तराधिकार के संबंध में पुत्र का मनोनयन कर जिस व्यवस्था को कायम किया था, वह व्यवस्था भी स्थायी सिद्ध न हो सकी। शासन करनेवाले अमीर मुआविया के बाद अब एक ही साथ अनेक उत्तराधिकारियों का नामांकन करना प्रारम्भ किये। इसका फल यह हुआ कि नामांकित उत्तराधिकारियों में एक दूसरे से पहले ही अमीर बनने के लिये होड़ प्रारम्भ होने लगी और उनमें आपसी फूट पैदा हो गयी। उदाहरणार्थ शासक मरवान ने अपने पुत्र अब्दुल मलिक को अपना पहला उत्तराधिकारी तथा उसके बाद के लिये अपने द्वितीय पुत्र अब्दुल अजीज को अपना दूसरा उत्तराधिकारी नामजद किया। किन्तु अब्दुल मलिक ने शासन की बागडोर अपने हाथों में संभालते ही अपने पिता की नामजदगी को रद्द करार करते हुए अपने भाई की जगह अपने पुत्र वालिद को उत्तराधिकारी बनाने का प्रयास किया।" यह व्यवस्था पारस्परिक एकता के लिये हानिकारक सिद्ध हुई और सर्वसाधारण जनता को अत्यन्त अखरी। शासन को स्थायित्व और अस्तित्व को इस व्यवस्था ने खतरे में डाल दिया।[5] चौदह उमैय्या शासकों में केवल चार शासकों (मुआविया प्रथम, यजीद प्रथम, मरवान प्रथम और अब्द अल मलिक) ने अपने पुत्रों के उत्तराधिकार के लिए नामजदगी की थी और अवशेष बदलते रहे।

---

4. The blood of al-Husayn, even more than that of his father, proved to be the seed of the Shite Church..... Yawn (the day of) Karbala gave the Shiah a battle-cry summed up in the formula "vengeance for al-Husayn" which ultimately proved one of the factors that undermined the Umayyad dynasty.

p. K. Hitii, p. 91.

5. All these manoeuvres were, of course, far from being conducive to the stability and continuity of the regime.

Ibid, p. 82.

उमैय्या शासन के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण अरब के कैसी तथा यमनी नामक दो कबीलो का पारस्परिक विरोध था जिससे उमैय्या शासक किसी न किसी प्रकार संबंधित थे। ये दोनों कबीले प्राचीन काल से ही एक दूसरे के विरोधी एवं आलोचक थे। छोटी-छोटी बातों पर भी वे एक-दूसरे स झगड़ पड़ते थे। दमिश्क में दो वर्षों तक ये कबीले आपस में झगड़ते रहे। यमनी के बगीचे से एक कैसी ने एक तरबूज तोड़ लिया और इस पर दोनों लड़ पड़े। स्पेन में यमनो की फल-बाटिका से एक कैसी ने अंगूर का एक पत्ता तोड़ लिया और यह मामुली सी बात दोनों के बीच झगड़े का कारण बन गयी।[6] सिन्ध, सिसली के किनारे या सहारा की सीमा पर ये दोनों कबीले आपस में सदैव झगड़ते रहते थे। इनके झगड़ों से राजधानी का वातावरण भी तनावपूर्ण होता रहता था।

इन झगड़ों से उमैय्या शासक स्वयं को अधिक दिनों तक पृथक नही रख सके और उनमें धीरे-धीरे अभिरूचि लेने लगे। कुछ शासकों ने यमनी को बढ़वा दिया तो कुछ ने कैसी को अपना समर्थक बनाया। धीरे-धीरे यमनी अधिक शक्तिशाली हो गये और उन पर उमैय्या शासक निर्भर करने लगे। शासकों ने शासन में उनकी सहायता लेनी प्रारम्भ की। महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्तियाँ की जाने लगी। यमनी कबीला के बढ़ते उत्कर्ष एवं पराक्रम के कारण कैसी कबीले के लोग उनसे इर्ष्या करने लगे। अतः वे उदण्ड हो चले और उनकी उडण्डता इस तरह बढ़ गयी कि उन्होंने मुआविया की आज्ञा का पालन करना भी अस्वीकार कर दिया। आगे चलकर जब हेज्जाज के कारण वालिद के काल में कैसियों की उन्नति हुई तो इससे यमनियों को जलन हुई। उमैय्या कालीन अन्तिम शासक इन्हीं कबीलों में से किसी न किसी का समर्थन करते रहे। इससे उमैय्या वंश का पतन अवश्यम्भावी हो गया।[7] कबीलो की शक्ति पर आश्रित रहनेवाला शासन कबतक चल सकता था ?

उमैय्या वंश के पतन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण पदाधिकारियों का अत्याचार भी है। राज्य के पदाधिकारी अत्यन्त ही कठोर तथा अत्याचारी थे। वे बड़ी कड़ाई से टैक्स वसूला करते थे और काफी बेरहमी से जनता के विद्रोहों को दबाया करते थे। जिहाद, हैज्जाज आदि के पदाधिकारी जनता को सताने में तनिक भी दया नहीं दिखलाते थे। पदाधिकारियों की इस कठोरता का फल यह हुआ कि उमैय्या शासन के विरुद्ध अनेक दलों का संगठन होने लगा।

उमैय्या खलीफाओं ने मुसलमानों से जज़िया (टैक्स) वसूल कर उन्हें अपना विरोधी बना दिया। नियम यह था कि जो इस्लाम को स्वीकार करके मुसलमान बन जाता था उससे जज़िया नहीं लिया जाता था। लेकिन इस्लाम स्वीकार कर

6. Ibn-Idhari, Bayan, vol II. p. 84-

7. It participated in the downfall of the dynasty and its ill effects were manifest in years to come and in widely separated places.
—p. K. Hitti, p 81

लेने के बाद भी जजिया लेने की प्रथा उमर-बिन-अब्दुल अजीज के अतिरिक्त प्रत्येक खलीफा के समय में निरन्तर चलती रही। इससे मवाली जो इस्लाम के ही अनुयायी थे, उमैय्या शासन से असन्तुष्ट हो गये। गैर-अरब मुसलमान (ईरानी) भी समान अधिकार न मिलने के कारण उमैय्या शासन से अप्रसन्न थे।

इसी समय जब विभिन्न दलों ने उमैय्या शासन के खिलाफ संयुक्त मोर्चा बनाना प्रारम्भ किया तब उमैय्यों की शक्ति के नष्ट होने में अब कुछ भी सन्देह नहीं रहा। यह संयुक्त मोर्चा शिया, खोराशानी तथा अब्बासी सेनाओं के बीच कायम हुआ जिसका नेता अल अब्बास (पैगम्बर मुहम्मद का चाचा) का पोता अबू-अल-अब्बास था जिसने उमैय्या के खिलाफत को समाप्त कर खिलाफते रासिदा के शासन को पुनः स्थापित किया। आगे चलकर यह मोर्चा काम करता रहा।

इसी समय मरवान द्वितीय ने राजधानी तथा प्रशासनिक कार्यालयों का स्थान परिवर्त्तन कर सीरिया की जनता को नाराज कर दिया। अभी तक दमिश्क उमैय्या शासन का केन्द्र था, पर मरवान ने 'हरीन' (ईराक) शहर में सारे कार्यालयों का स्थानान्तरण कर दिया तथा दमिश्क की जगह अब हरीन आक्रमण का केन्द्र बन गया। इसका फल यह हुआ कि शाम (सीरिया) की जनता उसका विरोध करने लगी। अब परिस्थिति पर काबू पाना मरवान के लिये मुश्किल कार्य था। उमैय्या शासन का भाग्य-सूर्य डुबने वाला था।[8]

इसी समय अब्बासी आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। ऊपर लिख जा चुका है कि शिया और खुरासानी सैनिकों ने भी अब्बासियों का साथ दिया था और अबू-अल-अब्बास को अपना नेता मान लिया था। अब्बासी कुरैश की हाशिमी शाखा में से थे और हजरत मुहम्मद के ज्यादा करीब थे। इसीलिये उन्होंने अपनी खिलाफत कायम करने का दावा किया। शिया और खोरासानी सैनिकों की शक्ति का फायदा अब्बासी नेता ने उठाया। 9 जून 747 ई० को अबू मुस्लिम ने जो अब्बासी एजेन्ट था, खुरासान में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और अपने अज्द समर्थकों के साथ खुरासान की राजधानी मारव (Marw) में प्रवेश किया।[9] खुरासान के गवर्नर नसर इब्न-सय्यार ने उमैय्या शासक मरवान द्वितीय से सहायता की याचना की। लेकिन उसकी याचना पर कुछ भी ध्य न नहीं दिया गया। इस समय फिलस्तीन से लेकर हिम्स तक उमैय्या राज्य में आन्तरिक विद्रोह हो गये थे जिनका दमन करने में खलीफा संलग्न था। इतना ही नहीं, खिलाफत के लिये यजीद तृतीय और इब्राहिम में, जो मरवान द्वितीव के उत्तराधिकारी थे, संघर्ष चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में मरवान को खुरासान के गवर्नर की सहायता करने का मौका नहीं मिला। ईराक के खारीजियों ने उमैय्या शासन के खिलाफ खुला विद्रोह कर परिस्थिति को और भी उलझनप्रद बना डाला।

---

9. Nicholson; Literary History, p. 251.

8. But it was too late for him to redeem the general situation. The sun of the banu-Umayyad was fast approaching its setting.
Ibid pp. 284-85

उधर अबू मुस्लिम आगे बढ़ता रहा। मारव का जल्द ही पतन हो गया। इसके पतन के बाद 749 ई० में ईराक के प्रसिद्ध शहर कूफा पर भी आक्रमण किया गया जहाँ अब्बासी नेता अबू-जल-अब्बास ने अपना गढ़ कायम किया था। बिना अवरोध के कूफा पर अब्बासी एजेन्ट का अधिकार हो गया। अक्टूबर 30, 749 को कूफा की मस्जिद में अबू-अल-अब्बास की बैयत स्वीकार करने की जनता ने शपथ ली और सम्मान देकर उसे अपना खलीफा मान लिया। प्रत्येक जगह उमैय्या के धवल ध्वज को उतार कर अब्बासियों ने कृष्ण ध्वज को फहरा दिया। अन्त में मरवान अब्बासियों के विरुद्ध 12,000 सैनिकों को लेकर हरीन से प्रस्थान करने को बाध्य हुआ और जैब नदी के किनारे शत्रु सेना से जूझ पड़ा। अब्बासी सेना का नेतृत्व नये खलीफा अबू-अल अब्बास का चाचा अब्दुला इब्न-अली ने किया। मरवान आसानी से जैब की लड़ाई में परास्त हो गया। यह एक निर्णायक लड़ाई थी जिसने दोनों वंशों के भाग्य का निर्णय कर दिया। जैब की जीत ने अब्बासी के पैरों पर सीरिया को झुकने के लिए बाध्य किया। सीरिया के मशहूर शहर अब्दुला तथा उसकी खोरासानी सेना के पैरों पर गिरने लगे। कुछ दिनों तक दमिश्क अब्बासी संप्रभुता को मानने से इन्कार करता रहा। पर जबरदस्त घेरे के बाद उसने भी 26 अप्रिल 750 ई० को आत्मसमर्पण कर दिया। फिलस्तीन से अब्दुला ने सेना की एक छोटी टुकड़ी मरवान को गिरफ्तार करने के लिये मिस्र भेजी। मरवान ने मिस्र से भाग कर बसीर (Busir) की मस्जिद में पनाह ली थी। मरवान को पकड़ने में सैनिकों को सफलता मिली। उसे सैनिकों ने 5 अगस्त को मस्जिद के बाहर जान से मार डाला। उसके सिर को काटकर अबू-अल-अब्बास के पास भेज दिया गया। मरवान उमैय्या वंश का अन्तिम दीपक था जो टिमटिमाकर बूझ गया।

अब्बासियों ने मरवान के बध के उपरान्त अब उमैय्यों को खोज-खोज कर मारना प्रारम्भ किया। अब्दुल्ला सारे उमैय्यों को जड़ से समाप्त कर देना चाहता था। 25 जून, 750 ई० को उसने जाफा के निकट अबू-फुतरस में एक भोज का आयोजन किया और अस्सी उमैय्यों को इसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। जैसे ही भोज्य सामग्रियों को उमैय्यों ने खाना प्रारम्भ किया वैसे ही अब्दुल्ला के सैनिक नंगी तलवार लिये बाहर निकल गये और उन पर टूट पड़े। सारे उमैय्यों को भोजनासन पर ही कत्ल कर दिया गया। कत्ल के बाद उन पर चमड़े की चादर डाल दी गयी। चादर के भीतर से कभी-कभी प्राण छोड़ते हुए किसी-किसी उमैय्या की दर्दभरी कराह बाहर निकल आती थी। इसी तथ्य को एच० जी० वेल्स ने इस प्रकार लिखा है : उमैय्या वंश के सभी पुरुषों को कत्ल करके उनकी लाशों पर चमड़े का कालीन बिछाया गया और उस पर बैठकर अब्बास तथा उसके सलाहकारों ने भोजन किया। इसके अतिरिक्त उमैया वंश के खलीफाओं की कब्रों को खोदकर और उनकी हड्डियों को निकालकर तथा जलाकर हवा में बिखेर दिया गया।" इतिहासकार मूर ने भी इस बात की पुष्टि की है।[10]

10. P. K. Hittc. 285 also, Muir; Caliphate p 376

अब्बासियों का क्रोध अभी भी शान्त नहीं हुआ था जिस षडयन्त्र से उमैय्यों ने अली को पदच्युत किया था और बर्बरता से पैगम्बर मुहम्मद के खून (हुसैन) की हत्या की थी उसका प्रतिशोध भी उसी निर्दयता एवं बर्बरता से लेता था। गुप्त-चरों एवं ऐजेन्टों को उमैय्यों की खोज के लिये यत्र-तत्र भेज दिया गया। सौभाग्यवश एक उमैय्या अब्द-अल रहमान इब्न-मुआविया इब्न हिशाम भागकर स्पेन चला गया जिसने कालान्तर में एक नये उमैय्या वंश के शासन की नींव डाली। मृत खलीफा भी अब्बासियों की नजर से नहीं बच सके। दमिशक, किनासरीन आदि की कब्रों में दफनाये गये खलीफाओं को अब्बुल्ला के आदेश से खोदकर बाहर निकाला डाला गया। दबिक की कब्र से सुलेमान को और रूसफा की कब्र से हिशाम को खोदकर बाहर निकाला गया। अस्सी बार उन्हें बाहर अग्नि में जला कर राख में परिवर्तित कर दिया गया। खून के खून का प्रतिशोध इससे अधिक और क्या लिया जा सकता था ? उमैय्यों का कहीं भी नामोनिशां नहीं रहा।

सत्ता पर अधिकार करने के लिये परवर्ती उमैय्या खलीफाओं में प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती थी और वे कभी भी एक जुट होकर कार्य न कर सके। इससे दो प्रकार के नुकसान हुए। एक तरफ शासकों की शक्ति छीजती गयी जिसके कारण केन्द्रीय शक्ति का स्थायित्व संदिग्ध हो गया और दूसरी तरफ विरोधी अब्बासियों का उत्कर्ष होता रहा। इसके अतिरिक्त खलीफाओं ने अरबों की अनेक प्रकार की सुविधायें दी और उन्होंने गैर-अरबों का तिरस्कार किया। ऐसे तिरस्कृत लोगों ने उमैय्या खिलाफत को समर्थन देना बन्द कर दिया।[11]

उमैय्यों के पतन के साथ ही सीरिया का सारा गौरव धूल-धूसरित हो गया और उनकी सारी राजनीतिक मर्यादा समाप्त हो गयी। सीरिया के निवासियों को अब यह विश्वास हो गया और उसकी सारी राजनीतिक मर्यादा समाप्त हो गयी। सीरिया के निवासियों को अब यह विश्वास हो गया कि उनके देश के गौरव को अब किसी भी तरह उमैय्या खलीफा वापस नहीं ला सकते हैं और न उसे मर्यादित स्वरूप दे सकते हैं।

जैसे ही उमैय्या वंश का शासन परिसमाप्त हुआ अब्बासी शासन की नींव पड़ी वैसे ही इस्लाम के इतिहास में पुनः एक नये युग का आगमन हुआ। नयी राजधानी के रूप में कुफा इतराने लगा और खोरासानी अंगरक्षक के रूप में अब्बासी दरबार में रहने लगे। इस्लामी इतिहास का वास्तविक अरब काल का परिसमापन हो गया और खोरासीनी तथा ईरानी महत्वपूर्ण स्थान पाये। अरबवाद का युग लद गया। अब्बासियों के नेतृत्व में बढ़ते इस्लाम एवं फैलते इस्लामी राज्य के साथ इस्लाम ने अन्तर्राष्ट्रीय कलेवर पाया और ईरानीवाद का प्रभाव जमता गया। सम्पूर्ण अब्बासी खिलाफत के काल तक खोरासानी और ईरानी प्रभावशाली बने रहे और अरबो की मर्यादा समाप्त हो गयी

---

11. The Cambridge History of Islam Vol I, —I. p 102 03

अध्याय-10

अब्बासी खिलाफत
(The Abbasid Caliphate)

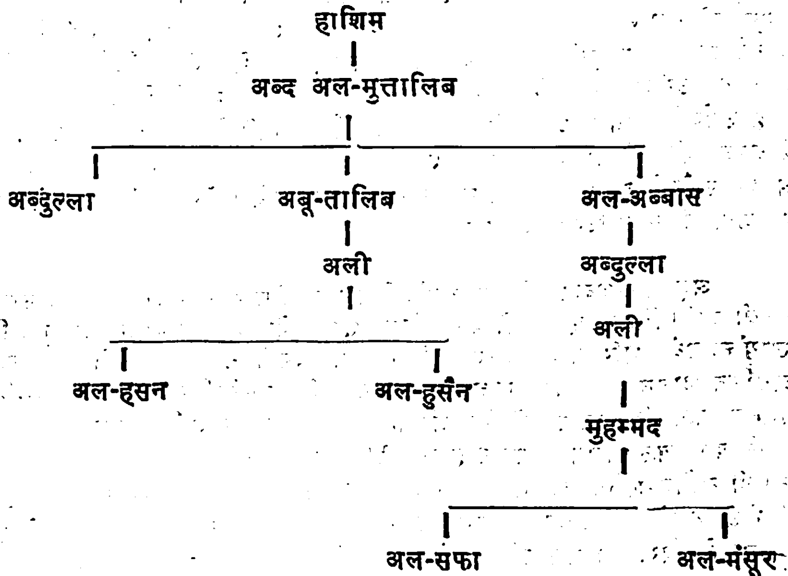
अब्बासी खिलाफत का उत्कर्ष इस्लाम की कहानी का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसने पश्चिमी एशिया तथा इस्लाम में अनेक परिवर्त्तन लाया। अबतक इस्लामी शासन का प्रमुख केन्द्र दमिश्क (सीरिया) था जिसकी उत्तरोत्तर प्रगति उमैय्या काल में होती गयी थी। उसकी जगह फारस ने ले ली और तिगरिस के किनारे बसे बगदाद को राजधानी बनायी गयी। सीरिया की तरह अब्बासी खलीफाओं की देखरेख में अब फारस की कला तथा संस्कृति फलने-फूलने लगी। अबतक सीरिया की शक्ति की दुन्दुभी बजती थी, अब फारस की कला जय-गान होने लगा। केवल सीरिया ही श्री-हीन नहीं हुआ अपितु इस्लामी साम्राज्य में विघटनकारी तत्व भी शनैः-शनैः प्रकट होने लगे इसके फलस्वरूप साम्राज्य की एकता दम तोड़ने लगी। एकता का बिखराव तो उमैय्या काल से ही होने लगा था। बिखराव की गति अब्बासी-काल में और भी तेज हो गयी, गतिशील हो गयी। सम्पूर्ण इस्लामी साम्राज्य के राज्य एक स्वर से अब्बासी खलीफाओं की संप्रभुता एकाएक स्वीकार नहीं कर लिये। स्पेन ने उनकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया और उनके शासन के अन्तिम वर्षों में अफ्रीका प्रदेश भी स्वतन्त्र होने लगे। पर इन विघटनकारी तत्वों ने अब्बासी खलीफाओं की उनकी राज्य-सीमा तक सुरक्षित रखा। साम्राज्य में अनेकता रहने के कारण इस वंश के शासन करते रहे और तत्काल उनकी शक्ति का लोहा लेने में अन्य शक्तियाँ असमर्थ रहीं। इसका यह हुआ कि अपने दीर्घकालीन शासन में खलीफाओं ने समस्त अरब का सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास किया। प्रथम आठ अब्बासी शासन असाधरण प्रतिभा और योग्यता वाले पुरूष थे और वे अपने युग के महान राजनीतिज्ञ और विद्वान थे।[1] वे केवल कला-मर्मज्ञ एवं सुसंस्कृत ही नहीं थे प्रत्युत तलवार के भी धनी थे। अपने जिन लौह हाथों से आन्तरिक विद्रोहों को दबाकर राज्य में अमन-चैन कायम किया उन्हीं हाथों से विदेशी को जीतकर इस्लाम-राज्य की सीमा में विस्तार भी लाया। अतः अब्बासी खिलाफत का उत्कर्ष अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। कुल शासक 37 शासक हुए जिसमें से प्रथम आठ खलीफा ही महत्वपूर्ण माने गये।

---

1. वे आठ शासक अधोलिखित है :—
   - (1) अबुस अब्बास सफाह (749-54)
   - (2) अबू जफर मंसूर (754-75)
   - (3) महदी (775-85)
   - (4) हादी (785-86)
   - (5) हारून रशीद (786-809)
   - (6) अमीन (809-13)
   - (7) मामून (813-33)
   - (8) मुत्तासिम (835-42)

खिलाफत की स्थापना

अब्बासी खिलाफत की स्थापना का एक लघु चित्र हम पिछले अध्याय में उमैय्या वंश के पतन के सिलसिले में प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ विस्तृत रूप में उसकी पुनरावृत्ति कर देना अप्रासांगिक नहीं होगा। उमैय्या काल के अन्तिम चरण में अब्बासी आन्दोलन की चर्चा की गयी है। इस आन्दोलन का नेता अल-अब्बास था जो मुहम्मद का चाचा होने के कारण हाशिम परिवार का खून था। इसीलिये उसने तथा उसके खून के लोगों ने इस्लाम का खलीफा बनने का दावा करना प्रारम्भ किया। उनका यह दावा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सत्य भी था। नीचे की तालिका इस तथ्य को स्पष्ट करती है।



अब्बासियों के इस दावे को कोई निर्मूल सिद्ध नहीं कर सकता था क्योंकि वे मुहम्मद साहब के कुरैश परिवार की हाशिमी शाखा के ही थे। इसके अतिरिक्त मुहम्मद की पुत्री फातिमा की शादी अली से हुई थी। इस तरह अली भी अब्बासियों के सम्बन्धी थे। अली की हत्या के बाद हसन और हुसैन भी काल-कवलित हो गये थे। अब अब्बासी ही पुनः इस्लाम का खलीफा बनकर वास्तविक मुस्लिम राज्य का संरक्षण कर सकते थे, इस बात से वे परिचित थे।

इस दावे को क्रिया रूप में परिणत करने के लिये अबू अल-अब्बास के नेतृत्व में अब्बासियों ने उमैय्या शासन के अंतिम वर्षों में जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ किया। अबू अल-अब्बास ने समस्त मुसलमानों का, विशेषकर सीरिया के लोगों का ध्यान अपने अधिकार और दावे की ओर आकृष्ट किया। उसने इस बात का विश्वास दिलाया कि सच्चे विश्वास और रसूल के वसूलों की रक्षा अब्बासी ही कर

सकते हैं। अब मुस्लिम जगत् में खलबली मच गयी। मुहम्मद के प्रति सच्ची श्रद्धा रखने वाले मुसलमानों के हृदय में अबू अल-अब्बास के लिये भी श्रद्धा की भावना जन्म लेने लगी। अब अब्बासियों के उत्कर्ष का मार्ग खुलने लगा। तत्कालीन अव्यवस्थित राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिस्थितियों ने भी उनके उत्कर्ष के लिये मसाला दिया।

सम्प्रति सीरिया बड़ी नाजुक परिस्थिति से गुजर रहा था। उमैय्या शासन की नींव हिल रही थी। समग्र जनता विलासी शासकों की अकर्मण्यता एवं दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट थी। इस असन्तोष के अनेक अन्य कारण भी थे। सारी जनता को समान राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। शासन के बड़े तथा महत्त्वपूर्ण पद उमैय्यों के लिये सुरक्षित थे। गैर-उमैय्या जाति के लोग अपने को उमैय्या से अधिक सभ्य एवं प्रगतिशील मानते थे। ईरानी किसी भी तरह उमैय्यों के प्रति श्रद्धा दिखलाने को तैयार नहीं थे। उनका यह दावा था कि वे अरब की पौराणिक श्रेष्ठ सभ्यता के प्रतिनिधि एवं संरक्षक हैं, अतः उन्हें असभ्य उमैय्यों का प्रभाव समाप्त करना ही चाहिये। गैर-अरबी जातियों पर करों का भार भी लाद दिया गया था।

अबू अल-अब्बास ने इस सार्वजनिक असन्तोष से फायदा उठाया। उसने गैर-अरबी जातियों एवं ईरानियों को उमैय्या शासन के विरुद्ध उभाड़ना प्रारम्भ किया। उपर्युक्त उर्वर भूमि पाकर अब्बास के विरोध-स्वर के बीज उगने लगे। अब्बास ने प्रचलित शासन के विरुद्ध एक क्रान्ति पैदा कर दी। उसने शिया तथा खोरासानियों से मित्रता कर ली और उनकी सेनाओं की सहायता लेकर उमैय्या राज्य पर आक्रमण करने का संकल्प लिया। उसने हम्मा (Hammah) को अपना गढ़ कायम किया और अपनी सैनिक-शक्ति का संगठन किया। यहाँ उसने एक कार्यालय खोलकर उमैय्या-विरोधी तत्वों का प्रचार करना प्रारम्भ किया। राजनीतिक इस्लाम में उमैय्या शासन के विरुद्ध शक्तिशाली आन्दोलन का केन्द्र यहीं कायम किया गया।[2]

चिर-संचित असन्तोष की भावना 9 जून, 747 ई० को क्रान्ति के रूप में प्रकट हो गयी। इस समय उमैय्या वंश का मरवान द्वितीय खलीफा के पद पर आसीन था। खुरासान स्थित अबू मुस्लिम नामक एक अब्बासी गुमाश्ता (Agent) ने उमैय्या शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। ईरान की अब्द जाति के लोगों ने उसे सहयोग देना प्रारम्भ किया। बिना किसी बाधा के अबू मुस्लिम को अपने सहयोगियों के साथ खोरासन की राजधानी मारव में प्रवेश करने में सफलता मिल गयी। खुरासान उमैय्या शासन का एक प्रान्त था।

---

2. Here the stage was set for the earliest and most subtle propagandist movement in political Islam,

—P. K. Hitti; p. 281.

खुरासान के गवर्नर नसर इब्न अय्यार ने घटना की सूचना मरवान को भेजकर उससे सैनिक सहायता की याचना की। लेकिन घरेलू समस्याओं में बुरी तरह उलझे रहने के कारण मरवान गवर्नर की सहायता करने में लाचार था। इन दिनों फिलस्तीन से लेकर हुम्स तक विद्रोह की फिजा तैयार हो रही थी जिसे दबाने में खलीफा संलग्न था। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के अन्दर उत्तराधिकार-निर्णय के लिये यजीद तृतीय और इब्राहिम के बीच संघर्ष चल रहा था। कदर कबीला के लोग यजीद का साथ दे रहे थे और यमन दल वाले इब्राहिम का। अपनी अदूरदर्शिता के चलते स्वयं खलीफा मरवान ने भी इस गृह-युद्ध की अग्नि में और घी डाल दिया था। कदरों के बहकावे में आकर उसने सीरिया से (दमिश्क से) राजधानी बदलकर मेसोपोतामिया के हर्रान शहर में नयी राजधानी कायम कर ली। दमिश्क का आकर्षण घट चला और हर्रान का राजनीतिक महत्त्व बढ़ने लगा। इस परिवर्त्तन से सीरिया की समस्त जनता क्षुब्ध एवं अप्रसन्न हुई और खलीफा से असन्तुष्ट हो गयी। इतना ही नहीं, खारीजियों ने भी इसी समय उमैय्या शासन के विरुद्ध अपना सिर उठाना प्रारम्भ किया। इन विकट परिस्थितियों के जाल में फँसा हुआ मरवान अबू मुस्लिम के विरुद्ध गवर्नर की सहायता करके भी अब्बासियों के आक्रमण से अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सकता था।

अबू मुस्लिम ने बड़ी आसानी से खुरासान की राजधानी पर अधिकार कर लिया। 749 ई० में उसने ईराक के प्रसिद्ध नगर कूफा पर भी कब्जा कर लिया। 30 अक्टूबर को कूफा की मस्जिद में एकत्र होकर ईराक जनता ने अबू अल-अब्बास को अपना खलीफा स्वीकार कर लिया और उसके प्रति निष्ठावान बने रहने की शपथ ली। अल-अब्बास अब्बासी शाखा का पहला खलीफा बना। उमैय्या शासन के श्वेतध्वज को सब जगह से उतार दिया गया और उसकी जगहों पर अब्बासियों के कृष्ण रंग वाले झण्डों को फहरा दिया गया।

अब विवश होकर मरवान को अब्बासी उत्कर्ष के विरुद्ध तलवार उठानी पड़ी। लेकिन समय चूक गया था और विकट स्थिति को साधारण करना उसके हाथ की बात नहीं थी। उमैय्या शासन को, जो पतनोन्मुख हो चला था, बचाना सम्भव नहीं था। उसका भाग्य-सूर्य जल्द ही अस्ताचल की ओर बढ़ चला था। 12000 सैनिकों का एक दस्ता लेकर मरवान ने हर्रान से प्रस्थान किया। दजला की सहायक नदी जैब के किनारे अब्बासी सेना से उसकी सेना की भिड़न्त हो गयी। अब्बासी सेना का नेतृत्व इस समय अबू अल-अब्बास का चाचा अब्बास इब्न अली अब्बासी कर रहा था। जैब ने अब्बासियों के सौभाग्य एवं उमैय्यों के दुर्दिन का फैसला कर दिया। पराभूत उमैय्या श्रीहीन हो गये और सीरिया विजयी अब्बासियों के पैरों पर आ गिरा। अब सभी शहर एक-एक कर अब्दुल्ला की तलवार के सामने झुकने लगे। थोड़ी देर के लिये दमिश्क ने अब्दुल्ला के समक्ष अपनी हेंकड़ी जमायी, पर जल्द ही अब्दुल्ला की दुधारी तलवार के सामने नत मस्तक हो गया। दमिश्क का गवर्नर, जो मरवान का बहनोई था, मारा गया। खलीफा मोसूल भाग चला। घायल साँप का जहर जानलेवा होता है, यह अब्दुल्ला जानता था। अतः मरवान की जीवन-लीला सामाप्त करना अत्यावश्यक था। अब्बासी नायक ने मरवान को पकड़ने के लिये शीघ्र ही अपने दो भाइयों साला और अबू अयून के नेतृत्व में सेना

की एक छोटी टुकड़ी फिलस्तीन भेज दी। नील नदी के पश्चिमी तट पर स्थित बसीर नामक शहर की एक मस्जिद में छिपा हुआ अभागा मरवान, जो उमैय्यों का अन्तिम कुल-दीपक था, पकड़ा गया। उसका सिर काट डाला गया और उसके सिर एवं राजचिन्ह को खलीफा अल-अब्बास के पास भेज दिया गया।

अब दिल दहला देनेवाली नर-संहार लीला प्रारम्भ हुई। उमैय्यों का खोज-खोज कर सफाया किया जाने लगा। उनके विनाश का कार्य भी अब्दुल्ला को ही सुपुर्द किया गया। उमैय्यों के खून से सिंचित अब्बासी वंश का पौधा लहलहाने लगा। 750 ई० को उमैय्यों के हत्या-काण्ड का लोमहर्षक दृश्य देखने को मिला। जाफा के निकट स्थित अवजा में अब्दुल्ला ने भोज में सारे उमैय्यों को आमन्त्रित किया। उमैय्या अब्दुल्ला का विश्वास कर जैसे ही हाथों में कौर उठाये कि अब्बासी सैनिक नंगी तलवार लिये उन पर टूट पड़े और उनके खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाने लगे। भोज-स्थल पर नर-मुण्डों के ढेर लग गये। मृत तथा मुमूर्ष उमैय्यों के ऊपर चमड़े की चादर डाल दी गयी और चादर को छेदकर चित्कार की करुण आवाज यदा-कदा वातावरण को गम्भीर बनाती रही। इतना ही नहीं, गुप्तचरों को विदेशों में भेज कर उमैय्यों का पता किया गया। इब्न खाल्दून के अनुसार "कुछ उमैय्या पृथ्वी के उदर में घुस कर अपने प्राणों की रक्षा करने में समर्थ हुए।" किसी तरह एक उमैय्या अब्द अल-रहमान इब्न मुआविया इब्न हिशाम स्पेन भाग सकने में समर्थ हुआ जहाँ उसने कालान्तर में एक नये उमैय्या वंश के शासन की नींव डाली। दमिश्क, किनासरीन आदि शहरों में बनी कब्रों को खोदकर दफनाये गये उमैय्या खलीफाओं को बाहर निकाला गया और उनकी तौहीन की गयी। दबिक की कब्र से सुलेमान को और रसाफा की कब्र से हिशाम को खोदकर उनकी बेइज्जती की गयी। मानव की पाशविक एवं क्रूर नीति का इससे अधिक जघन्य उदाहरण और कहाँ मिल सकता है? अबू अल-अब्बास शिया था और अब्बासियों का पहला खलीफा। उमैय्या के सारे लोगों की हत्या करवा कर ही उसने दम लिया। उसने कहा था : "मैं महान् बदला लेने वाला हूँ और मेरा नाम असफाह अर्थात् रक्त बहाने वाला है।"

मरवान की हत्या के पश्चात् ही उमैय्या वंश का शासन समाप्त हो गया और अब्बासी खिलाफत की नींव पड़ी। इस खिलाफत में ईरान की महत्ता कायम हुई। ईरानियों को शासन के बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किया गया और खोरासानियों को खलीफाओं का अंग-रक्षक बनाया गया। अरब जाति का महत्व धीरे-धीरे घट गया और इस्लाम ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण किया। इस शासन की नींव पड़ते ही शासन में अन्य नये तत्त्वों का समावेश होने लगा। खलीफाओं की साम्राज्यवादी नीति के चलते जहाँ एक तरफ इस्लाम का विस्तार हुआ, वहीं दूसरी तरफ उनके कला-मर्मज्ञ होने के कारण सांस्कृतिक विकास वाहन भी आगे बढ़ा।

अब्बासी शासन का स्वर्णयुग

अब्बासी शासकों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—पूर्वार्द्ध अब्बासी शासक और उत्तरार्द्ध अब्बासी शासक। अब्बासी वंश का शासन 750 ई० में स्थापित हुआ

और 1258 ई० में समाप्त हुआ। इस वंश में अनेक विभिन्न खलीफा हुए जो असाधारण योग्यता वाले थे।

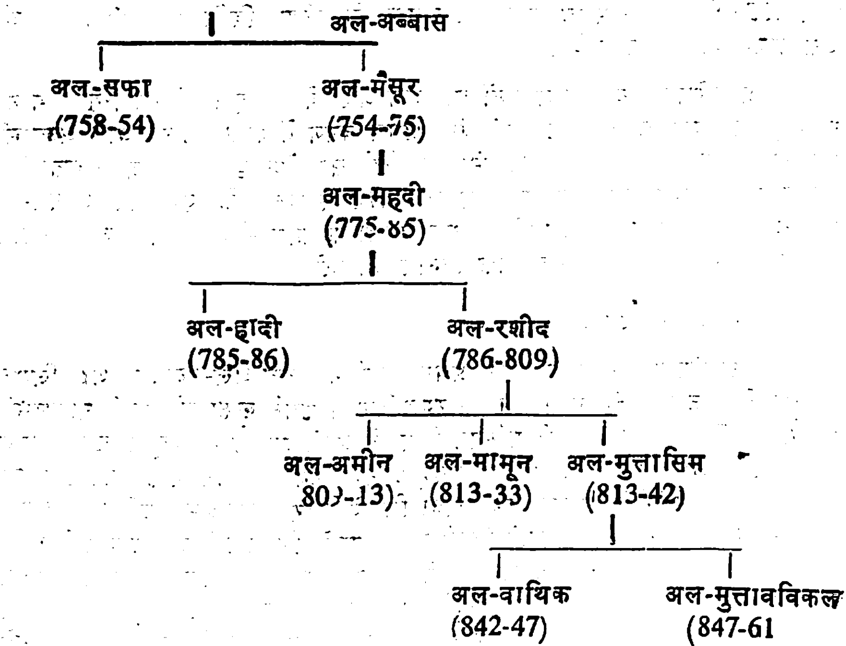
प्रारम्भिक अब्बासी शासकों का काल अरब के इतिहास में स्वर्ण-युग माना गया है। इन शासकों की संख्या नौ थी। प्रथम चरण में शासन करने वाले अब्बासी खलीफाओं का काल पूर्वी सारासेन के लिये सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है। इस काल में अभियान-युग का समापन हुआ और सभ्यता के युग का आगमन। स्वर्ण-युग के निर्माता इन प्रारम्भिक खलीफाओं के काल में न केवल राज्य-विस्तार हुआ बल्कि सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति भी हुई।

अबू अल-सफा (750-54)

इस वंश का संस्थापक और प्रथम खलीफा अबु अल-अब्बास था जिसने इस्लाम के नाटक के तीसरे अंक को प्रारम्भ किया। उसने कूफा को अपनी राजधानी बनायी। 751 ई० को इसकी मस्जिद में उसने अपने शासन का पहला खुतबा पढ़ा 'अल-सफा' (Blood shedder' का विरुद् धारण किया। अपने शासन की स्थापना के समय उसने उमैय्यों का खून बहाया था जिसके परिणामस्वरूप, दमिश्क, हम्स, किनासरीन, फिलस्तीन और मेसोपोतामिया में उसके खिलाफ विद्रोह उठ खड़े हुए। इस्लाम की एकता समाप्त होने लगी। स्पेन में रहमान ने जो अब्दुला की क्रूर नीति का शिकार होकर भाग गया था, खुलेआम बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। लेकिन अल-सफा, जिसके नाम का अर्थ ही 'खून बहाने वाला' था, इन विद्रोहों से घबड़ाया नहीं, बल्कि उसने इनका कठोरता से दमन कर दिया।

लेकिन अभी भी ईराक की राजधानी वसीत (Wasit) का वायसराय यजीद बिन हौबैरा अबू अल-अब्बास की संप्रभुता स्वीकार नहीं कर रहा था। यजीद का दमन करने के लिये खलीफा ने अपने दो भाईयों—हसन बिन कतबा तथा अबू जफर को सेना के साथ भेजा। करीब ग्यारह महीनों तक अब्बासी सेना राजधानी का घेरा डाले रही। इतना होने पर भी जब वायसराय ने आत्म-समर्पण नहीं किया तब राजधानी को खाक कर देने के लिये दोनों भाईयों ने नदी-मार्ग से आग लगानेवाली नौकाओं को वहाँ भेजने का प्रबन्ध किया। त्रस्त होकर यजीद को आत्म-समर्पण करना पड़ा। आत्म-समर्पण के लिये उसने यह शर्त्त रखी कि उसकी जान की रक्षा होनी चाहिए। अबू जफर ने उसकी तथा उसके परिवार के सदस्यों की जान बक्स देने की गारन्टी दे दी। वायसराय ने आत्म-समर्पण कर दिया। लेकिन जफर अपनी इस गारन्टी को कायम नहीं रख सका। खोरासन का गुमाश्ता अबू मुस्मिलय ने खलीफा को यह कहकर बहकाना प्रारम्भ किया कि यजीद शक्तिशाली है और फेजारा जाति के लोगों पर उसका अद्भुत प्रभाव है। अतः ऐसा शक्तिशाली वायसराय जिन्दा रहकर अब्बासी शासन का सिर दर्द बना रह सकता है। अबू मुस्लिम के बहकावे में खलीफा आ गया और जफर को पत्र लिखकर वायसराय को जान से मार देने की आज्ञा दे दी। प्रारम्भ में जफर ने इस शाही पत्र की अवहेलना की। पर जब खलीफा का आदेश उसे निरन्तर मिलने लगा तब लाचार होकर उसने उसका बध करने का षड्यन्त्र रचा। जफर स्वयं उसका बध

स्वर्णयुगीन अब्बासी खलीफा



करने की हिम्मत नहीं कर रहा था क्योंकि उसने यह संकल्प लिया था कि वह उसके प्राणों की रक्षा करेगा। उसने उसके निवास-स्थल पर एक सेना भेज दी। सैनिकों ने वायसराय, उसके ज्येष्ठ पुत्र तथा अन्य समर्थकों की हत्या कर दी। अबू मुस्लिम की सीख काम कर गयी।

अब्बास अब एशिया तथा मिस्र का निर्विवाद रूप से स्वामी बन गया। पश्चिमी अफ्रीका के भू-प्रदेशों ने भी उसकी संप्रभुता को स्वीकार कर लिया। अपनी संप्रभुता तथा अस्तित्व की रक्षा के लिये उसने अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को प्रान्तों के गवर्नर के पदों पर नियुक्त करना प्रारंभ किया। जफर को मेसोपोतामिया, आर्मीनिया तथा अजरबैजान का दाऊद बिन अली को हेज्जाज, यमन तथा यामना का, अब्दुल्ला बिन अली को सीरिया का, सुलेमान बिन अली को बसरा, बहराईन, अहुसा, अमन एवं अहबाज का अबू मुस्लिम को खोरासान का और अबू अयूम को मिस्र का गवर्नर बनाया गया। ये सारे व्यक्ति खलीफा के प्रत्यक्ष सम्बन्धी थे। अबू सलमा को राज्य का वजीर बनाया गया और खालिद बिन बरमेक को अर्थ-सचिव। प्रशासन में अबू सलमा का प्रभाव सर्वाधिक छाया हुआ था और इससे अबू मुसलिम को जलन हो रही थी। मुस्लिम ने एक रात षड्यन्त्र रचकर उसकी हत्या करवा दी।

हीरा के निकट बने 'अनवर महल' में 9 जून, 754 ई० को तीस वर्ष की उम्र में यह युवक खलीफा चेचक की बिमारी से मर गया। अपने पीछे वह एक पुत्र (मुहम्मद) तथा एक पुत्री (रायता) छोड़ गया। कालान्तर में रायता की शादी मुहम्मद अल-महदी से हो गयी। महदी जफर का पुत्र था जो अब्बासी का एक प्रसिद्ध खलीफा हुआ। मृत्यु के पूर्व ही अब्बास ने अपने पुत्र अबू जफर को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था।

अबू अल-अब्बास एक निर्माता एवं योद्धा ही नहीं, अपने समय का एक उच्च विशारद भी था। अपने दरबार में वह विधि-वेत्ताओं तथा अन्य विद्वानों से सदैव घिरा रहता था। इन विचारकों द्वारा दिये गये प्रशासन-संबंधी परामर्शों को वह कभी-कभी स्वीकार भी करता। वह स्वयं महान विधि-वेत्ता था। उसका यह विचार था कि साम्राज्य की सारी शक्तियों एवं संप्रभुता का स्वामी अब्बासी शासक ही है और उसके अधिकार सर्वोपरि तथा सर्वमान्य हैं। उसका यह भी ख्याल था कि अब्बासी शासन के अवसान पर सारे विश्व में अराजकता तथा अव्यवस्था फैल जायेगी।[3] शासन में उमैय्यों द्वारा दिये गये सिद्धान्तों का परित्याग किया। उमैय्या शासन में अरबों का महत्त्व अधिक था, पर अब्बासी शासन में गैर-अरबों तथा अन्य जातियों की भी प्रधानता कायम हुई। अब्बास ने इसकी ओर विशेष ध्यान देकर गैर-अरबों को अपना समर्थक बनाया। इस्लाम अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने लगा।

अपने को 'खून बहाने वाला' कहकर भी अल-सफा भीतर से उदार था। वह एक कर्त्तव्यनिष्ठ एवं त्यागी पुरुष था। शासन के नाम पर वह अपनी सारी सुविधाओं और विश्राम का त्याग करने के लिये सदैव तत्पर था। इसी युग में मुसलमान शासक अधिक पत्नियाँ रखने के शौकीन थे। पर इस क्षेत्र में भी अल-सफा ने मर्यादा का पालन किया। यावज्जीवन वह अल-सलमा का ही शौहर बना रहा। सलमा भी उसके प्रति ईमानदार बनी रही और अवसर आने पर शासन में उसको सहयोग देती रही। पर अपने शौहर के प्रचण्ड क्रोध को शान्त करने में वह भी असफल रही।

अबू-जफर मंसूर (754-75)

अब्बास के मृत्योपरान्त उसका भाई अबू जफर 'अल-मंसूर' का विरुद् धारण कर गद्दी पर आरूढ़ हुआ। मंसूर का अर्थ होता है 'विजेता' (Victorious)। इस अर्थ को उसने क्रिया में परिणत करके भी दिखलाया। अब्बास ने अब्बासी शासन की नींव डाली थी, पर मंसूर ही उसका वास्तविक संस्थापक था। इसकी प्रबल शक्ति एवं पराक्रम के कारण इस वंश के शासन की महत्ता काफी बढ़ी और लोग उसे मार्गदर्शक (opener) के रूप में मानने लगे। वास्तव में वह मार्ग-दर्शक ही था। अपने शासन काल में उसने आन्तरिक विद्रोहों तथा वाह्य आक्रमणों से राज्य की रक्षा की और उसे स्थायित्व प्रदान किया। उसने खिलाफते रासिदा के इस्लाम को

---

3. If this Caliphate were destroyed the whole universe would be disorganised. —*Ibid, p. 289*

जिसमें उमैय्यों के चलते विकृति आ गयी थी, पुनः परिष्कृत रूप में लाने का प्रयास किया। मंसूर को मानव-प्रकृति का गहरा अध्ययन था। वह इस बात से पूर्ण अवगत था कि अरब-निवासी पैगम्बर मुहम्मद के परम भक्त और समर्थक हैं। अतः उसने धर्म को भी अपने शासन में प्रधानता देकर स्वयं को मुहम्मद साहब का अनुगामी कहा और अरब-समाज में लोकप्रिय बनने का प्रयास किया। इसके काल में राजनीति और धर्म का गठबन्धन कायम हुआ।

यहाँ हमें यह याद रखनी चाहिए कि मंसूर के काल से ही ऐसे योग्य खलिफाओं के शासन की शृंखला प्रारम्भ होती है जो एशिया में प्रसिद्ध हैं। अबू अब्बास के प्रथम दो उत्तराधिकारियों की तुलना एण्टोनीन और मेडिसीज से की जाती है। इन दोनों शासकों ने साम्राज्य में एकता एवं स्थायित्व लाने के लिये अथक प्रयास किया। पड़ोसी राज्य भी इन दोनों शासकों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

खलीफा बनते ही अल-मंसूर ने राज्य की आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उसने सीरिया के गवर्नर अब्दुला की ओर ध्यान दिया। अब्दुला ने सीरिया में विद्रोह कर खलीफा के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा फहरा दिया था। अबू मुस्लिम के नेतृत्व में अब्दुला के विरुद्ध खलीफा ने एक सेना भेजी। नवम्बर, 754 ई० को दोनों की सेनाओं के बीच नासीबीन में युद्ध हुआ। युद्ध में अब्दुला बुरी तरह पिट गया और हार कर अपने परिवार के सदस्यों के साथ बसरा भाग गया जहाँ उसका भाई सुलेमान बिन अली गवर्नर के पद पर आसीन था। लेकिन अबू मुस्लिम ने उसे ढूँढ़ निकाला और उसे उसके दो पुत्रों के साथ हाशिमी के निकट निर्मित एक दुर्ग में नजरबन्द कर दिया। पर अब्दुला को राजधानी के निकट रखना भी खतरा मोल लेना था। अब्दुल्ला की अपरिमित शक्ति से वह परिचित था। खलीफा भी यह जानता था कि अब्बासी वंश का शासन उसी के चलते ही कायम हुआ है। अतः ऐसे दुर्द्धर्ष शत्रु की जीवन-लीला ही समाप्त करने में वे विश्वास करने लगे। इस कार्य के लिये एक विलक्षण योजना ढूँढ़ निकाली गयी। नमक की नींव पर महल खड़ा किया गया और उसमें अब्दुला को रखा गया। वर्षा की एक ही बौछार में नमक गल गया और महल धराशायी हो गया। अभागा अब्दुला मकान के नीचे दबकर आह तक न भर सका। जिस बर्बरता एवं क्रूरता से उसने असंख्य उमैय्यों की जान ली थी उसी बर्बरता से उसकी भी जान ले ली गयी। सीरिया पर पुनः अब्बासी शासक का प्रभुत्व कायम हो गया।

अब्दुला का शत्रु अबू मुस्लिम भी मंसूर की कठोर-नीति का निशाना बना। प्रथम खलीफा ने उसे खोरासान का गवर्नर नियुक्त किया था। उसकी बढ़ती महत्वाकांक्षा की खबर मंसूर को मिल चुकी थी। नासीबीन की लड़ाई का विजय-मुकुट धारण कर जब मुस्लिम अपने प्रान्त की ओर लौटने लगा तो खलीफा ने उसे राजधानी ही सीधा आने के लिये सन्देश भेज दिया। मुस्लिम इस संदेश के अंजाम से वाकिफ था। इन दिनों खुर्रामी (धार्मिक सम्प्रदाय) उसे इमाम एवं अपना संरक्षक बनाने लगे थे और उसके एक इशारे पर अपने प्राणों की आहुति चढ़ाने लिये तैयार

थे। खोरासान के पूर्वी पहाड़ों के प्रदेश में वे अपनी शक्ति का जमाव भी कर रहे थे। मुस्लिम इन्हीं खुर्रामियों की सहायता से मंसूर के शासन की तख्त को उलट देना चाहता था। उसे यह अन्दाज लग गया कि उसकी इन क्रियाओं की सारी खबर मंसूर को मिल चुकी है। अतः उसने भविष्य के परिणाम का मन ही मन अनुभव कर खलीफा के संदेश पर ध्यान नहीं दिया और सैनिकों के साथ खोरासान की ओर बढ़ता रहा। पर जब दूत ने यह विश्वास दिखाया कि सीरिया-विजय की खुशी में खलीफा उसके सम्मान में जश्न मनाना चाहता है तो वह राजधानी की ओर लौट पड़ा। दरबार में उसका काफी स्वागत हुआ और उसे राजकीय भवन में कुछ दिनों तक अतिथि के रूप में रखने की व्यवस्था कर दी गयी। अतिथि के सुख-भोग-काल में ही एक दिन उसे निहत्था पाकर मंसूर के संकेत पर सैनिक उस पर टूट पड़े और उसे मार डाले। अब्बासी राज्य का यह सिर-दर्द भी खतम हो गया और मंसूर की स्थिति पूर्वी प्रदेशों में और भी दृढ़ हो गयी।

अबू मुस्लिम की हत्या से खोरासान में हलचल मच गयी और खोरासानी विद्रोह कर बैठे। खलीफा ने जनता के इस विद्रोह को भी आसानी से कुचल दिया।

इसी समय रावेन्डी सम्प्रदाय के लोगों ने हाशिमी में धार्मिक युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध ने मंसूर के जीवन को संकट में डाल दिया। लेकिन शीघ्र ही मंसूर ने इस साम्प्रदायिक विद्रोह का दमन कर दिया और विद्रोहियों को शहर से निकल जाने को बाध्य किया। काफी नर-हत्या के बाद बिजेन्ताइन के आक्रमण को रोका गया और सेनायें पीछे हटने लगीं। कुस्तुनतुनिया के सम्राट को संधि करने के लिये बाध्य किया गया जो केवल सात वर्षों के लिए थी। संधि के उपरान्त मंसूर ने उन नगरों एवं मकानों का पुनर्निर्माण किया जो बिजेन्ताइन-आक्रमण से नष्ट हो गये थे। इसी समय उसने सीमान्त प्रदेशों की किलाबन्दी भी कर डाली और भविष्य में अपने राज्य पर होनेवाले आक्रमणों को रोक दिया। उजड़ शहरों में पुनर्वास की व्यवस्था की गयी और लोगों को पुनः वहाँ बसाया गया। खलीफा ने स्वयं विभिन्न प्रान्तों की यात्रा की और लोगों की दशाओं का निरीक्षण किया। सैनिकों की एक टुकड़ी के साथ उसने हसन बिन कहतबा को कपाडोशिया भेजा जिसने मेलेसिया, मेसिया तथा अन्य नगरों का पुनर्निर्माण किया।

कास्पियन के दक्षिण-पूर्व स्थित तबरिस्तान के निवासी खलीफा की संप्रभुता को केवल नाम मात्र के लिये मानते थे और अपने शेख के संकेत पर चलते थे। उनपर शेख का ही अधिक प्रभाव कायम था और खलीफा का कम। एक दिन अचानक उन्होंने अब्बासी शासन के विरुद्ध बगावत का बिगुल बजा दिया। मंसूर को अब इस दिशा में ध्यान देने को बाध्य होना पड़ा। उसने सेना को संगठित कर तबरिस्तान भेजा। स्थानीय नेता तलवार के घाट उतार दिये गये। अवशेष देश-निष्कासन की सजा पाये। अन्त में तबरिस्तान और गिलान को अब्बासी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

इसी समय कास्पियन के पश्चिम और गिलान के पूरब स्थित देलम की जनता ने मंसूर की अधीनता को स्वीकार करने में आनाकानी की और इस्लामी

राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ के मेजियन धर्म के लोग इस्लाम के विरोधी थे। मंसूर ने उनके विरुद्ध प्रयाण किया और उनके विद्रोह को दबा डाला। 760 ई० तक देलम में शान्ति कायम हो गयी और यहाँ फौजी छावनियाँ बनाकर खलीफा ने अपना स्थायी प्रभाव कायम कर लिया।

अपने इन प्रान्तों के शासन की व्यवस्था करने के लिये इसी समय मंसूर ने कदम उठाया। उसने समाचार का विवरण रखने के लिये एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति की। ऐसे अनेक समाचार-लेखक नियुक्त किये गये। इनके जरिये प्रान्तीय सरकारों की गति-विधि पर केन्द्रीय सरकार नजर रखने लगी। गुप्तचरों की नियुक्ति भी इसी समय की गयी जिनके जरिये विभिन्न स्थलों पर होनेवाले विद्रोहों की पूर्व-सूचना सरकार को मिलने लगी। अब सम्पूर्ण राज्य में सुरक्षा की संभावना अधिक बढ़ गयी और लोग सुरक्षित जीवन व्यतीत करने लगे।

मंसूर ने इसी समय अली की औलाद से भी निबट लेना चाहा। हालाँकि अली भी अब्बासियों से संबंधित थे, पर उनकी औलाद की राजनीतिक महत्ता को शासन करने वाले अब्बासी बढ़ते देख नहीं सकते थे। मुआविया के काल से ही अली के खानदान के लोग साधारण नागरिक का जीवन व्यतीत करते आ रहे थे। पर उनके राजनीतिक अधिकारों की चर्चा अभी अरब में होती रहती थी तथा हजारों मुसलमान उनके खोये हुए अधिकारों को वापस दिलाने के लिए संघर्ष करने को तैयार थे।

अली की सन्तानों एवं समर्थकों के अन्तर्मुखी प्रभाव से मंसूर परिचित था और इसीलिए वह उनसे सचेत था। उनके प्रभावों को नष्ट करने के लिए उसने स्वयं अवसर का निर्माण किया। सर्वप्रथम उसने गुप्तचरों तथा अपने विश्वासपात्र लोगों की सहायता से अली के समर्थकों की गति-विधि की सूचना प्राप्त की और उनके ही माध्यम से अब्बासियों को कुछ अपशब्द कहने के लिए उन्हें उभड़वाया। उसने एक और भी चाल चली। उमैय्या वंश के पतनोपरान्त ही मदीना में एक सभा बुलायी गयी थी जिसमें हसन के परपोता मुहम्मद को खलीफा चुन लिया गया था। इस सभा में हाशिमी परिवार के अन्य सदस्यों के साथ-साथ मंसूर भी उपस्थित था। मंसूर के साथ सारे लोग मुहम्मद को खलीफा स्वीकार कर उसके प्रति निष्ठावान बने रहने की शपथ लिये थे। लेकिन विशेष परिस्थितियों के कारण खिलाफत अब्बासियों के हाथों में चली आयी और मुहम्मद की जगह अब्बासी शासक शासन करने लगे। कालान्तर में जब मंसूर खलीफा बना तो उसे मुहम्मद के प्रति निष्ठा-प्रदर्शन की शपथ याद हो आयी और वह आशंका करने लगा कि मुहम्मद अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयास कर सकता है। इसी समय जब उसके गुप्तचरों ने यह सूचना लायी कि अली के समर्थक अब्बासी राज्य पर आक्रमण करने के लिये तैयारी कर रहे हैं तब उसकी आशंका की पूर्ण संपुष्टि हो गयी और एकाएक उसने इब्राहिम और मुहम्मद को कैद कर लेने का प्रयास किया, पर उनके निकल भागने से उसकी यह योजना विफल हो गयी। पर मंसूर चूकने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने वृद्ध अब्दुल्ला को उसके कुछ समर्थकों के साथ गिरफ्तार कर लिया। इसी समय

उसने एक अन्य प्रभावशाली व्यक्ति—मुहम्मद उसमानी को भी गिरफ्तार कर लिया जिसकी पुत्री की शादी इब्राहिम से हुई थी। ये सारे कैदी जंजीरों में जकड़कर कूफा लाये गये तथा हौबेरा के दुर्ग में बन्द कर दिये गये। उनके साथ अत्यन्त बुरा व्यवहार किया गया। अब मंसूर ने दोनों भाइयों की खोज करना प्रारम्भ किया। जल-प्रदेशों में उनकी खोज करने के लिये बद्दूओं को नियुक्त किया गया। प्रत्येक घर छान डाला गया। जिन लोगों पर उन्हें छिपाने का सन्देह हुआ उन्हें जेल की हवा खिलायी गयी। उधर दोनों भाइयों ने गुप्त रूप से सेना का संगठन करना प्रारम्भ किया। इब्राहिम ने अहवाज़ तथा बसरा की जनता को और मुहम्मद ने मदीना की जनता को अब्बासी शासन के विरुद्ध उभाड़ा। दोनों शहरों में मंसूर की पदच्युति की घोषणा कर दी गयी।

लेकिन अली की औलाद की योजना असफल हो गयी। इब्राहिम अली अच्छी तरह सेना का संगठन भी नहीं कर पाया था कि मुहम्मद ने समय के पूर्व ही मंसूर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मदीना के शासक को जिसकी नियुक्ति मंसूर ने की थी, उसने कैद कर लिया और हैज्जाज तथा यमन की जनता ने उसे खलीफा घोषित कर दिया। नये कानून के निर्माता इमाम बानू हनीफ तथा इमाम मालिक ने मुहम्मद के खलीफा पद को कानूनी बताकर उस पर औचित्य की मुहर लगा दी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब्बासी शासन का महल अब धराशायी हो जायेगा।

पर हमें यह न भूलना चाहिये कि 'मंसूर' का अर्थ ही 'विजेता' होता है। मंसूर ने वही चाल चली जो अबू मुस्लिम के लिये चली गयी थी। उसने एक शाही पत्र लिखकर मुहम्मद को यमन का स्वामी बना दिया और यह आज्ञा दे दी कि वह जहाँ चाहे निवास कर सकता है। उसने पत्र में यह भी विश्वास दिलाया कि उसके परिवार के सदस्यों एवं सम्बन्धियों की रक्षा की जायेगी। लेकिन मंसूर को इस पत्र का मुँहतोड़ जवाब मिला। मुहम्मद ने जवाब में लिखा—"मंसूर को क्षमा करने अथवा त्राण देने का अधिकार मुहम्मद रखता है क्योंकि खिलाफत का वास्तविक संचालक वही है, मंसूर नहीं।" तब मंसूर ने मुहम्मद को एक लम्बा पत्र लिखकर यह तर्क दिया कि मुहम्मद साहब को औलाद नहीं थी और इसीलिये उनके सम्बन्धी खलीफा नहीं हो सकते हैं। अगर सम्बन्ध की बात है तो अब्बासी भी उनके सम्बन्धी हैं, अतः चाचा अब्बास के पुत्र भी शासन कर सकते हैं।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करना व्यर्थ समझकर मंसूर ने अपने भतीजा आइशा को मुहम्मद के खिलाफ सेना के साथ भेजा। युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व मुहम्मद ने अपने सैनिकों एवं समर्थकों को लड़ने या वापस जाने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी। इस्लाम का सच्चा सपूत अनिच्छुक व्यक्तियों से सम्बन्ध के नाम पर मदद लेना नहीं चाहता था। कुल 300 व्यक्ति मुहम्मद की मदद करने के लिये अड़े रहे। 768 ई० में युद्ध लड़ा गया जिसमें अदभुत वीरता का खुलकर प्रदर्शन किया गया। अली की औलाद को असफलता ही साथ लगी और मुहम्मद के सारे सैनिक युद्ध-भूमि में काम आये। स्वयं मुहम्मद भी शहीद हो गया। आइशा की आज्ञा लेकर मुहम्मद

परिवार की एक महिला ने सारे शहीदों की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। मदीना के निकट इन शहीदों को कब्रों में सुलाकर इस्लाम के बन्दों की काली करतूतों पर इस महिला ने आठ-आठ आँसू बहाये।

मुहम्मद मर गया, पर इब्राहिम इहलोक में इधर-उधर भटक रहा था। अब उसकी खोज-खबर की जाने लगी। इब्राहिम ने सेना लेकर फरात के तट पर आइसा की सेना से भयंकर युद्ध किया और उसकी सेना को पीछे ढकेल दिया। जब सेना पीछे भाग चली तब इब्राहिम ने उनका पीछा करना बन्द कर अपनी नैतिकता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। वह निहत्थों पर हाथ उठाना बहादुरी के दामन पर लगा हुआ काला धब्बा मानता था। जैसे ही आइसा के सैनिकों को यह खबर मिली कि इब्राहिम की सेना पीछा करना छोड़कर विश्राम लेने लगी है, वैसे ही वे लौट पड़े और अपने शत्रुओं पर टूट पड़े। धोखेबाजी से बड़े-बड़े बहादुरों को भी अपने प्राण गँवाने पड़े हैं। अपने सैनिकों के साथ इब्राहिम मारा गया। मंसर अपनी विजय की खबर पाकर फूला नहीं समाया। अब उसने मदीना तथा बसरा के अली के समर्थकों को मजा चखाना प्रारम्भ किया। इब्राहिम की मदद करने वाले बसरा के धनी व्यक्तियों को जेलों में ठूँस दिया गया, उनके आवासों को उजाड़ दिया गया, उनकी वाटिकाओं को नेस्त-नाबूद कर दिया गया। मदीना में हसन तथा हुसैन की सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया, यहाँ की जनता की प्रदत्त सुविधाओं को रद्द कर दिया गया और बाह्य देशों से उन्हें मिलने वाली सारी सहायता रोक दी गयीं। उन विधि-वेत्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया जो मुहम्मद के खलीफा होने के दावे को उचित करार दिये थे। हौबेरा के दुर्ग में सैकड़ों कैदियों को रखा गया जिन्हें कालान्तार में तलवार के घाट उतार दिया गया। अनेक कैदियों को बलपूर्वक गरल पान कराकर स्वर्ग भेज दिया गया।[4] हृदय-विदारक वातावरण तब और भी कारुणिक बन गया जब इब्राहिम के सिर को उसके वृद्ध पिता अब्दुल के पास भेज दिया गया जिसे कैद करके रखा गया था। वृद्ध अब्दुल्ला ने सारे दुःख को पीकर बड़ी धैर्यता से मंसूर के दूत को जवाब दिया—"अपने स्वामी को जाकर कह देना कि मेरे दुःख के ये दिन सुख के दिनों की तरह कट जायेंगे और कयामत के दिन हमलोग सभी एक ही कटघरे में खड़े होंगे। उसी दिन अल्लाह हमारा वास्तविक न्याय करेगा।"[4]

अली के खान्दान की प्रतिष्ठा को खाक में मिलाने के बाद मंसूर के राज्य में सर्वत्र शान्ति कायम हो गयी। आन्तरिक विद्रोह की सुलगती अग्नि पर पानी पड़ने के बाद अब मंसूर निष्कंटक राज्य करने लगा। पश्चिम एशिया और अफ्रीका के सारे प्रदेश अब उसकी तलवार की शक्ति का लोहा मानने लगे। नवोदित अब्बासी राज्य की समस्याओं और विद्रोहों का दमन कर उसने वास्तविक संस्थापक कहलाने का गौरव प्राप्त किया।

---

4. Ibn Khaldun; Kitab ul-Ibr, vol, iv, p. 4.

763 ई० में मंसूर ने अपने पुत्र जफर को हराव बिन अब्दुल्ला के साथ मोसूल का गवर्नर बनाकर वहाँ भेज दिया जहाँ हारव ने एक आकर्षक एवं भव्य दुर्ग का निर्माण किया। इसी दुर्ग को जफर ने अपना निवास-स्थल बनाया। इसी दुर्ग में उसकी पुत्री जुबेदा पैदा हुई जिसकी शादी आगे चलकर खलीफा हारून रशीद से हुई।

लेकिन मंसूर की कुछ उलझनें अभी भी जाल का निर्माण कर रही थीं। अफ्रीका का अब्बासी गवर्नर 763 ई० में ही स्पेन पर धावा बोल दिया। लेकिन अब्दुलरहमान ने, जो उमैय्या था और स्पेन में अपना प्रभाव जमा लिया था, उसे बुरी तरह परास्त किया और अब्बासी सेनापति का सिर काटकर भरे दरबार में मंसूर के आगे फेंकवा दिया। मंसूर सब कुछ जानकर भी चुप रहा। उसका यह सिर दर्द बना रहा।

जर्जिया में खारीजियों ने अपने परम्परागत विद्रोह को पुनः प्रारम्भ किया। इनके विद्रोह पर कड़ी नजर रखने के लिये मंसूर ने राज्य के वित्त मंत्री खालिद बिन बारमेक को मोसोपोतामिया का गवर्नर बनाकर भेज दिया। गवर्नर ने खारीजियों का दमन कर प्रान्त में अमन-चैन कायम करने में सफलता प्राप्त की।

मंसूर का एक और महत्वपूर्ण काम बन गया था—शासन का उत्तराधिकारी नियुक्त करना। उसका भतीजा आइशा इन दिनों लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। अनेक लड़ाइयाँ लड़कर भतीजे ने चाचा की स्थिति को अधिकाधिक स्थायी बनाने में अपूर्व सहयोग दिया था। मंसूर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना नहीं चाहता था, पर उसे भय था कि यह व्यक्ति बलपूर्वक खिलाफत को हथिया सकता है। इसीलिये उसने अपने उत्तराधिकारी की घोषणा कर देना आवश्यक समझा। मंसूर का दवाब पड़ने पर आइसा ने उत्तराधिकार का त्याग कर दिया और तब मंसूर ने अपने पुत्र मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी बनाकर इसकी घोषणा कर दी। अब्बासी जनता ने उसकी घोषणा को मान लिया।

मंसूर के शासन के अन्तिम वर्षों में खोरासान और अफ्रीका में पुनः विद्रोह हुए। उस्ताद सीस ने खोरासान के विद्रोहियों का नेतृत्व किया। लेकिन यह विद्रोह जल्द ही दबा दिया गया और उस्ताद को उसके परिवार के सदस्यों के साथ गिरफ्तार कर बगदाद भेज दिया गया।

अफ्रीका में खारीजियों का उत्पात पुनः प्रारम्भ हुआ। मंसूर ने उन्हें दबाने के लिये यजीद मुहालवी को गवर्नर बनाकर अफ्रीका भेज दिया। खारीजियों के नेता को मारने में इस नये गवर्नर को सफलता मिली। जीवन भर यजीद अफ्रीका का गवर्नर बना रहा। उसके मरणोपरान्त उसका पुत्र दाउद उसका गवर्नर मुकर्रर किया गया। खारीजी सबल हाथ की शक्ति का अन्दाज कर शान्त हो गये।[5]

मंसूर ने रोमन साम्राट को युद्ध में हराकर उससे वार्षिक टैक्स लेना प्रारम्भ किया और उससे एक सन्धि कर अपनी संप्रभुता मनवा ली। जैद को मदीना का गवर्नर नियुक्त किया।

---

5. *Ibid*

मंसूर अब्बासी राज्य का वास्तविक संस्थापक ही नहीं था अपितु उसका कुशल शासन-प्रबन्धक भी। इसके प्रशासन की दो महान् उपलब्धियाँ हैं—बगदाद का निर्माण और ईरानी प्रभाव की प्रधानता।

मंसूर ने 762 ई० में ही दजला के पश्चिमी तट पर बगदाद शहर की नींव डाली थी। शहर को चारों तरफ से दोहरी दीवार से घेरा गया। इसके अन्दर बाजार बसाये गये और फौजी छावनियाँ बनायी गयीं। इस शहर के निर्माण में चार वर्षों तक एक सौ हजार स्थापत्यकार और मजदूर काम करते रहे जिन्हें मेसोपोतामिया, सीरिया तथा साम्राज्य के अन्य प्रान्तों से मंगाया गया था। 4883,000 दरहम के खर्च से इस शहर का निर्माण हो सका। मंसूर ने इसे 'मदीनात अल सलाम' (City of Peace) कहकर पुकारा। कुछ ही वर्षों के अन्दर व्यापार और वाणिज्य के दृष्टिकोण से यह शहर विश्व में विख्यात हो गया। राजनीतिक आकर्षण का तो यह गढ़ बना ही। मंसूर के काल में ही एसिफोन, बेबिलोन, निनवे, उर आदि शहरों की श्रेणी में इस शहर की भी गिनती होने लगी।

मंसूर के शासन काल में ईरानियों की प्रधानता कायम हुई। अबतक शासन में अरबों की प्रधानता चली आ रही थी। उनकी जगह अब ईरानियों ने ले ली। खालिद इब्न बारमेक पहला ईरानी था जिसने उच्च पद को अब्बासी शासन में प्राप्त किया। अल-सफा के शासन काल में खालिद 'दीवान-अल-खजारात' (Department of Finance) का प्रधान बना। 765 ई० में मंसूर ने उसे तबरिस्तान का गवर्नर नियुक्त कर दिया। जीवन भर वह परामर्शदाता के रूप में खलीफा की सेवा करता रहा। मंसूर के बाद भी खालिद के पुत्र अब्बासी शासन को प्रभावित करते रहे।

7 अक्तूबर 775 ई० को मक्का की यात्रा करते समय 'बीर मैमून' नामक स्थल पर मंसूर की अचानक मृत्यु हो गयी। उसे दफनाने के लिये एक सौ कब्रें मक्का में खोदी गयीं। यह बतलाना कठिन है कि किस कब्र में उसे दफनाया गया। अब्दुल्ला के काल में अधिकांश उमैय्या खलीफाओं की कब्रें खोदकर उमैय्या के पूर्वजों को बेईज्जत किया गया था। मंसूर को डर था कि उमैय्या अब्बासी शक्ति के क्षीण होने पर अपनी बेईज्जती का प्रतिशोध ले सकते हैं। यही कारण था कि एक सौ कब्रों को खोदकर किसी एक कब्र में उसे सुला दिया गया। पर मंसूर यह सोचना भूल गया कि प्रतिशोध लेने वाला सारी कब्रों को भी खोद सकता था।

मंसूर इस्लाम की कहानी का एक कर्मठ पात्र है। इसका सम्पूर्ण जीवन आन्तरिक कठिनाइयों को सुलझाने में ही व्यतीत हुआ। अपने बाहुबल से उसने आन्तरिक विद्रोहों का दमन कर इन कठिनाइयों पर, विजय प्राप्त की और अब्बासी राज्य एवं शासन का वास्तविक संस्थापक कहलाने का अधिकारी बना। सीमान्त प्रदेशों में किलाबन्दी एवं गवर्नरों की नियुक्ति करके उसने राज्य की जनता को शान्ति एवं राज्य को सुरक्षा प्रदान की।

व्यक्तिगत जीवन में भी मंसूर आराम से दूर रहता था। उसकी दिनचर्या एक निश्चित तालिका के अनुसार संचालित होती थी। दोपहर से पूर्व वह राजकीय

घोषणाओं की अभिव्यक्ति करने एवं शासन के विभिन्न कार्यों के सम्पादन में संलग्न रहता था। दोपहर के उपरान्त वह अपने परिवार के बच्चों तथा अन्य सदस्यों के साथ थोड़ा समय व्यतीत करता था। शाम की इबादत करके वह राजकीय पत्रों को पढ़कर शासन एवं समस्याओं के सम्बन्ध में अपने मन्त्रियों से वाद-विवाद किया करता था। रात के तीसरे पहर वह अपने शयन-कक्ष में प्रवेश करता था और अल्पकाल तक ही सो पाता था। उषा काल में वह पुनः नमाज़ पर जुट जाता था।

प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण वह स्वयं करना पसन्द करता था। वह स्वयं ही सेना तथा दुर्गों की देखरेख एवं निरीक्षण करता था। अपने सेवकों के वेतन में वृद्धि और कटौती भी वह खुद करता था।

मृत्यु के पूर्व उसने अपने पुत्रों को जो शिक्षाएँ दी, उससे उसके प्रशासनिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रकटीकरण होता है। उसके कुछ सिद्धान्त इस प्रकार थे—"किसी भी कार्य को कल पर न छोड़कर आज कर डालना चाहिये, शासक को अपनी प्रजा और सेना को सन्तुष्ट रखना चाहिये, राजकोष को कभी भी रिक्त नहीं करना चाहिये, अच्छे विचारकों एवं परामर्शदाताओं का सहयोग एवं मित्रता प्राप्त करनी चाहिये, मित्रों एवं नातेदारों की अवहेलना भूलकर भी नहीं करनी चाहिये इत्यादि। उसके ये विचार उसकी सन्तानों को ठीक उसी प्रकार अनेक वर्षों तक मार्ग निर्देशन करते रहे जिस प्रकार मुआविया के विचार उमैय्यों को। धार्मिक और खुशहाल रहकर भी मंसूर धोखेबाज और कठोर था।[6] इस खलीफा के काल में साहित्य, इतिहास तथा ज्योतिष की बहुत उन्नति हुई थी। उसके दरबार में अनेक विद्वानों का जमघट लगा रहता था। उसने अनेक विद्वानों को प्रश्रय भी दिया था।

खलीफा महदी (775-86)

मंसूर के मरणोपरान्त उसका पुत्र मुहम्मद 'महदी' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा। इसका काल अब्बासी युग में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अब्बासी युग की नींव जो कठोरता तथा रक्त से रंजित है, उसको उसने समाप्त कर दिया। इसकी प्रशासनिक नीति मंसूर से सर्वथा भिन्न थी। मंसूर ने केवल युद्धों में अपना समय लगाया था, महदी ने इन युद्धों से विनष्ट हुए भवनों एवं शहरों के निर्माण-कार्य में अपना समय लगाया। पिता अगर आक्रामक था तो पुत्र उदार। इस्लाम के फैलाव के लिए जहाँ पिता ने अमानवीय कार्यों के करने में भी अपनी हिचकिचाहट नहीं दिखलायी वहाँ पुत्र ने मानवतावाद का आदर कर शासन को लोकप्रिय बनाया।

---

6. As a Muslim his life was religious and exemplary. He was deligent in his business of the state. His hand was light, yet firm, upon his governors, and the mentration consequently good. With all his good qualities, nevertheless, the verdict must be against Abu-Jafar as a treacherous & cruel man.

—*William Muir*

महदी की मानवता और उदारता का परिचय हमें उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही मिल जाता है। गद्दी पर आरूढ़ होते ही उसने उन सारे कैदियों को मुक्त कर दिया जिन्हें मंसूर ने कैद कर जेलों में बन्द कर दिया था। उसने इब्राहिम के पुत्र हुसन को भी जेल जीवन से मुक्त कर उसे एक निश्चित भत्ता देना प्रारम्भ किया। जिन धार्मिक शहरों की सुविधायें रद्द कर दी गयी थीं, वे पुनः उन्हें वापस मिलीं। राजकीय आय चुराने वाले और घूसखोरों को कड़ी सजा देने की घोषणा की गयी, पर मंसूर के काल में ऐसे लोगों को मिली आर्थिक सजा क्षमा कर दी गयी। अर्थदण्ड के रूप में मंसूर ने जितने पैसे एकत्र किये थे, वे सारे उन्हें वापस लौटा दिये गये। इसके लिए एक पृथक बैतुल माल खोला गया। हेज्जाज की जनता के बीच 30,000,000 दरहम और 150,000 पोशाकें वितरित की गयीं। मुहम्मद साहब की मस्जिद का पुनर्निर्माण कर उसे अधिकाधिक भव्य एवं आकर्षक बनाया गया। इतना ही नहीं, प्रधान शहरों में बनी मस्जिदों एवं शिक्षण-संस्थाओं की संख्या में उसने वृद्धि लायी। अंसार मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उसने 500 अंसारों को अपना अंगरक्षक बनाया। महदी ने दरिद्रों एवं कुष्ट रोग से पीड़ित लोगों के लिए एक निश्चित धनराशि पेन्शन के रूप में देना प्रारम्भ किया और उनका आशीर्वाद बटोरा। इनके साथ वह बड़ी ही सहृदयता से काम करता था। खलीफा ने मदीना के लोगों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। वहाँ यह प्रत्येक वर्ष धन भेजता था। उसने मदीना को कुछ भूमि भी प्रदान की थी। परिमाणस्वरूप खलीफा के मधुर स्वभाव के कारण बहुत से शत्रु भी उसके मित्र बन गये थे। उसने धर्म-यात्रियों की सुविधा के लिए काम किया। अल सफा के काल में मक्का जानेवाली सड़क के दोनों तरफ कादेशिया और जुबेला के बीच 300 मील तक विश्राम-गृह बनवाये गये थे। महदी ने और भी विश्राम-गृह बनाकर इनकी संख्या में वृद्धि की। उसने सड़कों को विस्तृत किया और उन्हें पक्की बनाया। सड़कों के अगल-बगल यत्र-तत्र कूप भी बनवाये गये तथा यात्रियों की रक्षा के लिए पहरेदारों को नियुक्त किया गया। नगरों की सुरक्षा का भी उसने बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया। किसी काल में बगदाद में प्रगति का युग आया और वह विश्व का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन गया। इसके काल में कविता, दर्शन, साहित्य की भी बहुत प्रगति हुई।

इस्लाम के इतिहास में अपनी इन उपलब्धियों के चलते महदी एक उदार एवं प्रजापालक शासक के रूप में प्रसिद्ध है। इस्लाम के सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करके प्रजा के कल्याणार्थ काम करने में सुख का अनुभव करता था। पर इस उदारवादी शासक के काम में भी यत्र-तत्र विद्रोह हुए जिनके दमन के लिए उसे तलवार भी उठानी पड़ी।

सीरिया में मरवान द्वितीय के पुत्र ने अब्बासी संप्रभुता के विरुद्ध सिर खड़ा कर दिया। लेकिन महदी ने शीघ्र ही इस विद्रोह का दमन कर दिया और मरवान के पुत्र को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन उसके साथ दुर्व्यवहार न कर उसे पेंशन दे दी। महदी की बेगम खजूरन ने मरवान द्वितीय की विधवा पत्नी माजूना को अपने राजभवन में रखकर काफी सम्मान दिया।

सीरिया के विद्रोह के दमन के उपरान्त महदी ने अपने दो पुत्रों मूसा और हारून को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

महदी के काल में दूसरा विद्रोह खोरासान में हुआ जिसका नायक था हाशिम बिन हकीम। हकीम एक क्रूर व्यक्ति था और उसका चेहरा विकृत था। अपनी इस विकृति को छिपाने के लिए वह स्वर्ण निर्मित नकाब का प्रयोग करता था। इसीलिए इतिहासकार म्योर ने उसे 'मकना' (veiled) कहकर पुकारा है। खोरासानी मकना को मसीहा मानकर उसके एक संकेत पर मर मिटने को तैयार थे। मकना अपने आपको आदम, होआ, अबू मुस्लिम वगैरह की तरह ईश्वर का अवतार कहा करता था। उसने खोरासानियों को यह कहना प्रारम्भ किया कि अल्लाह ने उनकी भलाई करने के लिए उसे खोरासान में पैदा किया है।

महदी ने मकना को मजा चखाने का प्रबन्ध किया। जैसे ही उसे खोरासान-विद्रोह की खबर मिली वैसे ही उसने राजधानी से एक सेना उसके दमन करने के लिये भेज दी। किश (Kish) नामक स्थान में मकना अपने साथियों के साथ मारा गया।

मकना के अनुयायी, जो 'मुवैज्ज' कहलाते थे, पुनः विद्रोह की दिशा में अग्रसर हुए। जर्जान में एक नये सम्प्रदाय मुहम्मीर ने जन्म लिया। मुहम्मीरों ने भी इसी समय विद्रोह किया।[7] लेकिन इनके विद्रोहों को भी महदी ने शीघ्र दबा दिया और पुनः शान्ति कायम हो गयी।

महदी के शासन काल में एक और सम्प्रदाय ने जन्म लिया जिसका नाम था जिन्दीकी। इसका संगठन चौथी सदी में मजदक नामक मुसलमान ने किया था कालान्तर में मईन (Main) ने इसे आगे बढ़ाया और इसका संगठन करके उसे दृढ़ता प्रदान की। महदी के काल में इस सम्प्रदाय की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ने लगी और खोरासान, पश्चिमी ईरान तथा ईराक में इसका प्रभाव विशेष रूप से कायम होने लगा। इस सम्प्रदाय के कुछ अपने सिद्धान्त थे जिन्हें उग्रवादी कहा जा सकता है। इसके सदस्य समाज की सारी प्रचलित मान्यताओं को तोड़ देने, सत्ता की शक्ति को घटाने तथा लोगों को उत्तेजक बनाने में विश्वास करते थे। लेकिन इनके कारनामे निन्दनीय थे। जिन्दीकी राह चलते अबोध शिशुओं का अपहरण कर लेते थे और लोगों को बाध्य करते थे कि वे इस सम्प्रदाय में शामिल हो जाय।

महदी ने इन उग्रवादियों को सजा देने में तनिक भी दया नहीं दिखलायी और उन्हें कैद करना प्रारम्भ किया। जान को जोखिम में पड़ते देखकर जिन्दीकी छिपने लगे। उन्हें नैतिकता एवं सत्ता का दुश्मन मानकर महदी ने एक और कदम उठाकर उन पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया।

महदी प्रथम अब्बासी खलीफा था जिसने बिजेन्ताइनों के विरुद्ध 'धर्मयुद्ध' (Holy War) प्रारम्भ किया और उनकी राजधानी पर सफल आक्रमण किया। 780 ई० में विजेन्ताइन सेना ने मुस्लिम भूखण्डों पर आक्रमण कर सीमान्त प्रदेशों की जनता को अपार कष्ट दिया। उन्होंने मराश (जरमेनिशिया) पर आक्रमण कर उसे

---

7. मुवैज्ज उजली पोशाक पहनते थे और मुहम्मीर लाल पोशाक।

धूल में मिला दिया और वहाँ की अधिकांश जनता को तलवार के घाट उतार दिया। महदी ने हसन बिन कहतबा को बिजेन्ताइन के विरुद्ध भेजा जिसकी सेना ने कुछ रोमन शहरों को बुरी तरह रौंद डाला। जब बिजेन्ताइनों ने पुनः आक्रमण किया तब इस बार महदी ने स्वयं सेना का संचालन किया। अपने पुत्र मूसा के ऊपर बगदाद की रक्षा का भार छोड़कर उसने मोसूल के मार्ग से युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान किया। अलप्पो में एक पड़ाव बनाकर वहाँ राजकीय सेना ठहरायी गयी और सैनिकों का एक अन्य दस्ता हारून रशीद के नेतृत्व में रोमन साम्राज्य पर और आक्रमण करने के लिये भेज दिया गया। हारून रशीद के साथ ईसाबिन मूसा, अब्दुल मलिक बिन सलेह और हसन बिन कहतबा जैसे कुशल नायक भी थे। याहिया बिन खालिद सेना का अध्यक्ष (Adjutant general) बनाया गया। समालिन तथा अन्य भूखण्ड शीघ्र ही अब्बासी सेना के कब्जे में आ गये। रोमन सेना के श्रीहत होते ही महदी ने जेरूसलेम की यात्रा प्रारम्भ की। हारून रशीद को आर्मीनिया तथा अजर-बैजान का गवर्नर नियुक्त किया गया। साबित बिन मूसा उसका अर्थ-सचिव और यहिया बिन खालिद वित्त मन्त्री बना।

लेकिन रोमन अधिक दिनों तक शान्त नहीं रह सके। मेगास्कोमिज के नेतृत्व में रोमन सैनिकों का पुनः संगठन हुआ और 785 ई० में वे अब्बासी राज्य पर आक्रमण कर बैठे। चारों तरफ पुनः आतंक छा गया। रोमन सेना को छठी के दूध की याद दिलाने के लिये हारुन रशीद ने अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया। जैसे ही सेना वास्फोरस के निकट पहुँची वैसे ही लियो चतुर्थ को विधवा रानी ईरने ने, जो अपने शिशु पुत्र कॉंस्टेन्टाइन की ओर से शासन कर रही थी, होश सँभाला और सेना लेकर चल पड़ी। पर दो स्थलों पर बुरी तरह परास्त होकर रशीद से संधि करने के लिये बाध्य हो गयी। इस संधि के अनुसार ईरने ने अब्बासी शासक को 70,000 से लेकर 90,000 दीनार तक क्षति-पूर्त्ति की रकम एक वर्ष में देने का वादा किया। विजेन्ताइन सेना के विरुद्ध रशीद ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया, वह इस्लाम के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर महदी ने ही उसे 'रशीद' (Follower of the right path) की उपाधि दी थी तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र मूसा अल हादी के पश्चात् उसे उत्तराधिकारी बनाया था।

784 ई० में मरुभूमि के बद्दूओं ने एक विद्रोह कर दिया। इनका गोरख-धन्धा था राहगीरों और कारवाँ को लूटना। महदी ने अपनी सेना की सहायता से इनके विद्रोह को भी दबा दिया, लेकिन बाद में अपराधियों को माफ कर दिया।

इस खलीफा के सपूर्ण शासन-काल के में यूनान से निरन्तर युद्ध चलता रहा। अपने पुत्र हारुन की अध्यक्षता में उसने एक सेना को यूनानियों से युद्ध करने के लिये भेजा जिसने यूनान पर कब्जा कर लिया था। मुसलमान सेना दजला पार करके अलप्पो की ओर बढ़ने लगी और उसे विजय पर विजय मिलने लगी। वहाँ की रानी आयरनी ने खलीफा की प्रभुता को स्वीकार कर लिया तथा कर और उपहार देना स्वीकार लिया था।

इस काल में पूर्व में भारत के बरबद नामक स्थान पर आक्रमण किया गया और मूर्त्तियों को खण्डित किया गया।

दस वर्षों तक शासन करके अरब का यह उदार खलीफा 43 वर्ष की उम्र में 785 ई० में इस संसार से उठ गया ।

इतिहासकारों का मत है कि महदी का शासन जनता का शासन था। यह रहमदिल वाला खलीफा युद्धों से कोसों दूर भागता था और प्रजा के कल्याण के लिये सदैव इच्छुक रहता था। उसके शासन कार्य में उसकी बीबी रिवर्जन, जो पहले एक दासी थी और मूसा तथा हारुन की माँ थी, काफी हस्तक्षेप करती थी। खलीफा द्वारा किये गये जन-कल्याण कार्यों में उसके वजीर अबू उबैदुल्ला ने काफी सहयोग दिया। आगे चलकर महदी ने उबैदुल्ला की जगह याकूब बिन दाउद को राज्य का वजीर बनाया। दाउद ने भी कल्याणकारी योजनाओं में अपना अधिकाधिक सहयोग दिया। दाउद की लोकप्रियता इस काल में इतनी अधिक बढ़ी कि अनेक दरबारी उससे ईर्ष्या करने लगे और उसके विरुद्ध महदी का कान भरने लगे। उन्होंने यह अफवाह फैलानी प्रारम्भ की कि दाउद अब्बासी वंश का शासन समाप्त कर अपना शासन कायम करना चाहता है। खलीफा दरबारियों के बहकावे में आ गया और एक दिन एकाएक दाउद को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। अनेक वर्षों तक जेल में राज्य का यह वजीर पड़ा रहा। रशीद के काल में ही उसे मुक्ति मिल सकी।

मूसा अल-हादी (785-86)

राज्यारोहण के समय मूसा अल हादी की उम्र 24 वर्ष की थी। हादी एक कठोर तथा हठी शासक था, फिर भी वह बहादुर, दयालू तथा साहित्य-प्रेमी था।

हादी ने अपने अनुज रशीद की राज्यभक्ति पर कभी भी ध्यान नहीं दिया और अपने ज्येष्ठ पुत्र जफर को खलीफा बनाने का प्रयास किया। महदी की मृत्यु के क्षण रशीद ही उपस्थित था और उसी ने अपने अग्रज के प्रति निष्ठावान बने रहने की सबसे पहले शपथ खायी थी और राजधानी में उसके पास राजकीय पोशाक भेज दी थी। अगर वह चाहता तो स्वयं खलीफा बनने का प्रयास कर सकता था। हादी ने इस तथ्य एवं ईमानदारी पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और हारून रशीद के मित्र तथा कुशल परामर्शदाता याहिया बिन खालिद बारमेक तथा उसके भृत्यों को जेल में ठूँस दिया। हादी को अपनी माता खजूरन से भी अनबन हो गयी। अपने पति महदी के शासन काल में इस महिला ने राज्य-शासन के संचालन में काफी हाथ बँटाया था। खजूरन अपने प्रभाव को कायम रखना चाहती थी तथा यही कारण था कि वह शासन के कार्यों में यदा-कदा हस्तक्षेप करने लगी। लेकिन उसके इस हस्तक्षेप को उसके पुत्र हादी ने पसन्द नहीं किया और अपने दरबारियों को अपनी माता का पक्ष लेने से मना किया। उसने यह भी धमकी दी कि जो लोग राजमाता का साथ देंगे उन्हें कठोर से कठोर सजा दी जायेगी।

हादी के इन विचारों से स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि उसका शासन-काल कलह एवं पारस्परिक मतभेदों का काल था। उसकी नीति के चलते अब्बासी दरबार में दो दल हो गये—एक दल खलीफा तथा उसके पुत्र का समर्थन करता था और दूसरा हारून रशीद तथा खजूरन का समर्थक था। रशीद ने अपने

शासक भाई से मेल करने का काफी प्रयास किया, लेकिन दोनों के बीच मधुर संबंध कायम न हो सका। अन्त में यहिया के परामर्श से अपनी रक्षा के लिये रशीद राजधानी छोड़कर अन्यत्र चला गया।

हादी के शासन काल में मदीना के गवर्नर ने शराबखोरी का झठा इल्जाम लगाकर हसन के परिवार के कुछ सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया। हुसैन [8] ने, जो हसन प्रथम का परपोता था, इस काल में विद्रोह कर दिया। हादी के आदेश से शीघ्र ही इस विद्रोह को दबा दिया गया। विद्रोह-दमन के समय अली परिवार के अनेक व्यक्ति विभिन्न समर्थकों के साथ जान से मार डाले गये। हुसेन का भतीजा इद्रीस, जो मुहम्मद का भाई था, किसी तरह इस काल से बच गया और मोरीतानिया भाग गया। आगे चलकर बर्बरों के सहयोग से उसने इद्रीसी वंश के शासन की नींव डाली। इसी समय से मगरीब अल-अक्सा अब्बासी साम्राज्य से पृथक होकर इद्रीस के राज्य में मिल गया।

हादी ने बगदाद से इसाबाद की यात्रा प्रारम्भ की। लेकिन यात्रा के दौर में ही वह एक असाध्य रोग का शिकार हो गया और मृत्यु उसकी आंखों के समक्ष नाचने लगी। अन्तिम क्षण कृतघ्न पुत्र को अपनी माँ के प्रति किये दुर्व्यवहार पर पाश्चाताप हुआ और उसने खजूरन को बुला भेजा। माँ के आते ही पुत्र उससे लिपट गया और क्षमा माँगने लगा। माँ-पुत्र के इस सम्मिलन ने उपस्थित जनों को रुला दिया। जब हादी ने अपनी माँ के हाथों को पकड़कर अपने सिर से लगाया तो लोग रो पड़े। अन्तिम क्षण वह अपने राजभक्त भाई को भी नहीं भूल सका और माँ से प्रार्थना की उसके बाद वह हारुन रशीद को ही गद्दी पर बैठाये। थोड़ी देर बाद हादी की साँस रुक गयी और वह चल बसा। अपने पीछे वह सात पुत्रों एवं दो पुत्रियों को छोड़ गया। उसकी एक पुत्री आयशा की शादी कालान्तर में हारुन रशीद के पुत्र मामून से हुई।

हारून अल-रशीद (789-809)

हारून रशीद का शासन काल एशियाई इतिहास में एक देदीप्यमान युग के प्रवेश का काल माना जाता है।[9] इतिहासकार फरग्यूसन तथा ब्रून ने लिखा है कि

---

8. खलीफा अली का पुत्र हसन प्रथम, हसन प्रथम का पुत्र हसन द्वितीय हसन द्वितीय का पुत्र अली और अली का पुत्र यह हुसेन था जिसने हादी के काल में विद्रोह किया।

9. His (Harun Rashid's) reign ushers a new era in the most brilliant period of the Saracenic rule in Asia.

—Ameer Ali, P. 237.

रशीद का शासन खिलाफत की महान शक्ति का कदम है।[10] हारून रशीद का व्यक्तित्व महान था। यह खलीफा अन्याय का दमन करने तथा दलितों और अभागों के भाग्य को बनाने के लिये गहन रात्रि में भी बगदाद की गलियों में भटकता रहता था। रोमान्स एवं विलास की सारी चमक-दमक से दूर रहकर राज्य एवं राज्यवासी की प्रगति के लिये सतत् चिन्तिन रहने वाला यह खलीफा निःसन्देह मध्यकालीन इतिहास का एक महान शासक है। विश्व के महान शासकों की श्रेणी में इसका पद अवश्य ही सुरक्षित है। अपनी महान धार्मिकता एवं उदारता के कारण उसने जनता के बीच अधिकाधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। अपने शासन काल में कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण कर उसने बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय के लिये जो भी कार्य किया, वह सर्वदा प्रशंसनीय एवं श्लाघनीय है। अपने काल में कला एवं विज्ञान, संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्रों में महान प्रगति लाकर उसने एक बौद्धिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। वास्तव में इसका शासन काल अब्बासी शासन काल का स्वर्ण-युग माना जाता है। इस काल में बगदाद विश्व के प्रगतिशील नगरों में एक था और अब्बासी साम्राज्य का, जो मध्य एशिया में अतलान्तक तक विस्तृत था, केन्द्र था।

हारून रशीद साम्राज्य की सुरक्षा एवं शान्ति के लिये तलवार चलाने में भी निपुण था। विद्रोहों के समय वह स्वयं सेनापति बनकर युद्धभूमि में सेना का संचालन करता था। एक कुशल शासक की तरह विद्रोहों का पता लगाने के लिये तथा प्रजा की वास्तविक स्थिति से परिचित होने के लिये कभी सीमान्त प्रदेशों का भ्रमण करता रहता था तो कभी दर्रों का चक्कर लगाते नजर आता था। मार्ग की कठिनाईयाँ उनके समक्ष उपस्थित होती थीं, पर वह उन्हें झेलकर शासन कार्यों का सम्पादन करन में आनन्द लेता था। धर्मयात्री एवं व्यापारी, साहित्य-प्रेमी एवं कलाकार उसके सुसंगठित शासन का बखान करते अघाते नहीं हैं। मार्ग में दस्युओं एवं लुटेरों का भय जाता रहा और समग्र जनता निर्भय होकर अपना कार्य करती रही। उसके द्वारा निर्मित मस्जिदें, स्कूल, चिकित्सालय, कारवाँ-सराय, प्रशस्त सड़कें, सेतु, नहरें आदि भी उसकी प्रशस्ति का गान करते हैं।

हारून रशीद के शासन काल में ईरानियों की प्रधानता सर्वाधिक कायम हुई। वास्तव में ईरानी वजीरों के चलते ही रशीद अपने शासन को स्थायित्व एवं सुसंगठन देने में सफल हो सका। सत्रह वर्षों तक बरमेक परिवार के योग्य सदस्य उसके शासन की प्रगति में अनवरत परिश्रम करते रहे तथा उसकी बुद्धि और प्रशासनिक कौशल के नेतृत्व में अब्बासी साम्राज्य दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करता रहा। इस्लाम नेतृत्व करने का भार अब अरबों पर नहीं, ईरानियों पर पर आ पड़ा था। अल-सफा और मंसूर के काल में खालिद बिन

---

10. The reign of Harun al-Rashid (786-809)....marks the point of greatest power in the history of the Caliphate.
—*Ferguson & Brunn. p. 91*

बरमेक ने महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रधानता प्राप्त की थी। उनका पुत्र यहिया, जो कभी आर्मेनिया का गवर्नर था, मह्दी के काल में हारून रशीद का शिक्षक था। जब शिष्य ने खलीफा का पद प्राप्त किया तब उस गुरू को वजीर के पद पर नियुक्त कर गुरुदक्षिणा चुका दी। खलीफा बनकर भी रशीद ने यहिया को 'पिता' शब्द से ही सदैव सम्बोधित किया। गुरू ने कभी शिष्य का मानसिक विकास करने का बीड़ा उठाया था, अब वजीर बनकर उसके राज्य का चतुर्दिक विकास करने का बीड़ा उठाया। उसके शासनतन्त्र का प्रधान सिद्धान्त था जन-कल्याण करना। उसके पुत्र फजल, जफर, मूसा और मुहम्मद भी उच्च प्रशासनिक कुशलता रखनेवाले व्यक्ति थे जिन्होंने रशीद के शासन में बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त होकर साम्राज्य में प्रगति एवं शान्ति लाने का प्रयास किया। फजल खोरासान और मिस्र का गवर्नर था। जफर भी इस काल में प्रसिद्ध प्रान्तों का शासक था। कालान्तर में जब यहिया बूढ़ा हो गया तब उसने वजीर के पद से त्याग-पत्र दे दिया और उसका पुत्र जफर नया वजीर बना। हारून रशीद के काल के बाद ईरानियों की प्रधानता समाप्त होने लगी। इनके श्रीहीन होते ही अब्बास दरबार में भी षड्यन्त्रों एवं गुटबन्दियों का बाजार गर्म हुआ और अब्बासी साम्राज्य पतन की ओर बढ़ चला।

हारून रशीद की उपलब्धियाँ दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। एक तो यह कि अभियान कार्यों को प्रारम्भ करके उसने राज्य के विद्रोहों का दमन किया और विभिन्न देशों की विजय कर इस्लाम का विस्तार किया। दूसरा यह कि शान्ति संस्थापन के बाद उसने अपने साम्राज्य का सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास किया। इन दोनों प्रकार की उपलब्धियों का विशद अध्ययन करना आवश्यक है।

ऊपर हम लिख चुके हैं कि पश्चिम अफ्रीका के मौरीतानिया ने अब्बासी साम्राज्य से अपना संबंध विच्छेद कर लिया था। अफ्रीका के गवर्नर ने पश्चिमी अफ्रीका पर विजय पाने के लिये अथक प्रयास किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। यजीद बिन हैदम जबतक अफ्रीका का गवर्नर रहा तबतक पश्चिम अफ्रीका में कुछ शान्ति कायम रही। पर इसकी मृत्यु के उपरान्त वहाँ अराजकता और विद्रोह फैलने लगे। पर शीघ्र ही रूह ने, जो यजीद का पुत्र और अफ्रीका का नया गवर्नर था, इन्हें दबा डाला। अनेक वर्षों तक अफ्रीका पर शासन करके यह गवर्नर भी चल बसा। इसकी मृत्यु के बाद यहाँ की सेना ने उसके पुत्र के खिलाफ विद्रोह कर दिया।

अब अफ्रीका के विद्रोह का स्थायी रूप से दमन करने के लिए हारून रशीद को स्वयं तैयार होना पड़ा। उसने हरसमा के नेतृत्व में एक सेना अफ्रीका भेजी। सैनिकों के विद्रोह को दबाने में हरसमा को सफलता मिली और तीन वर्षों तक उसने सफलतापूर्वक अफ्रीका पर शासन किया। उसके पद-त्याग करने के बाद अफ्रीका के शासन के लिए हारून रशीद ने एक नये पदाधिकारी की नियुक्ति की। लेकिन अफ्रीका का शासन-संगठन करने में इस अधिकारी को सफलता नहीं मिली और वहाँ पुनः अराजकता तथा अशान्ति फैल गयी। हारून रशीद अफ्रीका से हाथ

नहीं धोना चाहता था क्योंकि उसे उससे अच्छे आर्थिक लाभ प्राप्त हो जाते थे। इसी समय अघलब के पुत्र इब्राहिम ने हारून रशीद को यह विश्वास दिलाया कि अगर उसे अफ्रीका का गवर्नर नियुक्त कर दिया जायेगा तो वह न केवल वहाँ शान्ति कायम करने में ही सफलता प्राप्त करेगा प्रत्युत बगदाद को उससे 40,000 दीनार भी साल में मिला करेगा। अफ्रीका में निरन्तर होनेवाले विद्रोहों को ध्यान में रखकर हारून रशीद ने इब्राहिम के परामर्श और शर्त्त को स्वीकार कर लिया और उसे अफ्रीका का स्थायी गवर्नर नियुक्त कर दिया। उसने यह भी कहा कि अगर वह शान्ति कायम करने में सफल होगा तो उसके परिवार के सदस्य अफ्रीका पर शासन करते रहेंगे और प्रत्येक नये शासक को अब्बासी खलीफा से आज्ञा लेनी पड़ेगी। अब अफ्रीका पर हारून रशीद का स्थायी अधिकार कायम हो गया।

एशिया के राज्यों का संचालन पूर्व निर्धारित नियमों के अनुसार हारून रशीद के काल में भी चलता रहा। हाँ, कुछ नये राज्यों को जीतकर उसने अब्बासी राज्य की सीमा में विस्तार किया। 787 ई० में समस्त काबुल और सन्हार पर अधिकार कर लिया गया और अब्बासी राज्य की सीमा हिन्दूकूश तक फैल गयी। रशीद ने एशिया माइनर के कच्छ प्रदेश के शासन की व्यवस्था की और अवासीम नामक सैनिक गवर्नर को इसके शासन के लिए नियुक्त किया। साइलेशिया के भूभाग को पुनः आबाद किया गया और इसकी किलाबन्दी की गयी।

791 ई० में रानी जुबैदा और उसके भाई आयशा बिन जफर की उपस्थिति में समस्त अब्बासियों के परामर्श से हारून रशीद ने अपने पाँच वर्षीय पुत्र मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसे 'अल-अमीन' (Trusty) का विरुद्ध दिया। सात वर्षों के पश्चात् अपने द्वितीय पुत्र अब्दुला को अमीन के बाद खलीफा होने की घोषणा की तथा उसे 'अल-मामून' (Trusty) की उपाधि से सम्मानित किया। इसी प्रकार अपने तृतीय पुत्र कासिम को 'अल-मोतामिन' के नाम से सम्मानित कर अल मामून के बाद खलीफा बनने का अधिकार दिया। रशीद के ये तीनों पुत्र उसके काल में साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों के स्वामी थे। अमीन को पश्चिमी राज्य, मामून को पूर्वी राज्य और कासिम को मेसोपोतामिया तथा एशिया की कच्छ भूमि का गवर्नर बनाया गया था। मामून की न्यायप्रियता एवं राज्य-भक्ति से खलीफा रशीद इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसे यह भी अधिकार दे दिया कि अगर वह उचित समझे तो कासिम के बदले अन्य किसी को खलीफा बना सकता है। मामून तथा कासिम की शिक्षा के लिए रशीद ने जफर बिन यहिया और अबुल मलिक बिन साले को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया। 802 ई० में अपने पुत्रों के साथ खलीफा ने मक्का की भी यात्रा की और काबा में आमीन तथा मामून को उत्तराधिकार का निर्णय मानने के लिए शपथ लेनी पड़ी।

इसी समय जनता की सुख-सुविधा के लिये रानी जुबैदा ने हेज्जाज की यात्रा की। उसे यह खबर मिली कि मक्का के लोगों को पेय जल नहीं मिल रहा है और इस दुर्लभता के कारण उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इस कष्ट के निवारणार्थ रानी ने अपने निजी पैसे लगाकर वहाँ नहर का प्रबन्ध किया जिसका नाम रानी के नाम पर 'जुबैदा' पड़ा।

अभी शान्ति से कुछ ही समय गुजारा था कि 799 ई० में ग्रीकों के बहकावे में आकर खजरों ने उत्तरी दिशा से आर्मीनिया पर आक्रमण कर दिया। उनके आक्रमण से राज्य तथा जनता को काफी क्षति उठानी पड़ी। रशीद ने इन बर्बरों को सजा देने के लिये अपने दो सेनानायकों को सेना के साथ भेजा।

इसी वर्ष देवदूत का प्रभाव रखने वाले इमाम मूसा अल काजिम की मृत्यु हो गयी। खलीफा को डर था कि इस इमाम के प्रभाव में आकर मदीनी अब्बासी शासन के विरुद्ध बगावत कर सकते हैं। लेकिन उसकी मृत्यु से यह सारा भय जाता रहा।

803 ई० के पश्चात ईरान के बरमेक परिवार का पतन होना प्रारम्भ हो गया। इस परिवार के योग्य सदस्यों के चलते अब्बासी शासन को सर्वाधिक सुदृढ़ता प्राप्त हुई थी। पर अधिकांश लोग इनके बढ़ते प्रभावों के कारण जलने लगे और और उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे थे। दरबार में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो मिथ्या शिकायत का सहारा लेकर इनके प्रभावों को नेस्तनाबूद कर देना चाहते थे। इनके सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ गढ़ी जाने लगी थीं। इन कहानियों का प्रभाव खलीफा रशीद पर भी पड़ा। इसी समय एक ऐसी उपाहासास्पद अफवाह फैली जिसने खलीफा को बरमेकों के विरुद्ध कदम उठाने को बाध्य कर दिया। लोगों ने यह अफवाह फैलायी कि जफर बिन यहिया की शादी रशीद की बहन अब्बासा से होने जा रही है। रशीद यह सुनकर काफी आग-बबूला हो गया और बरमेकों को समाप्त कर देने का बीड़ा उठाया।

लेकिन इतिहासकार खाल्दून के अनुसार खलीफा रशीद के क्रोध का कारण कुछ और ही था। सच्चाई यह थी कि इस परिवार के लोगों ने शासन के बड़े-बड़े पदों पर कब्जा जमा लिया था और वजीर का पद भी उन्हीं के लिये सुरक्षित रहता था। राज्य की आय का हिसाब-किताब वही रखते थे और उसकी खर्च की योजना भी वहीं बनाते थे। शासन-कार्य के लिये अगर खलीफा भी कभी उनसे धन की माँग करता तो उसे भी देने से इनकार कर देते थे। शासन की समस्त जनता की आशा-दुराशा इन्हीं बरमेकों की कृपा पर निर्भर करने लगी थी। संक्षेप में वे अपने अब्बासी स्वामी से भी अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय बन गये थे। उनकी यह बढ़ती लोकप्रियता रशीद को भविष्य में आनेवाले खतरे का सिगनल दे रही थी। इसी बीच जब दरबारियों ने बरमेकों की निन्दा की तब रशीद को मौका मिला। इस निन्दा के वृश्चिक ने राजकीय गद्दी की छाया के बिछावन पर विश्राम करते बरमेकों को अब डंक मारना प्रारम्भ किया।[11] बरमेक परिवार के विरुद्ध आग भड़काने में सबसे अधिक काम फजल बिन रबी कर रहा था।

---

11. The scorpions of calumny came to wound them on the bed of repose on which they rested under tne shadow of the imperial throne.

—*Ameer Ali, p. 243.*

क्रोध में खलीफा उन सारी सेवाओं को भूल बैठा जो उसे इस परिवार के योग्य व्यक्तियों से प्राप्त हुई थी। एक रात अचानक उसने राजकीय घोषणा निकालकर वजीर जफर को फांसी की सजा दे दी और वृद्ध यह्यिा तथा उसके तीन पुत्रों—फजल, मूसा और मुहम्मद—को कैद करवा लिया। मस्सर ने, जो खलीफा और वजीर के साथ रात्रि में बगदाद की गलियों की प्रजा की स्थिति जानने के लिये भ्रमण किया करता था, जफर को रशीद की आज्ञा पाकर मार डाला। अन्य कैदी रक्का में रखे गये और उनकी अकूत सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। वृद्ध यह्यिा की मृत्यु जेल में ही 806 ई० में हो गयी और तीन साल पश्चात् उसका एक पुत्र फजल भी जेल में ही चल बसा। फजल इस युग का एक विद्वान पुरुष था। रशीद का यह कार्य प्रशासनिक दृष्टिकोण से भले ही न्यायसंगत हो, पर मानवीय दृष्टिकोण से निन्दनीय ही माना जायेगा। इनकी सेवाओं का ख्याल कर मामून ने अपने काल में सारे बरमेकों को जेल से मुक्त कर दिया।

खारीजियों ने खलीफा रशीद के शासन काल के अन्तिम वर्षों में एक बार पुनः विद्रोह किया। इस बार उनकी नेता लैला नामक एक युवती थी जिसे "अरब का जाँन आर्क' कहा जाता है। लैला के भाई बलीद तर्राफ ने सर्वप्रथम विद्रोह कर दिया, लेकिन वह शीघ्र ही मात खा गया। उसके बाद लैला ने खारीजियों को एकत्र कर बगावत का झण्डा फहरा दिया। अब्बासी सेनापति यजीद बिन मजीद ने लैला को युद्ध में परास्त कर उसे हथियार डालने को बाध्य किया। अरब की यह जाँन आर्क अपने अनुपम सौन्दर्य एवं विद्वता के लिये मशहूर है। मूलतः वह कवयित्री थी। इसी समय मोसूल में भी शान्ति कायम की गयी।

मोसूल से अवकाश मिलते ही खलीफा रशीद को बिजेनताईनों से पुनः संघर्ष करना पड़ा। यहूदी के शासन काल में ईरने को अब्बासी राज्य से समझौता करना पड़ा था। 791 ई० में इस समझौते को तोड़कर बिजेन्ताइनों ने अब्बासी राज्य को रौंदना प्रारम्भ किया। लेकिन अब्बासी सेना ने बिजेन्तईन सेना को पुनः पीछे की ओर खदेड़ दिया और उनके मतारा तथा अन्काइरा नामक शहरों पर कब्जा कर लिया। साइप्रस को, जो गृह-युद्ध के समय अब्बासी राजा से पृथक हो गया था, पुनः जीत लिया गया और ग्रीक को रौंद डाला गया। ग्रीकों को बाध्य होकर पुनः एक नयी संधि करनी पड़ी। प्रथम संधि द्वारा निश्चित की गयी धनराशि को कर के रूप में देना ग्रीकों ने इस बार भी मंजूर किया। 792 ई० में बिजेन्ताईन राज्य में पुनः गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ। निर्दयी ईरने ने शासन के लोभ में अपने पुत्र कोन्स्टेन्टाइन षष्ठ को अन्धा बना दिया और आगस्टा की पदवी धारण कर शासन करने लगी। अपने सहयोगी नपुंसक इटियस की मदद से उसने पाँच वर्षों तक शासन किया। 797 ई० में उनके विरुद्ध ग्रीकों ने पुनः विद्रोह कर दिया और इस बार उसे गद्दी से उतार कर देश से बाहर निकाल दिया गया। विद्रोहियों की मदद से ईरने का चान्सलर निसेफोरस शासक बना। निसेफोरस ने अपने शासन काल में अब्बासियों से पुनः संघर्ष करना प्रारम्भ किया। उसने रशीद को पत्र लिखकर यह कहा—"आपने कमजोर औरत (ईरने) से असंख्य धन-राशि ली है। उसे

पुनः वापस कर दें, नहीं तो हम तलवार से इसका निर्णय करेंगे।" हारूण रशीद पत्र पढ़कर आगबूबला हो गया और उसने रोमन सम्राट को 'कुत्ता' कहकर पुकारा। उसने शीघ्र ही सेना के साथ प्रस्थान किया और हेराक्लिया पहुँचकर ही दम लिया। हेराक्लिया रोमन साम्राज्य का एक शक्तिशाली नगर था। यहाँ उसने निसेफोरस की सेना से डटकर संघर्ष किया। सयुती के अनुसार यह एक निर्णायक युद्ध था जिसमें ग्रीक शासक परास्त हो गया और अब्बासी खलीफा से संधि करने को वाध्य हुआ। इस संधि के अनुसार उसने उस धन-राशि से भी अधिक धन देने का वचन दिया जो ईरने ने दी थी। विजयी रशीद रक्का वापस लौट आया। पर अभी रक्का आये कुछ ही क्षण गुजरे थे कि निसेफोरस ने पुनः विद्रोह कर दिया। रशीद तुरत वापस लौट चला। ग्रीक नरेश को यह आशा भी नहीं थी कि रशीद इतनी जल्दी वापस लौट आयेगा। गिब्बान के अनुसार करीब 40,000 ग्रीक सैनिक युद्ध में मारे गये और निसेफोरस को वाध्य होकर रशीद से पुनः संधि करनी पड़ी। जब रशीद वापस आया और शासन के कार्यों में लग गया तब निसेफोरस ने अवसर पाकर पुनः अपनी पुरानी लीक पकड़ ली और विद्रोह कर दिया। इतिहासकार म्योर के अनुसार इस बार भी वह पराजित हुआ। इसी समय रशीद ने 'रे' (Ray) के गवर्नर को सजा देने के लिये प्रस्थान किया जिसने अब्बासी साम्राज्य से विलग होकर स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिया था। मौका पाकर बिजेन्ताईन शासक पुनः विद्रोह किया, लेकिन इस बार भी वह रशीद के पुत्र कासिम के हाथों पीटा गया।

लेकिन जिद्दी ग्रीक रशीद को शान्ति की नीन्द नहीं लेने दिये। ट्रान्जोक्सियाना के विद्रोह को शान्त करने में जैसे ही अब्बासी सेना संलग्न हुई वैसे ही निसेफोरस ने फिर विद्रोह कर दिया और सीमान्त प्रदेशों पर उनकी सेना ने भीषण आक्रमण कर उत्पात मचाना प्रारम्भ किया। रशीद भी हिम्मत हारकर बैठने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने अपने पुत्र मामून को रशीद का रिजेन्ट नियुक्त कर स्वयं उत्तर की ओर प्रस्थान किया। उसने उत्तर में एशिया माइनर से लेकर, बीथेनिया तक और पश्चिम में मारसिया तथा कोरिया पर अधिकार जमा लिया। रशीद के अन्य सेनापतियों ने विभिन्न प्रदेशों को जीतने में सफलता प्राप्त की, यजीद बिन मखलद ने लीडिया के इकोनियम तथा इफेसस पर और शुरालिया ने सकालिया, देबासा, मालेको पोइया, सिडरोपोलिस, एण्ड्रासस तथा निकाइया पर अधिकार कर लिया। हेराक्लिस में निसेफोरस द्वारा भेजी गयी एक सेना को बुरी तरह परास्त होना पड़ा। ग्रीकों को पुनः एक नयी संधि करनी पड़ी। लेकिन यह संधि भी स्थायी सिद्ध न हो सकी। 808 ई० में ग्रीकों ने पुनः मुस्लिम राज्यों पर आक्रमण कर दिया। रशीद ने अपनी सेना के साथ पुनः पूरब की ओर प्रस्थान किया। पर टूस नगर के निकट सनाबाद नामक ग्राम में पहुँचते ही वह अस्वस्थ हो गया। रशीद की यह जानलेवा अस्वस्थता थी। मृत्यु की सम्भावना का अन्दाज कर रशीद अपने परिवार के सारे सदस्यों एवं सेना के प्रधान नायकों को अपने पास बुला लिया। मृत्यु के समय उसके द्वारा व्यक्त किये गये विचार अत्यन्त ही

मार्मिक थे। उसने मरणासन्न अवस्था में यह कहा था—"जो युवक है वह वृद्ध होंगे, जिसका जन्म हुआ है उनकी मत्यु होगी। मैं तुम लोगों को तीन मार्ग बतलाता हूँ—ईमानदारी से अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, अपने खलीफा में विश्वास करो, एकता के सूत्र में अपने को बाँधो, विद्रोहों को मिलकर दबाओ और राजद्रोह की भावना को गर्म लोहे से दाग दो।" दो दिन पश्चात् 23 वर्ष 6 महीना शासन करके 809 ई० में हारून मर गया। उसके मरने के उपरान्त ही अब्बासी साम्राज्य के दुर्दिन आरम्भ हो गये। महान शक्तिशाली और प्रतिभाशाली होने के कारण हारून ने किसी तरह सैकड़ों जातियों वाले इस साम्राज्य के पतनोन्मुख होने से बचाये रखा। किन्तु महान प्रतिभाशाली व्यक्ति भी इस विशाल साम्राज्य की रक्षा अब नहीं कर सकता था। पतन के चिह्न उसके शासन काल के अन्तिम वर्षों में ही दृष्टिगोचर होने लगे थे।

अरब के इतिहास में हारून रशीद अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिये भी प्रसिद्ध है। उसका दरबार महान विद्वानों और कलाकारों से भरा रहता था। विश्व के विभिन्न देशों के विद्वान इसके दरबार में आते-जाते रहते थे। उसका दरबार बगदाद में बैठता था। बगदाद की सांस्कृतिक तथा राजनीतिक चहल-पहल का उल्लेख इतिहासकार सर मार्क साइक्स (Sir Mark Sykes) ने विशद् रूप से किया है। उसने लिखा है कि—"राजकीय दरबार अपनी शान-शौकत के लिये मशहूर था। विलासिता तथा सम्पन्नता के सारे प्रचिन्ह नगर तथा दरबार में परिलक्षित होते थे। बगदाद व्यापार का गढ़ बन गया था और यहाँ अनेक प्रशासनिक महल बने थे। प्रत्येक प्रशासनिक विभाग को सुसज्जित तथा सुगठित कार्यालय थे जिसके इर्द-गिर्द स्कूल तथा कॉलेज भी चलते थे। यहाँ सभ्य देशों से दार्शनिक, छात्र, विचारक, चिकित्सक, धर्मशास्त्री तथा कवि आते थे। डाक विभाग तथा कारवाँ की व्यवस्था बगदाद नगर में की गयी थी। इसके सीमान्त भूखण्डों की रक्षा के लिए समुचित प्रबंध किया गया था और सीमा पर सैनिक तैनात रहते थे। सभी सैनिक बहादुर, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा योग्य थे।" इसी इतिहासकार ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि "खिलाफत का शासन अच्छे ढंग से चलता था और यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि सभी शासन के संचालन में मदद करते थे। आवागमन की सुविधायें थीं और राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। रोगों, अकालों आदि के संवरण के लिए रशीद ने अच्छी व्यवस्था की थी। अच्छे चिकित्सकों तथा चिकित्सालयों का प्रबन्ध खलीफा ने किया था। पूरब के देशों के साथ खिलाफत ने व्यापारिक संबंध कायम किया था जिसके चलते राज्य में स्वर्ण की वर्षा होती रहती थी। एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा हिन्दुस्तान से रशीद के काल में खिलाफत का व्यापार चलता था। गुलाम और बिजेन्ताईन राज्य से मशाले बगदाद लाये जाते थे।[12] यह पहला खलीफा था जिसने गान-विद्या को एक अच्छी विद्या और गायक को एक अच्छा पेशावाला व्यक्ति माना। इब्राहिम, सियात और इब्नाछमी नामक संगीतज्ञ इसके दरबार की शोभा थे। हारून के

---

12. Sir Mark Sykes; The Caliph's Last Heritage, p. 102.

वैभव के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। निकोलसन ने उसकी कट्टरता, उसकी उदारता, बिजेन्ताईन सम्राट निसेफोरस पर उसकी विजय तथा उसकी साहित्यिक उपलब्धियों की बड़ी प्रशंसा की है।[13]

हारून रशीद के काल में हनाफी विधि का विकास हुआ। इसके विकास के लिये प्रधान काजी अबु-युसूफ ने अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। उसने धर्म और विधि को मिलाकर एक संगम-स्थल बनाने का प्रयास किया।

खलीफा रशीद ने अरबी भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद करने वाले विभाग की, जिसकी स्थापना मैंसूर ने की थी, विस्तृत किया और अनुवादकों के संख्या में वृद्धि की। इसके काल के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों के नाम ये हैं—असमाई जो व्याकरण का ज्ञाता था, अब्दुल्ला बिन इद्रीस, ईसा बिन युनूस, सुफियन बिन सुरी और इब्राहिम मोसुली, जो प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे, और जिब्राइल, जो महान चिकित्साशास्त्री बख्तियासू का पुत्र था। रशीद स्वयं एक कुशल कवि था और इसीलिये कवियों का जी भरकर आदर करता था।

हारून रशीद विश्व के महान सम्राटों में एक था। इस काल में दो महान् सम्राट् पैदा हुए—पश्चिम में शार्लमाँ और पूरब में हारून रशीद। इनमें दूसरा अधिक सुसंस्कृत एवं महान था। दोनों अपनी-अपनी रक्षा के लिए एक-दूसरे के मित्र बन गये थे। शार्लमाँ ने बिजेन्ताइयों के आक्रमण से बचने के लिए हारून से मित्रता की थी और हारून ने स्पेन के उभरते उमैय्यों से सुरक्षित रहने के लिए शार्लमों से मित्रता की थी। दोनों राज्यों के राजदूत एक-दूसरे के दरबार में आने-जाने लगे थे और दोनों एक-दूसरे को उपहार भेजा करते थे। शार्लमाँ ने रशीद को एक दीवार-घड़ी उपहार दी में थी जिसकी कलात्मकता अद्वितीय एवं आकर्षक थी। इसके बदले रशीद ने शार्लमाँ की सेवा में उसके सचिव के हाथों हाथी, बुना हुआ कपड़ा और सुगन्धित ईत्र भेजा था।

रशीद के जीवित पुत्रों में चार इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जो ये हैं—मुहम्मद अल-आमीन, अब्दुल्ला अल मामून, कासिम अल-मोतामिन और अबू ईसाक मुहम्मद अल-मुतासिम।

इस काल में बगदाद उन्नति के अंतिम शिखर पर पहुँच गया था। इसके काल में संगीत, साहित्य, विज्ञान, कला और अन्य विधाओं का बहुत विकास हुआ। हारून के काम में चार्ल्स महान या शार्लमाँ (Charels the Great) का

---

13. Harun's orthodoxy, his liberality, his victories over the Byzantine Emperor Nicephorus, and last but not least the literary brilliance of his reign have raised him in popular estimation far above all the other Caliphs. —*Nicholtion*

एक दूतमण्डल उसके दरबार में आया। वह जेरूसेलम में यात्रा की सुविधाएँ माँगने आया था। इसी काल में हारून ने एक दूतमण्डल चीन के पास मित्रता के लिए भेजा था।

हारून बड़ा ही उदार और धार्मिक प्रवृति का खलीफा था। वह प्रतिदिन 1000 दिरहम दान देता था। अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही उसने मक्का की यात्रा की थी। यह क्रम उसने निरन्तर वर्षों तक जारी रखा था। शुभ अवसरों पर वह गरीबों को दान देता था। उसका दरबार अति भव्य था जिसमें देश-विदेश के विद्वान, कवि, न्यायविशारद और दार्शनिक लोग रहते थे। बगदाद विद्रोहों का केन्द्र होने के कारण उसने अपनी राजधानी रक्का को बना लिया था, किन्तु बगदाद के महत्त्व को भी कायम रखा। उसकी गोपनीय बातों का सलाहकार फजल था।

अल-आमीन (809-13)

हारून रशीद की मृत्यु के समय आमीन बगदाद में, मामून मारव में, कासिम किनासरीन में और जुबैदा (पत्नी) रक्का में थी। हमावी ने, जो साहिब अल-बरीद (Postmaster General) था, खलीफा की मृत्यु की खबर बगदाद भेज दी और उसके दूसरे दिन आमीन को खलीफा पद के सारे राजचिह्न भेज दिये गये। आमीन शीघ्र ही अपने कसर अल,खुल्द (The Paradise Palace) से कसर अल-खिलाफत (The Imperial Palace) में चला आया। दूसरे दिन उसने आम इबादत की योजना तैयार की और नमाज के समय उसने राजकीय घोषणा निकाल कर अपने को खलीफा पद पर स्थापित किया। सैनिकों, नागरिकों एवं अन्य राज्य-पदाधिकारियों ने खलीफा तथा राज्य के प्रति निष्ठावान बने रहने के लिये शपथ लिये। मामून ने भी अपने भाई की खिलाफत में अपनी भक्ति दिखलाई। रक्का से, जिसे रशीद ने अपनी राजधानी बनायी थी, जुबैदा भी बगदाद आ गयी जहाँ उसके खलीफा पुत्र ने काफी स्वागत किया। आमीन की मृत्यु तक जुबैदा उसके साथ रही।

आमीन की उपलब्धियों का अध्ययन करने के पूर्व यहाँ हमें सर्वप्रथम आमीन एवं मामून के चरित्रों का मूल्यांकन करना अत्यावश्यक है जो भाई होकर भी शीघ्र ही एक-दूसरे के दुश्मन बन गये। दोनों भाइयों को रशीद के वक्त के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों ने पढ़ाया था। आमीन अपनी माता तथा मामा ईशा की देख-रेख में पला था और मामून, जिसकी ईरानी माता बचपनावस्था में ही स्वर्ग सिधार गयी थी, वजीर, जफर के निरीक्षण में बढ़ा था। दोनों के लिये उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था, पर विलासी आमीन के चरित्र पर उस शिक्षा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। लेकिन इसके विपरीत मामून ने इस शिक्षा से फायदा उठाया था और राजनीति तथा प्रशासन संबंधी अनेक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया था। वक्तृत्व कला में दोनों निपुण थे, पर विधि एवं नियमों का अधिक ज्ञान होने के कारण मामून की व्यक्तित्व-शक्ति अधिक प्रभावशालिनी एवं सटीक थी।

हारून रशीद अपने पुत्रों के चारित्रिक गुणों से परिचित था। इसीलिये वह आमीन पर अविश्वास करता था और यही कारण था कि अपने जीवन काल में उसने

खुद ही मामून को उत्तराधिकारी बना दिया था। यही कारण था कि उसने खोरासानी सेना को मामून के जिम्मे कर दिया था। रशीद जानता था कि ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को आमीन खलीफा पद से च्यूत नहीं कर सकता है। रशीद की आशंका निर्मूल नहीं थी। जफर के बाद फजल बिन रबी राजभवन का कंचुकी बना था जिसकी सहायता से आमीन ने मामून का प्रभाव घटाना प्रारम्भ किया। खलीफा ने सर्वप्रथम खोरासानी सेना को अपने प्रभाव में लाने का प्रयास किया और सैनिकों को उत्कोच देकर उनका समर्थन प्राप्त कर लिया। फजल ने स्वयं खोरासान की यात्रा की और वहाँ की सेना तथा बैयत माल को लिए हुए बगदाद वापस लौट आया। फजल के इस कार्य से खलीफा की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उसने फजल को कंचुकी से राज्य का वजीर बना दिया तथा सैनिकों को भी दो वर्ष का अग्रिम वेतन देकर उनका पूर्ण विश्वास तथा समर्थन प्राप्त कर लिया।

फजल के द्रोह से मामून अपने आपको विकट परिस्थिति में खड़ा पाया। उसके पास इस समय न तो पैसे थे और न सेना ही। उसकी कठिनाईयाँ तब और भी विकट एवं जटिल हो गयीं जब सेना के अभाव में खोरासान के जागीरदार उसके विरुद्ध सिर उठाने लगे। लेकिन प्रान्त के कुछ शुभचिन्तक एवं भद्र परामर्शदाताओं के परामर्श एवं सहायता से लाभ उठाकर मामून की जागीरदारों के नेताओं से समझौता करने में सफलता मिल गयी और समस्या येन केन प्रकारेण टल गयी। मामून का प्रधान परामर्शदाता ईरान का निवासी फजल बिन सहल था। दूसरी तरफ अपनी अदूरदर्शिता एवं अयोग्यता का प्रदर्शन कर आमीन अब्बासी साम्राज्य को पतनोन्मुख कर रहा था। जनता से प्राप्त राजकीय आय को उसने सैनिकों के मध्य मुक्तहस्त से बाँटकर सार्वजनिक हित के कार्यों की अवहेलना की। राज्य के प्रत्येक भाग से जादूगर और विदूषक तथा ज्योतिषी और भविष्यवक्ता पहुँचने लगे और खलीफा को अपना करतब दिखलाकर पैसा अर्जन करने लगे। सुन्दर गायिकाओं पर भी जनता का पैसा पानी की तरह बहाया जाने लगा। आमीन ने एक नृत्य-नाटक का आयोजन किया जिसमें आकर्षक एवं कीमती परिधानों से सुसज्जित होकर एवं रत्न तथा हीरा-जटित आभूषणों को पहनकर एक सौ नर्त्तकियों ने नृत्य किया। विविध नदी में जल-बिहार करने के लिए खलीफा ने सिंह, हाथी, साँप, चील और घोड़ा के आकार वाली पाँच नौकाओं को उतारा और उनमें नर्त्तकियों, गायिकाओं आदि के साथ बिहार किया। रोमान्स का प्रेमी आमीन शासन के सारे भार को वजीर फजल बिन अबी के ऊपर छोड़ दिया था। ऐसी परिस्थिति में धीरे-धीरे अब्बासी राज्य के शत्रु पैदा होने लगे और पड़ोसी उसपर आक्रमण करने लगे।

निसेफोरस के बाद स्टाँसियस रोम का सम्राट बना था। पर अधिक काल तक उसे शासन करने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। उसकी अकाल मृत्यु के बाद जार्ज का पुत्र माइकेल रोम का सम्राट बना। लेकिन इसे भी अपने सेनापति लिमयो के पक्ष में रोम की गद्दी का त्याग करना पड़ा। गद्दी पर बैठते ही लिमयो ने पुरानी संधि की शर्तों को तोड़कर अब्बासी राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। पर साम्राज्य की रक्षा करने के बजाय आमीन ने अपने भाई मामून से

संघर्ष करने में अधिक दिलचस्पी दिखलाई। उसने मामून के उत्तराधिकार को रद्द कर दिया और खोरासान के गवर्नर के पद से च्युत कर दिया। अपने दूसरे भाई कासिम के साथ भी उसने ऐसा ही व्यवहार किया। अली-बिन ईसा तथा वजीर फजल के परामर्श से अमीन ने अपने भाइयों के प्रति ऐसा विरोधी कदम उठाया था।

आमीन ने मामून का उत्तराधिकार रद्द करने के बाद उसकी जगह अपने अबोध पुत्र मूसा को अपना उत्तराधिकारी बनाया और उसे "नातिक बी० हक्क" (Proclaimer of the truth) का विरुद् प्रदान किया। लेकिन मामून भी चुप नहीं बैठा। उसने आमीन की इस घोषणा का जबाव पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों का घेरा डालकर दिया। आमीन ने 811 ई० में 50,000 सैनिकों को अली बिन ईसा के नेतृत्व में मामून के विरुद्ध भेजा। मामून के सेनापति ताहिर बिन हुसैन ने ईसा को मार डाला और उसकी सेना को बुरी तरह परास्त किया। कुछ सैनिक भी युद्ध-भूमि में काम आये और बचे हुए ताहिर से मिल गये। अपनी विजय की खबर ताहिर ने अपने स्वामी को सारगर्भित भाषा में लिखकर भेज दी। उसने पत्र में लिखा—"अली बिन ईसा का सिर मेरे समक्ष है, विजय-चिह्न सूचिका उसकी मुद्रिका अब मेरी ऊँगलियों में है और उसकी सेना मेरे अधीन है।" ठीक इसी प्रकार का पत्र जुलियस सीजर ने रोम की सीनेट को लिखा था।

ईसा की मौत और शाही सेवा की खबर मिलते ही आमीन चौंक पड़ा। उसकी स्थिति डावाँ-डोल होती नजर आने लगी। उसने मामून के विरुद्ध शीघ्र ही सेनाएँ भेजीं, पर वे सभी पराजित हुईं। उधर ताहिर ने पश्चिम के पार्वतीय भूभागों पर कब्जा जमा लिया। काजवीन और होलवान बड़ी आसानी से उसके अधीन हो गये। होलवान में उसने अपनी शक्ति का केन्द्र कायम किया। यहाँ से उसने अपने सैनिकों को अहवान भेजा और सेना की एक टुकड़ी को हरसमा के नेतृत्व में उत्तरी दिशा के प्रान्तों की विजय के लिए भेजी। इसी बीच मामून ने अब 'अमीर अल-मोमीनिन' (Commander of the Faithful) की उपाधि धारण की और सम्पूर्ण ईरान ने उसे खलीफा घोषित किया। फजल बिन सहल को तिब्बत से समदान और हिन्द महासागर के कास्पियन सागर तट के प्रदेशों के शासन का स्वामी बनाया गया। युद्ध मन्त्री और वित्त मंत्री, दोनों का कार्य वह अकेला करने लगा। युद्ध कार्यालय का प्रधान अध्यक्ष अली बिन हिशाम को बनाया गया। युद्ध लगान-विभाग की देख-रेख के लिए नईम बिन खाजिम को नियुक्त किया गया और और हसन बिन सहल को उसका सचिव बनाया गया।

जिस समय पूरब-पश्चिम में ये घटनायें घट रही थीं उसी समय सीरिया से मुआविया प्रथम के एक वंशज ने विद्रोह कर दिया जिसका नाम था अली बिन अब्दुल्ला बिन खालिद बिन यजीद बिन मुआबिया। लोग उसे 'सुफियानी' कहकर पुकारा करते थे। लेकिन उसके विद्रोह को शीघ्र ही अब्बासी सेना ने दबा दिया।

उधर मामून के सेनापति अहवाज, यमामा, बहराईन और अमन को पैरों तले कुचल चुके थे और उत्तर की ओर बढ़कर वासीत पर भी कब्जा कर लिये थे।

कूफा के अब्बासी गवंनर हादो के पुत्र अब्बास ने मामून की अधीनता स्वीकार कर ली। बसरा के गवंनर मंसूर ने भी, जो महदी का पुत्र था। मामून को खलीफा मानकर उसकी संप्रभुता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार ईसा के पुत्र दाउद ने भी जो मक्का-मदीना का गवंनर था, अब आमीन की जगह मामून को ही अपना स्वामी मान लिया। मामून ने इन सारे गवंनरों का यथोचित सम्मान दिया और उन्हें अपनी-अपनी जगहों पर बना रहने दिया। इसी बीच ताहिर ने उत्तर की ओर बढ़कर मदाइन पर कब्जा जमा लिया था और देखते-देखते बगदाद आ धमका। उधर उत्तर से हरसमा भी बगदाद आ जुटा। तीसरा सेनापति जुबैद ने भी बिलम्ब न करके बगदाद के पास अपनी सेना उतार दी। अब एक ही साथ इन तीनों सेनापतियो ने बगदाद का घेरा डाल दिया। ताहिर अनवर प्रवेश-द्वार (Gate) के आगे बगीचे में सेना लेकर डट गया और हरसमा नदी के बहिमुख पर स्थिर नूरबीन नामक स्थान पर तैनात हो गया। अनेक महीनों तक बगदाद का घेरा पड़ा रहा। आमीन ने घेरा-काल में खजाना का माल ढोकर उसे रिक्त कर दिया। स्वर्ण एवं रजत के घरों को पिघलाकर उसने अपने सैनिकों तथा भृत्यों के बीच बांट दिया। बगदाद का सारा आकर्षण समाप्त हो गया। विशाल अट्टालिकाएँ धराशायी हो गयीं, प्रशासनिक कार्यालय नष्ट हो गये और बगदाद उजड़ गया। शनैः-शनैः बगदाद के जागीरदार और गणमान्य व्यक्ति आमीन का साथ छोड़ने लगे। युद्ध एवं घेरा निरन्तर चलता ही रहा। अन्त में आमीन को अपनी माता के साथ मदीनात अल-मंसूर में शरण लेनी पड़ी। पर यहाँ भी उसकी स्थिति संकटपूर्ण रही विवश होकर उसने हरसमा के समक्ष, जो उसके पिता का विश्वास पात्र था, आत्मसमर्पण करने का प्रस्ताव रखा। आत्मसमर्पण करने के बाद ही उसने राजचिह्न और पोशाक ताहिर के पास भेज दी। आमीन तथा उसके पुत्रों की रक्षा के लिए हरसमा ने नाव पर चढ़कर नदीमार्ग से अपने पड़ाव की ओर प्रस्थान किया। पर अभी नाव थोड़ी ही दूर गयी थी कि ईरानी सैनिकों ने, जो पहले से ही तट पर छिपे थे, उसपर पत्थरों की वर्षा करने लगे। नाव नदी की छाती में समा गयी, पर आमीन किसी तरह किनारे जा लगा। लेकिन वह सैनिकों की नजर से बच नहीं सका। उसके दिन लद चुके थे। सैनिकों ने उसे पकड़ कर निकट के एक मकान में बन्द कर दिया और 814 ई० को 24 वें मुहर्रम के दिन उसका बध कर दिया। आमीन ने अपनी वालिश्त से अपनी रक्षा करने की भरपूर चेष्टा की, पर तलवार ने वालिश्त तथा आमीन दोनों के टुकड़े-टुकडे कर दिये। दूसरे दिन सैनिकों ने आमीन के सिर को बगबाद शहर की दीवार पर लटका दिया।

अपने अग्रज की दुखद मृत्यु की खबर सुनकर मामून अत्यन्त दुखी हुआ। उसने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि उनके गृह-कलह का ऐसा दुष्परिणाम निकलेगा। उसने हत्यारे सैनिकों को सजा देने के लिए शीघ्र ही कदम उठाया और भाई के पुत्रों को गोद लेकर उन्हें दत्तक पुत्र मान लिया। इन पुत्रों को उसने जुबैदा के संरक्षण में रख दिया और युवावस्था आने पर उनकी शादियाँ जुबैदा की पुत्रियों से ही कर दी।

4 वर्ष 8 महीने शासन करने के उपरान्त आमीन मृत्यु का शिकार हुआ। उसका सम्पूर्ण शासन गृह-कलह में ही व्यतीत हुआ। विलासिता में लिप्त रहकर उसने शासक की दृढ़ता को भी खतम किया था और अब्बासी राज्य का अवसान-चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगा था। लेकिन ऐसी ही स्थिति में मामून ने आकर शासन को पुनरुज्जीवन दिया और इसे पुनः स्थायित्व प्रदान किया।

खलीफ़ा मामून (813-33)

अगर मंसूर अब्बासी शासन का मार्ग-दर्शक था तो मामून उसका एक ऐसा मध्यवर्ती शासक था जिसने उसे उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाया। उसने एक तरफ आन्तरिक विद्रोहों का दमन करके राज्य में अमन-चैन कायम किया तो दूसरी तरफ उसका सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास भी किया।[15]

मामून के राज्यारोहण के समय राज्य की राजनीतिक अवस्था अव्यवस्थित थी। अनेक राज्य आमीन की दुर्बलता का लाभ उठाकर विद्रोह कर रहे थे। बगदाद में विद्रोह की अग्नि सबसे पहले पहुँची। आमीन की मृत्यु के एक-दो दिनों के बाद ही मेसोपोतामिया से उमैय्या वंशीय नसर में विद्रोह कर दिया। इसी प्रकार बद्दूओं ने ईरान के गवर्नर हसन बिन सहल के शासन को मानने से इनकार कर दिया। पश्चिमी प्रान्तों के इन विद्रोहों से अली के वंशजों को काफी प्रसन्नता हो रही थी और वे भी अपने खोये हुए अधिकारों को पाने के लिए उछल-कूद करने लगे। अली परिवार के एक व्यक्ति 'इब्न तबा-तबा' ने कूफा के लोगों को अब्बासी राज्य के खिलाफ बगावत करने का उपदेश दिया। अबू सराफा ने, जो पहले जल-दस्यु था, तबा का साथ दिया और दोनों ने मिलकर हसन बिन सहल को परास्त किया। अब दोनों दक्षिणी ईराक के स्वामी थे। कुछ दिनों के बाद तबा को सराया ने ही तबाह करना शुरू किया और एक दिन विष देकर उसे मार डाला। उसकी जगह अली वंश का एक युवक चुन लिया गया।

इधर दजला के किनारे ये घटनायें घट रही थीं, उधर हेज्जाज में इमाम जफर अस-सादिक का पुत्र खलीफा चुन लिया गया। ईरान की सीमा से लेकर यमन तक सम्पूर्ण अब्बासी राज्य आन्तरिक विद्रोह का शिकार हो गया। प्रत्येक जगह लूट-पाट और नर-संहार के दृश्य नजर आने लगे। राज्य के महत्वाकांक्षी वजीर फजल बिन सहल ने इन घटनाओं की कोई भी खबर खलीफा मामून को नहीं दी जो इन दिनों मारव में होनेवाले दार्शनिक विवादों में फँस गया था। स्थिति गंभीर होते देखकर वजीर ने स्वयं कदम उठाया। ईरान के भयंकर विद्रोह ने उसे अबू सराया के विरुद्ध हरसमा के नेतृत्व में एक सेना भेजने के लिए बाध्य किया। सराया युद्ध में पराजित होकर मारा गया। युवक खलीफा को मारव भेज दिया।

15. The reign of Mamun is often said to mark the high point in the civilization of the Caliphate.
—Crane Brinton & others; Civilization in the West, p. 178.

गया जहाँ उसने मामून का पैर पकड़ लिया। ईरान की अग्नि बुझने के बाद वजीर ने हुरसमा को मिस्र पर आक्रमण करने का आदेश दिया। लेकिन सेनापति ने इस आदेश को ठुकरा दिया। हुरसमा के महत्वाकांक्षी वजीर को षड़यन्त्र का पता लग गया। वजीर स्वयं खलीफा बनना चाहता था। हुरसमा ने शीघ्र ही मारव की ओर प्रस्थान किया और एकाएक राजकीय भवन में उपस्थित हुआ। उसने बेखबर सोये हुए खलीफा को कड़े शब्दों में राज्य में घट रही घटनाओं एवं वजीर की चाल-बाजी से परिचित कराया। खलीफा को सूचना देने के बाद जैसे ही हुरसमा बगदाद वापस आया वैसे ही वजीर ने उसकी हत्या करवा दी और यह अफवाह फैला दी कि रोग ने उसे मृत्यु की गोद में सुला दिया है। लेकिन वजीर के चरित्र पर बगदाद के निवासियों ने सन्देह किया और उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उनका विद्रोह सफल भी हुआ और उन्होंने हसन को हटाकर मंसूर बिन महदी को बगदाद का गवर्नर बना दिया। हसन बिन सहल फजल का भाई था।

815 ई० में मामून ने मुहम्मद के परिवार के किसी सदस्य को खलीफा का पद दे देने का निश्चय किया। इस ध्येय की पूर्ति के लिए उसने फातिमा इमाम अली तृतीय को जो मूसा अल-कासिम का पुत्र था, मदीना से बुला भेजा। 816 ई० के दूसरे रमजान के दिन इस नये उत्तराधिकारी के प्रति निष्ठावान बने रहने की शपथ ली गयी और उसे 'अल रिजा मिन अल मुहम्मद' (The acceptable among the children of Mohammad) की उपाधि दी गयी। संक्षेप में उसे 'अरूरिजा' के नाम से पुकारा गया और उसके वंशजों को 'रिजवी' कहा गया। मामून के आदेश से रिजवी काले वस्त्र का पहनना बन्द कर अब लाल पहनावा धारण करने लगे। अली अर-रिजा के उत्तराधिकार के मनोनयन का समाचार पाते ही बगदाद के अब्बासी वंश के लोगों में उन्माद छा गया। उन्होंने इब्राहिम बिन महदी को गद्दी के लिए तैयार किया और हसन के आफिसरों को राजधानी से निकाल बाहर किया। बगदाद और उसके निकटवर्ती शहरों में अराजक स्थिति पैदा हो गयी। सच्चे अर्थ में कोई सरकार न रही और लोगों के हृदय से सारा भय जाता रहा। स्थिति इतनी भयावह हो गयी कि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने अपनी सुरक्षा के लिए एक 'निगरानी समिति' का गठन कर लिया जो शान्ति तथा सुव्यवस्था कायम करने का प्रयास करने लगी। ऐसी अन्य समितियों का भी निर्माण कर लिया गया। ये समितियाँ तबतक कार्य करती रहीं जबतक मामून बगदाद वापस लौट नहीं आया। बगदाद की तरह दक्षिणी ईराक और हेज्जाज में भी अराजकता व्याप्त थी। इब्राहिम और सहल कोई भी स्थिति पर काबू नहीं कर पा रहे थे। गृह-दाह एवं गृह-युद्ध से समस्त जनता अपार संकट का सामना कर रही थी ऐसा लगने लगा कि ईरानी वजीर फजल के कुप्रबन्ध से अब्बासी शासन का पतन हो जायगा। राज्य की इस अराजकता से इमाम अली अर-रिजा ने मामून को परिचित कराया। उसने यह बताया कि वजीर ने शासन का कुप्रबन्ध किया है, इब्राहिम के निर्वाचन से जनता में असन्तोष है और अली परिवार के उत्तराधिकारी से अब्बासी अप्रसन्न हैं। स्थिति का वास्तविक ज्ञान होते ही खलीफा मामून के आगे अँधेरा छा गया। जब वजीर को पुनः इस बात का पता लगा कि मामून वास्तविक स्थिति से परिचित हो गया है तब

क्रुद्ध होकर उसने अनेक अब्बासियों को कैद कर लिया और कुछ व्यक्तियों को कठोर सजायें दी। इमाम ने वजीर की इस करतूत की खबर पुनः खलीफा को भेज दी। खलीफा को अब विवश होकर वजीर के खिलाफ कदम उठाना पड़ा। एक रात चुपके से उसने उसकी हत्या करवा दी। फजल की महत्वाकांक्षा का बीज पनप नहीं सका।

इसी समय 818 ई० में तुस में इमाम की मृत्यु हो गयी जिसने अब्बासी राज्य को बर्बादी से बचाया था। इमाम की जगह उसका पुत्र मुहम्मद नियुक्त किया गया जिसने 'जावेद' की उपाधि धारण की। इमाम की याद में खलीफा ने मसत-मकबरा का निर्माण किया जिसके दर्शन के लिए दुनियाँ के तमाम मुल्कों से शिया आने लगे।

खलीफा मामन ने अब मारव से बगदाद के लिए प्रस्थान किया। महरबान तथा अन्य पड़ावों पर ठहरते हुए 819 ई० में वह राजधानी पहुँच गया। खलीफा का बगदाद प्रवेश विजय का सूचक था। उसकी आगवानी में गलियों को सजाया गया। लोगों ने रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये और काफी उत्साह से अपने खलीफा का स्वागत किया। उसके बगदाद में ठहरते ही सारी अराजकता अपने-आप तिरोहित हो गयी और निगरानी करने की समितियों की आवश्यकता जाती रही। खलीफा ने अब नगर-भ्रमण कर लोगों के कष्टों की जानकारी प्राप्त की। भ्रमण के सिल-सिले में उसने पाया कि षड्यन्त्रकारी और जालिम (शोषक) ही सारे कष्टों की जड़ है। अब उसने शासन संगठन की ओर ध्यान दिया। मक्का और मदीना के शासन के लिए उसने अली परिवार के एक व्यक्ति को गवर्नर के पद पर नियुक्त किया और अपने दो भाइयों को कूफा तथा बसरा का शासक बनाया। 820 ई० में उसने पूर्वी प्रदेशों के लिए ताहिर को गवर्नर के पद पर नियुक्त किया और उसे पहरेदारों का कैप्टेन भी बनाया। उसके मरणोपरान्त उसका पुत्र तलहा इन क्षेत्रों का शासक बना और सात वर्षों तक गवर्नर के रूप में अब्बासी राज्य की सेवा की। ताहिर का दूसरा पुत्र अब्दुल्ला सीरिया और मिस्र का शासक बनाया गया। उसने नसर ओकैली को परास्त कर मोसोपोतामिया में शान्ति कायम की। इसी समय उसने मिस्र में उठने वाले एक नये विद्रोह का भी दमन किया। उसने सिकन्दरिया के स्पेनिश मुसलमानों को भी, जो उपद्रवी थे, क्रीट जाने को बाध्य किया।

अराजक स्थिति पर काबू पाने के पश्चात् अब कुछ उपद्रवी प्रान्तों को भी जीतने का प्रयास किया गया। यमन और खोरासान के विद्रोह को दबाकर वहाँ अब्बासी शासन का प्रभाव कायम किया गया। इसी समय मामून को यह पता चला कि उसकी ही जाति के कुछ प्रमुख हत्यारे उसकी हत्या करने का षडयन्त्र रच रहे हैं। जब उनके विरुद्ध प्रस्थान किया गया तब हत्यारों के नेताओं ने अपनी गलती स्वीकार कर खलीफा से क्षमा माँग ली। खलीफा ने उसे क्षमा प्रदान कर अपना समर्थक बना लिया। इसी वर्ष खलीफा ने अपने नये वजीर हसन बिन सहल की सुन्दर कन्या खदीजा से शादी कर ली। महिला चिकित्सालय का निर्माण

खदीजा के चलते ही बगदाद में संभव हो सका। शासन को भी इस महिला ने अधिकाधिक प्रभावित किया। इसे अब्बासियों का उत्कर्ष तथा अपकर्ष दोनों देखने का अवसर मिला क्योंकि वह दीर्घकाल तक जीवित रही। 883 ई० में उसकी मृत्यु हुई थी।

मामून के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही बाबेक नामक एक दस्यु ने मर्जेन-दरान नामक एक दर्रा पर अपना अधिकार कायम कर लिया था। वह खुर्रमी के मजियन सम्प्रदाय का सदस्य था। वह पुनर्जन्म में विश्वास करता था और यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम आदि धर्मों द्वारा प्रतिपादित किसी भी नैतिक नियम को नहीं मानता। था उसने अपने पहाड़ी प्रदेश के आस-पास के प्रदेशों को उजाड़ना प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं, उसने निर्दयतापूर्वक लोगों का कत्ल करना प्रारम्भ किया और बच्चों, औरतों तथा विभिन्न धर्मावलम्बियों को चुराकर कैदी बनाने लगा। उसे परास्त करने के लिये अनेक बार सेनायें भेजी गयीं, पर दुर्भेद्य दर्रों ने उसकी हमेशा रक्षा की। बाबेक ने अपनी शक्ति में वृद्धि लाने के लिए इसी समय रोम के शासक से भी मित्रता की और उसे अब्बासी राज्य पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। इस समय रोम का सम्राट माईकेल का पुत्र थियोफिलस था। उग्र-वादी दस्यु का बल पाकर ईसाई सम्राट ने सैकड़ों मुसलमानों को तलवार के घाट उतार दिया।

तत्काल थियोफिलस के आक्रमण को रोकने के लिए खलीफा मामून को स्वयं प्रस्थान करना पड़ा। तीन बार सफलतापूर्वक युद्ध करके उसने रोमन सम्राट का छक्का छुड़ा दिया। सम्राट को बाध्य होकर अपने पूर्ववर्ती शासकों की तरह अब्बासी खलीफा से संधि करनी पड़ी। पर खलीफा को ग्रीकों के चरित्र पर अब विश्वास नहीं हो रहा था। इन्हें परास्त कर उसने मिस्र की ओर प्रस्थान किया और उसके सेनापति अफशीन ने ऊपरी मिस्र को आक्रान्त किया। पुनः ग्रीक आक्र-मण को रोकने के लिये मामून ने तयाना की किलाबन्दी की। अभी किलाबन्दी का काम पूरा भी नहीं हुआ था कि मामून को असाध्य बुखार ने दबोच डाला। इसी अवस्था में उसे तारसस लाया गया जो तयाना से 70 मील उत्तर दिशा में अवस्थित था। उसी दिन (9 अगस्त, 833 ई०) वह चल बसा।

मामून का शासन-काल इस्लाम के इतिहास का स्वर्ण-काल है। इतिहासकार इसके काल की तुलना आगस्टस के काल से करते हैं। बीस वर्षों के अन्दर वह बौद्धिक विकास के क्षेत्र में स्थायी स्मारक चिन्ह छोड़ गया। केवल विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र तक ही यह बौद्धिक विकास सीमित नहीं रहा, प्रत्युत बुद्धि और ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र विकसित हुआ। इस काल में मीमांसा (दर्शन) का विकास ठीक उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार व्यावहारिक विज्ञान का। गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्साशास्त्र इत्यादि सभी विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। इन सारी विद्याओं का विकास पहले स्पेन तथा कुस्तुनतुनिया में हुआ और तदोपरान्त आधुनिक यूरोप के अन्य देशों में। मामून यह मानता था कि उसकी प्रजा का वास्तविक

विकास शिक्षा और संस्कृति के विकास में ही संभव है। शिक्षा के विकास के लिए उसने स्थायी निधि का निर्माण किया। साम्राज्य के प्रत्येक भाग में स्कूल एवं कालेज खोले गये और उन्हें अधिकाधिक आर्थिक सहायता प्रदान की गयी। पहली बार मुसलमानों के धार्मिक तथा निरंकुश शासन ने दर्शन एवं विज्ञान का इस सीमा तक विकास किया कि लोग इस काल को सबसे गौरवपूर्ण मान बैठे।

राजनीतिक दृष्टिकोण से यह शासन स्वर्ण युग माना जा सकता है। खलीफा मामून ने एक स्थायी राज्य सभा (Council of State) का संगठन किया जिसमें सभी समुदायों के लोग सदस्य थे। इसमें मुसलमान, यहूदी, ईसाई आदि सभी जातियों के लोग थे। गैर-मुस्लिम जातियों को भी विचार स्वातन्त्र्य एवं धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। हाँ कभी-कभी स्थानीय गवर्नर जनता पर नियन्त्रण लादकर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेते थे। मामून के शासन काल में 11 हजार इसाई धर्मावलम्बी, 100 यहूदी-गृह और अन्य मस्जिदें मौजद थीं। जेरूसलेम और अन्ती-ओक का धर्मान्ध ईसाई चर्च का अध्यक्ष था। धर्माध्यक्ष के बाद 'जसालिक' और मेदान और तब इसकाफ और अन्त में कीसीस चर्च के क्रमिक पदाधिकारी थे। धर्म के ये समस्त पदाधिकारी इस काल में सारी सुविधाओं का उपभोग करते थे।

अपने धर्म के प्रति मामून को व्यक्तिगत रूप से कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। उसके विपरीत उसने राज्य को धर्म-निरपेक्ष बनाने का प्रयास किया। धर्म-शास्त्र और चिकित्साशास्त्र का वह अपने युग का प्रकाण्ड विद्वान था। ऐसा कहा जाता है कि महान विद्वता रखने वाला चिकित्सक भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। कुरान का उसने गहरा अध्ययन किया था। वह धर्माचार्य इमाम अर-रिजा का शिष्य था और उसकी सेवा में रहकर दर्शन तथा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया था। वसील नामक फाजिल से उसने मानवीय कारणों (Human Reason) का अध्ययन किया और हसन अल-बसरी के व्याख्यान से धार्मिक सिद्धान्तों को सीखा था। इसके काल में 'मुताजिलस' नामक एक समुदाय का विकास हुआ जिसके सिद्धान्तों को खलीफा पसन्द करता था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी यह मानते थे कि मनुष्य स्वतन्त्र कार्यकर्त्ता है और अच्छाई तथा बुराई, दोनों में से एक को वह स्वयं चुन लेता है। इस समुदाय के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य को परलोक में शारीरिक कष्ट नहीं सहने पड़ते हैं। मामून ने इन के प्रचार सिद्धान्तों में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं की और मुताजिलस काफी फुला-फला।

मामून के काल में लोकोपकारी विज्ञान का भी विकास हुआ। खलीफा के दरबार में विद्वानों तथा वैज्ञानिकों की भीड़ लगी रहती थी। विश्व के अनेक देशों के वैज्ञानिक, चिकित्सक, दार्शनिक, इतिहासकार, भाषाशास्त्री आदि से इसका दरबार भरा रहता था। जाति, रंग अथवा राष्ट्रीयता का ख्याल किये बिना ही मामून इन सभी विद्वानों का सम्मान करता था। विज्ञान एवं साहित्य की उन्नति के दृष्टिकोण से मामून का काल मंसूर के काल से भी आगे बढ़ गया। एक इतिहास-कार का मत है कि मंसूर ने कला एव विज्ञान की प्रगति का जो काम अधूरा छोड़ दिया था, मामून ने उसे पूरा किया। इन्हीं विद्वानों की मदद से मामून ने सिकन्द-

रिया की लिखावट का ज्ञान अर्जित किया और कुस्तुनतुनिया के सम्राट की मदद से ग्रीस के एथेन्स के दर्शन को जान सका। सिकन्दरिया की लिखावट और ग्रीस की दर्शन-सम्बन्धी पुस्तकों का अनुवाद बगदाद में किया जाने लगा। ग्रीस, सीरिया, और कालिडया की कृतियों का अनुवाद कोस्ट्रा की देखरेख में, ईरान की कृतियों का अनुवाद यहिया बिन हारून के नेतृत्व में और संस्कृत की पुस्तकों का अनुवाद ब्राह्मण दूवन की देख-रेख में किया जाने लगा। ज्ञान-वृद्धि के विशेष विषयों तथा शोधजनक विषयों के विकास के लिये विशेष ध्यान दिया गया। सरकारी सहायता पाकर लेखन कार्य भी आगे बढ़ा।

इस काल में ज्योतिष शास्त्र और खगोल विद्या की भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। विषवत रेखा, ग्रहण, पुच्छल तारा का दिव्य दर्शन और अन्य स्वर्ग संबंधी चीजों का अध्ययन किया जाता था। इस काल में पृथ्वी की परिधि मापी गयी। अबुल हुसन ने टेलीस्कोप का आविष्कार किया जिसे उसने प्रारम्भ में नली (Tube) कहा। इस नली में आगे चलकर सुधार लाया गया और मरथा तथा काहिरा में सफलतापूर्वक इसका व्यवहार किया गया। गणित, रेखागणित, दर्शनशास्त्र, खगोल-विद्या, मौसमशास्त्र, प्रकाश-विज्ञान, यान्त्रिक-शास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि विद्याओं का संग्रह किया गया और उनका अध्ययन क्षेत्र शिक्षार्थियों में बाँट दिया गया। चिकित्साशास्त्र के अध्ययन एवं विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। पहली वेधशाला का निर्माण शमसिया में इसी काल में किया गया।

प्राचीन ईरान की भाषा और साहित्य अरबों के आक्रमण के बाद बुरी अवस्था में पहुँच गये थे। मामून ने पुरातन ज्ञान को पुनर्जीवित किया और ईरानी भाषा का उत्थान किया। कवि अब्बास मरवाजी, जो आधुनिक ईरानी कविता का जनक माना जाता है, इसी काल की विभूति हैं।

मामून ने विद्वत मण्डली कायम कर वाद-विवाद करने की परिपाटी का प्रचलन किया। विद्वान और पण्डित प्रत्येक मंगलवार को राजभवन में एकत्र होते थे और राजकीय जलपान में भाग लेकर वाद-विवाद के प्रश्नों को प्रारम्भ करते थे। सभा का सभापतित्व खलीफा किया करता था। शाम की नमाज पढ़ने के बाद विद्वान खलीफा से अवकाश लेते थे और रात्रि के भोजन में पुनः शामिल होते थे।

मुतासिम (833-42) :

अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही मामून ने अपने भाई अबू ईशाक को, जिसका उपनाम अल-मुतासिम व 'इस्लाम' था, अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। मुतासिम दृढ़ चरित्र का व्यक्ति था। मामून के पुत्र अब्बास ने भी अपने चाचा के प्रति निष्ठा दिखलायी और तत्सम्बन्धी शपथ ली। तत्पश्चात नियमानुसार मुतासिम तारसस में खलीफा घोषित किया गया।

खलीफा बनते ही मुतासिम ने एक स्थायी सेना का संगठन किया जिसमें केवल तुर्क एवं अन्य विदेशी नस्ल के सैनिक थे। इस सेना का संगठन करके उसने

बड़ी गलती की क्योंकि कालान्तर में इस सेना ने शासन को प्रभावित करना प्रारंभ किया। तुर्की के गुलामों (मामलूक) की प्रधानता इस सेना में काफी कायम थी। इसके अतिरिक्त मध्य एशिया, यमन और मिस्र के सैनिक भी इस सेना में थे जो भाड़े पर लड़ा करते थे। इसमें ट्रान्जोक्सियाना और अफ्रीका के भी सैनिक थे। ट्रान्जेक्सियाना के सैनिकों को 'फरगीना' कहा जाता था और अफ्रीका के सैनिक को 'मगरीब'। सभी नस्ल के सैनिक अपने-अपने नायकों के नेतृत्व में काम करते थे। पर सभी नायकों पर खलीफा का नियन्त्रण कायम रहता था। लेकिन अरबी सेना से यह तुर्की सेना सदैव विलग रही और दोनों एक-दूसरे से मेल कभी नहीं खायी। समय पाकर तुर्की सेना ने खलीफा तथा शासन को अपनी मुट्ठी में करना प्रारम्भ किया।

बगदाद का राजनीतिक वातावरण इन दिनों धीरे-धीरे कलुषित हो रहा था। अतः मुतासिम ने बगदाद से अपनी राजधानी बदलकर उत्तर-पश्चिम अवस्थित समारा को अपनी राजधानी बनायी। अपने लिये राजभवन एवं सेनाओं के लिये बैरक तथा अस्तबल का भी शीघ्रता से उसने निर्माण कर लिया। नगर के कुछ भाग उसने सेना के प्रधानों के रहने के लिये दे दिया।

मुतासिम का काल इस बात को लेकर महत्वपूर्ण है क्योंकि इस काल में हिन्दुस्तान के जाट दजला में आकर रहने लगे। जाटों का ईराक में किस प्रकार आगमन हुआ, यह बतलाना कठिन है। लेकिन इतना सत्य है कि करीब सत्रह हजार जाट आकर टिग्रिस के किनारे बस गये। जीविकोपार्जन का कोई उपाय न रहने के कारण इन्होंने लूट-पाट करने का पेशा अख्तियार कर लिया और लोगों की सुरक्षा खतरे में पड़ गयी। मुतासिम ने बाध्य होकर जाटों के खिलाफ सेना भेजी। नावों पर चढ़ाकर जाटों तथा उनकी औरतों को कैदी बनाकर बगदाद लाया गया। औरतों के अद्भुत पहनावे को देखकर मुसलमान अपना काफी मनोरंजन किये। इसके बाद वे सिसली की सीमा पर निवास करने लगे। लेकिन यहाँ भी शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सके। ग्रीकों ने उस पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अधिकांश जाट मार डाले गये और भागकर थ्रेस पहुँच गये। अधिकांश जाट को मुसलमानों ने बलपूर्वक मुसलमान बना लिया। जाटों के उपद्रव अब समाप्त हो गये।

ऊपर हम बाबेक का उल्लेख कर आये हैं। इन्होंने पुनः लूट-पाट करना प्रारम्भ किया। खलीफा ने उनका दमन करने के लिए अपने एक प्रसिद्ध तुर्की नायक आफशीन को भेजा। बड़ी सावधानी से युद्ध करके नायक ने बाबेक के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और उसके पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियों को कैदकर बगदाद भेज दिया। खलीफा ने उन्हें क्षमा प्रदान कर उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। बाबेक और उसका भाई पकड़ में नहीं आये और वे आर्मीनिया भाग गये। लेकिन आरमेनियनों के प्रधान ने उन्हें पकड़कर बगदाद भेज दिया। इस भयंकर जलदस्यु के साथ खलीफा ने कठोरता दिखलायी। दोनों भाइयों को हाथी पर चढ़ाकर बगदाद की गलियों में घुमाया गया और उन्हें जान से मार डाला गया। इनकी हत्या के बाद उन लोगों की जान बचा दी गयी जिन्हें तुर्की नायक ने गिरफ्तार किया था।

हम ऊपर यह भी उल्लेख कर आये हैं कि रोमन सम्राट और बाबेक के बीच मित्रता कायम हो गयी थी। जिन दिनों अफशीन मजेनदरान में व्यस्त था, उन्हीं दिनों दिनों रोमन सम्राट की सेना ने कप्पाडोसिया पर आक्रमण कर दिया और मुस्लिम भूभागों पर आक्रमण करके अनेक बच्चों, औरतों तथा पुरुषों को कैद करके गुलाम बना लिया। मुतासिम की जन्मभूमि जिबेत्रा (Zibetra) को नेस्तनाबूद कर दिया गया। अनेक लोगों को जान से मार डाला गया और बहुतों की आँखों में गर्म लोहे की छड़ें घुसेर दी गयीं। जब इस अत्याचार की खबर खलीफा को मिली तब उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने कठोर प्रतिशोध लेने की शपथ ली। बड़ी तेजी से सेना का संगठन कर उसने रोम के खिलाफ प्रस्थान किया। अंकाइरा के आगे थियोफीलस को मुतासिम की सेना ने बुरी तरह परास्त किया। तत्पश्चात् खलीफा ने अमोरियम की ओर प्रस्थान किया जो थियोफीलस की जन्मभूमि थी। पचास दिनों तक घेरा डालने के बाद अमोरियम धराशायी कर दिया गया। तीस हजार व्यक्ति तलवार के घाट उतार दिये गये और अवशेष ग्रीक सेनापति बातीस के साथ बगदाद भेज दिये गये। अब खलीफा ने ग्रीकों की शक्ति के केन्द्र प्रोपोनतीस तथा बास्फोरस को नष्ट करने का प्रयास किया पर उसके अपने ही दल मे षडयन्त्र रचा जाने लगा जिससे खलीफा को विवश होकर अपना अभियान रोकना पड़ा। तुर्की नायकों तथा सैनिकों से अरब सैनिक ईर्ष्या करने लगे थे और उन्होंने अब्बास को अपनी ओर मिलाकर मुतासिम की हत्या करने का प्रयत्न किया। जब खलीफा को इस षडयन्त्र का अचानक पता चला तब उसने अब्बास तथा समर्थकों की ओर मुड़कर उनका दमन करने का प्रयास किया। मुतासिम ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया और समारा वापस लौट गया। लौटने के पूर्व उसने थियोफीलस से संधि कर ली।

839 ई० में तबरिस्तान के मेजिरन राजकुमार मजिआर ने विद्रोह किया। अफशीन ने इस विद्रोह में एक चाल चली। वह जानता था कि अब्दुल्ला बिन ताहिर इस बिद्रोह का दमन नहीं कर सकता है। अतः अपने को पूर्वी प्रदेशों का वायसराय बनाने के लिये, जिसका अब्दुल्ला वायसराय था, अफशीन ने अब्दुल्ला की शक्ति को मजियार से मिलकर और भी क्षीण करने का प्रयास किया। उसने छिपे रूप से मजिआर की सहायता की। लेकिन अब्दुल्ला ने तुर्की सेनापति के स्वप्न को स्वप्न ही रहने दिया। उसने मजियार को कैद कर बगदाद भेज दिया। इतना ही नहीं, उसने खलीफा के समक्ष अफशीन के षडयन्त्र को स्पष्ट कर दिया और उसके द्वारा मजियार के नाम लिखे गये पत्र को सामने रखा। खलीफा ने मजियार को फाँसी की सजा दे दी और अफशीन को उसके ही घर में कैद कर लिया गया। जबतक भूख से उसके प्राण पखेरू उड़ नहीं गये, तबतक वह उसी घर में कैद रहा। लेकिन अपने नायक के साथ मुतासिम भी चल बसा। अचानक उसे जोरों का बुखार चढ़ा और 5 जनवरी 842 ई० को उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इतिहासकार गिब्बन ने लिखा है कि अब्बासियों के आठवें खलीफा मुहासिम की मृत्यु के साथ उसके वंश और राष्ट्र का गौरव समाप्त हो गया।[16]

16. With Muhasim, the eighth of the Abbasids, the glory of his family and nation expired. —*Gibbon*

अल-वसिक (842-4)

मुतासिम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अबू जाफर हारून वसिक व इल्लाह अब्बासी साम्राज्य का खलीफा बना। कुछ इतिहासकारों ने इस शासक के चरित्र की कटु आलोचना की है, लेकिन सच्चे अर्थ में वह एक श्रेष्ठ शासक था। उसके चरित्र में उदारता एवं सहनशीलता के गुण कूट-कट कर भरे हुए थे। उसका शासन भी सुदृढ़ था और प्रजा के कल्याण की चिन्ता उसे सदैव लगी रहती थी। अपने काल में उसने साहित्य एवं विज्ञान को काफी प्रोत्साहन दिया और उद्योग तथा व्यापार को बढ़ावा दिया। गान विद्या को उसने काफी प्रोत्साहन दिया। वह स्वयं एक कुशल गायक था। यह कहा जाता है कि उसने एक सौ तानों वाली स्वरावलियों की रचना की थीं। दान देने में भी वह अति उदार था। ऐसा कहा जाता है कि उसके साम्राज्य के अन्दर एक भी भिक्षुक नहीं था।

लेकिन वसिक ने भी तुर्की सेना को अधिकाधिक सुविधायें देकर अरबी सेना को असन्तुष्ट किया। उसने अशवाज को साम्राज्य का लेफ्टिनेन्ट नियुक्त किया और उसे जवाहरात की तलवार एवं मेखला देकर सम्मान दिया।

सिक के उत्तराधिकारी

दुर्भाग्यवश इस खलीफा की अकाल मृत्यु हो गयी और उसकी मृत्यु के साथ ही अब्बासी शासन की सारी रौनक जाती रही। उसके बाद दो सदियों तक अनेक खलीफा शासन किये, पर वे केवल नाम के शासक रहे। मुत्तवक्किल, (47-61), मुनतास्सीर (861-62) मुतामिद अल्लाह, मुताजिद इल्लाह, मुत्तफी, मुक्तादीर इल्लाह, काहिर इल्लाह, अर-राजी, मुस्तकफे, मुत्ती, कईम, मुस्तारशीह मुस्तान जिद मुस्ता जहीर इत्यादि शक्तिहीन खलीफाओं के कारण अब्बासी साम्राज्य का पतन हो गया। वास्तव में अब्बासी काल का स्वर्णयुग वसिक काल तक ही कायम रहा। इस वंश का अन्तिम खलीफा अल-मुत्तावक्किल था जिसके काल में अब्बासी साम्राज्य का पूर्णरूपेण पतन हो गया।

अध्याय-11

अब्बासी खिलाफत की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

(Cultural achievements of Abbasid Caliphate)

अब्बासी खलीफाओं का शासन केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नहीं था. प्रत्युत सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी। प्रारंभिक खलीफाओं के काल में न केवल इस्लामी राज्य की सीमा में ही वृद्धि हुई अपितु कला, संस्कृति एवं विज्ञान की भी अपरिमित उन्नति हुई। खिलाफत की उन्नतशील सभ्यता तथा संस्कृति ने अनेक बिन्दुओं पर पश्चिमी जगत को भी अनुप्राणित किया। पश्चिमी जगत ने कई दृष्टियों से सारासेनों की सभ्यता को श्रेष्ठ माना। इसे उसने इस कारण ही श्रेष्ठ नहीं माना क्योंकि एक ऐसे नये धर्म (इस्लाम) का उदय एवं विस्तार हुआ था जिसके लाखों लोग अनुगामी हो गये थे अपितु वह इस कारण इससे प्रभावित हुआ था क्योंकि इसने ईसाई जगत को प्रभावित करना प्रारंभ किया था और उसकी सामाजिक तथा बौद्धिक जगत में परिवर्तन ला रहा था।[1] ईसाई जगत की सभ्यता से निश्चित रूप से सारसेनी सभ्यता बौद्धिक उपलब्धियों की दृष्टि से श्रेष्ठ थी।[2] इस कलात्मक एवं वैज्ञानिक विकास के कारण भी अब्बासी खलीफाओं का काल स्वर्ण युग माना जाता है। यह सही है कि इस वंश के शासन के संस्थापक अबू अब्बास को अपने शासन को सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विकास से सँवारने एवं सजाने का तनिक भी अवकाश नहीं मिला था, पर मंसूर, हारून मामून आदि के काल इस क्षेत्र में विकास लाने के लिए काफी प्रयास किया गया। एक इतिहासकार के शब्दों में 'संस्कृति के पौधे को खलीफा मंसूर ने सिंचित कर पल्लवित किया। वह पौध हारून रशीद के काल में वृक्ष के रूप में परिणत हुआ जिसमें फल लगे और इस फल को खलीफा मामून के काल में लोगों ने चखा। तत्पश्चात समय की पतझड़ का शिकार होकर यह वृक्ष मुरझा गया। संस्कृति एवं विज्ञान के इस विकास का अध्ययन निम्नलिखित सन्दर्भों में किया जा सकता है :—

---

1. In many ways the Saracenic civilization was one of the most important in the western world not only because it was the orbit of a new religion, which has attracted converts by the hundreds of millions, mainly because its impact upon Christian empepors responsible for social and intellectual changes which can only be described as revolutioning.

—Edward Mc Nall surns; Western Civilization; Their Mastery : Thier Culture, p 291.

2. The intellectual achievemente of the Saracens were far superior to any of which Christian Empire could boast befor the twelfth century. —Ibid, p 297.

साहित्य

पहले हम अब्बासी कालीन सांस्कृतिक विकास का अध्ययन करें। इस काल में साहित्य इतिहास, दर्शन, कला इत्यादि सांस्कृतिक पहलुओं का विकास अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इतना विकास शायद ही अबतक किसी शासन काल में हुआ था।

साहित्य के क्षेत्र में इस युग में काव्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। अब्बासी शासन के पूर्व ही काव्य का विकास अरब में हुआ था और इस्लाम के आविर्भाव के पूर्व ही यह जीवन का एक प्रधान अंग बन गया था। पर शिक्षा की कमी के कारण काव्य लिखे नहीं जाते थे। अधिकांश लोग निरक्षर रहने के कारण उन्हें याद कर लेते थे। खिलाफते रासिदा के काल में साहित्य गौण रहा क्योंकि इस्लामी सिद्धान्तों में साहित्य के विरूद्ध आवाज दी गयी। इसके अतिरिक्त यह काल इस्लाम के संगठन एवं संरक्षण का काल था। खिलाफते रासिदा के प्रथम चार खलीफा विदेशी आक्रमणों तथा आन्तरिक सुव्यवस्था के कार्य में इतने व्यस्त थे कि उनके पास साहित्य का विकास करने के लिये बहुत अल्प समय था। हाँ. उमैय्या काल में साहित्यिक विकास के लिये उर्वर भूमि एवं अनुकूल वातावरण मिला। पर इसका विकास कुछ काल के बाद ही रूक गया।

अब्बासी काल में अन्य कलाओं के साथ-साथ साहित्यक कला का भी विकास हुआ। कुछ आलोचकों का यह विचार था कि इस्लाम के उदय के पूर्व ही अरब का काव्य पूर्ण विकसित हो चुका था। लेकिन यह बात गलत है। इब्ने कुतैब नामक आलोचक ने विशेषताओं को सामने रखकर तत्कालीन काव्य को कसौटी पर कसा और यह स्पष्ट किया कि अब्बासी काल से ही वास्तविक काव्य का विकास हुआ जिसका आधुनिक अरब काव्य पर काफी प्रभाव पड़ा। अब्बासीयुगीन काव्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जो उसे पूर्ववर्त्तीकालीन काव्य से पृथक कर देती हैं। सर्वप्रथम इस युग का काव्य दरबारी संरक्षणता अथवा खलीफाओं की देख-रेख में विकसित हुआ। सम्पन्न एवं धनाढय प्रकाशकों के अभाव एवं पुस्तकीय व्यापार के संगठन की ढिलाई के कारण काव्य का संरक्षण खलीफाओं को ही करना पड़ा। इसके अतिरिक्त प्रसंशा-काव्य लिखने वाले कवियों को खलीफाओं ने पुरस्कार देने की परिपाटी का प्रचलन किया। इस कारण काव्य का यह क्षेत्र अधिकाधिक विकसित हुआ।[3] इस काल में शासन के पदों पर अनेक ईरानियों की नियुक्ति हुई थी जिनमें अधिकांश कवि थे। इन ईरानी कविओं एवं विद्वानों ने भी अरब काव्य को नया रूप देकर उसकी विशेषताओं में एक नयी विशेषता जोड़ दी। ईरानियों के चलते अरब काव्य में एक आकर्षक कल्पना की जाने लगी, उसमें गहरी एवं कोमल भावनाओं का अंकन किया जाने लगा और ऊँचे विचारों का प्रदर्शन भी हुआ। स्पष्ट है कि अब्बासी काल में काव्य का एक परिवर्तित रूप में अवतरण हुआ।

---

3. Nicholson; A literary History of the Arabs, p 2:5.

अब्बासीयुगीन काव्य के उत्तरोत्तर विकास में इस युग के कवियों का योगदान रहा। इन कवियों में ईरानी कवि बस्सर इब्न बुर्द (Bashshar ibn Burd) का उल्लेख सर्वप्रथम किया जा सकता है। यह जन्मजात अंधा था जिसको महदी के काल में 783 ई० में मार डाला गया था। ऐसा कहा जाता है कि महदी के वजीर पर उसने एक व्यंग्यपूर्ण कविता की रचना की थी। वह अपने अंधापन से प्रसन्न था और कहा करता था कि ईश्वर ने उसे अंधा बनाकर उसका कल्याण ही किया है क्योंकि वह उन चीजों को नहीं देख सकता है जिनसे वह घृणा करता है।[4]

इस काल का दूसरा प्रसिद्ध कवि अबू नुवाज (Abu Nuwas) था जिसे इतिहासकार निकोलसन ने महान कवि माना है। यह खलीफा हारून रशीद तथा आमीन का घनिष्ठ मित्र था। प्रारम्भ में कूफा में काव्य तथा भाषा विज्ञान की उसने शिक्षा प्राप्त की और तदोपरान्त हारून के दरबार में रहने लगा। ऐसा जिक्र मिलता है कि खलीफा ने उसके बुरे चरित्र के कारण उसे अनेक बार जेल में कैदी बनाकर रखा। नुवाज के 'दीवान' (collection में विभिन्न प्रकार की कविताएँ मदहिया (fanegyric) हिजी (stire), मदसिये (Elegies) तथा धार्मिक कविताएँ मिलती है। प्रेम तथा मदिरा उसके काव्य के प्रिय विषय थे। उसकी सारी कविताएँ गेय हैं जो अरब में आज भी पायी जाती हैं। उसकी गजल की प्रशंसा ईरानी और अरबी दोनों विद्वान करते हैं।

अबूल अताहिया (Abu-ul-Atahiya) इस काल काल का एक महान कवि था जो पेशे से कुम्भकार था। कूफा उसकी जन्मभूमि थी। उसकी कवित्व प्रतिभा से खलीफा महदी अत्यधिक प्रभावित था और उसे पुरस्कार तथा आदर देकर उसका सम्मान किया था। हारून के काल में उसे 50,000 दरहम वार्षिक पेंशन दी जाने लगी। उसके काव्य में दुःख एवं निराशा की स्पष्ट झलक मिलती है। मृत्यु, मानव-कष्ट, सांसारिक सुख की व्यर्थता इत्यादि उसके काव्य के उपकरण हैं। उसकी धार्मिक कविताओं का संकलन (जुहदियात) अरब की कृतियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

काव्य की प्रगति की घुड़दौड़ में कवि मुतानब्बी ने भी अपना सम्पूर्ण सहयोग दिया। उसने एक धर्म का ईजाद किया जो अधिक दिनों तक कायम न रह सका। उसने कूफा तथा दमिश्क में अपनी आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की। आगे चलकर वह सैफुद्दौला का मित्र बन गया, लेकिन मित्रता का बन्धन जल्द ही टूट गया। दुखी होकर मुतानव्वी मिस्र चला गया और अन्त में बगदाद होता हुआ अदुदुदौला के पास शिराज चला गया जहाँ 895 ई० में मर गया। मुतानव्वी की काव्य प्रतिभा अनुपम थी। उसके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे काव्य के नियमों में आवद्ध थी। उसके उचित स्थल पर अपने विचारों को रखा, दंगों की लिखा और शब्दों का प्रयोग किया। इतिहासकार का लेन्डों उसे 'आधुनिक अरब राष्ट्रीयता के विकास का जनक' कहते हैं।

---

4. "I need not see that which I hate." —*Agham*

अबू तम्माम (Abu-Tammam) भी इस काल का एक दरबारी कवि था। उसने एक संग्रह (Anthology) रचना करके अपार कीर्ति प्राप्त की।

अबूल-अल-अला मआरी इस युग का एक अन्य प्रधान कवि था जिसका जन्म 973 ई० में सीरिया में हुआ था। बचपनावस्था में ही चेचक के चलते उसकी एक आँख जाती रही थी, फिर भी उसकी स्मरण-शक्ति अक्षुण्ण एवं तीव्र थी। इसी स्मरण-शक्ति के बल पर उसने साहित्यक शिक्षा की उपलब्धि भी की। 'सकतुलजन्द' नामक पुस्तक में उसकी प्रारम्भिक कविताओं का संग्रह है। उसकी उत्कृष्ट कविताओं के संग्रह का नाम 'लुजमियात' है। कुरान और मुस्लिम धर्म की वह अवहेलना किया करता था और इसीलिये कुरान की उसने पैरोडी लिखी।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त अब्बासी काल में तगरी, बसीरी नामक अन्य कवि हुए जिन्होंने काव्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। इस युग की काव्य-कला पर अन्य देशों की काव्य कला की झलक दिखलाई पड़ती थी। ईरानी कवियों तथा विद्वानों ने अरब काव्य को नया रूप प्रदान किया। निकोल्सन के अनुसार फारस के चलते अरब की कविता में जीवन्तता आयी, भीनी भीनी कल्पना की भावना आयी, गहराई और कोमलता आयी तथा विचारों की दुनिया आयी।[5] अब्बासी कालीन काव्य अपनी सजीवता और सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। जीवन के विविध पहलू इस युग की काव्य-रचना के आधार बने।

अब्बासी काल में साहित्य के अन्य क्षेत्र भी में विकसित हुए। साहित्य के क्षेत्र में अरबों ने विदेशियों से सीखा। विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद करके साहित्य एवं विज्ञान की दुनियाँ को धनी बनाया। इस अनुवाद से मानसिक विकास एवं जागृति का आगमन और तेजी से हुआ। इस जागृति पर विदेशी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। अरबी भाषा में अनुवाद करके यह उन्नति अधिकाधिक लायी गयी। ईरानी, संस्कृत, सुरयानी (yriac) तथा ग्रीक भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद अरबी भाषा में किया गया। जिन विद्याओं को सीखने में यूनानियों को अनेक युग लगे थे, अरबों ने उन्हें चन्द वर्षों में अच्छी तरह सीख लिया। ईरानी और यूनानी सभ्यता को ग्रहण करने के कारण अरबों ने अपनी जातियों को बहुत कुछ बदल दिया। अरस्तू की ग्रीक भाषा में लिखित पुस्तक को अरब में काफी महत्त्व दिया गया। हेल के अनुसार अरस्तू अरबों का सबसे बड़ा गुरू था।

अरबी साहित्य एवं अनुवाद कार्य को बढ़ावा देने में भारत, ईरान, यूनान आदि देशों में सर्वाधिक महत्त्व दिया। भारतवासियों से अरबों ने गणित, आचार-शास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। 'सिद्धान्त' नामक एक ज्योतिष की पुस्तक को 771 ई० में एक भारतीय यात्री ने अरब लाया। इस पुस्तक का अनुवाद बगदाद में किया गया। इसका अनुवादक मुहम्मद इब्न इब्राहिम अलफा

---

5. What the persians brought into Arabic poetry was not a gradiose style, but a lively and graceful fancy, elegance of diction, depth and tenderness and rich store of ideas. —*Nicholson*.

जारी था। इसे लोग अरब का पहला ज्योतिषी मानते हैं। इसी भारतीय यात्री ने गणित की एक पुस्तक भारत से ले जाकर अरबों को अंकों का ज्ञान दिया। भारत की तरह अरबी साहित्य को ईरान ने भी प्रभावित किया। हाँ, ईरान ने अरब के केवल कला एवं साहित्य को ही अधिकाधिक प्रभावित किया। अरबी भाषा की सबसे पहली पुस्तक 'कलीला दमना' का अनुवाद पहलवी भाषा से इसी युग में किया गया। यह पुस्तक नौशेरवाँ के काल में भारत से ईरान में लायी गयी थी। अबतक चालीस भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद हो गया है। अरबी भाषा में इस पुस्तक का अनुवाद इब्नुल मुकफ्फा नामक विद्वान ने किया था। यह पुस्तक आज भी उपलब्ध है। यूनान की ग्रीक भाषा में लिखित पुस्तक भी इस काल में अरबी में अनूदित हुई। अनेक ग्रीक पाण्डुलिपियाँ रोम से यहाँ रशीद के काल में लायी गयी। खलीफा मामून ने अनुवाद का कार्य करने के लिये 'बेतुल हिकमत' नामक एक पुस्तकालय का निर्माण किया। जालीनूस, हिपोक्राप्स तथा बतलीमूस नामक विद्वानों की कृतियों का अनुवाद जल्द ही अरबी भाषा में कर दिया गया। इसी काल में अरस्तू की हरमन यूतिका, केटाग्रीज और फिजिया तथा प्लेटो की रिपब्लिक नामक पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ।

सरसविल अबू यहिया ने यूनान के गेलेन और हिपोक्रेटस की चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकों का अनुवाद किया। इसी लेखक ने टलिमी की "कुवाद्री पारती तुम" एवं "अलमाजिस्त' तथा यूक्लिड की "द एलिमेंट मेन्ट" नामक पुस्तकों का भी अनुवाद अरबी भाषा में किया। इन अनुवादों का संशोधन खलीफा हारून रशीद और मामून के काल में किया गया।

हुनैन इब्ने इसहाक इस युग का एक महान विद्वान था। नस्तूरी ईसाई होते हुए भी उसने यूनानी भाषा का ज्ञान अर्जित किया था। खलीफा मामून ने इसे अपने पुस्तकालय का प्रबन्धक नियुक्त किया था। उसके काल में सारे अनुवाद इसी प्रसिद्ध विद्वान ने किया। सुरयानी में उसने अधिकांश यूनानी पुस्तकों का अनुवाद किया। यूनानी भाषा से उसका पुत्र इसहाक उन्हें अरबी भाषा में अनुवाद करता था। अपने जीवन-काल में हुनैन ने जिन प्रसिद्ध पुस्तकों का अनुवाद किया उनके नाम हैं अरस्तू की हिरमन यूतिका, केटाग्रीज, फिजिक्स तथा मेगना और अफलातून की रिपब्लिक। 'तौरत' (Old Testament) का भी अनुवाद इसी विद्वान ने इसी काल में किया। ऐसी किंवदन्ती है कि इन पुस्तकों के भार के बराबर खलीफा मामून ने हुनैन को स्वर्ण दिया था। चिकित्साशास्त्र का इन विद्वान ने गहरा अध्ययन किया था और खलीफा मुत्तावक्किल का वह निजी चिकित्सक नियुक्त किया गया था।

साबित इब्ने कुर्रा इस युग का प्रतिभावली विद्वान था। वाल्टेयर की तरह वह अनेक विषयों का विद्वान था। पर चिकित्साशास्त्र, गणित, ज्योतिष और दर्शन में उसकी विशेष अभिरुचि थी। हर्रान में खलीफा मुत्तावक्किल ने दर्शन तथा चिकित्साशास्त्र के अध्ययन के लिये जिस संस्था का निर्माण किया था, उसके कुर्रा ने विशेष कार्य किया। यूनान की गणित एवं ज्योतिष-संबंधी पुस्तकों का उसने अरबी भाषा में अनुवाद किया। इन पुस्तकों में आर्कमिडिस तथा अपोलोनियस की पुस्तकें भी थीं।

अलबत्तानी महान ज्योतिषी था। पर उसने अनुवाद करने की अपेक्षा ज्यतिषशास्त्र पर मौलिक पुस्तक लिखना श्रेयस्कर समझा।

हज्जाज इब्ने युसूफ ने गणित एवं ज्योतिष-संबंधी पुस्तकों का अनुवाद अरबी भाषा में किया।

कस्ता इब्ने लुका ने ज्योतिष तथा दर्शन-सम्बन्धी पुस्तकों का अनुवाद किया। अपने जीवन-काल में इस विद्वान ने चौंतीस पुस्तकों की रचना की। अनुवादकों में यहिया इब्ने अदी, अबू अली ईसा और इब्ने जरआ के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

स्पष्ट है कि इस काल में साहित्य में काव्य एवं अनुवाद की काफी उन्नति हुई। एक विद्वान ने यह ठीक ही लिखा है कि "जब यूरोप यूनान के दर्शन तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं से अनभिज्ञ था उस समय खलीफा हारून रशीद और मामून यूनानी, ईरानी तथा भारतीय दर्शन एवं अन्य विधाओं के अध्ययन तथा प्रोत्साहन में व्यस्त थे और अरबों ने विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में अनुवादों के द्वारा असीम उन्नति प्राप्त कर ली थी।"

इन दो क्षेत्रों के अतिरिक्त साहित्य के अन्य क्षेत्र भी विकसित हुए। इस काल में तुकात्मक गद्य का निर्माण हुआ और कथात्मक नाटक का साहित्य विकसित हुआ। ऐसे नाटकों में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक अवस्था का खुलकर वर्णन किया गया। इसी प्रकार धार्मिक साहित्य के विकास पर और भी ध्यान दिया गया। इमाम मालिक ने मुवत्ता लिखकर इस क्षेत्र में अधिक नाम कमाया। मुहम्मद साहब के हदीस पर 'बुखारी' तथा 'मुस्लिम' नामक साहित्यकारों ने ग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्होंने 'सही' (Sahin) लिखकर हदीस का महत्व बढ़ाया। सुन्नत के छः ग्रन्थों को मिलाकर साहित्य का सृजन किया गया जिसका नाम था 'अल-कुतुब-अल-सित्ता'। इसी प्रकार सूफी साहित्य का भी सृजन किया गया। सूफीवाद पर मुख्यतः 'कुतुल-कुलुब' 'तबाकातुल सूफिया' आदि नामक पुस्तकें लिखी गयीं। अध्यात्मवाद पर गजाली नामक विद्वान ने कलम उठायी। शहरस्ता नामक विद्वान भी सूफीवाद का एक महान विद्वान था। शब्दकोष, व्याकरण एवं भाषा विज्ञान का भी इस काल में उत्तरोत्तर विकास हुआ। खलील बिन अहमद ने अरबी शब्दकोष की रचना कर अरबी भाषा विज्ञान को धनी बनाया। 'सिवादही' नामक लेखक ने अरबी भाषा में एक व्याकरण की रचना की। कामिल, अल-उवेदा आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ भी इसी काल में लिखे गये। कूफा स्कूल में अल-किसाई, अलफरी, अल-मुफज्जल, सालिब आदि ग्रन्थों का सृजन किया गया। अदब (Belles Letters) में मुकफ्फा ने पहलवी भाषा में अनेक ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया। अदब की रचना अल-जाहिज़ (868-69) के काल में प्रारम्भ हुई जो बदी अल जमान-अल हमदनी (969-1008), तालिबी (961-1038) और अल-हरीरी (1054-1188) के काल में उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। बदी अल-जम नि मकाम (Maqamah) की रचना की और जाहिज ने किताबुल बयान बल-तबईन की।

धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र

इस काल मे अनेक धार्मिक ग्रन्थ लिख गये। मुवत्ता तथा हादीस के ग्रन्थों की चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। इस क्षत्र में अध्यात्मविधा और धर्मशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इसी से संबंधित आचारशास्त्र का भी विकास हुआ। मुस्लिम कानून पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। कुरान तथा परम्परा को आधार बनाकर आचारशास्त्र का प्रणयन किया गया। कर्त्तव्य (फर्ज), प्रशंसनीय कार्य (मुस्ताहब्ब), अच्छे कार्य (जायज), वर्जित कार्य (हराम) आदि पर इस युग में प्रकाश डाला गया। आचारशास्त्र में नैतिक आचरण, अच्छी भावना एवं शिष्टाचार (अदब) का भी वर्णन किया गया। लुकमान, मुकफ्फा मलिक, तथा इब्न-अनास इस क्षेत्र में कमाल किये। मुस्लिम कानून की रचना करते समय अरबी विद्वान विदेशी प्रभाव से भी प्रभावित हुए। नव मुसलमानों की जरूरतों के मुताबिक अरबी भाषा में व्याकरण के जरिये सुधार भी लाया गया। अरस्तू के दर्शन का अनुवाद हुनैन ने किया जिसे 'कताब अल-अखलाक' कहा गया। हुनैन के पुत्र ईसाक ने नैतिक दर्शन (इल्म अल अखलाक) का विकास किया। मिस्कवा ने 'तहदीब अल-अखलाक' की रचना कर आचारशास्त्र-संबंधी एक उत्कृष्ट कृति प्रदान की।

इतिहास

अब्बासी-काल के पूर्व अरब में इतिहास लिखने की परम्परा प्रारम्भ हुई थी। हाँ, अब्बासी खलीफाओं के काल से क्रमिक इतिहास लिखने की परम्परा प्रारम्भ हुई। इतिहास को तिथिबद्ध करने का रिवाज भी इसी काल से प्रारम्भ हुआ। उमैय्या काल की ऐतिहासिक कृतियाँ कम ही संख्या में उपलब्ध हैं। धार्मिक रिवाज, मौलिक कथायें एवं वीर पुरुषों के कारनामें इतिहास के विषय-वस्तु थे। इसके अतिरिक्त उमैय्याकालीन इतिहास मुहम्मद साहब के जीवन के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटता रहा। इस्लाम के उदय के पूर्व कूफा निवासी हिशाम-अल-कालबी एक महान इतिहासकार था। अल-फिहरिस्त में ऐसा उल्लेख मिलता है कि हिशाम ने 129 पुस्तकों की रचना की थी जिनमें से केवल तीन उपलब्ध हैं। इन तीनों में सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक 'किताब अल-असनाम' है।

धार्मिक रिवाजों को आधार बनाकर पहली बार मुहम्मद की पहली जीवनी लिखी गयी। मुहम्मद का जीवन-चरित्र लिखने वाला मदीना-निवासी मुहम्मद इब्न ईसाक था। ईसाक द्वारा लिखित मुहम्मद की यह इब्न हिशाम द्वारा विस्तृत की गयी। ईसाक की मृत्यु बगदाद में 767 ई0 में और हिशाम की मृत्यु कैरो में 834 ई० में हुई थी।

मुहम्मद की जीवनी के बाद प्रारम्भिक युद्धों एवं इस्लाम के प्रसार हेतु लड़े गये अभियानों पर इतिहास लिखे गये। इसी विषय वस्तु को आधार बनाकर मूसा इब्न अकबा तथा अल-वाकीदो ने "मग्जी" (Maghazi) नामक इतिहास-ग्रन्थ लिखा। दोनों मदीना के निवासी थे। अल-वाकीदी का सेक्रेटरी इब्न साद भी इतिहासज्ञ था जिसने अपनी पुस्तक "अल तबीयून" में पैगम्बर मुहम्मद, उनके मित्रों एवं उत्तराधिकारियों का उल्लेख किया। इसकी मृत्यु बगदाद में 845 ई० हुई थी।

मुस्लिम विजय पर दो अन्य प्रसिद्ध इतिहासकारों ने अपनी लेखनी उठायी। उनके नाम इब्न अब्दुल हकीम और अहमद इब्न यहिया अल-बालादुरी है। पहला मिस्र का निवासी था जिसने 'फतुह मिस्र वा-अखबारुह' की रचना की। दूसरा ईरान का निवासी था जिसने 'फुल अल-बुलदान' तथा 'अनसाब अल-असरफ' नामक दो प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी। अनेक युद्ध-कहानियों को जोड़कर बालादुरी ने पहली बार एक क्रमिक युद्ध का इतिहास लिखा।

अब्बासी काल में इतिहास लिखने की पृष्ठभूमि का निर्माण उपर्युक्त इतिहासकारों के द्वारा हो गया था। इस काल के इतिहास पर ईरानी इतिहास का काफी प्रभाव पड़ा। पहलवी भाषा में लिखी पुस्तक, जिसका नाम 'खुदेनामा' (The book of kings) था का अनुवाद अरबी भाषा में इब्न-अल मुकफ्फा नामक इतिहासकार ने किया। जाहशीयारी ने 'हजार अफसाना' लिखा। इस काल के प्रसिद्ध इतिहासकारों में कुतैबा का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। इसे लोग मुहम्मद इब्न मुस्लिम अलब्दीनावरी के नाम से जानते थे। अपनी पुस्तक 'किताब अल-मारीफ' की रचना करने बाद 889 ई० में यह प्रसिद्ध इतिहासकार बगदाद में चल बसा। अबू-हनीफ अहमद इब्न दाऊद अल-दीनावर नामक इतिहासकार इब्न कुतैबा का समकालीन था जिसने इसबहान और दीनावर में रहकर काफी नाम पैदा किया। इसकी प्रधान कृति का नाम -अल-अखबार अल-तिवाल' है। इब्न-वादी अल-याकूबी इस युग का तीसरा प्रसिद्ध इतिहासकार था जिसने विश्व का इतिहास लिखा। यह भूगोलशास्त्री भी था। इसबहान का एक अन्य इतिहासकार हमजा अल-इसफहानी था जिसकी मृत्यु 97! ई० में हुई में हुई। ईरानी इतिहासकारों में मिस्कवे का भी नाम लिया जा सकता है। इस युग के प्रसिद्ध इतिहासकारों में उसकी गिनती की जाती है। यह दर्शनशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र का भी प्रकाण्ड विद्वान था।

अल-तबारी (8 8-923) इस काल का रत्न है। यह तबरिस्तान का निवासी था और इसका पूरा नाम अबू जफर मुहम्मद इब्न जारीर अल तबारी था। इसने विस्तृत एवं उचित इतिहास का प्रणयन किया। इसकी प्रसिद्ध कृति का नाम 'तारीख अल-रसूल व-अल मुलाक है। उसने कुरान पर भी अपनी अलोचनात्मक कृति प्रस्तुत की। इसकी कृतियों में हिजरा के अनुसार क्रमिक इतिहास लिखने की परम्परा की झलक मिली। इसकी कृतियों के आधार पर ही भविष्य के इतिहासकार अपनी पुस्तकों की रचना किये। भ्रमण तथा पूछताछ के द्वारा तबारी ने तिथियों एवं घटनाओ का ज्ञान प्राप्त किया। बगदाद के शेखों से भी उसने तिथियों की जानकारी प्राप्त की। इस सिलसिले में उसने ईराक, ईरान, सीरिया तथा मिस्र की यात्रा की। कहा जाता है कि प्रतिदिन चालीस पृष्ठ लिखा करता था।

अल-मसूदी, जिसका पूरा नाम अबू-अल-हसन अली अल-मसूदी था, इस काल का प्रसिद्ध इतिहासकार था। इसे अरब का हेरोडोटस' कहा जाता है। इसने इतिहास को अध्यायों बाँटकर कथाओं के लिखने की परिपाटी चलायी। वह वर्ष की घटनाओं को लिखने की अपेक्षा वंशों, राजओं और लोगों की कथायें लिखता था। इसी शैली एवं परिपाटी को इब्न खाल्दून तथा अन्य इतिहासकारों ने

अपनाया। ज्ञान एवं ऐतिहासिक तथ्यों की खोज में उसने अपनी जन्मभूमि बगदाद का परित्याग कर एशिया के देशों तथा जंजीवार की भी यात्रा की। सीरिया तथा मिस्र में बैठकर उसने एक महान शब्दकोष 'मुरुज-अल दहाव वा-मादीन अलजोहर' का निर्माण किया। अपनी मृत्यु के पूर्व (फुस्तात, 956 ई०) उसने अपने इतिहास के विचारों का संक्षेपीकरण किया। उसने प्रकृति का अध्ययन करके खनिज पदार्थों, ग्रहों एवं जानवरों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया और तत्संबंधी 'तनवी व अल-इशरफ' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

अल-तवारी तथा अल-मसूदी के काल में अरब का इतिहास लेखन कार्य अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। 1030 ई० से मिरकवा के काल से इसका पतन होना प्रारम्भ हुआ। 'इज्ज अल-दीन-इब्न-अल-आदीर' (1160-1234) ने अपनी पुस्तक 'अल-कामिल फी अल तारीख में तवारो के कार्य का वर्णन किया और 1231 ई० तक का क्रमिक इतिहास लिखा। आदीर की दूसरी महान कृति का नाम उस्द अल-गबा (Usd all Ghabah) है जो पाँच भागों में है। इसमें 7500 प्रधान मुसलमानों के जीवन चरित हैं। सिबत इब्न अल-जावजी आदीर का समकालीन था जिसने 'मिरात अल जमान फी तारीख अल अध्याय' की रचना की। उसमें सृष्टि से लेकर 1256 ई० तक का इतिहास है। इब्न खाल्लिकन भी इसी युग की विभूति है। उसने अरब राष्ट्र का शब्दकोष लिखा।

अरब के मुस्लिम विद्वान ज्ञान के प्रत्येक शाखा का विस्तार किये। मानव का इतिहास, दर्शन, गणित, भूगोल, इतिहास आदि विषयों के ज्ञाता प्रधानतः मुसलमान ही है।[1]

अरबों में प्रारम्भ से ही भूगोल के प्रति अभिरुचि विद्यमान थी। मक्का-मदीना की धर्मयात्रा करने के कारण भूगोल में अभिरुचि दिखलाना था। इसके अतिरिक्त व्यापार के कारण भी वे विभिन्न देशों का ज्ञान रखते थे। सातवीं और नौवीं सदी के मध्य मुस्लिम व्यापारी सुदूर देशों यथा-चीन, हिन्दुस्तान, ईरान, रूस, अफ्रीका आदि देशों से व्यापार करते थे और विदेशों का विवरण वे रुचि से पढ़ते और सुनते थे। सुलेमान अल-ताजीर नामक व्यापारी ने इस काल में पहली बार चीन एवं भारत-यात्रा का विवरण अरबी भाषा में दिया। इसके बाद ऐसी ही अनेक कहानियाँ एवं विवरण लिखे जाने लगे। सिन्दवाद की यात्राओं का आधार व्यापारियों का यही व्यापार था। रूस का यात्रा-विवरण पहली बार अहमद इब्न फलदान इब्ने हम्माद ने लिखा। हम्माद खलीफा मुक्तादीर 921 ई० में बुलोरिया के राजा के दरबार में भेजा गया था। उसके विवरण की पुष्टि याकूत ने अपनी यात्रा सम्बन्धी पुस्तक 'मुजाम अल-बुलदान' में की है।

---

1. The main task of mankind was accomplished by Muslims. The greatest Philosopher, al-Farabi was a Muslim; the greatest mathematicians, Abu Kamil and Ibrahim ibn Sinan, were muslims; the greatest geographer and encyclopaedist, al-Masadi, was a Muslim the greatest historin al-Talari, was still a Muslim.

—*Sarton Introduction to the History of Science, vol. I. P. 624*

सीरिया निवासी याकूत इब्न इशाक अल-किन्दी ने टलिमो के भूगोल का अरबी भाषा में अनुवाद किया। आगे चलकर ताबित इब्ने कूर्रा ने भी इसका पुनः अनुवाद किया। इसी काल में ख्वारिज्मी ने टलिमी के भूगोल के अनुवाद के आधार पर 'सूरत अल अर्द' (Image of the Earth) लिखा। इस पुस्तक में पृथ्वी का चित्र भी बनाया गया था। यह ज्ञान उन्हें हिन्दुस्तान से हासिल हुआ था तथा पृथ्वी का एक केन्द्र बिन्दु भारत में उज्जैन को माना गया था। ख्वारिज्मी की पुस्तक के आधार पर भविष्य में भूगोलशास्त्रियों ने भौगोलिक पुस्तकों का प्रणयन करना प्रारम्भ किया। मामून की सहायता से 69 भूगोलशास्त्रियों ने स्वर्ग एवं संसार का नक्शा बनाया। अल-मसूदी ने इस नक्शे को अपने व्यवहार में लाया। चौदहवीं सदी तक ख्वारिज्मी के भूगोल ने विद्वानों को प्रभावित किया। कालान्तर में इसका विस्तार अबू-अल-फिदा ने किया। इसी काल में ईरानी विद्वान इब्ने खुरदावीह ने 'किताबुल ममालिक वल ममालिक' की रचना की। इसका पहला संस्करण सन् 846 में निकला। इस पुस्तक का प्रयोग इब्ने अल-फाकी, इब्ने हवकाल, अल मकदीसी आदि विद्वानों ने किया। 891-92 ई० में अल-याकूबी ने 'किताबुल-बुलदान' की रचना की। आरमेनिया तथा खुरासान इस विज्ञान के गढ़ थे जहाँ रहकर उसने भूगोल लिखा। 928 ई० में कुदमा ने 'अल-खराज' की रचना की। यह बगदाद में लगान विभाग में एकाउन्टेन्ट के पद पर नियुक्त था। यह ईसाई धर्म का समर्थक था, लेकिन इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। अरब का दूसरा उल्लेखनीय भूगोलशास्त्री इब्ने रूस्ता था जिसने 903 ई० में अल अलग अल नफीसा की रचना की। इसी वर्ष हमदानी ने अपनी पुस्तक (किताबुल बुलदान) की रचना समाप्त की थी।

क्रमिक भूगोल की रचना इस्तखरी, हवकल और मकदीसी के काल से की जाने लगी। 950 ई० तक मुस्तखरी की प्रसिद्धि काफी फैल गयी थी। उसने प्रसिद्ध पुस्तक 'मसालीकुल ममालिक' की रचना की जिसमें प्रत्येक देश के रंगीन नक्शे भी थे। हवकल ने इन नक्शों का संशोधन किया और आगे चलकर इस पुस्तक में परिवर्त्तन लाकर 'मसालीकुल ममालिक', के नाम से पुनः प्रकाशित किया। इसी काल का एक विद्वान मकदोसी था जो जेरुसलेम का निवासी था। स्पेन, सिजिस्तान और भारत को छोड़कर इस विद्वान ने सारे मुस्लिम देशों की यात्रा की थी। बीस साल की यात्रा के उपरान्त उसने अपनी अमर कृति 'अहसानुल-तकसीम फी मारीफातुल अकलीम' को जन्म दिया।

इसी काल का एक अन्य प्रसिद्ध भूगोलशास्त्री एवं पुरातत्ववेत्ता था यमन-निवासी अल-हसन इब्न अहमद अल-हमदानी। उसकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ—'अल-इकलील' और 'सिफत जजीरात अल-अरब' इस्लाम के उदय के पूर्व एवं पश्चात-कालीन स्थितियों एवं स्थलों का वर्णन करती हैं। अब्बासी काल के अन्तिम वर्षों में पूर्वी मुस्लिम जगत का सबसे बड़ा भूगोलशास्त्री याकूत इब्न-अब्दुल्ला था जो अल-हमावी (1179-1229) में पैदा हुआ था और जिसने 'मुजाम अल-बुलदान' नामक भौगोलिक शब्दकोष का निर्माण किया। इसकी एक अन्य कृति का नाम 'मुजाम अल-अदब' था जो साहित्यिक शब्दकोष था। एशिया माइनर के हमा में ईसाई परिवार में यह विद्वान पैदा हुआ था जिसे एक व्यापारी ने बगदाद लाया। उसी व्यापारी के संरक्षण में रहकर याकूत ने शिक्षा प्राप्त की और अरब की

नागरिकता भी पायी। अपने संरक्षक की जीविका चलाने के लिए याकूत ने अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि बेचने के लिये अनेक जगहों का भ्रमण किया। स्पष्ट है कि अब्बासी काल में भूगोल का विकास काफी हुआ। अरब से ही यूरोप के लोग कलेण्डर और तारों की तालिका बनाने का ज्ञान प्राप्त किये।

दर्शनशास्त्र

इसी काल में दर्शन का विकास भी अन्य विषयों से कम नहीं हुआ। उनके दर्शन पर यूनान तथा हिन्दुस्तान के दर्शनों का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने यूनानी 'फिलासफी' शब्द को 'फलासफा' के रूप में ग्रहण किया। अरबों के अनुसार दर्शन वह विज्ञान है जो किसी वस्तु के वास्तविक कारणों पर प्रकाश डालता है।

अरब के प्रारम्भिक दार्शनिकों में अल-किन्दी, अल-फराबी तथा अल-कूफा के नाम उल्लेखनीय हैं। नौवीं सदी के मध्य में अल-किन्दी का जन्म हुआ था जिसने बगदाद में रहकर अपने दार्शनिक विचारों को फैलाया। वह अरस्तु के विचारों से काफी प्रभावित था। उसने अपने दर्शन में अरस्तू तथा प्लेटो के दर्शन में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। वह दार्शनिक से अधिक ज्योतिषाचार्य, चिकित्सक, नेत्र-परीक्षक तथा रसायनशास्त्री था। वह संगीत विद्या भी जानता था और इस पर उसने तीन पुस्तकों की रचना भी की। उसकी दो कृतियाँ बहुचर्चित हैं—फसल फुल-अरब और फराबी।

अरस्तू तथा प्लेटों के दर्शन के साथ अरब का दर्शन मिलाकर जिस नये दर्शन का सृजन अल-किन्दी ने किया था, उसका विकास अल-फराबी ने अपने काल में किया। यह प्रसिद्ध दार्शनिक ट्रान्जोक्सियाना में पैदा हुआ था और बगदाद के एक ईसाई गुरु की सेवा में शिक्षा प्राप्त की थी। 950 ई० में अस्सी वर्ष की उम्र में बगदाद में इसकी मृत्यु हुई। इसके दर्शन में अरब, अरस्तू तथा प्लेटो के विचारों का सामंजस्य कायम हुआ और अपनी विद्वता के कारण वह 'अल-मुअल्लिम-अल-थानो' का विरुद्ध प्राप्त किया। उसने दर्शन, मनोविज्ञान एवं अध्यात्मवाद पर अनेक पुस्तकों की रचना की। उसकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम हैं—'रिसालात फुसुस अल-हिकाम' और 'रिसालात फी अरा 'अहल अल-मदीना अल-फदीला'। अपनी दूसरी कृति में वह प्लेटो की 'रिपब्लिक' नामक पुस्तक से अधिक प्रभावित था। उस पर अरस्तू की 'पोलिटिक्स' की भी छाप पड़ी थी।

फराबी की अन्य कृतियाँ यह बतलाती हैं कि वह चिकित्साशास्त्र, गणित संगीत और विशेषकर सारंगी बजाने की कला में भी निपुण था। संगीत-सिद्धान्त देने वाले सभी महान विद्वानों में फराबी की भी गिनती होती है। उसकी एक कृति 'किताब अल-मुसीकी अल-कबीर' संगीत विद्या के सिद्धान्तों की व्याख्या करती है। बाँसुरी बजाने में वह इतना निपुण था कि वह 'बेहोश व्यक्ति को हँसा सकता था, उसे रुला सकता था और लोगों को गहरी नीन्द में सुला सकता था।

इब्ने सीना एक अन्य दार्शनिक था जिसने अरबी भाषा में संगीत पर ग्रन्थ की रचना की। अल-फराबी के दार्शनिक विचारों का उस युवा दार्शनिक पर गहरा प्रभाव पड़ा। अगर महान दार्शनिक फराबी ने दार्शनिक विज्ञान का स्तर ऊँचा

किया तो इब्ने सीना ने उसे निपुणता एवं उपयोगिता प्रदान की। उनकी ऊँचाई तक अन्य मुस्लिम नहीं पहुँच सके। अरब में 'इलवान अल-सफा' (The brethren of sincetity) नामक एक संस्था का जन्म हुआ था जिसके सदस्य दर्शन तथा धर्म की चर्चा किये थे। इस संस्था के चलते भी बगदाद में दर्शन का काफी विकास हुआ।

विज्ञान

अब्बासी काल अपनी वैज्ञानिक प्रगति के लिये भी प्रसिद्ध है। चिकित्साशास्त्र, खगोलशास्त्र और रसायनशास्त्र के इस युग में विशेष प्रगति हुई। प्रो० हिट्टी ने लिखा है कि यूनान और ईरान से प्राप्त ज्ञानराशि के अनुवाद अरब के विद्वान सदियों तक करते रहे और पुनः ये ज्ञान यूरोपीय देशों में फैले। मध्यकालीन यूरोप के वैज्ञानिकों को अरब के विज्ञान ने अधिकाधिक प्रभावित किया।

वैज्ञानिक विकास के पहलू में सर्वप्रथम हम चिकित्साशास्त्र को लें। प्रारम्भ से ही इस्लाम में चिकित्सा और औषधि को महत्ता दी गयी है। विश्व में सर्वप्रथम अरबों ने ही औषधियों की दूकानें खोली और औषधि बनाने की शिक्षा देने के लिये शिक्षण संस्थानों का निर्माण किया। अरब में ही पहली बार औषधिशास्त्र की शब्दावली तैयार की गयी। बिना जाँच किये एवं परीक्षा लिये कोई भी व्यक्ति चिकित्सक नहीं हो सकता था।

ईरान के आदर्शों पर खलीफा हारुन रशीद ने अरब में चिकित्सालय का निर्माण किया और इसके उपरांत अनेक चिकित्सालय खोले जाने लगे। चल चिकित्सालयों में चिकित्सा संबंधी पुस्तकों के रखने की व्यवस्था की गयी। खलीफा हारुन रशीद द्वारा खोले गये चिकित्सालय का नाम 'बिमारिस्तान' था।

इस काल के प्रमुख चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थकार इब्न सीना तथा अल-राजी थे। पहला चिकित्साकोष का अनुवादिक था। उसकी पुस्तक का नाम 'कानून' है। इस विद्वान की इस कृति को "चिकित्सा जगत का बाइबिल" कहा गया। इसने नेत्र रोग का निरीक्षण किया था। सीना महान दार्शनिक और कवि भी था।

अल-राजी (855-922) संभवतः इस युग का सबसे बड़ा चिकित्सक था और साथ-ही-साथ एक प्रसिद्ध लेखक भी।[2] बगदाद के चिकित्सालय का यह प्रधान चिकित्सक था। उसने शल्यशास्त्र में बत्ती (Seton) का आविष्कार किया था। उसकी प्रमुख पुस्तक का नाम 'किताबुल असरार' है। चेचक और खसरा के कारणों को ढूढ़ निकालने में इस चिकित्सक को सफलता मिली थी। इसी विषय पर 'अल हावी' नामक पुस्तक की रचना की गयी जिसका प्रचार सदियों तक यूरोप में होता रहा।

---

1. No Muslim never reahed in the philosophical Sciences the same rank as al-Farbi; and it was by the study of his writings and by the imitation of his style that ibn-sina attained proficiency and rendered his work as usful.—*Ibn Khallikan, p 49*

2. Al-Razi was probably the greatest and most orignal of all the Muslim Physicians, and one of the most prolific as an auther.
—*Edward G. Browne; Arabian Medicine, p 44*

अल-मजूसी भी इस युग का एक महान लेखक था जिसने 'किताबुल मालाकी' की रचना कर चिकित्साशास्त्र को आगे बढ़ाया ।

अली ने, जो मुतामीद का चिकित्सक था, 'ताथकिरातुल कहालीन' की रचना की जिसमें उसने 130 नेत्र-रोगों का वर्णन किया ।

इस काल का एक अन्य चिकित्सक था इब्न जजला । इसकी कृति का नाम 'तकवी मुल अवदान फी तदकेरुल इन्सान' है । 1532 ई० में इस पुस्तक का अनुवाद लेटिन भाषा में किया गया ।

याकूब इब्न अरबी हिजाम इस युग का अंतिम चिकित्सक था जो खलीफा मुतादीद के अस्तबल का प्रधान था । उसने घोड़ों पर एक पुस्तक लिखी जो अरब की अपने ढंग की कृति है । इस ग्रन्थ का नाम 'फुरीसिया वा शिवातुल घायल' है ।

औषधिशास्त्र का सर्व विख्यात लेखक इब्न सेना था । उसके औषधिकोश को 'कानून' नाम से अनुवाद किया गया जिसका प्रचार 17वीं शताब्दी तक यूरोप में होता रहा । इसे 'मेडिकल बाईबिल' की मान्यता प्राप्त हुई थी । इस चिकित्सक विद्वान ने नेत्र रोगों का अन्वेषण किया था ।

अरबों की प्रधान देन रसायनशास्त्र के क्षेत्र में भी है । अरब के वैज्ञानिकों ने जहर, अंजन, पृथ्वी के अन्दर की धातु बनने की क्रिया का ज्ञान, गन्धक, पारा, मोमबत्ती, शीशा, लोहा आदि के संबंध में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त किया । इसी काल में अरब के वैज्ञानिकों ने जलघड़ी और पारा से चलने वाली घड़ी का आविष्कार किया । इसी युग में विभिन्न प्रकार की मशीनों एवं खिलौनों का ईजाद किया गया । कृषि के लिये सिंचाई के नये-नये तरीकों तथा अन्य हथियारों एवं साधनों के आविष्कार भी अब्बासी युगीन वैज्ञानिकों ने किया । फूलों एवं अन्य सुगंधित चीजों से निर्मित अर्क, शरबत, गुलाब आदि भी बनाने की कला सीख ली गयी । अरब के मुसलमानों से ही यूरोप के लोग गन्ना तथा चावल की उत्पत्ति, सन्तरा, लेमन, अनार, कैसर, कॉफी आदि का ज्ञान प्राप्त किये ।

अरब के रसायन विज्ञान का जन्मदाता 'जाबीर इब्न हय्यान' था जो कूपा का निवासी था । राजी की तरह रसायनशास्त्र के क्षेत्र में हय्यान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है । उसने यह सिद्धान्त दिया कि टिन, शीशा, लोहा आदि की रसायन-विधि के द्वारा स्वर्ण और चाँदी में परिवर्तित किये जा सकते हैं । इसमें सफलता पाने के लिये उसने काफी मिहनत की । उसने रसायनशास्त्र के सिद्धान्त एवं प्रयोग, दोनों पक्षों पर जोर दिया । उसकी मृत्यु के दो सौ वर्षों के उपरान्त जब कूफा में गलियों का निर्माण किया जा रहा था तब कहीं उसकी प्रयोगशाला मिली जिसमें स्वर्ण की एक छड़ मिली । उसकी लिखित पाँच पुस्तकें अभी भी प्राप्त हैं जिनमें निम्नलिखित तीन प्रकाशित हैं—किताबुल रहमा (The Book of Mercy) किताबुल ताजमी (The Book of Concentration) और अल-जीवाक अल-शारको (The Book of Eastern Mercury) हय्यान ने अनेक सिद्धान्तों की नींव डाली जिनमें दो प्रधान हैं— कैलशियम का सिद्धान्त तथा घटाव का सिद्धान्त । इन्हीं दोनों सिद्धान्तों पर उसने वाष्पीकरण, रवाकरण, पिघलने की क्रिया आदि का ज्ञान दिया । हय्याव के मुख्य शिष्यों में सुधारा और इरक्की कासिम का नाम प्रसिद्ध हैं ।

प्रकृति-विज्ञान का क्षेत्र भी इस युग में वैज्ञानिकों द्वारा काफी विकसित हुआ। स्पेन के विद्वान इस क्षेत्र में आगे थे। जीव विज्ञान एवं मानवशास्त्र को उच्च स्तर प्रदान करने में इब्न जाहिर नामक वैज्ञानिक का नाम लिया जाता है। उसका पुस्तक 'आल हैवान' काफी मशहूर है। विकासवादी सिद्धान्त तथा जानवर-मनोविज्ञान की चर्चा इस पुस्तक में अच्छे ढंग से की गयी है। अल-दामोरी भी इस काल का प्रकृति-विज्ञान का विद्वान था जिसकी विद्वता से प्रभावित होकर खलीफा मुतावक्किल ने उसे अपने पुत्रों के लिये शिक्षक के पद पर नियुक्त कर लिया था।

इस युग में खनिज पदार्थों के संबंध में भी ज्ञान प्राप्त किया गया। पर इस क्षेत्र में वे अधिक विकास नहीं कर सके। हाँ, सुन्दर प्रस्तर-खण्डों तथा धातुओं का संग्रह करने में वे अधिक रुचि दिखलाते थे। इन प्रस्तरों एवं धातुओं पर ग्रन्थों की रचना की गयी। अल-हसीब ने 'अल-कातीब' की रचना की और अल तिफाशी ने 'अजहर अल अफकार फी जवाहरुल' की रचना की। अल-बीरुनि अठारह प्रकार के पत्थरों एवं धातुओं को पहचानता था।

अब्बासी काल ज्योतिषशास्त्र तथा गणित के विकास का भी काल था। गणित एवं ज्योतिष की अनेक पुस्तकों का अनुवाद अरबों ने यूनान एवं हिन्दुस्तान से लाकर किया था और इस कारण इन दोनों क्षेत्रों में बौद्धिक क्रान्ति आ गयी थी। अनुदित पुस्तकों ने इन क्षेत्रों को काफी विकसित किया। अरस्तू, प्लेटो, यूक्लिड, बैल ने, बतलीनूस आदि की कृतियों के अनुवाद ने अरबों को ज्योतिष एवं गणित का ज्ञान दिया। खगोलशास्त्र भी पीछे नहीं रहा। अब्बासी खलीफाओं ने वेधशालाओं की स्थापना की। परकार, धूप घड़ी, धरातल की ऊँचाई, नापने के यन्त्र, पृथ्वी के मानचित्र आदि का निर्माण अब अरबी वैज्ञानिकों ने कर लिया। इसी काल में पृथ्वी को मध्याह्न रेखा के अंश की लम्बाई शुद्ध रूप में नापी गयी। अल ख्वारिज्मी नाप-जोख के लिये इस काल में प्रसिद्ध था। वह नक्षत्र विज्ञान का भी ज्ञाता था। गणित तथा बीजगणित संबंधी पुस्तकें लिखी गयीं। ख्वारिज्मी की पुस्तक 'हिसब अल-जबर व अल मुकाबला' के द्वारा ही अरबी अंक बने जिन्हें यूरोपियनों ने सीखा। ये अंक 'अलगोरिज्त' कहलाये।

उमर अल-खैय्याम इस काल का एक प्रसिद्ध कवि, संगीतज्ञ और खगोलशास्त्री था। अब्बासी खलीफा के अधीनस्थ सलजुक शासक मलिक शाह ने वेधशाला के निर्माण में खैय्याम से सहायता ली थी। उसने एक उत्तम कैलेन्डर का निर्माण किया।

अलफुरगानी, अबू सहर तथा अल बतानी इसी युग के ज्योति प्राचार्य थे। फुरगानी ने मुतावक्किल की वेधशाला का निर्माण 861 ई० में अल-फुस्तात में किया। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक का नाम 'अल-मुदकहील इला इल्म हयातुल अफलाक' है जिसका निर्माण 1135 ई० में लैटिन भाषा में किया गया। अल-बतानी (877-918) अपनी कौम का सबसे बड़ा ज्योतिषशास्त्र था। उसने चन्द्र तथा अन्य ग्रहों को धुरी का ज्ञान दिया और यह बतलाया कि वर्ष में एक बार सूर्य-ग्रहण लगता है। इसकी पुस्तक 'अल जीजाल साबी' का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी किया गया।

शिक्षा और शिक्षण संस्था

ज्ञान की इस शाखाओं और विभिन्न विषयों का विकास शिक्षा की उत्तम अवस्था पर ही आधारित था। अब्बासी काल में शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओ के विकास की ओर शासकों एवं शिक्षकों ने काफी ध्यान दिया था।

अब्बासी खलीफाओं के पूर्व शिक्षा की विशेष उन्नति नहीं हुई थी। जाहिलिया काल में मक्का-मदीना के लोग न तो पढ़ना-लिखना जानते थे और न वे शिक्षा की कोई संगठित योजना ही तैयार किये है। मुहम्मद साहब के आने पर शिक्षा की उन्नति की ओर ध्यान दिया गया। मक्का एवं मदीना में अध्ययनशील व्यक्ति समूहों में दिखलायी पड़ने लगे और शिक्षा का विस्तार होने लगा। खिलाफते राशिदा के काल में मस्जिदों में शिक्षा देने का काम किया जाने लगा और बसरा, कूफा, दमिश्क आदि की मस्जिदें धीरे-धीरे मदरसो में परिणत हो गयीं। उमैय्या काल में इतिहास, तर्कशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि का अध्ययन किया जाने लगा।

अब्बासी काल में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। इस काल में मस्जिदों के अतिरिक्त अनेक मदरसे एवं कालेज भी देने का कार्य करते थे। शिक्षा के प्रधान केन्द्र बसरा और कूफा थे। कुछ वर्षों के बाद बगदाद भी प्रमुख केन्द्र बन गया। इस काल में भाषणकर्त्ता अपने व्याख्यान के लिये धन ग्रहण नहीं करते है। कहा जाता है कि काहिरा की मस्जिद में प्रतिदिन 5,000 व्यक्ति भाषण सुनने के लिये एकत्र होते थे।

अब्बासी खलीफाओं ने शिक्षा को जहाँ एक तरफ आश्रम प्रदान किया वहाँ दूसरी तरफ सार्वजनिक वाद-विवादों में अभिरुचि दिखलाकर विद्या का प्रचार भी किया। धर्म दर्शन, व्याकरण, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, ज्योतिष तथा ज्ञान के अन्य विषयों के अध्ययन के लिये विशेष शिक्षण संस्थओं का निर्माण किया गया। लेकिन अभी तक पाठ्यक्रम निर्धारित करने का प्रचलन नहीं था और नियमित शिक्षण पद्धति भी प्रचलन में नहीं आयी थीं।

समस्त अब्बासी खलिफाओं में हारुन रशीद ने शिक्षा के विकास एवं प्रचार में सर्वाधिक योगदान दिया। मस्जिदों की ओर से अध्यापकों और निर्धन छात्रों को आर्थिक सहायता दी जाती थी। उत्तम चरित्र वाले छात्र विशेष प्रमाण पत्र पाते थे। अध्यापकों एवं छात्रों के रहने के लिये मस्जिदों का कुछ भाग छोड़ दिया जाता था। हारुन तथा उसके पुत्रो ने अनेक मदरसों, पुस्तकालयों एवं वेधशालाओं का निर्माण कर उत्तरोत्तर विकास किया। जब शिक्षा का प्रचार होने लगा तब बगदाद तथा अरब के अन्य शहरों के धनी व्यक्ति भी शिक्षा की संस्थाओं के निर्माण के लिये धन का दान करने लगे। इस काल में शासकों, धनी व्यक्तियों एवं मन्त्रियों का यह रिवाज हो गया था कि वे विद्या को आश्रय दें, विज्ञान, दर्शन, धर्म आदि सिद्धान्तों पर वाद-विवाद करें और सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिये पुस्तकें को एकत्र करें।

मिस्र के विद्यार्थियों को खलीफा अल-अजीज ने अधिकाधिक सुविधायें दी। इसी प्रकार मामून ने एक मिश्रण-संस्था का निर्माण किया था जिसका नाम था बैअतल्कल-हिकमत। शिवालियों में केवल शिक्षा पाने की ही व्यवस्था नहीं थी,

प्रस्तुत अध्यापकों एवं शिक्षार्थियों के निवास करने तथा भोजन पाने की भी सुविधा थी। समाज का श्रेष्ठ और शिक्षित व्यक्ति ही पुस्तकालय का अध्यक्ष होता था। अल-अजीज ने इस युग के श्रेष्ठ इतिहासकार और दार्शनिक इब्ने मुसकुवा को अपने पुस्तकालय का अध्यक्ष नियुक्त किया था। अब्बासी राज्य के पुस्तकालय में प्राय: पुरुष वर्ग के लोग ही काम करते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि बगदाद के पुस्तकालय (दारुल-दृश्य) में एक स्त्री कर्मचारी के रूप में नियुक्त थी।

अब्बासी काल में अरब में तीन प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ प्रचलित थीं। प्रथम कोटि की संस्थाओं का निर्माण एवं संगठन खलिफाओं ने किया था। ऐसी संस्थाओं को राज्य ही खर्च देता था। द्वितीय कोटि की शिक्षण संस्था अमीरों द्वारा स्थापित की गयी थी और वे ही उसका खर्च जुटाते थे। तृतीय एवं अन्तिम प्रकार की संस्था जनता द्वारा निर्मित एवं संचालित थी।

शिक्षा के तीन स्तर थे—प्रारंभिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और वयस्कों की शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा (Suttab) प्राय: गृह पर ही शिशुओं को दी जाती थी। शिशु के बोलते ही उसे कुरान की पहली 'आयत' याद करायी जाती थी और जब वह छ: वर्ष का हो जाता था तब उसे नमाज पढ़ायी जाती थी। उसके बाद वह मस्जिदों में, जो पाठशाला का काम करती थीं, भेज दिया जाता था जहाँ नियमित रूप से प्रारम्भिक शिक्षा पाने लगता था। मस्जिदों में उसे कुरान की शिक्षा विस्तृत रूप से दी जाती थी। अध्ययन एवं लेखन दोनों कार्यों का वह अब धीरे-धीरे अभ्यास करता था। 1184 ई० में दमिश्क की यात्रा करते समय, इब्न जुबैर ने यह देखा कि बच्चों को लिखने का अभ्यास धार्मिक कविताओं से कराया जाता था। पाठों का स्मरण तथा लेखन के समय ही शिशुओं को अरबी व्याकरण, मुहम्मद के जीवन से संबंधित कहानियाँ, गणित और कविता के प्रारम्भिक सिद्धान्त आदि को पाठ पढ़ाये जाते थे। शिक्षा-प्रणाली में पाठों को कंठस्थ कराने पर विशेष बल दिया जाता था। विशेष योग्यता प्राप्त छात्र को ऊँट पर बैठकर बगदाद की गलियों में सार्वजनिक प्रदर्शन के लिये घुमाया जाता था तथा उस पर बादाम फेंके जाते थे। एक बार बादामों की चोट से एक छात्र की आँख घायल हो गयी।[1] अगर कोई छात्र कुरान के किसी अध्याय को कठस्थ कर लेता था तो उसे अवकाश भी दे दिया जाता था।

बालिकाओं के लिये भी शिक्षा की व्यवस्था थी, लेकिन लोग उन्हें पढ़ाना अच्छा नहीं समझते थे। वे मुख्य रूप से सूत काटा करती थी। धनी व्यक्ति अपने गृहों पर ही बालिकाओं को शिक्षा देने की व्यवस्था करते थे। गृहों पर पढ़ाने वाले शिक्षक को 'मुहाद्दिब' कहा जाता था। वे धर्म, राजनीति, साहित्य तथा कविता करने की कला का ज्ञान देते थे।

बच्चों को पढ़ने के लिये पीटना आवश्यक था। शिक्षक छड़ियाँ रखा करते थे जिनका 'प्रयोग' वे खलीफा के पुत्रों पर यदा-कदा किया करते थे।

प्राइमरी स्कूल का शिक्षक 'मुओल्लिम' कहा जाता था। समाज में इन्हें विशेष

1. K. A. Totawh; The Contribution of the Arabs to Education p. 17.

आदर प्राप्त नहीं था। इस स्तर के शिक्षक को लोग प्रायः मूर्ख ही समझते थे। यह कहा जाता था कि "शिशु ऐसे शिक्षकों, भेड़ चरानेवालों और औरतों के साथ उठने-बैठने वालों से परामर्श अथवा शिक्षा न लें।'[1] पर इसका मतलब यह नहीं है कि सारे शिक्षकों का निरादर किया जाता था। योग्य शिक्षक लोगों से सम्मान पाते थे। कुछ अध्यापकों ने शिक्षक-संघ की स्थापना कर ली थी और योग्य छात्रों को इस संघ से प्रमाण-पत्र दिये जाते थे। शिक्षा पाकर छात्र अपने शिक्षक के प्रति सम्मान व्यक्त करता था। अल-जारनुजी ने 1203 ई० में शिक्षा पर एक पुस्तक की रचना की जिसमें उसने अली के उद्गार को इस प्रकार व्यक्त किया है। मैं उनका गुलाम हूँ जिन्होंने मुझे एक शब्द का भी ज्ञान दिया है।"[2]

अब्बासी शासकों के काल में उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी थी। इसके लिये अरब में अनेक शिक्षालयों की स्थापना की गयी जहाँ धर्म, दर्शन, ज्योतिष, गणित, इतिहास आदि विषयों का अध्ययन किया जाने लगा। ऊँच शिक्षा की पढ़ाई के लिये इस काल की सर्वोत्कृष्ट संस्था थी 'अल-हिकमह' (The House of wisdom) जिसकी स्थापना अल मामून ने की थी। इस संस्था में केवल अध्ययन ही नहीं किया जाता था, प्रत्युत अनुवाद को काम भी किया जाता था। वेधशाला और सार्वजनिक पुस्तकालय के रहने से इस संस्था की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गयी थी। वेधशाला के माध्यम में ज्योतिष एवं नक्षत्र विद्या की पढ़ाई इस विद्यालय में होती थी।

इस संस्था के अतिरिक्त 'निजामिया' नाम की एक अन्य संस्था भी थी जिसका निर्माण 1065 ई० में निजामुल मुल्क ने की थी। सलजुक सुलतान आल्प आर्सलेन का निजामुल मुल्क वजीर था जो मलिक शाह के काल में भी वजीर के पद पर नियुक्त था। इस संस्था में छात्रों के शारीरिक संगठन पर अधिक बल दिया जाता था। उनके आवास भी इसमें बने हुए थे। अच्छे छात्रों को वजीफा दिया जाता था। इस संस्था का सारा खर्च सरकार चलाती थी। कहा जाता है कि कालान्तर में इस संस्था में बहा-अल-दीन एवं सलाह-अल-दीन नामक श्रेष्ठ अध्यापक जन्म लिये। कुरान तथा पौराणिक कविताओं के अध्ययन के लिये यह संस्था प्रसिद्ध थी। यूरोप की कुछ यूनिवर्सिटियाँ इसी संस्था के आधार पर बसायी गयी थीं। इस संस्था में अल-गजाली ने चार वर्षों (1091-95) तक प्रोफेसर का पद सुशोभित किया। इब्न जुबैर ने एक बार एक प्रोफेसर के व्याख्यान को विद्यार्थियों के साथ बैठकर सुना था। स्टेन पर खड़ा होकर प्रोफेसर भाषण करता था और स्टूल पर बैठकर छात्र सुनते थे। 1258 ई० तक सफलतापूर्वक यह संस्था काम करती रही और हुलागू के आक्रमण से नष्ट हो गयी। तैमूर ने जब 1393 ई० में बगदाद पर कब्जा कर लिया तब मुस्तानसीरिया के साथ निजामिया भी मिला दी गयी। मुस्तानसीरिया का निर्माण 1234 ई० में मुस्तानसीर ने किया था। इसमें स्नानागार, पाठशाला, चिकित्सालय और पुस्तकालय बने हुए थे। इब्नबतूता ने इस संस्था का उल्लेख अपनी कृति में किया है।

1. Seek no advice from teachers, Shepherds and those who sit much with women.

2. I am the slave of him who hath taught me even one letter. —P. K. Hitti (Quoted) p 409

निजामिया के बाद सलजुक शासकों ने अब्बासी काल में नसाबुर तथा अन्य शहरों में अन्य संस्थाओं का भी निर्माण किया। खुरासान, ईराक और सीरिया में निजामिया की तरह अनेक संस्थायें कायम की गयीं। मदरसों की स्थापना करना इस्लाम का प्रमुख ध्येय एवं सिद्धान्त था। इब्न जुबैर के अनुसार बगदाद में 30, दमिश्क में 20, मावसिल में 6 और ह्यस में केवल मदरसा था।

इन सारी संस्थाओं में उच्च शिक्षा का अध्ययन किया जाता था। धर्म, विज्ञान एवं रीति-रिवाजों को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित किया गया था। इस्लाम (कुरान) के 300000 हदीसों को अल-गजाली ने कंठस्थ किया। इसी प्रकार अहमद इब्न हनबाल ने 1,000,000 ओर अल-बुखारी ने 100 हदीसों को याद किया था।

क्रमिक रूप से वयस्क शिक्षा का इस काल में कोई प्रबन्ध नहीं था। बड़े नगरों की मस्जिदों में ही वयस्कों को यह शिक्षा की जाती थी। पैलेस्टाइन, सीरिया, मिस्र और फारस में अल-कमदीसी ने शिक्षकों को मस्जिदों में वयस्क शिक्षा देते हुए अपनी यात्रा के दौरान देखा था। इमान अल-शफी इस युग का महान शिक्षक था जो फुस्तात की मस्जिद में अपने मृत्यु-काल (820 ई०) तक शिक्षा देता रहा। इन मस्जिदों के चलते अरब में साहित्यिक विकास के क्षेत्र में एक क्रान्ति आयी। सम्भ्रान्त एवं सुसंस्कृत व्यक्तियों ने मजलिस-अल-अदब के संगठन की चर्चा करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक अब्बासी खलीफाओं के काल में साहित्यिकों की भीड़ मस्जिदों में लगी रहती थी। यदा-कदा कविता प्रतियोगिता, धार्मिक वाद-विवाद तथा साहित्यिक चर्चा इस काल में होती रही। विवादों के चलते अनेक पुस्तकें भी निकली जिनमें से कुछ अभी तक उपलब्ध हैं।

प्राय: सभी मस्जिदों में पुस्तकालयों का संगठन किया जाता था। पुस्तकालयों में धार्मिक पुस्तकों की संख्या अधिक रहा करती थी। पर तर्कशास्त्र, ज्योतिष, दर्शन, इतिहास आदि पर भी पुस्तकों की संख्या कम नहीं रहती थी। पुस्तकालयों में हमेशा विज्ञान तथा साहित्य पर चर्चायें होती रहती थीं। भूगोल का शब्दकोष बनाने के लिये याकूब ने मारव तथा कब्बरिज्म के पुस्तकालयों में तीन वर्षों तक अध्ययन किया था। इस काल में अली, मशुल, बसरा और रंमहुरमुज तथा रे के पुस्तकालय अत्यन्त प्रसिद्ध थे। यहया का पुत्र अली ने जिस पुस्तकालय का संगठन किया था, उसमें खगोलशास्त्र पर अधिक पुस्तकें थीं। मशूल के पुस्तकालय का निर्माण मुहमद के पुत्र जजर ने किया था जिसमें अनगिनत पुस्तकें थीं। शिराज का 'खाजिनतुल कौतव' नामक पुस्तकालय इस काल में काल प्रसिद्ध था। इसका निर्माण ईरान के शासक आजद उद-वौल (977-82) ने किया था। पुस्तकालय में 360 प्रकोष्ठ में और चारों तरफ पार्क एवं गुम्बद। पुस्तकें सजाकर रखने और उसके सुनिश्चत संचालन के लिये नियमित कर्मचारी थे। इसी काल में बासरा और रामहुरमुज के दो अन्य पुस्तकालय भी प्रसिद्ध थे। सम्भवत: इसे सलवार ने इनकी स्थापना की थी। इनमें काम करने वालों मंजिलों (Scholars) को वजीफा दिया जाता था। रे (आधुनिक तेहरान) का पुस्तकालय अपनी विशालता के लिये प्रसिद्ध था जिसमें पुस्तकों को चार हजार ऊँट भी एक दिन में सरलतापूर्वक नहीं ले जा सकते थे। इस भागों में पुस्तकों की सूचियाँ (Catalogue) बनी हुई थीं। इस पुस्तकालय के खर्च के लिये 1000 स्वर्ण-दीनार एक एक महीना में खर्च किया जाता था।

प्रारम्भिक अब्बासियों के काल में शिक्षा के प्रचार तथा अर्थोपार्जन के लिए पुस्तकों की दुकानें खोली गयी थीं। अल याकूबी के अनुसार उनके काल (891 ई0 में बगदाद में लगभग एक सौ दुकान एक ही गली में खोले थे। कैरो तथा दमिश्क में ऐसी अनेक पुस्तकों की दुकानें थीं। प्रायः प्रत्येक मस्जिद के आगे पुस्तकों की छोटी-छोटी दूकानें लगी रहती थी। दुकानदार भी प्रायः विद्वान हुआ करते थे जो सदैव साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लिया करते थे। याकूत सर्वप्रथम एक दुकानदार का लिपिक (Clerk) था। 'अल-पिहारिवत' का लेखक अल-नादीम अथवा जल वारीक पहले एक दुकानदार ही था।

लेखनशैली

इस्लाम के उदय के पूर्व ही अरब में लेखक कार्य और उसकी शैली का विकास हो गया था। लेखन शैली का पुरातन रूप 'कुपिक' कहलाता था। ससानी सम्राटों के काल में अरबों ने 'अकवर' के दूबारा लेखन शैली का ज्ञान प्राप्त किया। लिखने की कला का ज्ञान प्राप्त करने वाला पहला व्यक्ति कुरेश वंश का 'हरब था। अनपढ़ रहते हुए भी पैगम्बर मुहम्मद ने लेखन कला को प्रोत्साहित किया। खिलापते रासिदा के चारों खलीफा इस कला से वाकिफ थे। उमैय्या काल में दो प्रकार की लेखन शैली का विकास हुआ—एक प्रकार की शैली का अंकन सिक्कों तथा इमारतों पर किया गया तथा दूसरी प्रकार की शैली का प्रयोग कागज पर किया गया।

अब्बासी काल में दूसरे प्रकार की शैली का अधिकाधिक प्रयोग किया गया। अभिलेखों में गोलाकार रूप की लिपि इस युग में प्रयोग में आयी। लोग उस एक कला मान बैठे और बड़ी सतर्कता एवं दिलचस्पी से इसका अध्ययन करने लगे। चित्रकार से अधिक महत्त्व गोलकार लिपि बनानेवालों का हो गया। इस युग के प्रमुख लिपिकारों में इशाक, इब्राहिम, अब-अली-मुहम्मद और फजल के नाम चिरस्मरणीय रहेगे।

यहाँ एक जगह इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अब्बासी काल में विज्ञान तथा साहित्य की जो उन्नति हुई, अरबो के अतिक्ति अन्य जातियों का बहुत बड़ा योगदान रहा। इस काल में बैद्धिक जागृति का आरम्भ संस्कृत, यूनानी, सरमानी तथा फारसी भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद से हुआ और यही करण है कि इस काल में जो साहित्य और विज्ञान का विकास हुआ उसका श्रेय केवल अरबों को ही नहीं बल्कि अन्य देशों तथा जातियों को भी है।

इस विकास में भारतवासियों की सबसे बड़ी देन गणितशास्त्र, नैतिक साहित्य तथा ज्योतिषशास्त्र के रूप में हैं। 771 ई० में एक भारतीय यात्री ज्योतिष की एक कृति 'सिद्धान्त' बगदाद लाया जहाँ उसका अनुवाद किया गया और परिणामतः इसका अनुवादक मोहम्मद इतने इब्रामिक अलद-काजारी अरब ज्योतिषी हुआ। वही यात्री भारत में एक और गणितशस्त्र की कृति लाया जिसे उन्हें (numeraie) का ज्ञान कराया तथा 9वीं शताब्दी दशमलव का सिद्धान्त भी भारतीयों से उन्हें प्राप्त हुआ।

अब्बासी खिलाफात में वैज्ञानिक तथा साहित्यिक विकास पर ईरानी प्रभाव के संबंध प्रो० हिट्टी लिखते हैं। 'केवल कला और साहित्य को छोड़कर ईरान ने अरबों को विशेष प्रभावित नहीं किया है। किन्तु यह अवश्य स्वीकार किया जायेगा कि ईरान के साहित्य का प्रभाव अरबों पर अवश्य पड़ा। अरबी भाषा की सबसे पहली साहित्यक कृषि 'कमीलादमना' का अनुवाद पहलवी भाषा से इसी काल में किया गया था। अरबी गद्य भी काफी प्रभावित हुआ।

इस काल में विभिन्न विषयों पर ग्रीक भाषा से बहुत अधिक अनुवाद किये गये। हारून रसीद के काल में बहुत सी ग्रीक पाण्डुलिपियाँ भी रोम में लायी गयीं। खलीफा मामून ने 'वैतुल हिकमत' नामक एक पुस्तकालय खोला जहाँ अनुवाद का कार्य विशेष रूप से होता था। इस काल में ग्रीक भाषा से चिकित्सा संबंधी जालीमूस (Galen) तथा डिपोद्राण बतल्लेमूस की पुस्तकों का अनुवाद किया गया। अरब की अरबन मूतिका, वेटाग्रीज (Categries) और फिजिक्स और प्लेटो की रिपब्लिक आदि का अनुवाद अंगरेजी में हुआ। युनानी गणित तथा ज्योतिष की पुस्तकें जिनमें आर्कमिडिज (Archimedes) तथा अपोलोनियस (Apallonius) की कृतियाँ भी थीं, अनुवादित हुईं। युक्लिड एसिमेंन्टस (Elements) तथा बतलीमूस की 'अलेमाजिश्त का भी अनुवाद किया गया।

अब्बासी युगीन शासन कला के दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि साहित्य एवं विज्ञान की तरह कला का विकास नहीं हुआ, फिर भी खलीफाओं ने भी इस दिशा में भी प्रगति लाने का प्रयास किया। स्थापत्यकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला के क्षेत्रों में कुछ न कुछ विकास अवश्य हुए।

खलीफाओं ने शहर का निर्माण करके स्थापत्यकला को प्रोत्साहन दिया। बगदाद और सायरा नामक नगर इसी युग में बनाये गये। पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और ईरान के सम्पर्क में आने पर इस कला का स्वतः विकास हुआ। अब्बासी गवर्नरों ने मेसोपोटामिया, सीरिया, पैलेस्टाइन, मिस्र आदि में भवनों का निर्माण कर इस कला को और भी प्रोत्साहन दिया। रोम तथा ईरान के भवनों की नकल कर इस काल में चपटी मस्जिदें बनायी गयीं जिनमें गुम्बदों तथा मीनारों का प्रयोग किया गया। स्थापत्यकला के सौन्दर्ययुक्त बनाने के लिए मस्जिदों की दीवारों पर कुरान की आयतों, स्तम्भों एवं प्रवेश द्वार पर ज्यामितिक रेखाओं का रंग-बिरंगे पत्थरों, रंगीन खपरैलों, पौधों आदि के चित्र बनाये गये। बगदाद में दरबारे आम बनाया गया जिसका गुम्बद 100 फुट ऊँचा था। इस युग में ताज-महल, बाब, अज-बहदू रूसाफह राजभवन वारुल शरजह आदि बने।

बगदाद में समाधि और मस्जिदें काफी संख्या में बनायी गयीं। इससे तीन मील की दूरी पर इमाम मूसा की पाक समाधि (कब्र) बनी जिसमें दोहरे गुम्बद लगाये गये। इस स्थल पर इमाम अली का मकबरा अपनी उत्कृष्ट कलात्मक सौन्दर्य के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है। इसके गुंबद स्वर्ण के मुलम्मा से सुसज्जित बनाये गये।

760 ई० में इस फदान को मज्जिद बनकर आसमान चूमने लगी। 875 ई० में शिराज की मस्जिद बनायी गयी। ईरान की मस्जिदों में कच्ची ईंटों का प्रयोग किया गया और मुस्तनरी (बगदाद) का विद्यालय भी ईंटों से ही बना। इसी

प्रकार अल-अजहर की मस्जिद और विश्वविद्यालय स्थापत्य कला की प्रगति के अनुपम चिन्ह हैं। इसकी मस्जिदों में 380 स्तम्भ लगाये गये।

बगदाद के अतिरिक्त इस युग में कैरो (काहिरा) में भी मस्जिदें बनी। यहाँ कलौन अरहर, अल-नासीर, मर्दिनी तथा केत बेग में मस्जिदें बनीं। स्पेन की अलहम्ब्रामी मस्जिद कोर्ट आफ फीसपोन्ड (Court of Fishpond) और कोर्ट ऑफ लायन नामक मस्जिदें अपनी शानदार कला एवं बनावट के चलते अधिक प्रसिद्ध हैं। मिस्र में भी अब्बासी स्थापत्यकला विकसित हुई। कैसे में अहमद तुलुन की मस्जिद आकर्षक हैं। सुलतान हसन की मस्जिद भी सुन्दर मानी जा सकती है। अल-जाफरी इसफहान और शिराज की मस्जिदें, विमारिस्तान आदि भी इस काल की वस्तुकला की श्रेष्ठता की कहानी कह रहे हैं। खलीफा मुतावकिल ने सायरा में 'जुमा मस्जिद' का निर्माण किया जिसके निर्माण में सात लाख दीनार खर्च हुए थे। ईरान की स्थापत्यकला का विशेष प्रभाव इसमें परिलखित है।

मूर्तिकला का सदैव हीं इस्लाम में विरोध किया गया है, इसलिए इस क्षेत्र में खलीफाओं ने अधिक विकास नहीं किया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि खलीफा मंसूर ने अपने राजभवन के गुम्बद पर एक अश्वारोही की प्रतिमा बनवायी। अश्वा-रोही ने अपने हाथों में दिशा-सूचक बर्छी धारण कर अकड़ा हुआ बैठा है। एक खलिफा दजला नदी में शेर, गरुड़ और मछली की आकृति को नावों में बैठकर मनो-रंजन करते थे जिसका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। एक अन्य खलीफा ने चाँदी एवं सोने का वृक्ष लगवाया था। हौज में लगाया गया यह मूत्तिनुमा वृक्ष अत्यन्त ही नयनसुखदायी है। हौज के दोनों किनारों पर पन्द्रह अश्वारोहियों की प्रतिमायें बनायी गयीं जिसे किमखाब की पोशाक पहनायी गयी।

चित्रकारी का विकास जल्द न हो सका। इसका विकास 11वीं सदी में होना प्रारम्भ हुआ। इस्लाम मुत्तिकला की तरह चित्रकला का भी विरोध करता है। 11वीं सदी में सभी प्रकार के चित्र नहीं बनाये गये। केवल धार्मिक चित्रों के बनाने की ओर ही मुस्लिम चित्रकारों का ध्यान गया। धीरे-धीरे कालीनों पर आखेटों एवं उपवनों के चित्र बनाये जाने लगे। ईरान से अरबों ने कासानी फर्स, रंगीन खपरैलों आदि को बनाने की कला सीखी। अन्तोकिया दमिश्क आदि नगरों में मीनाकारी का काम बढ़ गया। लोग धीरे-धीरे काँच पर कलाई चढ़ाने का भी काम करणे लगे। कालीनों पर सोना का काम किया जाने लगा। रत्न-जड़ित सोने चाँदी के बर्त्तन, ताम्बे के लैम्प, गुलदस्ता, वगैरह धीरे-धीरे बहुतायत से बनने लगे जिससे चित्रकला का स्वतः विकास हुआ।

अध्याय — 12

अब्बासी खिलाफत का प्रशासन

(Administration of the Abbasid Caliphate)

उमैय्या शासकों के पतन से केवल वंश का ही परिवर्तन नहीं हुआ प्रत्युत शासन-व्यवस्था का भी परिवर्तन हुआ। इतिहासकार लेविस के शब्दों में "अब्बासियों द्वारा उमैय्या वंश के शासकों को शासन सत्ता से वंचित करके एक नये वंश के शासन की स्थापना करना सच्चे अर्थ में वंश-परम्परा में परिवर्तन मात्र न था प्रत्युत शासन व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। यह परिवर्तन इस्लाम के इतिहास में एक क्रान्ति है। दमिश्क यूरोप के इतिहास में फ्रान्स तथा रूस की क्रान्तियों का जो महत्व है वही इस्लाम के इतिहास में अब्बासियों की शासन व्यवस्था की स्थापना का महत्व है।" इस युग की शासन व्यवस्था एक समुचित ढंग एवं नियमित नियमों से व्यवस्थित की गयी और शासन के सभी विभागों का संगठन कर राज्य को हरेक दृष्टिकोण से सुरक्षित एवं स्थायी रखने का प्रयास किया गया।

खलीफा

खिलाफते राशिदा तथा उमैय्यों की तरह इस युग में भी राज्य का सर्वोपरि अधिपति एवं समस्त शक्तियों का स्रोत खलीफा था। यह सही है कि वह वजीर के द्वारा नागरिक अधिकारों, काजी के द्वारा न्यायिक अधिकारों और अमीर के द्वारा अपने सैनिक अधिकारों का कार्यान्वयन करता था। पर समस्त प्रशासकीय कार्यों एवं अधिकारों का पथ-प्रदर्शक और स्रोत वही था। वजीर, काजी और अमीर अपने-अपने विभागों का स्वामी होकर भी अपने विभागों से संबंधित मसलों पर अन्तिम निर्णय नहीं दे सकते थे। शासन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय देना खलीफा का ही काम था।

उमैय्या शासकों की अधार्मिकता से जनता में असन्तोष था। इसलिए अब्बासी खलीफाओं ने धर्म का सहारा लिया। सारे खलीफाओं ने धर्म तथा कार्यालय की प्रतिष्ठा पर बल देना प्रारम्भ किया और राज्य तथा धर्म का संबंध धीरे-धीरे गहरा हो चला। अब धर्म शासन का अभिन्न हिस्सा हो गया। खलीफाओं ने इस बात पर बल देना प्रारम्भ किया कि खलीफा मुसलमानों का इमाम होता है। आठवें खलीफा मौतासिम बिल्लाह (833-42) के समय से 'अल्लाह' शब्द की पदवी उनके नामों में जुड़ गयी। अब्बासी वंश के अन्तिम शासकों ने अपने आपको 'अल्लाह का खलीफा', 'पृथ्वी पर अल्लाह की छाया' इत्यादि कहना प्रारम्भ किया। जनता भी उन्हें "खलीफ तुल्लाह" कहने लगी और उन्हें पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मानने लगी।

उमैया शासकों द्वारा प्रचलित वंशानुगत उत्तराधिकार के नियम अब्बासी खलीफाओं ने भी कायम रखा। शासन करने वाला खलीफा अपने पुत्र या अन्य संबंधी को अपना उत्तराधिकारी नामांकित करने लगा। योग्य पुत्र के अभाव में वह अन्य संबंधियों को भी उत्तराधिकारी नामांकित करने लगा। योग्य पुत्र के अभाव में अन्य संबंधियों को उत्तराधिकारी बनाने की प्रणाली इस काल में चल पड़ी। अल सफा ने अपने भाई मंसूर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और उसके बाद उसका पुत्र अल-महदी उत्तराधिकारी घोषित हुआ। अल-महदी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अल-हादी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और उसके बाद उसका भाई हारून अल-रसीद का मनोनयन हुआ। हारून रशीद ने अपने ज्येष्ठ पुत्र आमीन को खलीफा पद के लिये घोषित किया। संक्षेप में उत्तराधिकार का निर्णय खलीफा पद के लिये ही करते थे और उमय्या शासकों द्वारा प्रचलित इस व्यवस्था में अब्बासी शासकों ने भी कोई परिवर्तन नहीं लाया।

खलीफा से संबंधित एक अन्य पदाधिकारी 'हाजिब' (Chamberlain) होता था जो उसके साथ छाया की तरह रहता था। वह राजभवन का प्रबन्धक था। प्रतिष्ठित व्यक्तियों, राजदूतों आदि को खलीफा के समक्ष उपस्थित करना उसका ही काम था। बगदाद-दरबार में एक और पदाधिकारी प्रतिष्ठा पाता था और वह था जल्लाद (Executioner)। अपराधियों को मृत्यु-दण्ड देने के लिये पहली बार मेहराबदार भूमिगत प्रकोष्ठ इस काल में बने जिनकी देखरेख जल्लाद ही करता था। अब्बासी-खलीफा से जुड़ा हुआ ज्योतिषी भी था जिसका महत्व जल्लाद से कम नहीं था। शासन की सुविधा के लिये अपने दीवानी अधिकारों को वजीर न्यायिक अधिकारों को काजी तथा सैन्य संचालन का काम अमीर को दे देता था। फिर भी शासन संबंधी अंतिम निर्णय उसी के हाथ में था। यों खलीफा के सारे कार्य उपयुक्त पदाधिकारी करते थे, पर खलीफा ही प्रशासकीय, न्यायिक तथा सैनिक शक्तियों का स्रोत था। इतिहासकार लेविस का कथन है कि "सिद्धान्त रूप में खलीफा अब भी 'शरियत' (इस्लाम का पवित्र कानून) के अधीन था, पर व्यवहार में उसकी शक्ति पर इस नियन्त्रण का कोई प्रभाव नहीं था क्योंकि विद्रोह के अतिरिक्त कोई अन्य उसे लागू करने के लिये नहीं था। इस प्रकार अब्बासी शासन एवं खलीफा निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थे जो सैनिक शक्ति पर आधारित थे और ईश्वरी अधिकारों का उपयोग करते थे।"[1]

---

1. In theory the Caliph was still subject to the rule of the "Sharia", the holy law of the Islam. In practice this check on his authority was not effective since there was no machinery other than revolt for its enforcement, Abbasid Caliphate was thus a despotism, based on military force and claiming almost divine rights.

—B. Lewis., P 192

वजीर

खलीफा के बाद प्रशासन का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय पद वजीर का था। इस काल के वजीर ईरान की शासन प्रणाली से प्रभावित थे। वह खलीफा का परम मित्र था और उसको "द्वितीय आत्मा" कहा जाता था। खलीफा के दैवी अधिकार एवं उसकी संप्रभुता का प्रतिरूप वही था। खलीफा की संप्रभुता का यदा-कदा वजीर भी उपयोग करता था। कमजोर एवं हरमप्रिय खलीफा के काल में वजीर की शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती थी। व्यवहार में शासन का सारा प्रबन्ध वहीं करता था। अगर कोई वजीर की आज्ञा मानता था तो यह समझा जाता था कि वह खलीफा और ईश्वर की आज्ञा मान रहा है। खलीफा के महत्व को अल-नासीर नामक खलीफा (1180-1225) ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। उसके अनुसार वजीर उसके शासन का प्रधान था और उसकी आज्ञा को मानने वालों को सीधा स्वर्ग मिलता था।[2]

इस काल में बरमीक परिवार के सदस्य वजीर के पद पर नियुक्त किये जाते थे जो अत्यन्त ही शक्तिशाली थे। उन्हें विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों को नियुक्त तथा पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त था। हाँ, इस सम्बन्ध में यह आवश्यक था कि वह इसकी सूचना खलीफा को दे-दे तथा उससे परामर्श भी ले ले। विद्रोही गवर्नरों की सारी सम्पत्ति को जब्त करने का भी अधिकार भी उसे प्राप्त था। कभी-कभी वजीर ऐसे गवर्नरों को फाँसी पर भी लटका देते थे। कालान्तर में इस जब्ती के लिये पृथक विभाग की स्थापना कर डाली गयी। इस बात का उल्लेख मिलता है कि खलीफा निष्क्रिय हो जाने पर शासन-व्यवस्था से अपने आपको पूरी तरह अलग कर देते थे और उसे वजीर पर छोड़ देते थे। इससे वजीर की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में बृद्धि हुई। खलीफा मुतादिद के काल में वजीर का मासिक वेतन 1000 दिनार था।

अलमावरदी तथा उस काल के आर्य विधिवेत्ताओं ने वजीर को दो भागों में विभक्त किया है। एक प्रकार के वजीर को "तफवीद" कहा जाता था जिसे अपरिमित एवं असीमित अधिकार प्राप्त थे। उसे खलीफा की संप्रभुता का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त था। वह केवल खलीफा का उत्तराधिकार निर्णय नहीं कर सकता था। दूसरे प्रकार के वजीर का काम था खलीफा की आज्ञाओं को क्रिया में परिणत करना और उसके निर्देशों के अनुसार कार्य करना।

---

2. Muhammad bin-Barz al-Qummi is our representative throughout the land and amongst our subjects. Therefore he who obeys him obeys us; and he who obeys us obeys God and God shall cause him who obeys Him to enter Paradise. As for one who, on the other hand, disobeys our vijir, he disobeys us; and he disobeys us disobeys God, and God shall cause him who disobeys Him to enter hell-fire. —*Fakhri*, p. 205.

मुक्तादीर के बाद वजीर का पद उठा दिया गया और उसकी जगह अमीर अल-उमरा काम करने लगे।

राजस्व

अब्बासी राज्य के प्रशासन के लिये एक परिषद् थी जिसमें सारे विभागों के अध्यक्ष थे। इसका प्रधान राज्य का वजीर होता था। इन सारे विभागों में कर अथवा खजाना विभाग (Bureau of Taxes) सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इस विभाग को 'दीवाने-खिराज' तथा इसके अध्यक्ष को 'साहब उल्लेखराज' कहा जाता था। राज्य की आय के अनेक श्रोत थे। राज्य के मुसलमानों से 'जकात' लिया जाता था जो उनकी कृषि, पशु, सोना, चान्दी, व्यापारिक माल आदि पर लिया जाता था। गैर-मुस्लिम जातियाँ व्यक्ति-कर (Poll Tax) देते थे। इस कर की वसूली राज्य के पदाधिकारी करते थे और इस धन को केन्द्रीय राज्यकोष में भेज दिया जाता था। गरीबों, वृद्ध एवं हताहत व्यक्तियों, गुलामों आदि पर यह धन खर्च किया जाता था। इसके अतिरिक्त शत्रुओं से युद्ध-हानि के रूप में जजिया और उशर (Ushr) लिया जाता था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि उत्तर अब्बासी काल में जजिया एवं उशर से राज्य को काफी आय हो जाया करती थी। कर से प्राप्त धन-राशि गरीबों के अतिरिक्त मस्जिदों, पुलों, मार्गों आदि के निर्माण में भी खर्च किया जाता था।

कर-प्रणाली के सम्बन्ध में हमें तीन विवरण-पत्र उपलब्ध हुए हैं जिनसे अब्बासी युगीन आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त होता है। वे हैं इन खाल्दून का विवरण-पत्र, खुदात्मा का विवरण-पत्र और खुरदादबी का विवरण पत्र। पहला मामून की आय-व्यय का, दूसरा उसके बाद के दस वर्षों की आय का और तीसरा उत्तरकाल अब्बासी शासकों की आय का उल्लेख करता है। इन विवरणों से यह पता चलता है कि अब्बासी खलीफाओं को ईराक, बेबिलोनिया, मिस्र, सीरिया, पैलेस्टाइन, सिकन्दरिया, खुरासान, आदि से करोड़ों दिनारे और असंख्य हीरे-जवाहरात मिल जाते थे।

अन्य विभाग

कर विभाग के अतिरिक्त प्रशासन संचालन के लिये अनेक अन्य विभाग भी थे। इन विभागों में एक विभाग था दीवान-उज-जजाम जो आय-व्यय का लेखा-जोखा करता था। इसका संस्थापन खलीफा महदी ने किया था।

सरकारी पत्र व्यवहार के लिये एक पृथक विभाग था जिसे "दीवान-अल तौकी" कहा जाता था। प्रजा की शिकायतों को सुनने तथा उनपर कार्यवाही करने के लिये महदी ने एक अन्य विभाग कायम किया था। उसे "दीवान अल नजर फी अल-मजालिम" कहा जाता था।

पुलिस तथा डाक के लिये 'शासकों ने पृथक विभाग कायम किया था।' पुलिस विभाग की 'दीनानुश शुढता और उसके अध्यक्ष को "साहब अल-शूरता"

कहा जाता था। पुलिस विभाग का अध्यक्ष खलीफा का अंग-रक्षक भी था और उसका पद वजीर के बाद आता था। प्रत्येक बड़े शहर में पुलिस का खास प्रबन्ध था जिन्हें अच्छा वेतन मिलता था। नगर-पुलिस का प्रधान पदाधिकारी "मुहतसिब" कहलाता था जिसका काम जुए, शराब, सूदखोरी आदि अनैतिक कार्यों को रोकना था और यह देखना था कि बाजारों में उचित रीति से लेन-देन होता है या नहीं। अल-मवारदी मुहतसिब के एक दिलचस्प कार्य की भी चर्चा करता है। उसके मुहतसिब का एक अन्य कार्य था औरतों और पुरुषों के नैतिक आचरण पर कठोर निगरानी रखना और ऐसे लोगों को सजा देना जो अपनी दाढ़ी के पके बाल को खिजाब से काला करके औरतों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते थे।

डाक विभाग का नाम था 'दीवान अल-बरीद'। इसका अध्यक्ष 'साहब अल-बरीद' कहा जाता था। उमैय्या वंश के शासन का संस्थापक मुआबिया पहला व्यक्ति था जिसने इस विभाग को अरब में सर्वप्रथम कायम किया था। अब्दुल मलिक ने इस विभाग की अनेक शाखायें खोलकर इसका विस्तार किया था। अल-बलोद ने अपने अभियान कार्यों में डाक-विभाग से सहायता लेकर उसे उपयोगी सिद्ध किया था।

लेकिन डाक विभाग का समुचित संगठन करने का श्रेय हारुन रशीद को दिया जाता है। वजीर यह्या के परामर्श पर खलीफा ने नये आधार पर इस विभाग का संगठन किया था। प्रत्येक प्रान्त की राजधानी में एक-एक डाक विभाग कायम किया गया। साम्राज्य के महत्वपूर्ण शहरों को सड़कों के माध्यम से बगदाद से जोड़ दिया गया और महत्वपूर्ण मार्गों पर डाक का कार्यालय खोल दिया गया। ऐसे करीब एक सौ डाक-प्रसारण-स्थल बनाये गये। फारस में खच्चरों एवं घोड़ों से डाक ढोने का प्रबन्ध किया गया और सीरिया में ऊँटों से।

इस काल में पत्रों को पहुँचाने के लिये कपोतों को दक्ष बनाया गया। खुर्रमी सम्प्रदाय के प्रधान बाबिक के कैद किये जाने की पहली खबर मुतासिम को 837 ई० में एक कपोत ने ही दी थी। राज्य के सभी डाक-कार्यालयों का प्रधान केन्द्र बगदाद में स्थित था। व्यापारियों, यात्रियों एवं धर्मयात्रियों को मार्ग-वृतान्त देने का कार्य बगदाद का प्रधान डाक-विभाग ही करता था। यह विभाग आगे चलकर इतना महत्वपूर्ण हुआ कि अरब के छात्र इस पर शोध का कार्य करने लगे।

साहब-अल-बरीद को डाक के अतिरिक्त अन्य विभागों के कार्य भी देखने पड़ते थे। वह गुप्तचर विभाग का भी अध्यक्ष था क्योंकि इस विभाग का डाक विभाग से गहरा सम्बन्ध था। दोनों विभागों का अध्यक्ष होने के कारण वह 'साहब अल-बरीद व अल अखबार' कहलाता था। इस स्थिति में वह निरीक्षक एवं केन्द्रीय सरकार के विश्वासी एजेन्ट के रूप में विख्यात था। प्रान्तों के डाक विभाग के अध्यक्ष उस प्रान्तों की गतिविधियों के सम्बन्ध में सभी प्रकार की

सूचनायें दिया करते थे। वे अपने प्रान्तों के गवर्नर के विरुद्ध सूचना देने में भय नहीं खाते थे। एक बार बगदाद के गवर्नर ने मक्का से एक सुन्दर दास कन्या को लाकर अपनी सेवा में नियुक्त किया और उसके साथ हास-विलास करने लगा। स्वाभाविक रूप से वह शासन-कार्यों के सम्पादन में ढिलाई करने लगा। बगदाद के डाक-अध्यक्ष ने उसकी खबर खलीफा मुतावक्किल को भेज दी। मंसूर, रशीद तथा अन्य खलीफाओं ने यात्रियों, व्यापारियों तथा फेरीवालों को गुप्तचर विभाग में नियुक्त किया। कहा जाता है कि खलीफा मामून ने बगदाद के गुप्तचर विभाग में लगभग 1700 अधेड़ औरतों को नियुक्त किया था।

न्याय विभाग

अब्बासी शासकों ने न्याय-विभाग का भी सुसंगठन किया था। वे न्याय करना एक धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। न्याय का काम काजी करते थे। उलेमा वर्ग के योग्य व्यक्तियों को वजीर या खलीफा काजी के पद पर नियुक्त करते थे। प्रधान काजी 'काजी अल-कुर्जी' कहलाता था। इस पद पर सबसे पहला व्यक्ति अबू यूसूफ 798 ई० में नियक्त किया गया था। मुस्लिम विधि के अनुसार मानसिक संतुलन रखने वाला, वयस्क और विद्वान पुरुष ही प्रधान काजी बन सकता था।

मवारगी ने न्यायाधीशों को दो श्रेणियों में बांटा है—आम मुतलक और खास मुतलक। पहला को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे और दूसरा सीमित अधिकारों का उपयोग करता था। आम मुतलिक को अनेक कार्यों का सम्पादन करना पड़ता था। वह मुकदमों का फैसला करता था, बच्चे, रोगियों तथा अनाथों का अभिभावक बनकर उनकी जीविका चलाने का प्रबन्ध करता था, धार्मिक संस्थानों का संचालन करता था, धार्मिक विधियों का उल्लंघन करने वालों को सजा देता था, न्याय विभाग के उप-कर्मचारियों (नायक) की नियुक्ति करता था और शुक्रवार के दिन पढ़ी जाने वाली नमाज का नेतृत्व करता था। प्रारम्भ में प्रान्तों के गवर्नर प्रान्तों के काजियों की नियुक्ति करते थे, पर कालान्तर में बगदाद का प्रधान काजी उनकी नियुक्ति करने लगा। मामून के काल में मिस्र के काजी का मासिक वेतन 4000 दरहम था। खास मुतलक के न्यायिक अधिकार सीमित थे। वह खलीफा, वजीर या प्रान्त के गवर्नर के द्वारा नियुक्त किया जाता था।

सैन्य-संगठन

वास्तव में अरब के खलीफा सुसंगठित एवं प्रशिक्षित सेना का संगठन नहीं कर सके। खलीफा के अंगरक्षक ही, जिन्हें 'हरास' कहा जाता था, स्थायी सेना माने जाते थे। सदैव युद्ध लड़ने वाली 'मुरताजिक' कही जाती थी जिससे सैनिकों को नियमित रूप से वेतन दिया जाता था। सैनिकों की एक अन्य टुकड़ी 'रजाकार' (Volunteers) के नाम से विख्यात थी। यह टुकड़ी युद्ध छिड़ने पर लड़ती थी और युद्ध-काल तक ही वेतन पाती थी। इस टुकड़ी के सैनिकों को राज्य की ओर से भोजन भी दिया जाता था। बद्दुओं, किसानों और शहरुओं को ही इस

सेना में बहाल किया जाता था। अंगरक्षक उच्च वेतन पाते थे और उनके हथियार तथा पोशाक सभी सैनिकों से अच्छे थे। प्रथम अब्बासी खलीफा के शासन काल में पैदल सेना के सैनिकों का औसत वार्षिक वेतन 980 दरहम था। एक घुड़वार साल में 920 दरहम पाता था। वेतन के अतिरिक्त उन्हें वेतन तथा भत्ते, दोनों दिये जाते थे। मामून के काल में अरब सैनिकों में ईरानी सैनिकों की संख्या 1,25,000 थी जिसमें पैदल सेना का प्रत्येक सैनिक साल में 240 दरहम वेतन के रूप में प्राप्त करता था। उसके काल में एक घुड़सवार सैनिक का वेतन 430 दरहम था।

प्रारम्भिक अब्बासी शासकों के काल में स्थायी सेना में जो 'जुन्द' कहलाती थी, पैदल, घुड़सवार एवं तीरन्दाज तीनों प्रकार के सैनिक थे। पैदल सेना के सैनिक तलवार, ढाल और बरछों से सुसज्जित रहते थे। घुड़सवार और तीरन्दाज शिरस्त्राण और कवच धारण करते थे। ये युद्धों में लम्बे बल्लम और परशु का प्रयोग करते थे। मुतावक्किल ने कमर में तलवार लटकाने की ईरानी पद्धति का प्रचलन किया। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि सैनिक अग्निसिद्ध पोशाक युद्ध में धारण करते थे। युद्ध-स्थल में सैनिक के साथ अभियन्ता, शिला-प्रक्षेपक और भित्ति-पातक भी जाते थे तथा शत्रु के दुर्गों को ध्वस्त करने में मदद करते थे। अल-नासीर (1180-1225) के काल का एक प्रसिद्ध अभियन्ता इब्न साबीर अल-मंजनीकि था। जिसने युद्ध-कला पर एक ग्रन्थ की रचना की। पर दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ अधूरा ही रह गया। ऊँटों की सहायता से अस्पताल की सामग्रियाँ और घायलों को ढोने के लिये गाड़ियाँ युद्ध भूमि में पहुँचायी जाती थी। हारून ने युद्धभूमि में उन सारे तरीकों एवं सामग्रियों का उपयोग किया।

अब्बासी शासकों ने अरबों को अपनी सेना में अधिक प्रधानता नहीं दी थी! प्रारम्भिक खलीफाओं ने खुरासानियों को अपना अंगरक्षक नियुक्त किया। अरब-सेना के दो भाग थे—उत्तरी अरब सेना और दक्षिणी अरब सेना। पहली को मुदारींत और दूसरी को यमानित कहा जाता था। नये मुसलमान भी अरबी सेना में भर्ती किये जाते थे। मुतासिम ने तुर्कों को सेना में शामिल कर एक नयी तुर्की टुकड़ी को जन्म दिया। बाहर से लाये गये गुलाम इस सेना में प्रभावशाली थे। अंगरक्षकों की यह नयी टुकड़ी शीघ्र ही बगदाद में आतंक का कारण बन गयी। तुर्की सैनिक का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि लाचार होकर खलीफा को 836 ई० में बगदाद की जगह समारा को राजधानी बनानी पड़ी। मुतानसीर के मृत्यु-परान्त (861-62) इस सेना ने शासन एवं राजनीति को अधिकाधिक प्रभावित करना प्रारम्भ किया।

अब्बासी सेना के दस सैनिकों के ऊपर एक अरीफा (Arif), पचास सैनिकों के उपर एक खलीफा (Khalifa) और सौ सैनिकों के उपर एक कईद (Qaid) होता था। इसी प्रकार दस हजार सैनिकों के उपर एक अमीर (Amir) होता था और सौ सैनिकों को मिलाकर एक कम्पनी का संगठन होता था।। ऐसी अनेक कम्पनियों को मिलाकर एक दस्ता बनाया जाता था जिसे 'कुर्दूस' कहा जाता था।

प्रान्तीय शासन

शासन की सुविधा के लिये उमैय्या शासकों ने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया था जिसके शासक गवर्नर (अमीर या आमोल) होते थे। ये प्रान्त अब्बासी काल में भी कायम रहे। इन प्रान्तों की संख्या यदा-कदा बदलती रहती थी, बगदाद के प्रारम्भिक खलीफाओं के शासन काल में निम्नलिखित प्रान्त थे—अफ्रीका, मिस्र, सीरिया और पलेक्टाइन, मध्य अरेबिया, दक्षिणी अरेबिया, बहराइन और अमन सबाद या ईराक, प्राचीन असीरिया, जीबल या प्राचीन मदीना, खुजिस्तान, फारीस करमान, सिजिस्तान, कुहिस्तान, कुमिज, तबारिस्तान, जर्जान, आरमेमिया, खुरासान, ख्वारिक्स तुगद (बुखरा और समरकन्द) फरगना और शाश (आधुनिक ताशकन्द)।[1]

प्रान्तों की समुचित शासन-व्यवस्था का सारा उत्तरदायित्व गवर्नरों पर था। गवर्नर का पद वंशानुगत नियमों के आधार पर भरा जाता था। सिद्धान्त में गवर्नर वज़ीर की कृपा-पात्र था क्योंकि उसकी सिफारिश वजीर ही करता था और तब खलीफा उसे विमुक्त करता था। इस काल में दो प्रकार के गवर्नर होते थे—इमरा आम (General Amirate) जिसे सेना, कर, उत्तराधिकार-मनोनयन, न्याय, सार्वजनिक सुरक्षा आदि का काम करना पड़ता था और खास अमीर (Khash-Amirate) जिसे न्याय एवं कर विभाग पर किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। लेकिन ये अधिकार सिद्धान्त में ही थे। वास्तव में योग्य गवर्नर अपने अधिकारों को बढ़ा लेते थे। कमजोर खलीफा के काम में दूरस्थ प्रान्तों के गवर्नर अब्बासी साम्राज्य से अपना संबंध विच्छेद कर अपनी स्वतन्त्र सरकार कायम कर लेते थे। स्थानीय आय प्रान्तों की शासन-व्यवस्था के लिये खर्च की जाती थी। अगर इस आय से प्रान्तों का खर्च नहीं चल पाता था तब गवर्नर केन्द्रीय खजाना से भी खर्च के लिये धन लेता था। प्रान्त के काजी न्याय-प्रशासन के जिम्मेदार थे जिनकी सहायता के लिए अन्य छोटे-छोटे काजी होते थे। अब्बासी शासकों ने केवल केन्द्रीय सरकार ही नहीं, प्रत्युत प्रान्तीय सरकार का भी समुचित संगठन किया था।

———

3. Le Strange; Eastern Caliphate, pp 1–9.

अध्याय 13

अब्बासी समाज

(Abbasid Society)

अब्बासी खिलाफत की स्थापना से न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में प्रत्युत सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्त्तन आया था। खिलाफत संस्थापन में अब्बासियों को विदेशियों की मदद लेनी पड़ी थी और इस कारण उन्हें अपनी सामाजिक व्यवस्था में विदेश की जातियों को समाहित कर उसमें परिवर्तन लाना पड़ा था। प्रारम्भ में अरब के सामाजिक संगठन का आधार कबीला था और एक अरबी अपने कबीले में ही शादी वगैरह करता था। लेकिन अब्बासी खलीफाओं के शासन काल में शुद्ध अरब जातीयता या खून का यह संबंध समाप्त हो चला और वैदेशिक तत्व अरबी जातियों में मिलने लगे। पत्नी तक के चुनाव में खलीफा भी अरब जाति की प्रधानता का ख्याल न कर अन्य जातियों की औरतों को पत्नी के रूप में ग्रहण करने लगे। अधिकांश अब्बासी खलीफाओं की माता दासी या अन्य जातियों की महिलायें थीं। खलीफा मंसूर की माता एक असभ्य दासी थी और मामून की माता भी फारस की दासी थी। वाथिक और मुहतादी की माता भी ग्रीक थीं। इसी प्रकार मुक्ताफी और मुक्तादीर तुर्क जाति की दास कन्या से पैदा हुए थे। समस्त अब्बासी खलिफाओं में केवल तीन खलीफा अल-अब्बास, अल महदी और अल-आमीन ही अपनी जाति की महिला की सन्तान थे।

संक्षेप में इस काल में अरबों में गैर-अरबी जातियों का प्रवेश प्रारम्भ हुआ। और परम्परा से अपनी शुद्धता कायम रखने वाली अरब जाति विदेशी तत्वों में मिलकर अपनी शुद्धता खो बैठी। ईरानी और तुर्की जाति के लोगों ने अरब जाति के लोगों को अधिकाधिक प्रभावित किया और समाज में महत्त्वपूर्ण स्थिति कायम कर वे शासन के बड़े-बड़े पदों पर भी नियुक्ति पाने लगे।

इस युग की सामाजिक व्यवस्था और संगठन का अध्ययन निम्नलिखित सन्दर्भों में किया जा सकता है :—

खलीफा

अब्बासी समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्ग खलीफा, उसके संबंधी और बानू हाशिम के कबीलों के लोगों से बना था। पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि खलीफा शासन की समस्त शक्तियों का श्रोत था। वह तथा उसके वर्ग के सभी लोग पर्याप्त सम्पत्ति रखने के कारण वैभवपूर्ण तथा विलासप्रिय जीवन व्यतीत करते थे। ईरान के लोगों के जीवन से वे प्रभावित थे और ऐश आराम की जिन्दगी गुज़ारते थे। जीवन के कष्टों एव समस्याओं से उनका परिचय नहीं था। इस वर्ग

के लोग ही शासन के बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त थे और सरकारी व्यक्ति होने के कारण समस्त राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सुविधाओं का उपभोग करते थे। खलीफा और उनके पुत्र फारसियों की तरह रहते थे और रहन-सहन में उन्होंने फारसियों की जोवन-शैली को ही अपनाया था।

दास

समाज का दूसरा वर्ग दासों से बना था। अधिकांश दास गैर-मुसलमान थे। वे युद्ध में बन्दी बनाये गये थे या खरीदे गये थे। इनमें कुछ निग्री, कुछ तुर्क और कुछ तामलूक (श्वेत दास) थे जो मुख्यत: ग्रीक, स्लाव, आरमेनियन तथा बर्बर जाति के थे।

दास विभिन्न प्रकार की सेवायें करते थे। हिजड़ा गुलाम हरम की औरतों की सेवा में नियुक्त थे। इन्हें खिसयान' कहा जाता था। हिजड़ों की एक शाखा 'गिलमान' कही जाती थी। गिलमान आकर्षक पोशाक धारण कर अपने स्वामी की सेवा में रहते थे। विविध आयोजनों से वे अपने शरीर को सुन्दर बनाने का प्रयास करते थे। रशीद के काल में गिलमानों की काफी पूछ थी। खलीफा अमोन ने हिजड़ों की एक पृथक संस्था ही कायम कर दी थी और उनके साथ अनेक राजकीय लोगों का अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध कायम था। बगदाद के एक काजी ने ऐसे 400 हिजड़ों को अपनी सेवा में यौन-तुष्टि के लिये नियुक्त किया था। अबू नुवैज जैसे मूर्द्धन्य कवि भी इस कुत्सित कार्य से वंचित नहीं थे। अल्प उम्र वाले हिजड़े उनकी दृष्टि में अधिक जँचते थे।

जवारी

समाज में कुमारी दासियाँ काफी लोकप्रिय थीं। वे नाचने एवं गाने का काम करती थीं। कुछ सुन्दर लड़कियाँ बड़े लोगों की रखैल भी बन जाती थीं। ऐसी रखैलों को 'जवारी' कहा जाता था। कुछ जवारियाँ तो खलीफाओं तक के मन को भी आकर्षित करने की क्षमता रखती थीं। 'धन अल-खाल' नामक एक रूपवती जवारी को खलीफा हारुण रशीद ने 70,000 दरहम में खरीदा था जिसे उसने अपने नौकर को दे दिया। उसके पति को इसी खलीफा ने सात वर्षों के लिए गवर्नर बनाकर 'फारिस' भेज दिया था। जब रशीद इस नर्त्तकी की फाँस में बुरी तरह फँस गया तब उसकी पत्नी जुबैदा ने सात कुमारी दासियों को अपने पति की सेवा में सुपुर्द कर उसे प्रसन्न किया और तब कहीं जाकर उस नर्त्तकी के चंगुल से उसे छुड़ाया। इन्हीं दासियों में एक मामून तथा दूसरी मुतासिम की माता थीं।

कुछ जवारियाँ विदूषी थीं। एक हजार एक रातों में तवाद्दुद नामक एक विदूषी जवारी की चर्चा मिलती है जिसे अनेक विषयों का ज्ञान था। इसे 100,000 दीनार में रशीद ने खरीदना चाहा था। अमीन के काल में दासियों का दल सेविका का काम करने लगे। ये सेविकायें कंधों तक केश रखती थीं, लड़कों की

पोशाकें पहनती थीं और सिल्क की पगड़ी धारण करती थीं। समाज के निम्न वर्गीय लोग भी इन सेविकाओं को अपनी सेवा में रखते थे।

इस युग में समाज में दास-प्रथा एक प्रधान प्रथा बन गयी थी। प्राय: प्रत्येक खलीफा दासों में, चाहे वे औरत हो या मर्द अपनी सेवा में अच्छी-बडी संख्या में रखते थे। मुक्तादीर के राजभवन में 11,000 हिजड़े थे जो ग्रीस और सूडान से लाये गये थे। मुतावक्किल को 4,000 रखैलें थीं। एक समय उसके सेनापति ने उसे 200 दास उपहार मे भेंट दिये। इस काल में यह आवश्यक था कि गवंनर अपने प्रान्त से खलीफा और वजीर की सेवा में दासियों को भेजे। इस कार्य का सम्पादन नहीं करने वाले गवंनर को विद्रोही समझा जाता था। मामून ने अपने गवंनरों को यह आदेश दिया था कि वे केवल विश्वासी दासों एवं दासियों को ही उसकी सेवा में भेजे। ऐसे लोगों से वह गुप्तचर का भी काम लेता था।

जिम्मी

समाज में जिम्मियों का एक पृथक वर्ग था। प्रारम्भ में इसमें केवल यहूदी, ईसाई और साबी ही शामिल थे, पर कालान्तर में जरथुष्ट धर्मावलम्बी, हर्राऊ तथा अन्य लोग भी शामिल हो गये। शासकों ने शहर के विभिन्न पदों पर यहूदियों एवं ईसाईयों को नियुक्त किया था। खलीफा हारुं रशीद ने सीमान्त प्रदेशों के अनेक गिरजाघरों को धराशायी कर दिया तथा जिम्मियों को निश्चित और विशेष वस्त्र धारण करने का आदेश दिया। खलीफा मुतावक्किल के काल में और भी कड़े आदेश निकाले गये। अगर किसी मुसलमान के विरुद्ध कोई यहूदी या ईसाई कोई गवाही देता था तो वह अमान्य थी। संक्षेप में अब्बासी शासन में जिम्मियों को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। फिर भी ईसाई वर्ग के लोग कुछ सुविधा प्राप्त किये थे। खलीफाओं ने शासन के पदों पर उन्हें नियुक्त किया था।

जिम्मियों में अधिकतर तीन धर्मों—ईसाई, यहूदी और सायबीन के ही अनुयायी थे। इस काल की ईसाई जनता दो वर्गों में विभाजित थी—याकूबी और नस्तूरी। इन दोनों वर्गों के लोगों के साथ सद्व्यवहार किया जाता था, लेकिन याकूबियों के साथ विशेष सहानुभूति दिखायी जाती थी।

यहूदियों की दशा सन्तोषप्रद थी और वे ईसाईयों से अधिक सुविधाओं का उपभोग करते थे। पर समाज में इनकी संख्या कम थी। हाँ, बगदाद के समाज में इनकी संख्या काफी थी। उनके लिये अरब प्रदेशों में यत्र-तत्र पूजा-स्थलों का निर्माण किया गया था। ईसाईयों की तरह शासन के पदों पर ये भी नियुक्त थे।

सायबीन भी जिम्मी ही थे। विज्ञान एवं बुद्धि के वे भण्डार थे और इनकी सेनाओं से अरब का मुस्लिम राज्य लाभान्वित हुआ। इन्हें भी वही सुविधाएँ प्राप्त थीं।

महिला :

अब्बासी कालीन महिलायें समाज में स्वतन्त्र थीं। हालाँकि दसवीं सदी के अन्त तक समाज में पर्दा-प्रथा प्रचलित हो गयी, पर महिलाओं की सामाजिक स्वतन्त्रता कायम रही। इस काल में योग्य महिलाओं ने न केवल राज्य एवं राज–नीति को ही प्रभावित किया, प्रत्युत युद्धों में भाग लेकर सेना का भी संचालन एवं निर्देशन किया। मंसूर की दो चचेरी बहनों ने युद्ध में सेना का नेतृत्व कर अपनी वीरता का सफल परिचय दिया था। हारुन रसीद के काल में भी अरब की जवान अविवाहित महिलाएँ घोड़ों की पीठ पर बैठकर युद्ध-भूमि में सेना का संचालन करती थीं। मुक्तादीर की माता ने अपील की हाईकोर्ट की अध्यक्षता कर अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया था तथा प्रथा के आवेदन-पत्रों पर विचार कर अपना निष्पक्ष निर्णय दिया था। मुतावक्किल के काल तक विदुषी महिलाओं ने तत्कालीन राजनीति एवं साहित्य को काफी प्रभावित किया। रसीद की माता जुबैदा प्रतिभा-सम्पन्न महिला थी और कविता करने में सिद्धहस्त थी। वह काव्यों से भरे पत्रों को अपने पुत्र के पास भेजा करती थी। मामून की मृत्यु पर उसके द्वारा दिया गया शोकपूर्ण व्याख्यान उसकी साहित्यिक प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण है। मुतावक्किल के काल की एक प्रसिद्ध कवयित्री थी फज्ल। इस काल की शेखा सुहदा एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थी जो बगदाद में इतिहास पर भाषण किया करती थी। समस्त अरब में अपनी सुन्दर एवं आकर्षक लिखावट के लिये वह मशहूर थी। जैनब-अम-मुवैय्योय इस काल की महान विधि-वेत्ता थी जो बारहवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में पैदा हुई थी। कानून पढ़ाने के लिये उसने राज्य से लाइसेन्स प्राप्त किया था। अनेक महिलाओं ने नृत्य, संगीत आदि कलाओं के विकास में योगदान दिया। उबैदा नामक महिला ढोलक बजाने में इस युग में शानी नहीं रखती थी। खजूरन अपनी प्रशासनिक निपुणता के लिये प्रसिद्ध थी।

लेकिन हमें यह न भूलना चाहिए कि इन्हीं महिलाओं में कुछ रखैलें भी थीं जिन्होंने अब्बासी शासन के अन्तिम वर्षों में समाज की उच्च नैतिकता का हनन किया। 'अरेबियन नाइट्स में कामुक एवं विलास-प्रिय महिलाओं के उल्लेख मिलते हैं। इस पुस्तक में लेखक ने महिलाओं की धूर्तता तथा उनके द्वारा रचे गये षड्यन्त्रों की कहानी का उल्लेख कर तत्कालीन औरतों की करतूतों एवं मनःस्थिति का सफल वर्णन किया है।

इस युग में महिलाओं के प्रधान कार्य थे—गृह-कार्य में पति की सहायता करना, शिशुओं की देखभाल करना और अन्य घरेलू धन्धों का सम्पादन करना। अवकाश के क्षण में कताई और बुनाई का भी काम करती थीं।

औरतें आकर्षक पोशाकों को अधिक पसन्द करती थीं। सौन्दर्य-प्रिय सम्पन्न औरतें जवाहरात का काम किये हुए एक टोपी सिर पर धारण करती थीं। रशीदा की बहन उमैय्या ने इस फैशन का ईजाद किया था। औरतें नुपूर और वलय भी धारण करती थीं मध्यवर्गीय औरतें स्वर्ण-निर्मित एक चौड़ा आभूषण अपने सिरों पर धारण

करती थीं। ईरानी औरतों की नकल कर अरब की औरतों ने अपने कपोलों तथा ओठों को रंगना प्रारम्भ किया। सौन्दर्य-वृद्धि के लिये उन्होंने रंगों की सहायता से अपने चेहरों पर विन्दु बनाना प्रारम्भ किया। इस काल के लोग सुन्दर मुखवाली, काले केशवाली, रक्तिम कपोल वाली, छोटे मुँह वाली और मोती की तरह चमकते दाँत वाली औरतों को सौन्दर्ययुक्त मानते थे।[1]

पुरुषों की भी पोशाकें अनेक थीं। खलीफा और धन-सम्पन्न व्यक्ति अच्छे परिधान धारण करते थे। विधि-वेत्ता काली पगड़ी धारण करते थे जिसके ऊपर से गले तक गुलबन्द बाँधते थे जिससे पगड़ी स्थिर रहे। जनसाधारण सिल्क की टोपियाँ पहनने के शौकीन थे जिनके भीतरी भाग काले होते थे। कालान्तर में उस टोपी की जगह फेज टोपी ने ले ली। ढीला-ढाला पायजामा, कमीज, बण्डी, मिरजई, कपतान, अबा आदि भी पुरुष धारण करते थे। लोग मोजा का भी व्यवहार करते थे। सिल्क, ऊन एवं चमड़े के मोजे इस काल में बनाये जाते थे। यह भी उल्लेख मिलता है कि लोग रात्रि की पोशाक भी पहना करते थे जिसे 'कुमश धन नवम (Kumash un Nawm) कहा जाता था। बड़े जूते (Boosts) और साधारण जूते भी प्रयोग में लाये जाते थे। सैनिक प्रायः बड़े जूतों का प्रयोग करते थे। कभी-कभी दो जोड़े जूते एक ही साथ पहने जाते थे। मस्जिद में प्रवेश करते समय ऊपरी भाग वाला जूता बाहर ही खोल दिया जाता था तथा भीतर वाला पैर में ही लगा रहता था। चौकियों पर गद्दे लगाकर बैठने और भूमि पर कालीन लगाकर बैठने का प्रचलन आ गया था। लोग मेंजों पर भी खाना खाने लगे थे।

घरेलू सामग्रियाँ

एक जगह से दूसरी जगह उठाकर ले जाने वाले सामान उमैय्या काल से ही प्रयोग में आ गये थे। अब्बासी काल में पहली बार दीवान (सोफा) का आविष्कार हुआ जिसका प्रयोग प्रायः सभी परिवार के लोग करते थे। दीवान की बगल में लोग भोजन करने की मेज रखते थे। मेज लकड़ियों की बनी होती थी। धनी परिवार के लोग उनपर कीमती धातुओं का आवरण लगाते थे। खलीफा वाशिक ने स्वर्ण की एक मेज बनवायी थी जिसमें लकड़ी का कहीं भी व्यवहार

1. The woman's stature should be like the bamboo among plants, her face as round as the full moon, her hair darker than the night, her cheeks white and rosy with a mole not unlike a drop of ambergris upon a plate of alabaster, her eyes intensely black without any advantitions antimony and large like those of a wild deer, her eyelids drowsy or languid, her mouth small with teeth like pearls set in coral, her bosom pomegranat-like, her hips wide and her fingers tapering, with the extremities dyed with vermilion henna. —*Hitti;* pp. 334-35.

नहीं किया गया था। चाँदी और पीतल के ट्रे बनाये जाते थे जिन्हें उजले वस्त्र से ढँककर रखा जाता था। दो छड़ वाले काँटों का प्रयोग अमीर परिवार के लोग किया करते थे। प्रत्येक पुरुष के लिये एक नेपकिन रहता था। भोजनोपरान्त व्यक्ति के हाथों को नौकर घड़े के पानी से धुलाता था। हाथ से बनायी गयीं दरियों से घर की सतहें ढँकी जाती थीं। ग्रीष्म ऋतु में लोग बर्फ का व्यवहार कर अपने आवासों को ठंडा रखते थे। समाज में कॉफी और तम्बाकू प्रचलित नहीं थे। कॉफी पीने का प्रचलन 12 वीं सदी में दक्षिण अरेबिया में पहली बार किया गया। शेष उमर नामक व्यक्ति ने 656 हिजरी को कॉफी का आविष्कार किया था। शरबत पेय पदार्थ था जिसका सेवन अधिकांशतः धनी व्यक्ति ही करते थे। ग्लास-नुमा प्याले में शरबत तैयार किया जाता था जिसे केला, गुलाब, सहतूत, आदि मिलाकर सुगंधित बनाया जाता था। खजूर तथा किशमिश से 'नेबीज' नामक खाद्य पदार्थ बनाया जाता था। "शराब का सेवन भी अब्बासी समाज के लोग करने लगे थे। वजीरों के गृह में काजी विधिवेत्ता तथा शासन के अन्य पदाधिकारी एकत्र होकर शराब का सेवन करते थे। अधिक अमीर लोग अकेला शराब पीना पसन्द करते थे। हँसोड़ व्यक्ति शराबखोरी के समय चुटकुले सुनाकर एकत्रित व्यक्तियों का मनोरंजन करते थे। शराब पीने वालों में न केवल उच्च पदाधिकारी ही थे अपितु कवि, साहित्यकार तथा अन्य विद्वान भी। ईरान से से शराब का प्रचार अरब में हुआ।[2] हादी, अमीन, मामून, मुतासिम, मुतावक्किल आदि शराब के महान प्रेमी थे।"

हम्माम

पैगम्बर मुहम्मद कहा करते थे—"ईश्वर का विश्वास प्राप्त करने के लिये स्वच्छता आवश्यक है।" मुहम्मद साहब के उत्कर्ष के पूर्व अरब में हम्माम (Baths) नहीं थे। प्रारम्भ में मुहम्मद साहब भी उसके विरोधी थे। आगे चलकर स्वच्छता के नाम पर उन्होंने स्नानगृह बनाने की आज्ञा दे दी। अब अरब में अनेक हम्माम या स्नानागार बनने लगे।

अब्बासी काल में आम हम्माम बने। हम्माम मनोरंजन तथा विलासिता के साधन भी थे। औरतें और मर्द दोनों हम्माम को व्यवहार में लाते थे। लेकिन औरतें किसी खास दिन ही हम्माम में स्नान करती थीं। मुक्तादीर के शासन काल तक केवल बगदाद में ही 37000 आम हम्माम बन गये। बाद में इनकी संख्या बढ़कर 60,000 तक पहुँच गयी। सूर-यात्री इब्न बतुता ने बगदाद के तेरह गृहों में पश्चिम तरफ बने हम्मामों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार प्रत्येक गृह में दो-दो या तीन-तीन विस्तृत हम्माम बने हुए थे। इनमें कुछ प्रकोष्ठ बने हुए थे जहाँ वस्त्र-परिवर्त्तन किया जाता था। कुछ प्रकोष्ठों में शराब पीने तथा जलपान करने का काम किया जाता था।

---

2. Tahiz; Taj, pp. 23-72

क्रीड़ा

इस युग में अंतरंग एवं बहिर्द्वारी दोनों प्रकार की क्रीड़ाओं का विकास हुआ। अंतरंगीय क्रीड़ाओं को इस काल में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस काल में लोग शतरंज खेला करते थे। हारुन रशीद ने पश्चिम एशिया में शतरंज खेलने की प्रथा चलायी। शतरंज का खेल बड़ी तेजी से अरबों में घर कर गया। अब्बासी खलीफा भी शतरंज-प्रेमी थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वे आम जनता को भी शतरंज खेलने के लिये प्रभावित करते थे। इस खेल की विधि की जानकारी उन्हें भारत से मिली। शतरंज के प्रसार के पूर्व अरब के मुसलमान ताश तथा पासा खेला करते थे। एक बोर्ड (Board) की सहायता से एक प्रकार का खेल खेला जाता था। इसे 'नारद' (Trick-track) कहा जाता था।

बहिर्द्वारी क्रीड़ाओं को भी इस युग में विकसित होने का मौका मिला। ऐसी क्रीड़ाओं में तीरन्दाजी, पोलो, गेंद, मुगदरी, असिक्रीड़ा, बाल्लमबाजी, घुड़सवारी और शिकार आदि उल्लेखनीय हैं। मुगदरी एक प्रकार का हॉकी का खेल था। अरब में पोलों को 'चौकोन', हॉकी को 'सुलजान' और बल्लमबाजी को 'जरीद' कहा जाता था। अरबवासी तीर चलाने, गेंद और शतरंज खेलने तथा शिकार करने में बड़े निपुण थे। खलीफा विभिन्न क्रीड़ाओं में सामन्तों को भी शामिल करते थे। राजधानी तथा बड़े शहरों में घुड़सवारों की बरछेबाजी और नेजाबाजी का आयोजन किया जाता था। क्रिकेट से भी लोग परिचित थे। टेनिस खेलने और अग्नि में फाँदने का भी खेल खेला जाता था जिसमें स्त्री और पुरुष, दोनों भाग लेते थे। औरतें भी तीरन्दाज थीं। रक्का में एक बार घुड़दौड़ की प्रतियोगिता प्रारम्भ की गयी जिसमें खलीफा हारुन रशीद विजयी हुआ।

आखेट

आखेट में खलीफा एवं बड़े पदाधिकारी समान रूप से रुचि रखते थे। मुस्तानजीद के काल से आखेटकों का एक दल ही कायम हो गया। जानवरों का पीछा करने में सलादीन काफी साहस दिखलाता था। आमीन सिंह का शिकार करने में अभिरुचि रखता था। उसका भाई जंगली बाराह का निर्भयतापूर्वक शिकार करता था। अबू मुस्लिम, अल-खुराशावी तथा अल-मुतःसिम चीता का शिकार करने में निपुण थे।

अरब में श्येनबाजी का प्रचलन ईरान से आया। पश्चातकालीन अब्बासी शासकों एवं धर्म-युद्ध (Crusade) के काल में श्येन से शिकार में मदद लिया जाने लगा। बड़े शिकारों एवं खेलों में श्वानों, श्येनों, जंगली हंसिवी, तीतरों, खरहों, बत्तकों, हिरणों इत्यादि से मदद ली जाती थी। शिकार के हाथ लगते ही मुसलमान शिकारी का पहला कर्त्तव्य था उस जानवर की गरदन काट डालना जिससे उसका मांस वह खा सके। शिकारी दल बनाकर जानवरों के चारों तरफ घेरा डालते थे।

उस घेराव को अरब में 'हलका' (Halqah) कहा जाता था। जानवरों के निकट पहुँचते ही वे हथियारों से उनपर आक्रमण कर बैठते थे। मुतासिम ने दीवार का निर्माण किया जिसके अन्दर वह जानवरों को फँसाता था। कुछ अब्बासी खलीफा अपनी प्रजा के हृदय में भय पैदा करने के लिये बाघ और सिंह पाला करते थे। काहिरा का एक वजीर-पुत्र सर्प, वृश्चिक तथा अन्य जहरीले जानवरों को पालने का शौक रखता था। उन्हें पालने के लिये उसने राजभवन के निकट एक मकान का निर्माण कर लिया था।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अब्बासी समाज में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं में जनता एवं शासक दिलचस्पी लेते थे। बहिर्द्वारी क्रीड़ाएँ अधिकांशतः जानलेवा होती थीं और उनके चलते कभी-कभी प्राण संकट में पड़ जाते थे। पर ऐसी क्रीड़ाएँ मुसलमानों की मर्दानगी का द्योतक थीं जिन्हें खेलने में लोग अपनी शान समझते थे।

———

अध्याय 14

अब्बासी खिलाफत का अवसान

(Downfall of the Abbasid Caliphate)

खिलाफतों में पहली बार अब्बासियों ने एक विशाल साम्राज्य का संस्थापन किया था। संभवत: खलीफा उमर के उपरान्त इसी वंश के खलीफा विभिन्न राज्यों को जीतकर एक बृहत् साम्राज्य कायम करने में सफल हुए थे। उमैय्या वंश के शासन का संस्थापक मुआबिया ने भी इस्लामी राज्य की सीमा में विस्तार लाया था, किन्तु उसके उत्तराधिकारी साम्राज्य की विशालता को कायम रखने में सफल सिद्ध न हो सके थे। भारतीय शेरशाह की तरह मुआबिया केवल अपने जीवनकाल तक ही अपने साम्राज्य की सुरक्षा कायम रख सका और उसके निधनोपरांत इस्लामी साम्राज्य का महत्व धराशायी हो गया। अब्बासियों ने विघटित एवं बिखरे हुए इस्लामी राज्य को संगठित किया था और उसे साम्राज्य के रूप में परिणत कर उसे गौरव तथा मर्यादा के चरम बिन्दु पर पहुँचा दिया था।

किन्तु, अब्बासी खिलाफत की शक्ति भी सब दिन अजेय सिद्ध न हो सकी। जिस तेजी के साथ खलिफाओं ने अपने वंश के शासन का संस्थापन करते हुए इस्लामी साम्राज्य का निर्माण किया था उसी तेजी के साथ खिलाफत का पतन भी हुआ। अब्बासी शासन अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर 820 ई० तक पहुँच चुका था। बगदाद में खलीफा शासन के सर्वोपरि अधिपति थे और उन्होंने चतुर्मुखी विकास में विश्वास किया था। पर इसके एक सौ वर्ष के अन्दर (920 ई०) ही अब्बासी खिलाफत की सीमा में संकुचन आना प्रारंभ हो गया और सम्पूर्ण शासन विघटनकारी तत्वों का शिकार होने लगा। सच पूछा जाय तो नौवीं शताब्दी में ही विद्रोही अमीरों अथवा गवर्नरों ने उत्तरी अफ्रीका, मिश्र और सीरिया में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली और बगदाद के खलीफा तुर्की के भाड़ेदारों के नियंत्रण में रहने लगे। दशवीं शताब्दी में साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया और भी द्रुतगामी हो गयी। सन् 928 ई० में स्पेन में उमैय्यों ने 'कार्दोवा के खलीफा' की उपाधि धारण कर स्वतन्त्र रूप से शासन करना प्रारम्भ किया। मिस्र में 969 ई० में फातिम परिवार ने काहिरा खिलाफत की नींव डाल दी जिसमें 968 ई० तक सीरिया भी शामिल कर लिया गया। 945 ई० से 1055 ई० तक बगदाद के खलीफाओं पर फारसी खानदान के अमीरों का प्रभाव साबित होता रहा और फिर वे सिल्क तुर्कों की चपेट में पड़ गये जो महज एशिया से आये थे और भ्रामक उत्तेजना में आकर उन्होंने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था। संक्षेप में तेरहवीं सदी के मध्य तक मंगोलों के आक्रमण से अब्बासी

खिलाफत का पूर्ण विघटन हो गया। अब्बासी खिलाफत के पतन के साथ ही अरब की सारी एकता जाती रही और खिलाफत का वास्तविक इतिहास हमेशा के लिये समाप्त हो गया।[1]

मोटे तौर पर अब्बासी खिलाफत के पतन के कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—आन्तरिक कमजोरियाँ और विदेशी आक्रमण। आन्तरिक कमजोरियाँ शासन तथा समाज के विभिन्न अंगों में झलकने लगीं। राजनीतिक दृष्टि से शासन ढीला हो गया, सैनिक दृष्टि से कमजोर हो गया, धार्मिक दृष्टि से बिखर गया और आर्थिक दृष्टि से दुर्व्यवस्था का शिकार हो गया। इन सारे कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत करना आवश्यक है।

राजनीतिक कारण

वाह्य शक्ति के धक्का देने के पूर्व ही आन्तरिक भ्रष्टाचार ने खिलाफत की शक्ति को तोड़ दिया।[2] यह भ्रष्टाचार राजनीति तथा प्रशासन में अत्यधिक व्याप्त था। सर्वप्रथम हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि अब्बासी खलीफाओं की विजय हमेशा अधूरी रही। उन्होंने अनेक देशों पर केवल नाममात्र का अधिकार रखा, विभिन्न राज्यों को जीतकर भी उनके शासकों को बने रहने दिया और उनसे केवल खिलाफत की संप्रभुता स्वीकार करवा ली। जल्दीबाजी में प्रारम्भ किये गये अभियानों ने उनकी विजय को अधूरा रखा। तत्काल अब्बासियों के गौरव के दर्प से डरकर अनेक राज्यों ने उनकी संप्रभुता स्वीकार कर ली थी। पर जैसे ही अब्बासी खलीफा विलासिता के शिकार होने लगे और शासन की ओर से उदासीन हो चले वैसे ही विजित राज्यों ने सिर उठाना प्रारम्भ किया। साम्राज्य में विकेन्द्रीकरण की भावना का सृजन होने लगा। वैसे भी अधूरी विजय में विकेन्द्रीकरण के जन्म लेने की संभावना बनी रहती है। मिस्र तथा स्पेन ने बगावत का शंखनाद पहले किया और खिलाफत की कमजोरी को स्पष्ट कर दिया।

अब्बासी खिलाफत की शासन-व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी जिसके कारण शासन कभी भी स्थायित्व प्राप्त न कर सका। खलीफाओं ने उचित करों के अलावे अनुचित करों का भार भी जनता पर लाद दिया था। खलीफाओं का एक ही ध्येय था—अधिक से अधिक धन का अर्जन करना। कुछ समय तक लोग इस अनुचित कर को देते रहे, पर धीरे-धीरे शासन से उनको वितृष्णा हो चली

---

1. With its (Abbasid) fall Arab hegemony was lost for ever and the history of the real Caliphate closed.

—*P. K. Hitti, p 484.*

2. Internal factors corrupted the Caliphate before external force reduced it to subservience.

—*Will Durant, p. 202.*

और वे खिलाफत की अर्थ-नीति की आलोचना करने लगे। खलीफा के गवर्नर और अन्य पदाधिकारी भी शोषक थे।

अब्बासी खलीफा विलासिता के शिकार थे। विलासिता ने परवर्ती शासकों को नपुंसक तथा अकर्मण्य बना डाला। प्रारम्भिक खलीफाओं ने शासन को जैसी सफलता दी थी, परवर्ती शासक उसे कायम न रख सके। शराब और संगीत ने उन्हें व्यभिचारी बना डाला और वे प्रशासन से उदासीन रहने लगे। अब्बासी खिलाफत का खलीफा एक के बाद एक अयोग्य ही हुआ और शासन का पंजर ढीला होता गया। मुवक्किल, मुन्तास्सीर, मुतामिद आदि सभी के सभी अकर्मण्यता के शिकार थे।

शासकों की विलासिता के अतिरिक्त कमजोर उत्तराधिकारी खिलाफत के पतन के सबसे बड़े कारण थे। अल-अब्बास से लेकर अल-मुतासिम तक के सारे खलीफा योग्य ही नहीं, तलवार के भी धनी थे। मंसूर, हारुन रशीद तथा मामून तो निस्सन्देह महान शासक थे। उनके काल में साम्राज्य की सीमा में रोज-ब-रोज न केवल विस्तार आते गये, अपितु संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का विकास भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। समस्त विश्व में अब्बासी खिलाफत अपनी उच्च संस्कृति तथा महान शासकों को लेकर चर्चा का विषय बन गया। परन्तु स्वर्ण युग के दिन कायम न रह सके। परवर्ती खलीफाओं की कमजोरियों ने खिलाफत की मर्यादा को धूल-धूसरित कर दिया। मुतावक्किल, मुन्तास्सीर, मुतामिद, मुत्तकी आदि खलीफा इतने कमजोर सिद्ध हुए कि वे न तो साम्राज्य के राज्यों को नियंत्रण में रखने में सफल हुए और न आन्तरिक विद्रोहों का ही दमन कर सके। अतः कमजोर उत्तराधिकारियों के कंधों पर ढोये जानेवाले खिलाफत का विनाश होना ही था। शराब, संगीत तथा रखैलों ने खलीफाओं को कभी होश में नहीं आने दिया।

राजनीतिक पतन तथा घटती सैनिक शक्ति ने विघटन की स्थिति पैदा कर दी और खिलाफत के अन्त विद्रोही बनने लगे। प्रान्तों के गवर्नरों ने केन्द्रीय सत्ता को केवल नाम मात्र के लिए स्वीकार किया और वे लगभग स्वतंत्र शासन करने लगे। उन्होंने अपने शासन को वंश परम्परागत तथा स्थायी बनाने का प्रयास किया। स्पेन ने 756 ई० में और मिस्र ने 868 ई० में अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा कर डाली। सन् 877 ई० में मिस्र के अमीरों ने सीरिया पर अधिकार कर लिया और 1076 ई० तक उस पर शासन किया। प्रान्तों की इस स्वायत्तता ने अब्बासी शासन की कमजोरी को और भी स्पष्ट कर दिया।

धार्मिक कारण

अब्बासी खिलाफत के पतन का एक प्रधान कारण धार्मिक सम्प्रदाय भी हैं। अरब में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों ने जन्म ले लिया था जिनमें शिया, कर-माति, इस्माइली, एसेसिन आदि प्रमुख थे। एकता तथा बंधुता की भावना पर ये

सारे सम्प्रदाय कुठाराघात कर रहे थे। साम्रज्य के पूर्वी भाग में करमाती अपना प्रभाव कायम किये थे। पश्चिम के राज्यों पर फातिमी वंश के लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया था। अब्बासी खलीफा इन सम्प्रदायों का दमन करने में अशक्त सिद्ध हुए। अतः खिलाफत की एकता टूटने लगी। एकता के अभाव में सारे साम्राज्यों का विनाश हुआ है। अब्बासी साम्राज्य का भी पतन होना ही था।

आर्थिक कारण

अब्बासी खिलाफत के अवसान में आर्थिक तत्वों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि खलीफा अधिक से अधिक कर वसूल किया करते थे और उनके गवर्नर भी कर वसूलने में मनमानी करते थे। करों के भार तथा गवर्नरों के अधिनायकवाद से राज्य के व्यापार, उद्योग-धंधे, कृषि आदि प्रगति से दूर भागते गये। दूसरी तरफ आर्थिक अर्हता के आधार पर समाज मुख्यतः दो वर्गों में (धनी तथा गरीब) बँट गया। धनी धन-सम्पन्न बनते गये और गरीब दरिद्रता के शिकार होते गये। राज्यों के अन्दर छोटे-छोटे राज्य बनते गये। इससे समाज में गुलामों की संख्या बढ़ती चली गयी। गुलाम अपने स्वामियों द्वारा सताये जाने लगे और इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि उन्होंने (गुलाम) कृषि कर्म में मन लगाना छोड़ दिया। खिलाफत पर ईश्वर की कोपदृष्टि भी गिरी। निम्न मेसोपोतामिया में सूखा पड़ गया और राज्य के अनेक भाग दुर्भिक्ष के शिकार हुए। इन्हीं दिनों प्लेग, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों ने लोगों को कष्ट देना प्रारंभ किया। जनता आर्थिक विपन्नता के कारण इन रोगों से उपचार न कर सकी। विलासी खलीफाओं को इतना अवकाश ही नहीं था कि वे अर्थ विभाग को व्यवस्था दें और अपनी आर्थिक नीति में सुधार लाकर जन-व्यापी असन्तोष को दूर कर सके। अनेक लोग बीमारियों के शिकार हुए। ऐसा कहा जाता है कि उत्तरकालीन शासकों के काल में खिलाफत चालीस महामारियों का शिकार था। खलीफाओं द्वारा कुछ न किये जाने के कारण जनता शासन से विमुख हो चली।

सामाजिक कारण

कुछ सामाजिक कारणों ने साम्राज्य को विघटित करने में सहयोग दिया। अब्बासी खिलाफत ने एक विशाल साम्राज्य कायम कर लिया था। इस साम्राज्य में गैर-अरबी लोग भी निवास करते थे जो एकेश्वरवादी होते हुए भी भिन्न-भिन्न मतों में विश्वास वाले थे। अतः इन समस्त जातियों में एकता तथा मेल नहीं था। उनके मध्य मतभेद तथा तनाव की दीवार विद्यमान रही। अरबों तथा गैर अरबों के बीच, अरब के मुसलमानों तथा नये मुसलमानों के बीच, मुसलमानों तथा जिम्मियों के बीच एकता का सर्वदा और सर्वथा अभाव रहा। खुद अरब जातियाँ द्वेष एवं कलह से वंचित नहीं थीं। उत्तर तथा दक्षिण अरब प्रायद्वीप के निवासी एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। सेमेटिक अरबों, ईराकियों, तुर्कों आदि में पारस्पारिक द्वेष की भावना सर्वदा विद्यमान रही। इरान के लोग अपने पुरातन राष्ट्रीय गौरव को भूल नहीं सके और उससे चिपके रहे। उन्होंने अरबों को अपने से कभी भी श्रेष्ठ नहीं माना।

बर्बरों के मध्य अभी तक जातीय तथा कबीलेपन की भावना जीवित थी और वे किसी आन्दोलन और नियम को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। सीरियाई सदैव इस आशा में रहते कि उनके देश में सुफ़ियानी पुनः जन्म लेगा जो अब्बासी दासता से उनको मुक्ति दिलायेगा। एकता शासन के स्थायित्व के लिये आवश्यक है। जब अब्बासी खिलाफत में जातियों की विभिन्नता के कारण एकता ने दम तोड़ दिया तब खिलाफत की कमर भी टूटनी ही थी।

कुछ सामाजिक तथा नैतिक तत्वों ने भी गिरते हुए अब्बासी खिलाफत को धक्का दे दिया। विजित देशों की जातियों का सामंजस्य कालान्तर में धीरे-धीरे अरब की विजित जातियों से हो गया। इस सामंजस्य में वे एक दूसरे के गुण अव-गुण भी ग्रहण किये। अरबों के राष्ट्रीय जीवन का सारा गौरव विदेशी जातियों के मिश्रण से जाता रहा और इस विनाश के साथ ही अरबों के नैतिक आदर्श और उच्च नैतिकता भी समाप्त हो गयी। अब अब्बासी समाज विजयी एवं अजेय शक्ति-शाली जातियों का समाज न रहकर विजित जातियों का समाज बनकर रह गया। शासन पर ईरानियों का प्रभाव सर्वत्र धावित होने लगा। देश की मर्यादा तथा गौरव का परिसमापन हो गया और इससे अरबों में हीनभावना का समावेश हुआ। इन जातियों के आने से अरब में हरम कायम हुए, अपरिमित संख्या में रखैलों को रखने की परम्परा चल पड़ी। हिजड़ों की संख्या में काफी वृद्धि हुई, फिलमानों ने नारीत्व को समाप्त कर दिया, समाज तथा दरबार में षडयन्त्र रचे जाने लगे। इन असामाजिक तथा अनैतिक तत्वों ने गेंद की तरह इधर-उधर लुढ़कते हुए अब्बासी साम्राज्य को दूर तक उछाल दिया।

सैनिक कारण

अब्बासी खिलाफत का प्रसार उनके कुशल सैनिकों के बल पर हुआ था। प्रारम्भिक खलीफाओं ने अनुशासित, प्रशिक्षित तथा योग्य सैनिकों को लेकर सेना का संगठन किया था और यही कारण था कि प्रारम्भिक खलीफाओं को अपनी शक्ति का लोहा मनवाने में तथा राज्य विस्तार करने में काफी सफलता मिली थी। सेनापति भी योग्य तथा धवल चरित्र वाले थे। उनमें मर्दानगी तथा वीरता थी। इन सैनिकों के बल पर खलीफाओं ने न केवल खिलाफत की सीमा में विस्तार लाया था अपितु राज्यान्तर्गत उठनेवाले विद्रोहों का दमन भी किया था।

किन्तु कालान्तर में सैनिकों में अनेक दोष आ गये। जैसे-जैसे साम्राज्य का विस्तार होता गया वैसे-वैसे सैन्य संगठन की व्यवस्था भी दूषित होती गयी। साम्राज्य विस्तार के कारण आयी सम्पन्नता ने सैनिकों के जीवन में भ्रष्टाचार के पनपने का कारण बनी। वे शराब पीने लगे और यौन-तुष्टि के लिए औरतों को ढूढ़ने लगे। शराब तथा साकी ने उनकी वीरता को समाप्त कर दिया। इसी बीच खलीफा मुता-सिम ने एक स्थायी सेना का निर्माण किया जिसमें तुर्क तथा गैर-अरब जाति के लोग अधिक संख्या में नियुक्त थे। सभी नस्ल और राष्ट्र के सैनिक अपने-अपने नायकों के नेतृत्व को स्वीकार करते थे और खिलाफत के लिए सहानुभूति नहीं रखते थे।

साथ ही, तुर्की और अरबी सेनापति एक दूसरे से विद्वेष रखने लगे और प्रभुत्व के लिए उनमें पारस्परिक संघर्ष होने लगा। ऐसी स्थिति में सेना की शक्ति घट गयी। तुर्की के कारण सैनिक अब्बासियों के लिए घातक सिद्ध होने लगे। सैनिक कमजोरी ने खिलाफत को खोखला कर दिया।

विदेशी आक्रमण

कथित आन्तरिक कारणों ने अब्बासी खिलाफत के शासन को जर्जर कर दिया। उसे पूर्ण धराशायी करने के लिए एक हल्के से धक्के की जरूरत थी। विदेशी आक्रमणों ने इस धक्के का काम किया।

मंगोल-आक्रमण ने अब्बासी साम्राज्य के पतन को अन्तिम स्थिति पर पहुँचा दिया। 1253 ई० में चंगेज खाँ का वंशज (पोता हुलागु) ने हत्यारों (Assassins) और खिलाफत को विनष्ट करने के लिए एक सेना के साथ मंगोलिया से प्रस्थान किया। इस्माइली बन्धुओं (Assassins) के खिलाफ मंगोल सरकार ने अब्बासी खलीफा मुस्तासिम (1242-58) से सहायता की माँग की। लेकिन खलीफा ने उसकी माँग पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। 1256 ई० तक हुलागु ने अकेला हत्यारों की हत्या कर डाली, अलामूत पर कब्जा कर लिया और उनकी सारी शक्तियों का दमन कर दिया। अब उसे खलीफा के पास अपना दूत भेजकर अपनी प्रभुता स्वीकार करने को कहा। खलीफा द्वारा पुनः चुप्पी धारण करने पर जनवरी 1258 ई० में मंगोलों ने अपने सरदार के आदेश पर राजधानी की दीवार को तोड़ डाला। खलीफा बाध्य होकर अपने तीन सौ पदाधिकारियों तथा काजियों के साथ हुलागु से संधि करने के लिये दौड़ पड़ा। दस दिनों के बाद हुलागु ने इन सारे लोगों का बध कर डाला और शहर को लूटा तथा आग लगाकर उसकी सारी सुन्दरता नष्ट कर डाली। 1260 ई० तक उसे सीरिया के अलप्पी, हमा, हरीम आदि शहरों पर अधिकार कर लिया। अ: उसने दमिश्क पर घेरा डालने के लिए अपने सैनिकों की एक टुकड़ी वहाँ भेजी। इसी समय अपने भाई 'खान' की मृत्यु का सन्देश सुनकर वह ईरान लौट गया। लेकिन उसकी सेना ने सम्पूर्ण सीरिया पर अधिकार कर लिया। इसी समय मिस्र के मामलूक कुतुज ने सीरिया पर पुनः अधिकार कर लिया और पश्चिमी दिशा में मंगोलों के बढ़ते हुए कदम को रोका। कालान्तर में हुलागु ने वापस आकर सीरिया की विजय करने के लिए फ्रैन्कों से संधि करने का प्रयास किया, पर इस कार्य में सफल न हो सका। लेकिन ईरान में उसे मंगोल साम्राज्य कायम करने में सफलता मिली जहाँ अब्बासी प्रभाव का उन्मूलन हो गया।

अन्त में, ऑटोमन तुर्कों ने सम्पूर्ण अरेबिया पर कब्जा जमा लिया। सुलेमान (1520-63) के नेतृत्व में उनका साम्राज्य काफी दूर तक फैला। इस काल में सीरिया के मामलूक भी परास्त हुए और बगदाद से बुडापेस्ट तक तथा असवान से जिब्राल्टर तक तुर्की साम्राज्य फैल गया। अब्बासी वंश का अंतिम शासक मुतावक्किल था जो कैरो में रहने लगा। इसने अपनी सारी प्रशासनिक शक्ति तुर्की शासक सुलतान

सलीम को हस्तान्तरित कर दी। 1543 ई० में इसकी मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु के साथ ही मिस्र में अवशेष अब्बासी शासन का भी अन्तिम रूप से अवसान हो गया।

वास्तव में असभ्य मंगोलों एवं तुर्कों का आक्रमण एक ऐसा वाह्य कारण है जिसने अब्बासी वंश के शासन को सदा के लिए समाप्त कर दिया।[1]

अब्बासी खलीफाओं के पश्चात भी विभिन्न स्थानों पर खलीफाओं की परम्परा चलती रही, नाममात्र के लिए खलीफाओं का सम्मान भी रहा और मुख्य बात यह रही कि क्योंकि राजतन्त्र के बारे में कुरान चुप है, इस कारण खलीफा ही विभिन्न शासकों और सुलतानों को कानूनी शासक अथवा सुलतान स्वीकार करने के अधिकार का उपभोग करते रहे। अन्त में, प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने खलीफा के पद को समाप्त कर दिया और आधुनिक तुर्कों की परम्परा ने उसे दुबारा जीवित करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। अब इस्लामी संसार में खलीफा कहलाने वाला कोई व्यक्ति नहीं है।

---

1. Among the external factor the barbarian (Mongol or Tartar) onslaughts were in reality only contributory to the final downfall of the Abbasid rule. —Ibid.

अध्याय—15

सेन का उमैय्या खिलाफत

(Umayyad Caliphate of Spain)

इतिहासकार जे० बी० ट्रेन्ड ने स्पेन के उमैय्या खिलाफत की प्रशंसा में इस बात का उल्लेख किया है कि जिन दिनों यूरोप भौतिकवादी एवं आध्यात्मिक नजरिया से बिखर रहा था उस समय यूरोप के स्पेन नामक देश में एक अन्य सभ्यता का विकास हो रहा था। स्पेन में मुसलमानों की उमैय्या शाखा के लोगों ने एक नये वंश के शासन की स्थापना करके कला, विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि का अभूतपूर्व विकास किया और स्पेन यूरोप का चिराग बन गया। स्पेन की इस मुस्लिम सभ्यता ने सदियों तक यूरोप तथा विश्व के अनेक देशों को प्रभावित किया और विश्व की सभ्यता के इतिहास में यह सभ्यता एक मील स्तम्भ बन गयी।

इस्लाम के पूर्व का स्पेन

हिजरी की पहली सदी में ही अरबों ने उत्तरी अफ्रीका के राज्यों पर आक्रमण किया था और अतलान्तिक महासागर तक अपनी सत्ता का विस्तार कर लिया था। इस्लाम के नुमाइन्दों ने उत्तरी अफ्रीका में मुसलमानी शासन की स्थापना भी कर डाली थी। सन् 709 ई० तक मूसा इब्न-नुसैर ने (जो मुसलमानी गवर्नर के रूप में उमैय्या गवर्नर था), अफ्रीका के मोरक्को पर भी अधिकार कर लिया था। सेउता के विजेन्ताइन गवर्नर काउन्ट जुलियन (Julian) ने मुसलमानी गवर्नर मूसा के प्रति सहानुभूत था और उसे आईबेरियन प्रायद्वीप के विजय-कार्य में काफी सहयोग दिया था।

जिन दिनों मुसलमानों के शक्तिशाली सैनिक अफ्रीकी राज्यों को रौंद रहे थे उन्हीं दिनों स्पेन का शासक रोडेरिक था जो विसीगाँवा कबीले का था और जिसने विसीगोथिक राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी एशीला (Achila) को पदच्युत कर गद्दी पर अधिकार कर लिया था। किन्तु इस अपहरणकर्त्ता शासक

1. It cannot be denied that while Europe lay for the most part in misery and decay, both created a splendid civilization and an organised economic life. Muslim Spain played a decisive part in the development of Art, Science, Philosophy, and poetry, and its influence reached even to the highest peaks of the Christian thought of the 13th century, to Thomas Acquinas and Dante. Then, if ever, Spain was the tourch of Europe.

—*I. B. Trend; the Legacy of Islam, p. 5.*

की स्थिति स्पेन में सुरक्षित नहीं थी। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि लोग उसे वास्तविक शासक के रूप में स्वीकार नहीं कर रहे थे क्योंकि उसने गद्दी के वास्तविक दावेदार को हटाकर उसपर अधिकार कर लिया था और दूसरा यह कि उसके उत्पीड़न तथा अत्याचार से प्रजा उससे घृणा करने लगी थी। उसका नंगा निरंकुशवाद एवं अत्याचारी शासन लोगों को यहाँ तक अप्रसन्न कर दिया था कि वे उसके विरुद्ध स्पेन पर होने वाले बाह्‌य आक्रमणों का भी स्वागत करने को तैयार थे और इस बात के लिये कमर कसकर बैठ गये थे कि स्पेन पर आक्रमण करने वाले विदेशी आक्रान्ताओं को मदद देकर अत्याचारी शासन से मुक्ति पायेंगे। रोडेरिक धर्मान्ध भी था और इस कारण स्पेन में निवास करने वाले यहूदी भी विसोगॉथ शासन से असन्तुष्ट थे। अतः स्पेन की राजनीतिक दुर्व्यवस्था और शासकों की धर्मान्धता मुसलमानों को अनुकूल अवसर प्रदान कर रही थी। ऐसी स्थिति में मुसलमान आक्रमणकारी बड़ी आसानी से स्पेन पर अधिकार कर सकते थे, वहाँ इस्लाम का प्रसार कर सकते थे और अपनी सत्ता कायम कर सकते थे।

जुलियन ने, जो प्रान्तीय शासक मूसा के प्रति सरल भावना था, स्पेन पर आक्रमण करने के लिये उसे उत्प्रेरित किया और देश को दयनीय राजनीति का इतिहास खोलकर स्पेन विजय का मार्ग बताया। किन्तु जुलियन द्वारा उत्प्रेरणा पाकर भी मूसा स्पेन पर तत्काल आक्रमण करने में विवश था क्योंकि उसे दमिश्क के खलीफा वालिद से स्पेन पर आक्रमण करने का कोई आदेश नहीं मिला था। किन्तु मूसा ने तत्काल एक काम किया। उसने बर्बरों को क्रियाशील बनाये रखने के लिये सेनानायक अबू जूरा तारीफ के नेतृत्व में एक लघु सैन्य टुकड़ी को आक्रमण करने के लिये भेज दिया। तारीफ ने 500 सैनिकों को लेकर 'तारीफा' नामक स्थल पर आ धमका। पुनः दूसरे वर्ष 710 ई०) एक दूसरे सेनानायक तारीक इब्न-जियाद को 7000 सैनिकों के साथ जलडमरूमध्य के पार भेज दिया गया। पीछे से अफ्रीकी गवर्नर मूसा ने कुछ और सैनिकों को भेज दिया। अब जियाद के पास लगभग 12000 सैनिक हो गये। इन सैनिकों की सहायता से ज़ियाद को जिब्राल्टर (तारिक) पर कब्जा जमाने में सफलता मिली। हौसला की वृद्धि में जिब्राल्टर की विजय ने आग में घी का काम किया और जियाद अब स्पेन के शासक रोडेरिक का सामना करने के लिये आगे बढ़ गया। बारबातें नदी के मुहाने पर स्थित जनदा नामक स्थान में रोडेरिक की विशाल सेना मुट्ठी भर मुसलमानी सेना से बुरी तरह हार गयी और रोडेरिक को युद्ध-भूमि छोड़कर भागना पड़ा।

जनदा की विजय साधारण विजय न थी। स्पेन की राजधानी तोलेदो पर अधिकार करने के लिये जियाद ने अपने सैनिकों की अनेक टुकड़ियाँ बना डाली और उन्हें यत्र-तत्र आक्रमण करने का आदेश दे दिया। चारु चपलता की तरह गतिशील मुस्लिम सेना ने देखते ही देखते आर्चीनोडा (Archinoda), एल्वीरा (Alvira), कार्दोवा (Cardova), मलागा (Malaga), एसीजा (Acija) आदि अनेक नगरों पर कब्जा जमा लिया।

जियाद की सफलता ने गवर्नर मूसा को ईर्ष्यालु तथा शंकालु बना दिया। देखते ही देखते इस वीर सेना नायक ने स्पेन के आधे हिस्से पर अधिकार कर लिया था। विजयी सेनानायक कहीं स्वयं स्वतन्त्र शासक न बन जाय और उसकी महत्वाकांक्षा आकाश न चूमने लगे, इसलिये गवर्नर मूसा ने स्वयं एक सेना लेकर प्रस्थान किया और राजधानी तोलेदो आ पहुँचा। उसने सेनानायक को यह आरोप लगाकर कि उसने अभियान को बन्द करने का आदेश पाकर भी जारी रखा कोड़ों से पीटा। पर भविष्य में उसे भी खलीफा के हाथों यही सजा मिलनेवाली है, यह मूसा नहीं जानता था।

मूसा तथा जियाद के चलते स्पेन अब दमिश्क के खलीफा का अधिकृत राज्य बन गया। अरबों ने स्पेन का नया नामकरण किया और इसे 'अन्दालूसिया' कहकर पुकारा। मूसा ने अपने दूसरे पुत्र अब्दुल अजीज को स्पेन का शासक बना दिया। अजीज ने उत्तरी-पूर्वी स्पेन का जीतकर सम्पूर्ण स्पेन की विजय का कार्य पूरा कर दिया। मुसलमानों ने सदियों तक स्पेन पर शासन किया।

स्पेन में मुसलमानों की सफलता के कारण

कुछ ही वर्षों के अन्दर मुसलमानों ने स्पेन को अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ इस्लाम का झंडा लहरा उठा। आखिर मुसलमानों की सफलता के कारण क्या थे? स्पेन क्यों पराजित हो गया? इसके कुछ विशेष कारण हैं।

स्पेन दो जाति के लोगों का देश बन गया जो आपस में विद्वेष तथा वैमनस्य रखते थे। ये दो जातियाँ थीं स्पेनी रोमन तथा विसीगाँथ। स्पेन के मूल निवासी रोमन थे जिन्हें हम 'स्पेनी रोमन' के नाम से पुकार सकते हैं। पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में ही यहाँ विसीगांथों ने प्रवेश किया। रोमनों तथा विसीगांथों ने स्पेन में सत्ता पर अधिकार करने के लिये होड़ प्रारम्भ कर दी और वे लड़ पड़े। संघर्ष में नयी जाति को सफलता मिल गयी और विसीगांथ शासन करने लगे। ऐसी स्थिति में रोमनों ने विसीगांथों के विनाश के लिए शपथ ले ली। जब मुसलमानी आक्रान्ताओं ने स्पेन पर आक्रमण किया तब स्पेनी रोमनों ने खुलकर उनका साथ दिया। ऐसे अनुकूल वातावरण में इस्लाम के सिपाहियों को स्पेन में सफलता मिलनी ही थी। गृह-कलह पतन का कारण होता है।

स्पेन में एक तीसरी जाति के लोग भी निवास करते थे। वे थे यहूदी। विसीगांथ शासकों ने इन यहूदियों के प्रति असहिष्णुता दिखलाई और उनके धर्म पर आक्रमण किया। उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता कुचल दी गयी और उनका अनेक प्रकार से उत्पीड़न किया। इतना ही नहीं, 612 ई० में उन्हें धर्म परिवर्त्तन करने के लिए राजकीय आदेश दिया गया। इसी समय उनकी सम्पत्ति भी छीन ली गई। इन यहूदियों ने प्रचलित शासन का विरोध करना प्रारम्भ किया और वे उनके शत्रु बन बैठे। जब मुसलमानों ने स्पेन पर आक्रमण किया तब यहूदियों ने

उनका स्वागत किया और मुसलमानों को अपना "मुक्तिदाता" मानकर उन्हें सहयोग दिया। इस प्रकार स्पेन के रोमन और यहूदी दोनों विसीगॉथ शासकों के विरुद्ध थे।

स्पेन की आन्तरिक दशा भी अच्छी नहीं थी। मुसलमानों के आक्रमण के समय स्पेन के सामन्तों ने अपने विभिन्न स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने शासकों से संघर्ष करना प्रारम्भ किया था। शक्तिशाली सामन्त शासन के स्तम्भ थे। उनके संघर्ष ने शासकों को शक्तिहीन बना डाला। ऐसी स्थिति में जब मुसलमानों ने स्पेन पर आक्रमण किया तब सामन्तों ने भी शासकों का साथ नहीं दिया।

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि रोडेरिक ने एशीला से गद्दी का अपहरण किया था। इससे एशीला के समर्थक रोडेरिक से असन्तुष्ट थे। जब मुसलमानों ने स्पेन पर आक्रमण किया तो एशीला के समर्थकों ने मुसलमानों का साथ दिया। इस प्रकार स्पेन का प्रत्येक वर्ग विसीगॉथ के शासकों का सहयोग कर रहा था।

वाह्य शक्ति भी मुसलमानों का साथ दे रही थी। सेउता के विजेन्ताइन जूलियन ने स्पेन पर आक्रमण करने के लिए मूसा को परिस्थिति की अनुकूलता का दिग्दर्शन कराकर परामर्श दिया था। इससे भी मुसलमानों को स्पेन पर आक्रमण करने की प्रेरणा मिला थी। फलतः मुसलमानो की बबर सेना ने स्पेन-विजय में सफलता पाई।

स्पेन में अमीरों का शासन

जब मुसलमानों ने स्पेन पर आक्रमण कर लिया तब उन्होंने यूरोप के अन्य देशों को भी अपने अधिकार में करने का प्रयास किया किन्तु, फ्रांस के सैनिकों ने 732 ई० में टूर्स की लड़ाई में मुसलमानों को पराजित किया और उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। अन्त में, स्पेन तक मुसलमानों ने अपने को सीमित रखा और अमीरों का शासन स्पेन पर प्रारम्भ हुआ

अब्दुल अजीज स्पेन का पहला अमीर बना जो मूसा का दूसरा पुत्र था। अजीज ने सेवाईल को राजधानी बनाकर शासन करना प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि रोडेरिक की विधवा पत्नी एगीलोना से सादी करके अब्दुल अजीज ने ईसाई बननेका उपक्रम किया। इस बात की सूचना जैसे ही दमिश्क के खलीफा सुलेमान को मिली वैसे ही उनका आक्रोश बढ़ गया। उसके आदेश से अजीज का शिर काट दिया गया और उसे राजधानी दमिश्क भेज दिया गया। इस प्रकार प्रथम अमीर का शासन खास महत्वपूर्ण नहीं रहा।

अजीज के उपरान्त स्पेन की गद्दी पर दो अन्य बेकार अमीर आये। चौथा अल-शाम इब्न-मलिक अल-खबलानी एक योग्य शासक सिद्ध हुआ। इसने राजधानी

का परिवर्त्तन किया और कार्दोवा को नयी राजधानी के रूप में परिणत किया। परवर्ती उमैय्या राजवंश के काल में कार्दोवा सभ्यता और संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र बना।

अल-खबलानी के बाद मुदरीतियों (Mudarites) और यामनीतियों (Yamanites) के बीच अमीर मद के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुए और अन्त में दोनों ने समझौता करके इस निर्णय को स्वीकार किया कि एक-एक वर्ष के लिए दोनों शाखाओं के लोग अमीर के पद पर आयेंगे। समझौता के बाद मुदरीतियों का प्रतिनिधि युसुफ इब्न अब्दुर्रहमान अल फिहरी अमीर बना और खलीफा मरवान द्वितीय ने 740 ई० में उसके पद को मान्यता भी दे दी। इस अमीर ने समझौते को अस्वीकार किया और दश वर्षों तक लगातार शासन करता रहता। इस अमीर को पदच्युत करके अब्दुर्रहमान इब्न-मुआविया ने स्पेन में उमैय्या खिलाफत की स्थापना की।

अब्दुर्रहमान और उमैय्या वंश का संस्थापन

पिछले अध्याय में हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि अल-सफा के शासन-काल में उमैय्यों का बध करने के लिये अब्बासियों की रक्तरंजित तलवारें उठी थीं और किसी तरह उनसे बचकर अब्दुर्रमान[2] नामक एक उमैय्या, जो हिशाम का पोता था, सीरिया से भागकर मौरीतानिया आ गया था। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और स्पेन आते ही उसने अपने वंश के शासन को पुन: नये ढंग से कायम करने का प्रयास करना प्रारम्भ किया। उसे अपने ध्येय की पूर्त्ति में सफलता भी मिली और स्पेन में 756 ई० में ही उसने नये उमैय्या वंश के शासन की नींव को डालकर उसे दृढ़ करना प्रारम्भ किया। स्पेन में उस मत्वाकांक्षी व्यक्ति ने किस प्रकार उमैय्यों के शासन की नींव को कायम किया, इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

मौरीतानिया आते ही अब्दुर्रहमान के सामने सबसे पहला काम था— अपने पूर्वजों के प्रदेशों पर पुन: अधिकार करना और समस्त उमैय्यों को नव जीवन देना। पर अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। अत: अब्दुर्रहमान ने अपने कबीला के लोगों से सहायता की याचना की। उसने शीघ्र ही कुछ उमैय्यों को मिलाकर एक दूतमण्डल का संगठन कर लिया और उसे सीरिया भेजकर अपने समर्थकों को अपने उद्देश्य से परिचित कराया। उसके समर्थकों ने उत्साहपूर्वक दूतमण्डल के सन्देश को स्वीकार किया और अब्दुर्रहमान को सहायता देने का वादा किया। इतना ही नहीं उन्होंने अपने इस पथ-प्रदर्शक को अपने देश के लिये निमंत्रण भी दिया। जब उनके लिये धैर्य रखना असम्भव हो गया तब वे स्वयं एक दल बनाकर स्पेन की ओर चल पड़े, जहाँ उनके जीवन में एक नयी सुबह आने-

---

2. यह हिशाम खलीफा के पुत्र मुआविया का पुत्र था। इसलिए इसे इब्न मुआविया भी कहा जाता है।

वाली थी। 755 ई० में जहाज के जरिये वे स्पेन के पश्चिमी किनारे पर उतर गये और मुनक्कब (Munakkab) में अपने नेता की प्रतीक्षा करने लगे। अब्दुर्रहमान के आने पर उमैय्यों ने स्पेन के गवर्नर युसुफ को, जो अब्बासी खलीफाओं द्वारा नियुक्त किया गया था, पदच्युत करने का प्रयास किया। सेना का संगठन कर लिया गया और युसुफ पर आक्रमण कर दिया गया। बड़ी आसानी से युसुफ को परास्त किया गया और स्पेन पर उमैय्यों का अधिकार कायम हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् अब्बासी गवर्नर युसुफ ने अपनी शक्ति की पुनः अजमाईश की, पर इस बार भी वह उमैय्या सैनिकों के समक्ष घुटने टेक दिया। युद्ध से भागते समय उसका सिर काट डाला गया।

खानाबदोश अब्दुर्रहमान अब स्पेन का स्वामी था, घुमक्कड़ की जिन्दगी गुजारने वाला अब एक राज्य का शासक बना। स्पेन में नये उमैय्या वंश के शासन की नींव डाली और अपने कबीला के लोगों के खोये हुए गौरव को पुनः वापस लाया।

लेकिन दुर्भाग्यवश अब्दुर्रहमान को सुख-भोग करने का अवसर नहीं मिला। अरब के उमरा और बद्दू उसके निजी शासन का विरोध करने लगे। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में विद्रोह करके अशान्ति पैदा करना प्रारम्भ किया तथा स्वयं स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयास भी किया। इन विद्रोहियों ने लियोन, कतालोनिया, नावेरे के ईसाई पेपोन तथा उसके पश्चात् उसके पुत्र शार्लमों से सहायता लेना प्रारम्भ किया। ईसाई शासक भी यह चाहते थे कि कारडोवा (स्पेन में) किसी भी तरह मुस्लिम शासन कायम न हो। फ्रैंक राजाओं ने खुलकर उमैय्या विरोधी तत्वों का साथ देना प्रारम्भ किया।

अब्दुर्रहमान हिम्मत हारने वाला व्यक्ति नहीं था। कठिनाइयों के थपेड़े खाकर वह अभी तक आगे बढ़ा था। अतः कठिनाईयाँ उसके गले का हार थीं। उसने असाधारण शक्ति का परिचय देते हुए विद्रोहियों एवं फ्रान्स के ईसाई शासकों से लोहा लेना प्रारम्भ किया। अनेक जगहों पर विद्रोहियों को उमैय्या सेना के समक्ष झुकना पड़ा। कुछ ही वर्षों के अन्दर सारे विद्रोहियों का दमन कर दिया गया। सामन्तवादी व्यवस्था पर, जिसके उन्नायक अरब के उमरा थे, राजतन्त्रीय व्यवस्था की विजय हुई। इस विजय का प्रधान कारण यह था कि अरब के विद्रोहियों में एकता नहीं थी और दूसरी तरफ अब्दुर्रहमान के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। जल्दी ही अमीर अब्दुर्रहमान का बोलबाला सर्वत्र कायम हो गया।

जिन दिनों अब्दुर्रहमान उमराओं के विद्रोहों का दमन कर रहा था उन्हीं दिनों ईसाई राज्य की सेना स्पेन के मुसलमानों को लूट रही थी। ईसाई लुटेरों ने मुस्लिम शहरों को जलाकर खाक कर डाला, उनके खेतों की लहलहाती फसलों को रौंद डाला, उनके गृहों को धराशायी कर दिया और अनेक मुसलमानों को अपना गुलाम बना लिया। उनके भीषण आक्रमण से तंग होकर मुसलमानों ने उत्तरी स्पेन के भूखण्डों को खाली कर दिया। अलफोन्सो के पुत्र फ्रूएला ने लूगों, ओपटो,

सलानका, कास्टियाला, जमोरा और सेगोबिया पर कब्जा जमा लिया। लुटेरों ने फ्रैंक शासक शार्लमों से भी सहायता ली। शार्लमों ने सुअवसर पाकर स्वयं स्पेन पर अधिकार करने का प्रयास किया। एक विशाल सेना लेकर उसने पर्वतों को पार किया और मार्ग के राज्यों पर कब्जा करते हुए सारगोसा तक आ धमका। लेकिन हुसेन बिन याहया अल-अन्सारी को शक्तिशाली सेना से टकराकर शार्लमा को पीछे हटना पड़ा विजय की आशा छोड़कर अन्ततोगत्वा उसे स्वदेश वापस लौटना पड़ा। वापसी के वक्त पिरेनीज पार करती हुई शार्लमों की सेना पर मतरु तथा आयसून, जो सुलेमान के पुत्र थे, ने पीछे से आक्रमण किया। उनके पृष्ठ-रक्षकों को काट डाला गया और उनके कुछ सामन्त मार डाले गये। विवश होकर शार्लमों को अब्दुर्रहमान से सन्धि करनी पड़ी। राज्य में पुनः आन्तरिक शान्ति कायम हो गयी।

अब्दुर्रहमान अब स्पेन का निष्कण्टक शासक था। हालांकि उसके सगे-संबंधी ही उसके शासन का विरोध कर रहे थे, फिर भी अपनी वीरता एवं बुद्धिमत्ता के जरिये राज्य के शासन को स्थायित्व प्रदान करने में उसे सहायता मिली। एक दिन अब्दुर्रहमान को कारडोवा की गलियों में घूमते समय कोई साथ देने वाला नहीं था और उसे अकेला सारी यन्त्रनाओं को सहना पड़ता था। पर अब वह सदैव अपने शुभचिन्तकों एवं भृत्यों से घिरा रहने लगा। उसकी लोकप्रियता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी।

कारडोवा में उमैय्या वंश का सशक्त शासन कायम करने के उपरान्त अब्दुर्रहमान ने प्रशासन-सुधार एवं जन-कल्याण की ओर भी ध्यान दिया। वह स्वयं कला एवं संस्कृत का प्रेमी तथा विद्वान पुरुष था। अपने युग का वह एक सफल कवि था। वह सौन्दर्य प्रेमी भी था और कारडोवा की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए अकथ प्रयास किया। उसने भव्य भवन बनाकर तथा सुन्दर बाग लगाकर कारडोवा को आकर्षक बनाया। अरब से खजूर के वृक्ष मँगाये गये और उन्हें कारडोवा के बाग में लगाये गये। उसने वहाँ एक मस्जिद की भी नींव डाली, लेकिन उसे पूर्णता प्रदान न कर सका। स्पेन में उसने सुन्दर सड़कों का निर्माण कराया और डाक-विभाग का संगठन किया।

कारडोवा की जनता अमीर अब्दुर्रहमान का काफी सम्मान करती थी। इसका कारण था अमीर की समदृष्टि। रंग, रूप, जाति आदि का भेद-भाव हटाकर वह सारी प्रजा को एक समान प्यार करता था। राज्य में निवास करने वाले अल्पसंख्यक जिम्मियों के साथ भी उसने सद्व्यवहार किया और उन्हें अनेक प्रकार की सुविधायें दी। दुखी एवं दरिद्र जन भी उससे सदैव आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे। अनुचित एवं कठोर करों को हटाकर उसने प्रजा पर केवल जजिया लगाया। राज्य के अपाहिज, वृद्ध एवं निर्धन इस टैक्स से मुक्त थे। किसानों से मालगुजारी के रूप में उपज का केवल पाँचवा हिस्सा लिया गया।

इतिहासकार अल आथिर ने इस अमीर की शारीरिक सुन्दरता एवं प्रशासनिक क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसके शब्दों में "अमीर अब्दुर्रहमान लम्बा, पतला और बक्रकार था। वह विद्वान, प्रतिभा-सम्पन्न तथा कवि था। वह अपरिमित शक्ति का मूर्त्त रूप भी था। विद्वता एवं दूरदर्शिता में वह अपने युग के अनेक शासकों में अग्रगण्य था। उसमें काम करने की अपरिमित लगन एवं नम्र उदारता थी। अब्बासी खलीफा मंसूर की तरह वह अध्यावसायी था और प्रशासनिक क्षमता के गुण भी उसमें विद्यमान थे।"

तैंतीस वर्षों तक शासन करने के उपरान्त 57 वर्ष की अवस्था में उमैय्यों की खोयी मर्यादा को वापस लाकर 788 ई० में अमीर अब्दुर्रहमान चल बसा।

अब्दुर्रहमान के उत्तराधिकारियों ने 788 ई० से लेकर 912 ई० तक और पुनः 912 ई० से लेकर 1031 ई० तक शासन किया। उसके समस्त उत्तराधिकारी कुशलतापूर्वक शासन चलाने में अक्षम थे और उनमें राजनीतिक तथा प्रशासनिक सूझ-बूझ का नितान्त अभाव था। अतः उनके काल में उमैय्या राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था दिनानुदिन बिगड़ती गयी तथा राज्य की सीमा संकुचित होती गयी। एक दिन ऐसा भी आया कि उमैय्या शासन की सीमा सिमटकर इतनी छोटी हो गयी कि केवल कारडोवा पर ही इस वंश के अन्तिम शासक का अधिकार रहा। हाँ, अब्दुर्रहमान अल-नासिर के काम में स्थायित्व लाने के लिये पुनः एक क्रान्ति हुई और सम्पूर्ण स्पेन पुनः उमैय्या शासक की संप्रभुता स्वीकार करने लगा। पर यह केवल टिमटिमाते दीप की अन्तिम प्रज्वलित लौ थी जो जल्द ही बुझकर शान्त हो जाने वाली थी। शासन के इस दुर्बल पक्ष का संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

हिशाम (788-796)

अब्दुर्रहमान के मृत्योपरान्त उसका पुत्र हिशाम अमीर बना। इतिहासकार डोली के मतानुसार हिशाम एक धार्मिक शासक था और नम्रता इसके चरित्र का सबसे बड़ा गुण था। कारडोवा की गलियों का भ्रमण करके वह अपनी प्रजा के कष्टों एवं समस्याओं की जानकारी प्राप्त करता रहता था। रुग्न एवं दरिद्रों की सेवा करने में वह अपार सुख का अनुभव करता था। रोगियों की सेवा करने के लिए उनकी शैय्या के निकट अहर्निश बैठा रहता था। ऐसा उल्लेख मिला है कि वर्फ एवं वर्षा के गिरते रहने पर भी वह दरिद्रों के घर भोजन लेकर स्वयं चला जाता था। दान देने में भी वह पीछे नहीं था। इसके शासन काल में शायद ही कोई ऐसा मस्जिद का प्रहरी एवं दरिद्र होगा जो उससे दान प्राप्त न किया हो।

हिशाम में केवल मानवीय गुण ही नहीं थे प्रत्युत प्रशासनिक क्षमता भी थी। शासन को जीवंत एवं दृढ़ बनाने के लिये उसने काफी प्रयास किया। राज्य की आन्तरिक शक्ति को भंग करने वाले सारे तत्व उसके सबल हाथों से दबकर नष्ट हो गये। उसने उन लोगों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था को जो राज्य में अनुचित

कार्य करते थे। उसने निर्माण-सम्बन्धी कार्यों को भी आगे बढ़ाया उसने 'अल-साम' (As-Samah) के सेतु का निर्माण किया और अब्दुर्रहमान द्वारा प्रारम्भ की गयी मस्जिद को पूरा किया। अनेक सार्वजनिक भवनों को बनाकर हिशाम ने समस्त कारडोवा को भर दिया।

पर उसके चरित्र की महानता एवं शासन की कठोरता अमीरों को विद्रोह करने से नहीं रोक सकी। अमीरों के विद्रोह से नव स्थापित उमैय्या वंशीय शासन के स्थायित्व एवं दृढ़ता को गहरा धक्का लगा। अपने शासन के प्रारम्भिक चरण में ही हिशाम को अपने विद्रोही एवं छली भाईयों से लोहा लेना पड़ा। उनका जैसे ही दमन हुआ वैसे ही हिशाम को इब्रों की ओर प्रस्थान करना पड़ा जहाँ मतरू ने विद्रोह कर दिया था। मतरू से शार्लमों ने साँठ-गाँठ कर ली थी और स्पेन पर आक्रमण करने के लिये उसे आमन्त्रित भी किया था। पर हिशाम को इस विद्रोह का दमन करने में भी सफलता मिली। मतरू मार डाला गया और सारगोसा तथा वारसेलोना ने पुनः उमैय्या शासन की संप्रभुता स्वीकार कर ली।

इन दोनों विद्रोहों के दमनोपरान्त हिशाम ने उत्साहित होकर अब उत्तर की ओर प्रस्थान किया और ईसाई लुटेरों से राज्य की प्रजा की रक्षा करने के लिये कदम उठाया। लुटेरों की लूट के चलते राज्य को धन-जन की काफी क्षति उठानी पड़ी थी। लेकिन इन लुटेरों का दमन करना हिशाम के लिये कठिन प्रतीत होने लगा। इसका कारण यह था कि लुटेरों को वाह्य सहायता मिल रही थी और फ्रेन्क खुलकर उनका साथ दे रहे थे। हिशाम ने फ्रेन्कों से 792 ई० में युद्ध ठान दिया उसने सेना के दो दस्तों को उसके विरूद्ध युद्ध करने के लिए भेजा। एक दस्ता कतालोनिया होकर आगे बढ़ा और फ्रान्स में प्रवेश किया। इस दस्ते ने बड़ी तेजी से सरडेने (Cerdagne) को रौंद डाला, नारबोवे तथा अन्य स्थानों पर कब्जा कर लिया और विलेडेने (Villdaigne) में तौलोस (Toulouse) के काउण्ट को, जो फ्रान्स की सेना का नेतृत्व कर रहा था, बुरी तरह परास्त किया।

सेना का दूसरा दस्ता भी करतब दिखलाने में पीछे नहीं रहा। उसने गेलोशिया की विद्रोही जाति को, जिसका नेतृत्व बरमूद (Bermudah) कर रहा था, मजा चखाया और उसका दमन कर डाला। अनेक विद्रोही जंग में काम आये। बाध्य होकर विद्रोहियों के नेता को हिशाम से संधि कर लेनी पड़ी। राज्य में सर्वत्र शान्ति एवं सुव्यवस्था कायम हो गयी।

अमीर हिशाम ने मदीना के इमाम मलिक के प्रति अपनी सम्मान भावना का प्रदर्शन किया। जिन चार इमामों ने सुन्नी-विधि के संकलन में अपनी विद्वता दिखलायी थी, उनमें मलिक भी एक था। स्पेन में उसकी बनायी पद्धति (मलिकी पद्धति) प्रचलित थी। उनकी यह पद्धति, जो काफी धर्म के नाम से प्रसिद्ध है, स्पेन का राज्य धर्म बन गयी।

796 ई० में हिशाम की मृत्यु हो गयी। अपने शासन-काल तक हिशाम ने राज्य की मर्यादा एवं सीमा को सुरक्षित रखा।

हकाम (796-822)

अल-मुनतास्सीर (Conqueror) की पदवी धारण कर हिशाम का पुत्र हकाम 769 ई० को शासन की बागडोर अपने हाथ में सँभाली। वह एक बुद्धिमान, साहसी एवं प्रतिभाशाली शासक था। मालिकी पद्धति का वह सबसे बड़ा समर्थक था। कारडोवा के सभी समारोहों में वह भाग लेकर जनता का उत्साह बढ़ाता रहता था।

हकाम का काल विघटन का काल है इसके समय से राज्य में सदैव विद्रोह होते रहे और प्रजा त्राण पाने के लिए बेचैन रही। हकाम स्वभाव से वैरागी था इसीलिए इन विद्रोहों का दमन करने में वह सर्वथा असफल रहा। वह सदैव प्रसन्न रहा करता था और फिजल खर्च किया करता था। शिकार करना उसके जीवन का एक अंग बन गया था और जानवरों के पीछे सदैव भागता रहता था। विधि-वेत्ताओं तथा उलेमाओं से अधिक वह कवियों, गायकों एवं विद्वानों की संगति में रहना पसन्द करता था। अपने विलासी एवं शौक मिजाज के कारण वह कवियों में अप्रिय हो गया। उसकी ढलमुल नीति के कारण स्पेन में कवियों का प्रभाव बढ़ने लगा और शासन के अवयव उनसे अनुप्राणित होने लगे। उनके बढ़ते प्रभाव को खतरानाक समझ कर हकाम ने एक राजकीय घोषणा निकाल कर राजकीय कामों में होने वाले उनके हस्तक्षेप को रोक दिया और शासन के बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त फाकियों को पदच्युत कर दिया।

फाकी अपना प्रभाव घटते देखकर अमीर के आलोचक हो गये और उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिये। उन्होंने हकाम को नापाक और गैर-मजहबी कहकर बदनाम करना प्रारम्भ किया। वे अपने आपको स्पेन के धर्म का ठीकेदार मानते थे और इसीलिए उनका विश्वास था कि स्पेन की जनता को बड़ी आसानी से अमीर हकाम के विरुद्ध भड़का देंगे। कट्टर मुसलमानों के मस्तिष्क को फाकियों ने अधिकाधि प्रभावित भी किया। उनके द्वारा फैलायी गयी अफवाहों से मुसलमान धीरे-धीरे अमीर के विरोधी बनने लगे। स्पेन की अधिकांश जनता भी मूलतः मुसलमान थी। वे इस्लाम के उत्कर्ष एवं स्पेन की विजय के उपरान्त मुसलमान बनी थी। कारडोवा, सेविले, तोलेदो और मेड्रिड के ऊँचे परिवार के लोग हाल ही में मुसल-मान बने थे। धीरे-धीरे ईसाई और मुसलमान आपस में विवाह का संबंध भी कायम किए और ऐसे लोग मुवाल्लाद कहलाए। फाकियों ने मूल अरबों तथा मुवाल्लादों को सर्वाधिक प्रभावित किया और वे हकाम के कट्टर शत्रु बन गये।

जिन दिनों अन्दालूसिया में ऐसे आन्दोलनों का सूत्रपात हो रहा था, उन्हीं दिनों सुलेमान और अब्दुल्ला, जो हकाम के चाचा थे, भी अमीर के विरुद्ध विद्रोह

कर दिये थे। हिशाम के शासन-काल में भी इन दोनों ने विद्रोह किया था और असफल होने पर उससे क्षमा माँग ली थी। अब्दुल्ला ने शार्लमों से सहायता लेने के लिए एक्स-ला शोपेल की ओर प्रस्थान किया। शार्लमों ने शीघ्र ही अब्दुल्ला को सहायता दी और तोलेदी पर कब्जा जमाने में अब्दुल्ला को सफलता मिली। दूसरी तरफ सुलेमान ने भी वेलेसिया पर अधिकार कर लिया। इसी समय लूई तथा चार्ल्स, (जो शार्लमी के पुत्र थे) ने स्पेन के उत्तरी प्रान्तों पर आक्रमण कर दिए। इसी समय गेलीशिया के प्रमुख अलफोन्सी ने अरागान (Aragon) पर आक्रमण कर दिया।

ऐसी विकट परिस्थिति में भी हकाम ने अपनी अपूर्व शक्ति का परिचय दिया। तोलेदी पर नजर रखने के लिये उसने वहाँ सेना की एक छोटी टुकड़ी छोड़ दी और एक दूसरी टुकड़ी लेकर स्वयं गेलीशिया की ओर प्रस्थान किया। गेलीशिया पर कब्जा जमाने में अमीर को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। सारे शहर को उसने बुरी तरह रौंद डाला। गेलीशिया के गिरने पर हकाम ने फ्रैन्कों से निपटारा करने का निश्चय किया। मुस्लिम सेना ने फ्रैन्क सेना को इब्रो से बाहर पिरैनीज के उस पार खदेड़ दिया। अपनी इन विजयों के कारण हकाम ने 'अल-मुजफ्फर' की पदवी अर्जित की जिसका अर्थ होता है 'विजेता'। गेलीशिया तथा फ्रैन्कों पर विजय प्राप्त करके हकाम तोलेदो वापस लौट आया। सुलेमान युद्ध में मारा गया और अब्दुल्ला ने आत्मसमर्पण कर क्षमा माँग ली।

लेकिन अमीर हकाम शान्ति की नीन्द नहीं सो सका। फ्रैंकों ने शीघ्र ही बारसेलोना पर अधिकार कर लिया। बारसेलोना के गवर्नर ने अपने स्वामी हकाम के विरुद्ध शार्लमों से षड्यन्त्र रचा और उसे स्पेन पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया। बारसेलोना स्पेन का महत्वपूर्ण प्रान्त था जिसके हाथ से निकल जाने से उमैय्या राज्य की क्षति हुई। शार्लमों ने अन्य प्रान्तों को भी अपने अधिकार में किया। स्पेन के विजित प्रदेशों को उसने दो भागों में बाँट दिया। एक भाग था सेपटिमेनिया का भूभाग जिसमें कतालोनिया और बारसेलोना शामिल थे। इस भाग की राजधानी बारसेलोना बनी। दूसरा भू-भाग था गास्कोनी जिसमें नावेरे और अरागान शामिल थे जो फ्रैन्क शहर थे। पर 809 ई० में गास्कोनी पर हकाम ने पुनः अधिकार कर लिया। 805 ई० में ही कारडोवा में एक विद्रोह हुआ था जिसे हकाम ने दबा डाला था। कारडोवा के लोगों ने पुनः विद्रोह किया जिसे हकाम ने पुनः निर्दयतापूर्वक दबा डाला। लेकिन 807 ई० ने शार्लमों के पुत्र लुडविग ने टोरटोसा पर घेरा डाल दिया। लेकिन हकाम के पुत्र अब्दुर्रहमान ने उसे पीछे खदेड़ दिया। ८11 ई० में हकाम ने स्वयं फ्रैन्कों के विरुद्ध प्रस्थान किया और उसे पुनः सफलता मिली।

इन विपत्तियों के टलते ही अमीर हकाम को एक अन्य नयी विपत्ति का सामना करना पड़ा। तलैतला (तोलेन्दों) नगर के निवासियों ने हकाम के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उमैय्या शासक के पूर्व यह नगर स्पेन की

राजधानी के रूप में काफी विख्यात था। नगर-निवासी मुसलमानों के चंगुल से अपने नगर को मुक्त करने के लिये प्रयास करने लगे। तलैतला का पहला विद्रोह बड़ी आसानी से दबा दिया गया। हकाम की सेना का सेनापति अमरू बिना युसुफ को इस विद्रोह का दमन करने का कार्य सौंपा गया। युसुफ के सफल नेतृत्व में मुस्लिम सेना को नगर पर उमैय्या संप्रभुता कायम करने में सफलता मिली।

लेकिन यह विजय अस्थायी सिद्ध हुई। तलैतला के नागरिकों ने पुनः विद्रोह किया। इस बार अमरूख बिन युसुफ को तलैतला का गवर्नर बना दिया गया जिससे वह वहाँ रहकर अच्छी तरह विद्रोह का दमन कर सके। युसुफ ने अपना आचरण कुछ इस तरह प्रदर्शित किया कि नगर-निवासी उसे हकाम का शत्रु माने। युसुफ की चाल काम कर गयी और नागरिकों ने उसे शहर में किलाबन्दी करने एवं सैनिकों की संख्या बढ़ाने की इजाजत दे दी। शक्ति बढ़ते ही एक दिन युसुफ ने 813 ई० में नगर के प्रमुख लोगों को कैद कर लिया और दुर्ग में बन्द कर दिया। कुछ दिनों के बाद इन सारे लोगों का बध कर दिया गया। नगर-निवासी अपनी अज्ञानता पर हाथ मलते रहे। अगले सात वर्षों तक तलैतला के लोग उमैय्या वंश के शासन के विरुद्ध सिर नहीं उठा सके।

814 ई० को कारडोवा के लोगों ने उमैय्या शासन के विरुद्ध पुनः विद्रोह किया। एक नागरिक ने तो मस्जिद में नमाज पढ़ते समय अमीर हकाम का अपमान तक कर डाला। हकाम ने पुनः हथियार उठाया। उसके सैनिकों ने अधिकांश विद्रोहियों की हत्या करके और अवशेष को नगर से निष्कासन करके कारडोवा में पुनः शक्ति कायम की। नगर-निष्कासित नागरिकों ने फेज, सिकन्दरिया और क्रोट में जाकर शरण ली।

816 ई० में हकाम एवं शार्लमों के बीच एक संधि हुई जो कुछ ही दिनों के पश्चात् टूट भी गयी।

छब्बीस वर्ष तक शासन करने के उपरान्त अमीर हकाम 822 ई० में स्वर्ग सिधार गया।

अब्दुर्रहमान द्वितीय (822-852)

हकाम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अब्दुर्रहमान द्वितीय, जिसने 'अल-असात' की उपाधि धारणा की, नया अमीर बना। अरब के एक इतिहासकार ने इस अमीर के शासन की काफी प्रशंसा की है। उसके अनुसार "अब्दुर्रहमान का काल शान्ति एवं शान-शौकत का काल था। लोग आर्थिक दृष्टिकोण से सम्पन्न थे और राज्य को काफी टैक्स दिया करते थे।" अब्दुर्रहमान कला का प्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता भी था। समाज के विद्वान एवं मेधावी लोगों को वह आदर की दृष्टि से देखा करता था। इसके शासन काल में बगदाद

का प्रसिद्ध गायक 'जिरयाब' कारडोवा आकर रहने लगा और कुछ दिनों के उपरान्त अमीर के राज-दरबार की शोभा बढ़ाने लगा। इसके काल से ही स्पेनिश अरब में गान-विद्या को प्रधानता एवं प्रमुखता प्राप्त हुई। अब समाज के अधिकांश लोग गान-विद्या में अभिरुचि दिखलाने लगे। दरबार की शान-शौकत की वृद्धि करने में अब्दुर्रहमान ने अपने पूर्ववर्ती अमीरों से अधिक काम किया। इतिहासकार सेडीलाट के शब्दों में 'अरबों की उच्च सभ्यता, महान वीरता, उनके सुसंस्कृत व्यवहार आदि का युग इसी काल से प्रारम्भ हुआ।[3]

हकाम के काल की तरह अब्दुर्रहमान का काल भी अशान्ति एवं उपद्रव का काल था। ईसाई आक्रमणकारियों ने स्पेन पर पुनः आक्रमण करना प्रारम्भ किया और राज्य के लिये पुनः विपत्ति आयी। लियोन के प्रधान अलफोन्सों द्वितीय ने अरागान के मदीना-सलीम नामक जिला पर आक्रमण कर दिया और इसकी देखा-देखी अन्य ईसाईयों ने स्पेन के विभिन्न भूखण्डों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। लियोन के विरुद्ध अब्दुर्रहमान ने सेना भेजी। लियोन को रौंदने एवं नष्ट-भ्रष्ट करने में उसकी सेना को सफलता मिली। बाध्य होकर अलफोन्सों को अमीर के साथ समझौता करना पड़ा जिसके अनुसार उसने उमैय्या शासक को टैक्स देने का वादा किया।

अमीर अब्दुर्रहमान द्वितीय के काल में पहली बार माजूसों (नार्मन जाति के लोग) ने स्पेन की सीमा पर आक्रमण किया। मुस्लिम सेना के वहाँ पहुँचते ही माजूस सीमा से भाग चले। इसी समय फ्रान्स के लुई ले डेबोनायर (Louis-le Debonnaire) के उकसाने पर मेरिडा के ईसाईयों ने अनेक बार विद्रोह किया। लेकिन उसके विद्रोहों को शीघ्र ही दबा दिया गया। तलैतला में भी ईसाईयों एवं यहूदियों ने मिलकर एक विद्रोह किया जिसे उसी वर्ष (839 ई०) दबा दिया गया।

अमीर के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में कारडोवा के कट्टर ईसाईयों की एक शाखा ने विद्रोह कर दिया। ऐसी बात नहीं कि अमीर के राज्य में ईसाईयों की उपेक्षा की जाती थी। सच तो यह है कि प्रायः सभी अमीरों ने शासन में उन्हें अधिक से अधिक सुविधायें दी थीं और सभी जातियों के लोगों को समान अवसर प्रदान किया था। इतना ही नहीं, ईसाईयों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी और प्रशासन के बड़े-बड़े पदों पर वे नियुक्त थे। प्रशासन सम्बन्धी अनेक मसलों पर अमीर उनसे परामर्श भी लिया करते थे। ईसाईयों ने अरबों की भाषा एवं रीति-रिवाजों को भी अपना लिया था और उनका पूर्ण अरबीकरण हो गया था। असल बात यह थी कि ईसाई धर्मान्ध एवं कट्टर अरबों से घृणा करते थे और उन्हें अधार्मिक मानते थे। उनके मतभेद का एक और कारण भी

---

3. The splendid culture, the polished chivalry, the delicacy, grace and elegance of Arab manners—date from this epoch.

—S. SS

था। मुसलमानों ने अनेक ईसाईयों को मुसलमान बना लिया था और यह बात कट्टर ईसाईयों को अत्यन्त अखरती थी। अतः ऐसे ईसाई मुहम्मद साहब तथा उनके इस्लाम की खिल्ली उड़ाया करते थे।

अब्दुर्रहमान के काल में ईसाईयों ने खुलकर इस्लाम की आलोचना करना प्रारम्भ किया और मुहम्मद साहब के प्रति दुर्वचन अभिव्यक्त करना उनका एक पेशा हो गया। इतना ही नहीं, वे घरों में घुसकर युवक-युवतियों के धर्म में हस्तक्षेप करने लगे। ईश्वर-निन्दा और धर्म-निन्दा इस्लाम के अनुसार एक महान अपराध माना जाता है। इसके कारण अनेक बार गृह-युद्ध हुए हैं और खून की नदियाँ बही हैं। अमीर ने धर्म-निन्दक ईसाईयों को सजा देने के लिये काजी की अदालत में उपस्थित कराया। पर वहाँ भी वे धर्म एवं मुहम्मद को कोसते रहे। विवश होकर अमीर ने ऐसे लोगों को फाँसी की सजा दे दी। इस सजा की संपुष्टि करने के लिये ऐसे लोगों को राज्य परिषद् (Council of State) में उपस्थित किया गया। मानवता एवं शिष्टाचार के नाम पर राज्य परिषद् ने अपराधियों को अपने दुर्वचन वापस लेने को कहा। पर हठी ईसाई दुर्वचनों को वापस लेने की जगह मुहम्मद एवं इस्लाम को गाली देते रहे। अतः अब उन्हें फाँसी पर लटकाना ही उचित प्रतीत होने लगा।

ईसाईयों को फाँसी पर लटकाते ही परिस्थिति गम्भीर हो सकती थी। इस गंभीरता का अन्दाज कर अब्दुर्रहमान द्वितीय ने एक अन्य मार्ग का अनुशीलन किया। उसने समस्त ईसाईयों की एक सभा बुलायी जिसमें उसने स्वयं भाग लिया। गोमेज नामक ईसाई को, जो एण्टोनी का पुत्र और जुलियन का पोता था, इस सभा का अध्यक्ष बनाया गया। गोमेज राज्य-परिषद् का एक सदस्य था। इस सभा में एक नियम पास किया गया जिसके अनुसार मुहम्मद की सार्वजनिक आलोचना करना अपराध माना गया और आलोचकों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गयी।

पर इसके स्वीकृत अधिनियम भी ईसाईयों को नियन्त्रण में नहीं रख सके। ईसाईयों ने अब गोमेज तथा उन पादरियों की भी आलोचना करना प्रारम्भ कर दी जो अमीर द्वारा आयोजित सभा में भाग लिये थे। कुछ ईसाईयों ने तो मस्जिद में प्रवेश कर यह चिल्लाकर कहना प्रारम्भ किया कि "विश्वासपात्रों के लिये स्वर्ग का राज्य है और तुम्हारे जैसे परधर्मावलम्बियों के लिये दोजख की आग।"[4] मुसलमान और मुस्लिम धर्मावलम्बी ईसाई अब इतने क्रोधित हुए कि वे इन आलोचकों को जान से मार देने पर उतारू हो गये। लेकिन नाजुक वक्त का ख्याल कर काजी ने हस्तक्षेप किया और समय की गंभीरता पुनः छुप गयी। फिर भी अमीर ने ऐसे लोगों के विरुद्ध कदम उठाया और उन्हें जेलों में बन्द कर दिया गया। शासन में कठोर-नीति का अनुसरण कर ईसाईयों को दी गयी सारी

4. The kingdom of heaven has came for the faithful and for you infidels, the taste of hell-fire.

—*Quoted in Ameer Ali; op. cit. p 489*

सुविधाएँ छीन ली गयीं। लेकिन राज्य-विरोधी आन्दोलन दिनानुदिन शिथिल पड़ने की जगह सबल होता गया और अमीर की मृत्यु के काल (सितम्बर, 852 ई०) तक संचालित रहा। कहना न होगा कि इस आन्दोलन ने राज्य की प्रगति एवं मान-मर्यादा को गहरा धक्का दिया। अब्दुर्रहमान न तो इस्लामी राज्य की सीमा में वृद्धि ही ला सका और न प्रजा के कल्याण के लिये सुधारवादी कदम ही उठा सका।

मुहम्मद (852-886)

अब्दुर्रहमान के काल में राज्य की जो भी शान-शौकत बची थी, वह मुहम्मद के काल में जाती रही। हालांकि शासन को स्थायित्व प्रदान करने के लिये मुहम्मद ने अधिनियमों का सृजन किया, अन्दालुसिया (कारडोवा) के शासन का संगठन किया और न्याय की प्रणाली में सुधार लाया, पर इसका काल भी विद्रोहों की श्रृंखला से आक्रान्त रहा।

मुहम्मद को अभी गद्दी पर बैठे कुछ ही दिन गुजरे थे कि तलेतला में पुनः विद्रोह हो गया और लियोन की सेना की सहायता पाकर विद्रोही उमैय्या शासन को उलट देने का प्रयास करने लगे। मुहम्मद अपने वंश के इन स्थायी शत्रुओं से जरा भी भय नहीं खाया। उसने उनकी संयुक्त सेना का सामना करने के लिये शीघ्र ही प्रस्थान किया और 854 ई० में गुएदासेलेट (Guadacelete) पहुँच गया जहाँ उनकी आपस में मुठभेड़ हुई। मुहम्मद की सेना ने बड़ी चतुरता से लियोन तथा तलैतला की सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। विद्रोहियों की सेनाओं का सत्यानाश हो गया और मुहम्मद की शक्ति का सर्वत्र लोहा जम गया। भविष्य में ऐसे विद्रोहों को रोकने के लिये मुहम्मद ने भयंकर एवं कठोर दण्डों का सृजन किया। जिन धर्मोन्मत्त लोगों ने जनता को विद्रोह करने का पाठ पढ़ाया, उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। ईसाई डरकर शान्त हो गये और राज्य में पुनः अमन-चैन का वातावरण छा गया।

तलैतला के विद्रोह के समय फ्रैन्कों को लाभ उठाने का सुअवसर मिला। मुहम्मद को उलझा देखकर उन्होंने उत्तरी प्रान्तों पर आक्रमण कर दिया। इसी समय नार्मनों की भी बन आयी और उन्होंने स्पेन के तटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण कर वहाँ की जनता को लूटना प्रारम्भ किया। स्पेन की नौसेना ने शीघ्र ही अपनी कमान संभाल ली और युद्ध में पराजित होकर नार्मनों को पीछे लौटना पड़ा। पर इस युद्ध में मुहम्मद को अनेक जहाजों से हाथ धोकर नौसेना की शक्ति की क्षति का सहन करना पड़ा।

नार्मनों से अवकाश पाते ही मुहम्मद ने गैलीसिया, लियोन तथा नावेरे के राजकुमारों पर आक्रमण कर दिया। नावेरे के राज्य को बुरी तरह रौंद डाला गया और उसकी राजधानी पम्पेलुना पर अधिकार कर लिया गया। चार वर्षों के उपरान्त लियोन के राजकुमार ने भी मुहम्मद से संधि कर ली।

मुहम्मद को अपने शासन के अन्तिम वर्षों में एक महान विपत्ति का सामना करना पड़ा। अरागान में एक स्पेनिश मुसलमान ने अपने को एक स्वतन्त्र शासक के रूप में घोषित कर दिया और सारगोसा, तुदेला तथा हुईस्का पर अधिकार कर लिया। उसने उमैय्या राज्य से सारा संबंध विच्छेद कर लिया और अमीर की उपाधि धारण कर स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगा। पश्चिम में इब्न मरवान नामक (मरीदा-निवासी) व्यक्ति ने अलफ़ेन्सी तृतीय की सहायता पाकर विद्रोह कर दिया। इसी प्रकार बोबास्त्रों (Bobastro) में भी एक शक्तिशाली विद्रोह का सूत्रपात हुआ। कोन्डा तथा मलागा की मध्य स्थिति पर्वतीय प्रदेश के निवासी भी जो, गुरिल्ला युद्ध के लिये प्रसिद्ध थे, विद्रोह कर दिये।

चतुर्दिक विपत्तियों का जाल बिछा देखकर भी वृद्ध मुहम्मद ने हिम्मत नहीं हारी। उसने अपने पुत्र मंजीर को एक विशाल सेना के साथ विद्रोहियों का दमन करने के लिये भेजा। मंजीर ने सर्वप्रथम उत्तर की ओर प्रस्थान किया और सारगोसा, रूता, कारथगना तथा लेरीडावों को जीतकर अपने अधीन किया। अब्दुल वालिद रूती को कैद कर लिया गया और मूसा के पुत्र इसमाइल को, जिसने अरागान के एक भाग पर अधिकार कर लिया था, आत्मसर्पण करना पड़ा। 885 ई० में मंजीर ने इब्न मरवान के विरुद्ध प्रस्थान किया और उसे युद्ध में परास्त किया। अमीर के पुत्र ने पहाड़ी प्रदेशों के नेता उमर बिन हफसून को भी युद्ध में ललकारा। अलहमा को, जहाँ विद्रोही छिपकर जान बचा रहे थे, घेर लिया गया और उसे विनष्ट कर दिया गया। इसी समय विजय-कार्य अधूरा छोड़ कर मंजीर को अपने वृद्ध पिता के स्वर्गवास (अगस्त, 886 ई०) की खबर सुनकर राजधानी वापस लौटना पड़ा।

मंजीर (886-888)

मंजीर केवल दो वर्षों के लिये नया अमीर बना। अपने पिता के शासन-काल में ही उसने अभियान-कार्यों को आगे बढ़ाया था। गद्दी पर बैठते ही उसने विद्या एवं विज्ञान के प्रति अपनी रुचि दिखलायी और राज्य में इनकी तरक्की के लिये प्रयास किया।

अपने काल में उसने विजय-कार्य भी किये। उसने आर्किडोना पर अधिकार कर लिया और बीबास्त्रों का घेरा डाला। बीबास्त्रों को अभी जीता ही नहीं गया था कि विद्रोहियों ने मंजीर को घेरकर जुलाई, 888 ई० में जान से मार डाला।

अबदुल्ला (888-912)

मंजीर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अबदुल्ला नया अमीर बना। इसके काल में समस्त स्पेन आन्तरिक विद्रोहों एवं उपद्रवों से अशान्त रहा। अब्दुल्ला इस योग्य नहीं था कि इन विद्रोहों का दमन कर राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था ला सके। अतः राज्य की जनता अमीर का विरोध करने लगी और शासन में विघटनकारी तत्त्व प्रकट होने लगे।

स्पेन की विभिन्न जातियों ने आपस में लड़ना प्रारम्भ किया। स्पेन के कुछ बर्बरों ने दुर्गों पर अधिकार कर लिया और केन्द्रीय सत्ता को चुनौती देने लगे। अरब के अमीरों ने लोरसा, सारगोसा, मन्टेसा, सिडोवा आदि पर अधिकार कर वहाँ से उमैय्या संप्रभुता को जड़ से उखाड़ फेंका। इब्राहिम बिन हज्जाज ने सेविले पर कब्जा जमा लिया। स्पेन के मुस्लिम सरदारों ने अलगावे, बेजा, सानइस्टेवेन, जाईन मरसिसा आदि पर अधिकार कर उमैय्या शासन के खोखलेपन को जाहिर कर दिया। राज्य को पतनोन्मुख देखकर उमर बिन हफसून ने प्रत्येक दिशा में अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। उसने कारडोवा पर भी आक्रमण करने की अपनी योजना बना डाली।

अन्त में अमीर अब्दुल्ला को अपने पूर्वजों की गद्दी को सुरक्षित रखने के लिये हथियार उठाना पड़ा। उसके सेनापति अब्दुल्ला ने इब्न हफसून को पोलेई के निकट परास्त किया। किसी तरह सेनापति ने राजतन्त्र को सुरक्षित रखा। पोलेई, इस्तीजा, आर्किडोना, ईलबीरा और जाईन पर भी उसने अपना अधिकार कायम किया। इब्न हज्जाज ने भी मानवता के नाम पर अमीर की संप्रभुता स्वीकार कर ली और आत्मसमर्पण करते ही अब्दुल्ला का साहस बढ़ गया। उसने खोये हुए प्रदेशों पर पुनः उमैय्या शासन की प्रभुता कायम की और शासन का संगठन कर उसे स्थायित्व प्रदान किया। यह सौभाग्य ही कहा जा सकता है कि अमीर को अब्दुल्ला जैसा योग्य सेनापति मिल गया जिसने अलजेसियर्स से लेकर निबला तक के प्रदेशों पर कब्जा कर लिया।

उमैय्या राज्य के लौटे हुए दिन को देखना अब्दुल्ला को काफी दिनों तक नसीब नहीं हुआ। 68 वर्ष की उम्र में अक्टूबर, 912 ई० को उसकी मृत्यु हो गयी। उसका छब्बीस वर्षीय शासन भीषण कष्टों एवं विद्रोहों में ही बीता। लेकिन अन्तिम वर्षों में उमैय्या राज्य को अब्दुल्ला के चलते जीवन मिल गया।

उमैय्या वंश के शासन के संस्थापक के काल से लेकर अब्दुल्ला तक के काल तक का अगर सूक्ष्म दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अनेक विद्रोहों के होते रहने पर भी उमैय्या शासकों को राज्य-विस्तार करने में सफलता मिली। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अरबों ने यूरोपीय देशों में भी, विशेषकर फ्रान्स एवं स्वीटजरलैंड में, अपने उपनिवेशों का निर्माण किया। सेण्ट टोफस की खाड़ी, प्रोवेन्स, डाउफीनी, पीडमोण्ट, लिगूसिया और स्विटजरलैंड के एक भाग पर अरबों ने अपना प्रभाव कायम किया। कान्सटेन्स की झील तक अरबों के उपनिवेश बस गये। फ्रान्स में उन्होंने फ्रेजूस, मार्सेल्स और ग्रेनोब्ला पर अधिकार कर लिया।

अब्दुर्रहमान तृतीय (912-961)

अब्दुल्ला के बाद उसका पोता अब्दुर्रहमान तृतीय (मुहम्मद का पुत्र) उमैय्या शासन का शासक बना। इस शासक के सिंहासनारूढ़ पर उमैय्या जनता ने राज्य की शक्ति की वृद्धि के लिए एक शकून माना।

वास्तव में अब्दुर्रहमान में शासक के सारे महान गुण विद्यमान थे। इसीलिए यह आशा की जाने लगी कि विघटित उमैय्या शासन को संगठित कर प्रगति के पथ पर वह उसे ले जा सकेगा। शासन करने में उसने निर्भीकता दिखलायी और बर्बरों अरबों तथा अन्य दुर्द्धर्ष जातियों को स्पष्ट रूप से यह कहा कि वह किसी प्रकार का नाजायज टैक्स नहीं लेगा और समदृष्टि रखकर शासन करेगा। उसने यह भी स्पष्ट किया कि वह उन दुर्गों एवं शहरों पर अपना अधिकार कायम रखना चाहता है जिनपर उनके पूर्वजों का अधिकार कायम था। उसने गद्दी पर बैठते ही यह घोषणा की कि आत्मसमर्पण करने वाले विद्रोहियों को राज्य की ओर से क्षमा और शासन में पद दिये जायेंगे और राजकीय आज्ञाओं को ठुकराने वाले कठोर दण्ड के भागी होंगे। इस घोषणा के साथ ही अब्दुर्रहमान ने अनेक धार्मिक करों को समाप्त कर दिया और उस क्रम में उसकी लोकप्रियता बढ़ी। उसकी घोषणा ने अपना असर भी दिखलाया और अनेक शहरों तथा सरदारों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

जिन विद्रोहियों ने आत्मसमर्पण न कर अमीर के सामने डटे रहने की जुर्रत की, उनके खिलाफ सैनिक कार्रवाई की गयी। अप्रिल 913 ई० को अमीर की फौज ने इलबिरा तथा जाईन पर अधिकार कर लिया। मुहम्मद ने, जो अपने पिता इब्राहिम बिन हज्जाज के बाद अश्वीलिया (Saville) का शासक बना था अमीर की संप्रभुता स्वीकार कर ली और कारडोवा आकर राजदरबार में नौकरी कर ली। इसके बाद मुस्लिम सेना ने रोगियों के सेरानिया पर कहर ढाया। कट्टर ईसाई भी शनैः-शनैः अपने हथियार डाल दिये। अमीर ने भी ईसाईयों को यह विश्वास दिलाया कि राज्य उनके प्रति न्याय करेगा और शासन में उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी।

अमीर को इसी समय बोबास्त्रों की ओर भी प्रस्थान करना पड़ा। उमर बिन हफ्सून की मृत्यु 917 ई० में ही हो गयी थी, पर विद्रोह की अग्नि अभी तक सुलग रही थी। 928 ई० में बीबास्त्रों पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया गया और वहाँ के दुर्गों को धूल में मिला दिया गया। अमीर की लौहशक्ति का अन्दाज कर बीबास्त्रों की जनता शान्त हो गयी। पश्चिम में इसी प्रकार के एक विद्रोह का दमन किया गया। अब अमीर ने उत्तरी तथा पूर्वी प्रदेशों में सुलगाती हुई विद्रोहाग्नि को बुझाने के लिए प्रस्थान किया। एक वर्ष तक घेरा कायम रहने के उपरान्त 930 ई० में बदाजोज का पतन हो गया और 932 ई० को तलैतला भी आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार कुछ ही वर्षों के अन्दर समस्त विद्रोहों का दमन कर अमीर को राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था कायम करने में अपूर्व सफलता मिली। लेकिन विपत्ति के बादल अमीर के सिर पर अभी भी गरज रहे थे। इन विद्रोहों से अवकाश मिलते ही उसे दो युद्ध लड़ने पड़े—एक, उत्तर की ईसाई जाति से तथा दूसरा अफ्रीका के फतीमियों से।

जिन दिनों अमीर आन्तरिक विद्रोहों का दमन कर रहा था उन्हीं दिनों उत्तरी सीमा की ईसाई जाति ने दौरो (Douro) तक के प्रदेशों को जीत लिया और अनेक शक्तिशाली दुर्गों का निर्माण कर लिया। दौरों से ईसाई लुटेरों ने इस्लामी राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया और लोगों के गहों को जला

डाला। उनकी आँखें अन्दालसिया की अपार सम्पत्ति पर लगी हुई थीं। अरबों की उन्नतिशील संस्कृति से उन्हें काफी चिढ़ थी। यही कारण था कि वे जहाँ कहीं भी आक्रमण करते, वहाँ की मस्जिदों, मदरसों एवं आवासों को जलाकर खाक कर डालते। अब्दुर्रहमान के लिये ईसाईयों को वशवर्त्ती बनाना कठिन प्रतीत हो रहा था। जब पुनः 914 ई० में लियोने के ईसाईयों ने अपने शासक औरडोनो द्वितीय के नेतृत्व में मेरिडा के प्रान्त पर आक्रमण कर दिया तब हमीर को उनकी तरफ बाध्य होकर ध्यान देना पड़ा। उसने उनके खिलाफ अहमद के सेनापतित्व में एक सेना भेजी। परसान इस्टेवेन के निकट अहमद की सेना बुरी तरह हार गयी और जुलाई 918 ई० में अमीर को औरडोनो तथा उसके सहायक सन्को (Sancho) के खिलाफ पुनः सेना भेजनी पड़ी। इस बार मुस्लिम सेना को सफलता मिली और लियोन की सेना परास्त हो गयी। जून 920 ई० में अमीर ने एक सेना के साथ स्वयं प्रस्थान किया और ईसाईयों को हमेशा के लिये सबक सिखा देने का संकल्प लिया। उसने ईसाई-शासक को पुनः परास्त कर ओस्मा, सान इस्टेवेन, लूनिया आदि पर अधिकार कर लिया। लियोनियों पर कड़ी नजर रखने के लिये अमीर ने वहाँ एक सेना छोड़ दी और स्वयं नावेरे की ओर प्रस्थान किया। यहाँ के गवर्नर सन्को को टुडेला के गवर्नर मुहम्मद बिन लोप ने बुरी तरह परास्त किया। मुहम्मद को अमीर ने पहले ही एक सेना के साथ सन्को के विरुद्ध भेज दिया था। सन्को ने लियोन के शासक की मदद पाकर मुहम्मद की सेना का सामना करने का दुस्साहस किया और सैनिकों पर पत्थरों तथा चट्टानों की वर्षा की। जूनक्वेरा की घाटियों में घिरकर मुस्लिम सेना पत्थरों की मार खाती रही। पर इसी समय ईसाई समतल भूमि पर आकर युद्ध करने लगे और घाटी के संकट से मुस्लिम सैनिकों को मुक्ति मिल गयी। अब मुसलमानों ने दूने उत्साह से युद्ध करना प्रारम्भ किया। ईसाईयों को कुचलने में उन्हें शीघ्र ही सफलता मिली। अनेक ईसाई और उनके दो विशप कैद कर लिये गये। सितम्बर, 921 ई० तक नावेरे पर अमीर अब्दुर्रहमान का पूर्ण अधिकार हो गया।

औरडोनो तथा सन्को ने अपनी शक्ति का पुनः संचय किया और मौका पाकर उनकी सेना ने नजारात तथा विगुएरा पर आक्रमण कर मुसलमानों को पुनः लूटना प्रारम्भ किया। अमीर ने पुनः युद्ध की तैयारी की और सेना सहित पम्पेलूना आ धमका। उसके आगमन की खबर सुनते ही लुटेरे भाग चले। नावेरे पर पुनः मुसलमानी झण्डा लहराने लगा।

इन विजयों की उपलब्धि के उपरान्त अमीर ने अल-मोमनीन का खिताब धारण किया और जनवरी 928 ई० को वह स्पेन का पहला खलीफा बना। अभी तक उमैय्या शासक अब्बासी शासकों को सम्मान की दृष्टि से देखते आ रहे थे और इसीलिये वे अपने को खलीफा न कहकर के 'अमीर' कहा करते थे जिसका अर्थ होता है 'शासक'। लेकिन अब्दुर्रहमान ने अपने को खलीफा कहना प्रारम्भ किया और इसी समय से स्पेन में एक नये उमैय्या खिलाफत का सूत्रपात हुआ।

स्पेन की समस्त जनता ने भी उसे खलीफा के रूप में स्वीकार किया और उसे उसे अन-नासिर ली दीव-इल्लाह' (The Helper of the Religion of the Lord) की उपाधि प्रदान की।

अब्दुर्रहमान का काल युद्धों का ही काल था। अभी उसे दम लेने की फुरसत भी नहीं मिली थी कि उसे रेमायर द्वितीय से पुनः युद्ध करना पड़ा। रेमायर द्वितीय ने अपने भाई अलफोन्सों चतुर्थ को धोखा देकर लियोन पर अधिकार कर लिया। वह मुस्लिम धर्म से घोर घृणा करता था और इसीलिये उसने स्पेन के राज्यों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अब्दुर्रहमान को अपनी प्रजा एवं राज्य की रक्षा के लिये उसके विरुद्ध हथियार उठाना आवश्यक हो गया। जैसे ही मुस्लिम सेना रेमायर के विरुद्ध प्रस्थान की वैसे ही रेमायर भयभीत होकर ओस्मा की दीवार के पीछे आ छिपा। सुलतान ने एक छोटी सी सैन्य टुकड़ी यहाँ छोड़कर स्वयं उत्तर की ओर प्रस्थान किया। उत्तर में सान्को की मृत्यु के बाद नावेरियनों ने गैलिशिया और लियोन की सेना को एकत्र कर खलीफा से मोर्चा लेने की तैयारी कर रहे थे। नावेरे पर इस समय गारसीया शासन कर रहा था जो सान्को का पुत्र था। पर गारसीया अभी नाबालिक था और इसीलिये नावेरे के शासन की देखरेख उसकी माता टोटा कर रही थी। खलीफा ने कैस्टाइल तथा अलवा पार करते हुए गैलोशिया आ धमका और यहाँ के सारे दुर्गों को नष्ट कर दिया। कैस्टाइल की राजधानी वर्गोस की रक्षा करने में रेमायर असमर्थ रहा और उसपर खलीफा का अधिकार हो गया। इस विकट परिस्थिति में मुहम्मद बिन हिशाम ने, जो सारगोसा का गवर्नर था, अब्दुर्रहमान को धोखा दिया और ईसाईयों के साथ जा मिला। गवर्नर के षडयन्त्र से उत्तर के सारे भू-भाग खलीफा के विरोधी हो गये। फिर भी खलीफा ने हिम्मत से काम लेकर सारगोसा पर आक्रमण कर दिया और गवर्नर को परास्त किया। विवश होकर गवर्नर को सुलतान से क्षमा माँगनी पड़ी। सुलतान ने उसे क्षमा दे दी, पर ईसाईयों के साथ अनुदारता दिखलायी। उसके सैनिकों ने आज्ञा पाकर ईसाईयों के प्रदेश बलयूस को रौंद डाला। टोटा ने सुलतान से सन्धि करने का मन्तव्य प्रकट किया। सुलतान ने संधि कर ली और टोटा ने उसे नावेरे को संप्रभु मान लिया। रेमायर डरकर पहाड़ियों में जा छिपा। लियोन को छोड़कर सम्पूर्ण स्पेन कारडोवा के सुलतान की संप्रभुता मानने लगा।

रेमायर से निबटने के बाद सुलतान ने मामलूकों के प्रति उदारता दिखलायी और उन्हें शासन के बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त किया। मामलूक केवल एक ही जाति के नहीं थे। उनमें से कुछ जर्मन, इटालियन थे तो कुछ फ्रैन्क और रूसी। कालान्तर में उन सभी ने इस्लाम स्वीकार कर लिये और अरबी सभ्यता तथा संस्कृति के रंग में रंग गये। इनमें और मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं रहा तथा अब्दुर्रहमान के काल में वे शासन में विश्वासपात्र बन गये। अनेक मामलूक मुस्लिम सेना में भी भरती किये गये जो युद्ध में असाधारण करतब दिखलाने लगे।

929 ई० में अब्दुर्रहमान को गैलीशियनों एवं वाखयूज-निवासियों के विरुद्ध पुनः हथियार उठाने पड़े। इस बार उसने मुस्लिम सेना का सेनापति नाज्द नामक एक मामलूक को बनाया। नाज्द को सेनापति बनाकर खलीफा ने भारी गलती की क्योंकि इससे सारे मुसलमान नाराज हो गये। मुसलमान मामलूकों से घृणा करते थे और इसीलिये उनका विचार था कि नाज्द की जगह किसी मुसलमान को ही सेनापति बनाना चाहिए। लेकिन जब उनके विचार की सुनवाई नहीं हुई तब उन्होंने युद्ध में सुलतान को धोखा देने का संकल्प किया। जैसे ही नाज्द के नेतृत्व में मुस्लिम सेना जमोरा पहुँची, वैसे ही अरब सैनिकों ने अपने हाथ खींच लिये। फलतः सुलतान की सेना के अनेक सैनिक मारे गये और उन्हें पीछे हटना पड़ा। खान्दाक में दोनों पक्षों में जमकर लड़ाई हुई जिसमें सुलतान की सेना को निराशा हाथ लगी। लेकिन सुलतान ने पीछे हटना मूर्खता मानी। उसने सैनिकों का एक दूसरा दस्ता पुनः भेजा जिसे गैलीशिया तथा वाख्यूज को जीतने में सफलता मिली। बदाजोज के गवर्नर ने नवम्बर, 940 ई० को रेमायर को परास्त किया और उसके शहर को जलाकर खाक कर डाला। 955 ई० में रेमायर के उत्तराधिकारी ऑरडोनो तृतीय ने सुलतान से संधि कर युद्ध का अन्त कर दिया। 955 ई० में रेमायर के उत्तराधिकारी ऑरडोनो तृतीय ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली और भविष्य में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने का वचन दिया। उसने यह भी वचन दिया कि वह अपने उन सारे दुर्गों को धाराशायी कर देगा जो कारडोवा में उसने बनाया है। सुलतान ने भी नावेरे तथा लियोन को स्वतन्त्र राज्य मानकर उनके शासकों को स्वतन्त्र मान लिया। लेकिन इन राज्यों के शासकों ने उसे वार्षिक कर देना प्रारम्भ किया।

अब्दुर्रहमान को दूसरा युद्ध अफ्रीका के साथ लड़ना पड़ा। फातिमी शासक महदी की विस्तारवादी नीति पर अंकुश लगाने के लिये अब्दुर्रहमान ने पश्चिमी अफ्रीका के छोटे-छोटे राज्यों को सहायता देना प्रारम्भ किया। सुलतान यह चाहता था कि मोरीतानिया पर महदी का प्रभाव किसी भी प्रकार कायम न हो। महदी और उमर बिन हफ्सून के बीच गठबन्धन कायम हो गया था और सुलतान को यह आशंका थी कि महदी स्पेन पर भी आक्रमण कर सकता है। लेकिन स्पेन की सेना अफ्रीका में प्रभाव कायम करने में असफल रही। मुईज के काल में जब अफ्रीका पर आक्रमण किया गया तब सुलतान की सेना को पीछे हटना पड़ा।

ऑरडोनो की मृत्यु के पश्चात् सान्को गैलेशिया तथा लियोन का नया शासक बना। इस सुलतान के साथ की गयी समस्त पूर्ववर्ती संधियों को भंग कर दिया। अफ्रीका से ध्यान हटाकर सुलतान को अब सान्को की ओर ध्यान देना पड़ा। तालेदो के गवर्नर अहमद बिन इला ने सान्को पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। सान्को युद्ध में परास्त होकर अपनी दादी टोटा के पास पापेलूना भाग गया और लियोन के निवासियों ने उसके चचेरे भाई ऑरडोनो को राजा निर्वाचित कर दिया। टोटा ने विवश होकर पोता की सहायता के लिए खलीफा से सहायता माँगी।

खलीफा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर सेना भेजी और फलतः सान्को पुनः पद-स्थापित हुआ। कारडोवा के खलीफा की प्रभुता से पराभूत होकर लियोन, कस्टाइल, गैलेशिया तथा नावेरे ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

समस्त उमैय्या शासकों में अब्दुर्रहमान निसन्देह सर्वाधिक योग्य शासक था। अपने राज्य को एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिणत कर खलीफा ने उसकी कुशल शासन-व्यवस्था भी की।

समस्त साम्राज्य में उसने पुलिस की ऐसी व्यवस्था की कि व्यापारी और यात्री बिना किसी भय के व्यापार एवं यात्रा करने लगे। उसके शासन-काल में प्रजा अत्यन्त सुखी थी। ऐसा उल्लेख मिलता है कि उसके काल में खाद्य-सामग्रियाँ तथा वस्त्रों की कीमत कम थी और साधारण औकात वाले भी घोड़े की सवारी करते थे। खेतों की लहलहती फसलें, आकर्षक वाटिकाओं की दुनियाँ, फलों की प्रचुरता आदि इस तथ्य को प्रकट करती है कि अब्दुर्रहमान ने कृषि की तरक्की की ओर ध्यान दिया था। समस्त राज्य में नहरें फैली हुई थीं।

इस काल में वाणिज्य-व्यापार की भी काफी उन्नति हुई। कारडोवा, सेविले अल-मेरिया आदि शहरों में उद्योग-धन्धे काफी चलाये जाते थे। व्यापार इस ऊँचाई तक पहुँच गया था कि केवल व्यापारिक सामग्रियों पर लगायी गयी चुंगी से राज्य को काफी आमदनी हो जाया करती थी। ऐसा उल्लेख मिलता है कि केवल चुंगी से राज्य को बाहर करोड़ दीनार आमदनी हो जाती थी।

अब्दुर्रहमान ने सेना का भी समुचित संगठन किया था। उसकी नौसेना इतनी दृढ़ थी कि फातिमी शासक को पीछे हटना पड़ा। इसी सेना के चलते उसने मेडिटरेनियम पर भी अधिकार करने की हिम्मत की थी। डोजी के अनुसार "अब्दुर्रहमान की सेना विश्व की सर्वोत्कृष्ट सेना थी।"

तत्कालीन विश्व के अनेक देशों के शासक अब्दुर्रहमान से मधुर सम्बन्ध कायम रखने एवं मित्रता करने के लिए आतुर रहते थे। कुस्तुनतुनिया, जर्मनी, फ्रान्स, इटली वगैरह के शासक अब्दुर्रहमान के दरबार में अपने-अपने राजदूत भेजे थे। इतिहासकार डोजी ने इस शासक को आधुनिक युग का शासक माना है।[5] उसके चरित्र में वे सारे गुण थे जो आधुनिक शासक के चरित्र में पाये जाते हैं। अक्टूबर 961 ई० में 73 वर्ष की उम्र में खलीफा चल बसा।

---

5. This sagacious man, who centralised, who founded the unity of the nation & that of the monarchical power, who by his alliances established a kind of political equilibrium, who, in his tolerance, called to his counsel men of every religion, is specially a king of modern times rather than a ruler of the Middle Age.

—Dozy.

अब्दुर्रहमान के उत्तराधिकारी

अब्दुर्रहमान के उत्तराधिकारियों ने 961 ई० से 1131 ई० तक शासन किया। उसके कुल आठ उत्तराधिकारी हुए जो निम्नलिखित हैं.. हकाम द्वितीय, हिशाम द्वितीय, मुहम्मद द्वितीय, सुलेमान, अलीबिन हामूद, अब्दुर्रहमान आदि। इनके काल में स्पेन की राजनीतिक हालत डाँवाडोल हो गयी और केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गयी। गरनाता, अलमेरिया, तलैतला, मालका, अल-जजायर आदि स्वतन्त्र होने लगे। कारडोवा में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। गृह-युद्ध ने वाह्य आक्रमणकारियों को स्पेन पर आक्रमण करने के लिए उत्प्रेरित किया। 1031 ई० तक ईसाईयों ने स्पेन पर अपना अधिकार कर लिया और उमैय्या शासन का अन्त हो गया।

स्पेन (कार्दोवा) की विश्व सभ्यता को देन

सम्पूर्ण इस्लामी इतिहास में स्पेन का उमैय्या शासन अपना विशिष्ट स्थान रखता है। स्पेन में उमैय्यों ने एक सशक्त सरकार की स्थापना की थी और इस सरकार को अब्दुर्रहमान तृतीय, हकाम द्वितीय, अल-हाजीब तथा अल-मंसूर जैसे खलीफा मिले थे जिन्होंने न केवल राजनीति तथा आर्थिक क्षेत्रों में अपितु सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अपने मानदण्ड कायम किये थे। किन्तु सच्चाई यह है कि स्पेन खिलाफत अपनी सांस्कृतिक देन के लिए जितना प्रसिद्ध है उतना राजनीतिक अथवा आर्थिक उपलब्धियों के लिए नहीं। अरबों का इतिहास स्पेन के इस्लामी इतिहास के अध्ययन के बिना अधूरा रह जाता है। अरबों के विभिन्न खिलाफतों में स्पेन की खिलाफत भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसने सांस्कृतिक क्षेत्र को विकसित करके विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में अपना अनूठा स्थान बनाया। उनकी राजधानी कार्दोवा (Cardova) अपने विकास तथा चमक-दमक के कारण समकालीन नगरों बगदाद, बसरा और काहिरा—समानता में आ गयी और विश्व में अपनी सांस्कृतिक उन्नति के लिए प्रसिद्ध हुआ।

प्रशासनिक उपलब्धियाँ

स्पेन के उमैय्या शासकों ने कार्दोवा को राजधानी का रूप देकर अपने शासन का केन्द्र बनाया और राजधानी को सजाने-सवारने में काफी धन खर्च किया। बसरा तथा बगदाद की तरह उमैय्या खलीफाओं के निर्देशन तथा देखरेख में कार्दोवा प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक कार्यवाहियों तथा कार्यक्रमों का गढ़ बन गया। इस समय बगदाद और कुस्तुनतुनियाँ ही ऐसे नगर थे जो कार्दोवा की बराबरी कर सकते थे। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि इस समय कार्दोवा में तकरीबन तेरह हजार निवास-गृह, सत्तर पुस्तकालय तथा अनेक महल, मस्जिद तथा बाग-बगीचे थे। नगर की खूबसूरती तथा सफाई में वृद्धि लाने के लिये खलीफा निरन्तर प्रयत्नशील रहा करते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि समकालीन नगरों में कार्दोवा अपनी सफाई एवं सौन्दर्य के लिये काफी मशहूर था। सर्वसाधारण की विधि सुविधाओं के साधन जुटाने तथा उनकी सुरक्षा के लिए राज्य प्रयत्नशील

था। नगर में रोशनी का अच्छा इन्तजाम था। ऐसे सम्पन्न नगर में वैज्ञानिकों, कलाकारों, साहित्यकारों तथा संगीतज्ञों की टोलियाँ आकर बस जाती थीं। कार्दोवा में बैठकर खलीफाओं ने सम्पूर्ण प्रशासन का संचालन लिया।

साम्राज्य प्रशासन के समुचित संचालन के लिए खलीफाओं ने विभिन्न अधिकारियों को विभिन्न पदों पर नियुक्त किया था। इन अधिकारियों में सर्वाधिक शक्तिशाली और सर्वोपरि खलीफा ही था। खलीफा के एलान और इर्शाद को नामंजूर करना मुमकिन नहीं था। दमिश्क के खलीफा की तरह कॉर्दवा के खलीफा का पद वंशानुगत था। यद्यपि सिद्धान्त में खलीफा का निर्वाचन किया जाता था, किन्तु व्यवहार में उनका मनोनयन ही किया जाता था। प्रशासन के सारे कार्यालयों में खलीफा की तूती बोलती थी और उसकी शक्ति का प्रभाव सर्वत्र छाया रहता था। खलीफा के बाद हाजीब और प्रशासन के प्रमुख अधिकारी थे। वजीर की पहुँच प्रत्यक्ष रूप से खलीफा तक थी। खलीफा उसी व्यक्ति को वजीर के पद पर नियुक्त करता था जो उसका निकटतम व्यक्ति और विश्वासपात्र होता था। वजीर के बाद कुतब (सचिव) शासन का एक महत्वपूर्ण अधिकारी था जो वजीर की कृपा पाने का इच्छुक बना रहता था। वजीर के साथ मिलकर वह दीवान का संगठन करता था दीवान शासन-संचालन में प्रमुख भूमिका निभाता था।

शासन की सुविधा के लिये खलीफाओं ने साम्राज्य को सूबों (प्रान्तों) में विभक्त कर दिया था। सूबों के शासन की व्यवस्था की गयी थी। कार्दोवा को छोड़कर कुल छः सूबे थे। सूबे के शासक को 'वली' कहा जाता था और सूबे के शासन का उत्तरदायी होता था। उसे दीवानी और फौजदारी समस्याओं से संबंधित सारे अधिकार प्राप्त थे और इस कारण वह कार्यपालक और न्यायाधीश दोनों था। साम्राज्य के विशेष प्रधान नगरों के शासन के लिये वली ही नियुक्त किये जाते थे। केन्द्र में खलीफा को जो अधिकार प्राप्त थे, सूबा में बली को वही अधिकार मिले थे। किन्तु अन्य विभागों तथा अधिकारियों को खलीफा जिस प्रकार प्रभावित करते थे उसी प्रकार वे सूबों तथा उनके शासकों को भी प्रभावित करते थे। संक्षेप में उमैय्या खलीफाओं ने प्रशासन की जो व्यवस्थित रूपरेखा तैयार की वह यूरोप के देशों के लिये अनुकरणीय बन गयी। पुनश्च, प्रशासन का उल्लिखित गठन इस बात की पुष्टि करता है कि कार्दोवा के खलीफा कुशल प्रशासक थे।

खलीफाओं ने न्याय प्रशासन की संरचना के लिये भी कदम उठाया। वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि न्याय के औचित्य पर ही जनमत सरकार के पक्ष में रहता है और राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था बनी रहती है। इसी कारण उन्होंने न्याय विभाग के सुसंगठन के लिये कदम उठाया। तत्कालीन अल-सकाती (al-Saqati) की अनुपम कृति 'अल-अबब-अल हिसबा' (al-Adab al-Hisabah) उमैय्या खलीफाओं के न्याय प्रशासन पर समुचित प्रकाश डालता है। सिद्धान्त में खलीफा ही प्रधान न्यायाधीश थे, किन्तु न्याय के लिये उन्होंने काजियों की नियुक्ति कर डाली थी। साम्राज्य की सबसे बड़ी अदालत राजधानी

कार्दोवा में बनी थी जिसका प्रधान काजी न्याय का काम किया करता था। प्रधान
काजी को 'काजी अल-कुजात' कहा जाता था। न्याय प्रशासन को और भी अधिक
सुदृढ़ बनाने के लिये पुलिस और फौजदारी विभाग की स्थापना की गयी थी।
इन विभागों से संबंधित मुकदमों एवं समस्याओं का निपटारा करनेवाला अधिकारी
'साहिब अल-सुरता' कहलाता था। कार्दोवा में एक अन्य प्रकार का भी न्यायाधीश
होता था जो 'साहिब-अल-मुजलिम' कहलाता था। इस न्यायाधीश का प्रधान
काम था सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध दायर किये गये मुकदमों का फैसला करना
और कसूर सिद्ध होने पर उन्हें दण्ड देना।

स्पेनी उमैय्या के राज्य के दण्ड-विधान कठोर थे। साधारण अपराधों के
लिये लोगों को जेल में डाल दिया जाता था और कुछ को अर्थ-दण्ड भी दिया जाता
था। बड़े और गंभीर अपराधों के लिये अपराधियों के शरीर के अंगों को भंग कर
दिया जाता था। दण्ड की कठोरता के कारण इस्लामी स्पेन में अपराध कम किये
जाते थे। इतना ही नहीं, खलीफाओं ने अपराधों की संख्या को न्यून बनाने के लिये
कुछ खास अधिकारियों की नियुक्ति भी की थी। इन अधिकारियों के कर्त्तव्य थे
प्रशासन के विभिन्न विभागों की देखरेख करना और अपराधों को रोकना। ऐसा
ही एक अधिकारी था मुहतसिब जो प्रशासनिक विभागों पर अनेक तरीकों से नियं-
न्त्रण रखता था। वह पुलिस विभाग के अधिकारियों को निर्देश दिया करता था,
बाजार से संबंधित कार्यों का सम्पादन करता था, विनिमय के साधनों का निरीक्षण
करता था, मापतौल की जाँच पड़ताल करता था और द्युत-क्रीड़ा, वेश्यावृत्ति और
शराबखोरी को रोकने के लिये सक्रियता दिखलाता था। मुहतसिब के कारण स्पेन
में अपराधों की संख्या काफी कम हो गयी और राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था
का आगमन हो गया। न्याय प्रशासन की यह प्रणाली अनेक देशों के लिये आदर्श
बन गयी।

आर्थिक उपलब्धियाँ

स्पेन के उमैय्या खलीफाओं ने आर्थिक सम्पन्नता को राज्य की प्रगति तथा
स्थायित्व का मूलमंत्र माना। उन्होंने जिन आधारों पर आर्थिक संगठन का ढाँचा
बनाया उनसे स्पेन तो लाभान्वित हुआ ही, अन्य देश भी लाभ उठाये। खलीफाओं
ने कृषि, उद्योग-धन्धों तथा वाणिज्य-व्यापार को व्यवस्थित रूप देकर स्पेन को
धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। उमैय्या खिलाफत के काल में स्पेन यूरोप का
सर्वाधिक धनी तथा धनी आबादी वाला देश बन गया और सम्पन्न देशों में उसकी
गिनती होने लगी।

खलीफाओं ने सर्वप्रथम कृषि की ओर ध्यान दिया जिसपर सारी जनता
का सुख-चैन मुनहसिर था। कृषि की दशा में प्रगति तथा लाभदायक परिवर्तन
लाने के लिये स्पेन में पश्चिमी एशिया के कृषि संबंधी उन्नतशील उपकरणों को
अपनाया गया। राज्य में नहरों को खोदकर पानी की व्यवस्था की गयी, तथा

विभिन्न फसलों तथा फलों की खेती करने का इन्तजाम किया गया। पहली बार स्पेन में अंगूर की खेती प्रारम्भ की गयी, विभिन्न फलों के पौधे लगाये गये और ईख की खेती प्रारंभ की गयी। रूई एवं केशर की खेती भी की जाने लगी। फलों में नारंगियाँ अधिक पैदा की जाती थीं। सताल और खुबानी की खेती करने की कला अरबों में स्पेन से ही आयी थी।

उमैय्या ने स्पेन में बाग-बागीचों को लगवाया। इन बागीचों में नासरीद का बागीचा काफी प्रसिद्ध था जो 'निरीक्षकों का स्वर्ग' (Zannat Al-Arif) कहा जाता था। खातीब के अनुसार नासरीद अपने छायादार वृक्षों, फव्वारों तथा शीतल हवा के लिये प्रसिद्ध था।[6] अरबों के चलते ही बाग-बगीचों को लगाने की कला स्पेन वालों ने और तत्पश्चात यूरोप के अन्य देशों के लोगों ने सीखी। संक्षेप में कृषि का विकास मुस्लिम स्पेन की गौरवशाली सफलताओं में एक है और यह स्पेन को अरबों की एक स्थायी देन है।[7]

स्पेन के उद्योग-धंधों में भी अभूतपूर्व प्रगति आयी। खलीफाओं ने आयात-निर्यात की सामग्रियों पर चुंगी लगाने की व्यवस्था की और चुंगी के चलते राज्य को अत्यधिक आमदनी होने लगी। मुस्लिम शासकों ने आय के अन्य साधनों का भी इजाद किया राजधानी कार्दोवा में ही लगभग 13000 बुनकर रहते थे जो वस्त्र उद्योग की समृद्धि के आधार थे। कार्दोवा में ऊनी और सूती वस्त्रों का उत्पादन अत्यधिक होता था। यहाँ रेशमी वस्त्र का उद्योग भी चलता था। स्पेन के मलागा और अलमेरिया नामक नगरों में भी ऊनी तथा सूती वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। रेशमी वस्त्र के उत्पादन की कला अरबों ने चीन से सीखा था। कार्दोवा में चर्म उद्योग भी चलता था। अलमेरिया में शीशे तथा काँसे के सामान भी बनाये जाते थे। वैलेंसिया में पतरना मिट्टी निर्मित सामग्रियों का उत्पादन करता था। जाईम तथा अलगार्वे में सोने-चाँदी की खानें खोदने का काम चलता था। अल-कातिब ने लिखा है कि "राजधानी में लोहा तथा जस्ता और मलागा में नीलम से संबंधित खानें थीं। तालेदो में दमिश्क की तरह तलवारें बनायी जाती थीं। यहाँ की तलवारें विश्व में अनेक देशों में भेजी जाती थीं। राजधानी में ढाल का उत्पादन किया जाता था। लोहे तथा अन्य धातुओं पर सोने-चाँदी का पानी चढ़ाया जाता था और उनपर फूल-पत्तियों के चित्र उभारे जाते थे। फूल-पत्तियों से धातुओं को सजाने की कला दमिश्क से सीखी गयी थी। स्पेन के ये विभिन्न उद्योग कालान्तर में यूरोप के अन्य देशों में विकसित हुए।

उमैय्या खलीफाओं ने व्यापार के विकास में भी अभिरुचि दिखलायी। उन्होंने स्पेन में कृषि तथा उद्योग धन्धों को अत्यधिक विकसित किया था जिसके

6. Ibn al-khatib; Lamhab, p 100.

7. The agricultural development was one of the glories of Muslim Spain and one of the Arabs lasting gifts to the land.

—*P. K. Hitti, p 528.*

फलस्वरूप यहाँ आवश्यकता से अधिक अनाजों, फलों तथा अन्य सामानों का उत्पादन हो जाता था। अतः आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अवशेष सामानों का स्पेन से निर्यात किया जाने लगा। स्पेन का एक प्रमुख बन्दरगाह सेविले (Saville) था जहाँ से स्पेन रूई तथा जैतून के तेल का निर्यात करता था। इसी बन्दरगाह से स्पेन में विदेशी मालों का आयात भी होता था। मिस्र से वस्त्र और गुलाम सेविले के मार्ग से स्पेन भेजे जाते थे। एशिया तथा यूरोप के कुछ देशों से नर्तकियाँ भी स्पेन भेजी जाती थीं। इसी प्रकार मलागा और जाईम के बन्दरगाह भी व्यापार में सहायक थे। इनके द्वारा स्पेन से संगमरमर, चीनी, अंजीर और केशर का विदेशों के लिए निर्यात होता था। सिकन्दरिया और कुस्तुनतुनिया से स्पेन के विभिन्न सामान भारत तथा मध्य एशिया दमिश्क, बगदाद तथा मक्का से भी स्पेन के व्यापारिक सम्बन्ध कायम थे। इस बात का प्रमाण मिलता है कि अतलन्तिक महासागर के देशों के साथ भी स्पेन का व्यापार चलता था। अलइद्रीसी ने इन देशों के साथ स्पेन के व्यापार होने का उल्लेख किया है।

व्यापार की प्रगति ने खलीफाओं के हाथों को मजबूत किया। अल-खातिब ने लिखा है कि उद्योग-धन्धों और व्यापार के कारण जब स्पेन ने आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त कर ली तब खलीफाओं ने प्रशासन के विभिन्न बिन्दुओं का विकास करना प्रारम्भ किया। डाक विभाग को व्यवस्थित किया गया और इसका विस्तार किया गया। मुद्रा में भी सुधार लाया गया और पूर्वी देशों के आधार पर स्पेन में मुद्राओं का निर्माण किया जाने लगा। तत्कालीन स्रोतों से हमें इस बात की जानकारी है कि उमैय्या खलीफाओं ने स्वर्ण के दीनार तथा रजत के दरहम बनाये।

खलीफाओं ने राजस्व विभाग को भी संगठित किया। रोमन तथा बिजेन्ताइन शासकों की तरह स्पेन के खलीफाओं ने राजस्व प्रशासन में सुधार लाया। अब्दुर्रहमान तृतीय के काल में स्पेन का करीब 19,045,000 स्वर्ण दीनार मिल जाते थे। लैटिन ईसाई राज्य को भी राजस्व के मद से इतनी आय नहीं हो पाती थी। खलीफाओं ने कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धों आदि पर कर लगाकर प्रशासन की आय में अत्यधिक वृद्धि की।

सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

एक पूर्वी ईसाई की यह उक्ति कि—अपने अरब विजेताओं द्वारा जिस प्रकार उदारतापूर्वक, उचित रूप से और बुद्धिमानीपूर्वक अन्दालूसिया शासित हुआ वैसा शासन अन्यों ने उसे कभी नहीं दिया"[8]—अक्षरशः सत्य है। मैकियावेली का विचार है कि शासन के स्थायित्व के लिये शासकों को कठोर होना आवश्यक है और स्पेन के अमीर तथा खलीफा क्रूर कठोर थे। मुतादिद इतना अधिक कठोर था कि उसने अपने शत्रुओं की खोपड़ियों मे फूल के पौधे लगाये। किन्तु उनकी कठोरता में नम्रता

---

8. Never was Andalusia so mildly, justly, justly and wisely governed as by he. Arab Conquerors.

—S. Lane-Polle; *Story of the moovs in Spain*, p. 43.

भी थी। वे केवल बर्बरता और कठोरता के मूर्त्त रूप हो नहीं थे, उदारता तथा सांस्कृतिक प्रवृत्ति के भी खलीफा थे। उनकी उदारता, उचित न्याय और सुसंस्कृत व्यक्तित्व के संबंध में समसामयिक लेखक अल मक्कारी (al-Maqqari) ने सैकड़ों उदाहरण दिया है। वे यूनानी सम्राटों की तरह सुसंस्कृत तथा उदार थे और यही कारण है कि उन्होंने स्पेन का इस सीमा तक सांस्कृतिक विकास किया कि उनकी सारी कठोरता पर आवरण पड़ गया और वे अपने अभियान तथा प्रशासन कार्यों से अधिक सांस्कृतिक कार्यों के कारण इतिहास में प्रसिद्ध हो गये। अतः स्पेन के खलीफा जहाँ कार्दोवा को सांस्कृतिक गतिविधियों का गढ़ बनाये वहाँ शूरधर्म के मापदण्ड भी थे।[10] किन्तु, सच्चे अर्थ में खलीफाओं द्वारा स्पेन का सांस्कृतिक विकास अपना जो इतिहास छोड़ गया है, वही अमर है, वही प्रेरक स्रोत है, वही वास्तविक उपलब्धि है।

स्पेन में खलीफाओं ने सांस्कृतिक क्षेत्र के सभी पहलुओं—शिक्षा, साहित्य, व्याकरण, इतिहास, दर्शन, विज्ञान, कला—आदि का समुचित विकास किया।

सर्वप्रथम सार्वजनिक शिक्षा के विकास के लिए खलीफाओं ने कदम उठाया। शिक्षण संस्थाओं तथा विद्वानों के प्रति सम्मान की भावना दिखलायी जाने लगी और उनकी व्यवस्था की गयी। खलीफा हकाम तथा अब्दुर्रहमान तृतीय ने शिक्षा की प्रगति में गहरी अभिरुचि दिखलायी और तत्सम्बन्धी कार्य किये। खलीफा हकाम तो खुद भी विद्वान तथा कला-प्रेमी थे। उसने विद्वानों को राज्य की ओर से अनुदान देने की परिपाटी चलायी। हकाम के इस कदम ने विद्वानों को पुस्तक-रचना की दिशा में उन्मुख किया। इसी खलीफा ने राजधानी कार्दोवा में सताइस मदरसों का निर्माण किया जिनमें निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी। निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो जाने से शिक्षा का प्रसार आम लोगों में भी होने लगा। अब्दुर्रहमान तृतीय ने कार्दोवा में विश्वविद्यालय की स्थापना की। अब स्पेन के बच्चे स्कूलों तथा कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करने लगे। मूर की अनेक औरतें शिक्षा का अध्ययन कर साहित्य तथा कला में प्रवीण हो गयीं। खलीफाओं के प्रयास के चलते स्पेन में शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा हो गया कि एशिया अफ्रीका तथा यूरोप के छात्रों ने यहाँ आकर शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया। अब्दुर्रहमान द्वारा संस्थापित शिक्षण-संस्था ने काफी नाम कमाया। इसमें पूर्व के विद्वानों को बुलाकर शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया। इस मदरसे में खलीफा हकाम ने परिवर्त्तन लाया और भवरों, बाग-बगीचों तथा फब्वारों की व्यवस्था करके उसे और भी अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बनाया। इतिहासकार इब्न अल-कुतिया (Ibn al-Qutiyah) जिसका 'अमली' (Dictations) आज भी अरबी क्षेत्रों में पढ़ा जाता है, और अल-काली (al-Qali) जैसे विद्वान इस मदरसे के शिक्षक थे।

---

10. Cordova was not merely the abode of culture, of learning and arts, of industry and commerce; it was the home where Chivalry received its first nourishment. —*Ameer Ali*; p. 519.

खलीफाओं ने उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए कालेजों की स्थापना की। मस्जिदों तथा कार्दोवा के विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा का अध्ययन किया जाता था। काहिरा और बगदाद की तरह कार्दोवा भी शिक्षा-जगत में बहुचर्चित हो गया। स्वतंत्र रूप से व्याख्याता उच्च शिक्षा का ज्ञान विद्यार्थियों को देने लगे। ग्रेनेडा (Granada), तालेदो (Taledo), सेविले (Seville), मर्सिया Mursia), अलमेरिया (Almeria), वेलेंसिया (Valencia) और केडिज (Cadiz) में कालेजों की स्थापना की गयी। इन कालेजों का उल्लेख इतिहासकार जे० पिरेने (J. Pirenne) ने किया है।

स्पेन में न केवल मदरसों एवं कालेजों की स्थापना की गयी अपितु पुस्तकालय भी खोले गये। इन पुस्तकालयों में राजधानी कार्दोवा का पुस्तकालय अधिक प्रसिद्ध था। सम्पूर्ण स्पेन में करीब सत्तर पुस्तकालय थे। जब कागज बनाने की कला स्पेनवालों ने बगदाद से सीख डाली तब पुस्तकों का निर्माण करना और भी सरल हो गया। पुस्तकों के निर्माण तथा उनकी संख्या-वृद्धि में सम्पन्न व्यक्ति और खलीफा अधिक अभिरुचि लेने लगे। कार्दोवा का एक शिक्षक अल-हद्राम (al-Hadram) महान पुस्तक-प्रेमी था। शिक्षा, शिक्षकों तथा विश्व-विद्यालयों के कारण मुस्लिम जगत से बाहर के देशों के लोग भी स्पेन आकर शिक्षा का अध्ययन करने लगे। विश्वविद्यालय की रोशनी से चकाचौंध होकर पूरब-पश्चिम के लोग स्पेन पहुँचने लगे।[11] यों स्पेन के अधिकांश नगर शिक्षण संस्थाओं तथा पुस्तकालयों से भर गये, किन्तु कार्दोवा में शिक्षा का महान गढ़ बन गया। 10 वीं-11 वीं शताब्दियों में कार्दोवा का शैक्षणिक स्तर और भी ऊँचा उठ गया और अपने पुस्तकालय को लेकर यह और भी नामी-गिरामी हो गया। स्पेन में यह कहावत चल पड़ी थी कि "अगर कार्दोवा में किसी संगीतज्ञ की मृत्यु होती है और उसके वाद्यन्त्र बेचे जाने का प्रश्न उठता है तो उन्हें सेविले भेज दिया जाता है और अगर सेविले का कोई धनी व्यक्ति स्वर्गवासी होता है और उसके पुस्तकालय की बिक्री का सवाल उठता है तो उसे कार्दोवा भेज दिया जाता है।"[12] ऐसा था कार्दोवा जो शिक्षा जगत में मील-स्तम्भ बन गया था।

मुस्लिम स्पेन अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के लिये भी प्रसिद्ध हुआ। खलीफाओं के निर्देशन में व्याकरण लिखे गये, गद्य तथा पद्य साहित्य की रचना

---

11. The light of these universities shone far beyond the Muslim world and drew students to them from east and west.

—*Will Durant; p 304.*

12. When a musician dies at Cordova, and his instruments are to be sold, they are sent to Seville; when a rich man dies at Seville, and his library is to be sold, it is sent to Cordova.

—*A. F. Calvert; Cordova, p 107.*

की गयी। दर्शन, इतिहास, भूगोल, विज्ञान तथा संगीत और कला के अन्य अंग भी विकसित हुए।

स्पेन में अरबी व्याकरण की प्रतिष्ठा को बरकरार रखा गया, किन्तु हिब्रू व्याकरण की पृथक रूप से रचना की गयी। हिब्रू व्याकरण का जन्म-स्थल स्पेन ही रहा। इस व्याकरण का जन्मदाता अबू-ज़करिया यह्या इब्न दाउद (abu-Zakariya Yahya-ibn-Dawud) था जो कार्दोबा का निवासी था। इसकी मृत्यु ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में ही हो गयी।

साहित्य का गद्य-पक्ष अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचा। इस खिलाफत का प्रसिद्ध गद्यकार इब्न-अब्द-रब्बी (ibn-Abd-Rabih : 860-940) था जो खलीफा अब्दुर्रहमान तृतीय के दरबार का रत्न था। इसकी बहुमूल्य कृति 'अल-इक्द अल-फरीद' (al-Iqd al-Farid) है। दूसरा गद्यकार था अली इब्न-हज्म (Ali ibn-Hazm : 994-1064) जो अन्तिम उमैय्या खलीफा का वजीर भी था और युग का महान धर्मशास्त्री तथा इतिहासकार भी। कहा जाता है कि इस विद्वान ने धर्मशास्त्र तथा इतिहास को अपना गुलाम बना लिया था और तर्कशास्त्र तथा कविता में भी उसकी प्रतिभा तैरती रहती थी। कथित विषयों पर इब्न-हज्म ने लगभग चार सौ पुस्तकों की रचना कर डाली। उसकी पुस्तकों में 'तवकुल हमामा' (Tawq al-Hamamah) और "अल-फल फी अल-मिलाल वू-अल-अहवा व-अल-निहाल" (al-Fazl-fi-al-Milal w-al-Ahwa w-al-Nihal) अधिक उल्लेखनीय है। अन्तिम पुस्तक में उसने प्रचलित धर्मों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। वह पहला विद्वान था जिसने इस प्रकार का विवरण लिखा। इस विद्वान ने पाक कुरान के अलफाजों को सत्य बतलाया। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों ने अरबी भाषा में साहित्यिक तथा शिक्षाप्रद कहानियों की रचना की। निश्चित रूप से इन कहानियों को हिन्दुस्तानी कथाओं और यूनानी गल्पों के आधार पर लिखा गया। स्पेन के साहित्य की इस गद्य-शैली का प्रभाव कालान्तर में यूरोप के साहित्यकारों पर पड़ा और उन्होंने इसे अपनाया।

पद्य साहित्य का वृक्ष भी हरी-भरी पत्तियों से भर गया। कुछ उमैय्या खलीफा तो खुद कवि थे और इसलिये कविता के विकास में वे गहरी अभिरुचि लेते थे। स्पेन में उमैय्या खिलाफत का संस्थापक अब्दुर्रहमान प्रथम एक अच्छा कवि था और उसके कुछ उत्तराधिकारी भी कविता की रचना करते थे। उनके दरबार में और विशेषकर सेविले नगर में कवियों का दल रहता था। सैनिकों को उत्साहित करने के लिये कविगण युद्धभूमि में भी जाते थे और कलम की नोंक से तलवार की धार को तीक्ष्ण बनाने में मदद करते थे। इब्न अब्द-रब्बी (ibn Abd-Rabbih), इब्न-हज्म (ibn-Hazm) और इब्न-अल-खातिब (ibn-al-Khatib) स्पेन के महान कवियों में गिने जाते हैं जिनकी कविताएँ आज भी अपनी ऊँची स्तरीयता के कारण प्रसिद्ध हैं। एक कवि था अबू अल-वालिद अहमद इब्न-जैदून (abu-al-Walid Ahmad ibn-Zaydun : 1003-71)

जो अन्दालूस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता था। इब्न खालिकन ने उसे मरवजूम परिवार (कुरैश कबीला की एक शाखा) की सन्तान बतलाया है। प्रारम्भ में जैदून कार्दोवा के प्रधान इब्न जवार (Ibn-Jahwar) का कृपा-पात्र था, किन्तु बाद में उसकी नजरों से गिर गया क्योंकि उसने खलीफा अल-मुस्तकफी की पुत्री वालदा (Walladah) से प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया था जो प्रधान जवार को पसन्द नहीं था। अपने अंधे प्रेम के कारण कवि को अनेक वर्षों तक जेल की हवा खानी पड़ी। बाद में खलीफा अल-मुतादिद ने उसे जेल से मुक्त कर दिया और वजीर तथा सेनानायक के पदों पर बारी-बारी से बहाल कर उसे सम्मान दिया। इस खलीफा के कारण जैदून तलवार का भी धनी बना, कलम का सिपाही तो था ही। वह कवि ही नहीं, एक कुशल पत्र-लेखक भी था।

जैदून की प्रेयसी वालदा भी जमाने की एक अच्छी कवयित्री थी। उसकी कविताओं में प्रेम तथा सौन्दर्य का संगम देखा जा सकता था। अपने सौन्दर्य तथा कमनीय कविताओं के कारण वह 'स्पेन की सैफो' (Sapho of Spain) कही जाती थी। अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण भी वह सैफो कहलाने के योग्य थी। अरब की औरतें उसकी कविताओं को बड़े चाव से पढ़ती थी क्योंकि उन्हें उससे विशेष स्वाद मिलता था जो उनकी भूख मिटाता था। इस युग का एक अन्य प्रसिद्ध कवि अल-मक्कारी (al Maqqari) था जिसके गीत अन्दालुसिया में गाये जाते थे। वालदा और मक्कारी के विषय एक थे, किन्तु मक्की से अधिक लोकप्रिय वालदा थी। अपने कार्दोवा के निवास स्थल पर वालदा गोष्ठियों का आयोजन किया करती थी जिनमें बुद्धिमान पुरुष, विद्वान और कवि शामिल होते थे।

साधारण कवियों में अबू इशाक इब्न-खफजा (abu-Ishaq Ibn Khafajah), मुहम्मद इब्न-हनी (Muhammed Ibn-Hani : 937–73), अबू बकर इब्न-कुजमान (Abu-Bakr Ibn Quzman), अबू अल-अब्बास अल-तुतीली (abu al-Abbas-al-Tutili), इब्राहिम इब्न-सहल (Ibrahim Ibn-Sahl), मुहम्मद इब्न-युसूफ (Muhammed Ibn-Yusuf) आदि के नाम लिये जा सकते हैं। खाफजा स्वाभिमानी कवि था जिसने दरबारी कवि बनना स्वीकार नहीं किया और वेलेंसिया के दक्षिण स्थित अपने गाँव में ही पड़ा रहा। इब्न-हनी सेविले का निवासी था जिसने फातिमी खिलाफत के खलीफा अल-मुईज की प्रशस्ति में कविताओं की रचना की। इब्न कुजमान कार्दोवा का घुमक्कड़ कवि था जो विभिन्न नगरों में घूम-घूमकर अपने गीतों को गाया करता था।

अन्दालुसिया में गीत-रचना की नयी शैली का भी जन्म हुआ। ग्यारहवीं सदी में जन्मी यह शैली 'मुवश्शा' (Muwashshah) कही जाती है। यह गजल से मिलती-जुलती है। इस शैली में रचे गीत लय के साथ गाये जा सकते थे। कवि कुजमान गजल या मुवश्शा लिखने में प्रवीण था। स्पेन में जन्मी यह शैली उत्तरी अफ्रीका तथा पूरब के देशों में भी फैल गयी। इस शैली में गीत लिखने-वाला एक अन्य कवि था अल-तुतीली जो तुदेला का अंधा कवि था। यह कवि अपनी भरी जवानी में ही (1126 ई०) चल बसा।

स्पेन के ईसाई अरबी में लिखे साहित्य तथा गीतों के बड़े प्रशंसक थे। स्पेन के परवर्ती साहित्य को इन शैलियों ने अत्यधिक प्रभावित किया। स्पेन के जरिए ही अरबी साहित्य का प्रचार यूरोपीय देशों में हुआ। अरब के विद्वान यूरोप के विद्वानों के आदर्श बन गये।

अरब के विद्वान इतिहास के भी प्रेमी रहे हैं। उमैय्या खिलाफत में इतिहास भी लिखा गया। अन्दालुसिया के प्रारम्भिक इतिहासकारों में अबू-बकर इब्न उमर (abu-Bakr Ibn-Umar) सर्वाधिक प्रसिद्ध था जो इब्न अल कुतिया (Ibn al-Qutiyah) के नाम से जनप्रिय था। कार्दोवा में ही यह इतिहासकार पैदा हुआ, वहीं अपनी प्रतिभा का विकास किया और वहीं उसकी मृत्यु भी हो गयी। इसकी कृति का नाम है 'तारीख इफतीता अल अन्दालुस' (Tarikh Iftitah al-Andalus) जिसमें प्रारम्भिक मुस्लिम विजयों से लेकर अब्दुर्रहमान तृतीय की विजयों तक का इतिहास वर्णित है। अल-कुतिया व्याकरण का भी ज्ञान रखता था। उसने क्रियाओं के पदों के रूप का ज्ञान दिया।

उमैय्या खिलाफत का दूसरा प्रधान इतिहासकार कार्दोवा-निवासी अबू मरवान हय्यान इब्न-खलाफ (abu-Marwan Hayyan Ibn-Khalaf) था जो 'इब्न-हय्यान' (987-1076) के उपनाम से जनप्रिय था। इस विद्वान ने लगभग 50 पुस्तकों का निर्माण किया जिनमें एक पुस्तक "अल-मतिन" (al-Matin) साठ भागों में है। अल-हय्यान की सारी कृतियाँ काल के गाल में समा गयी हैं। संयोगवश उसकी केवल एक कृति 'अल-मुक्ताबिस फी तारीख रिजल अल-अन्दालूस' (al-Muqtabis fi Tarikh Rijal al-Andalus) उपलब्ध है। इस काल का मोरक्को निवासी अब्द-अल-वहिद अल मर्राकुशी (Abd-al-Wahid al-Marrakyshi) नामक इतिहासकार ने भी इतिहास के क्षेत्र को धनी बनाया।

कार्दोवा में अनेक जीवनी-लेखक भी पैदा हुए। अबू-अल-वालिद अब्दुल्ला इब्न मुहम्मद इब्न-अल-फरदी (Abdu-al-Walid Abdullah Ibn-Muhammed ibn-al-Faradi) इन्हीं जीवनी लेखकों में एक था जो 962 ई० में कार्दोवा में पैदा हुआ था और यहीं उसने शिक्षा पायी थी। तीस वर्ष की उम्र में उसने हज के सिलसिले में काहिरा, मक्का और मदीना की यात्रा की और वापस होने पर बैलेंसिया का काजी बना। कार्दोवा पर जब बर्बरों ने 1013 ई० में आक्रमण किया तब इस लेखक ने तलवार भी उठायी। इन आक्रमणकारियों का वह शिकार हो गया। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक का नाम 'तारीख उलमा अल-अन्दालूस' (Tarikh Ulama al-Andalus) की रचना की। इसी काल का एक अन्य जीवनी लेखक अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्न अल-अब्बार (abu-Abdullah Muhammed Ibn al-Abbar) था जो वैलेंसिया का निवासी था। इसने अल तकमिला ली-किताब अल-सिलाह' (al-Takmilah li-Kitab al-Silah) नामक पुस्तक की रचना की। इसके अतिरिक्त इसी लेखक ने, 'अल-हुल्लाह अल-सियार्द' (al-Hullah al-Siyard) नामक पुस्तक की रचना करके अनेक महान वीरों की

जीवनियाँ लिखी । अल दब्बी (al-Dabbi) ने बागयात अल-मुल्तमिस फी तारीख रिजल अल-अन्दालुस' (Bughyat al-Multamis fi Tarikh Rijal al-Andalus) की रचना की। अबू-अल-कासीम सईद इब्न अहमद अल-तुलातुली (abu-al-Qasim Said Ibn Ahmad al-Tulahtuli) नामक जीवनीकार ने 'तबाकात अल-उमान' (Tabaqat al-Uman) लिखकर नाम कमाया। इसका जन्म 1029 ई० में हुआ था और 1070 ई० में उसकी मृत्यु हुई। इब्न अल-खातिब (Ibn-al-Khatib) ने ग्रेनाडा का इतिहास लिखा। इस प्रसिद्ध इतिहासका का पूरा नाम लिसैन-अल-दीन इब्न-अल खातिब (1315-74) था जो अरब जाति का था और सीरिया से स्पेन आकर बस गया था। सातवें नासरीद सुलतान युसूफ अबू-अल-हुज्जार्ज (1333-54) तथा उसके उत्तराधिकारी पुत्र मुहम्मद पांचवें (1354-9, 1362-91) के काल में वह 'धू-अल-विजारातायन' (dhu-al-Wizaratayn) का विरुद पाया। दरबार के षड्यन्त्र के कारण वह 1371 में ग्रेनेडा से पलायन कर गया। फेज (Fas) में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु पर ग्रेनेडा ने अपने अंतिम महान लेखक, कवि एवं कूटनीतिज्ञ को खो दिया।[13]

अब्द-अल रहमान इब्न खाल्दून (Abd-al Rahman Ibd Khaldun : 1332-1406) युग का दूसरा महान इतिहाकार था जो ट्यूनिस में पैदा हुआ था। इसके पूर्वज किन्दा (Kindah) कबीले के थे और यमन में निवास करते थे। नौवीं शताब्दी में उन्होंने स्थानान्तरण किया और स्पेन चले आये। ग्रेनेडा के सुलतान की सेवा में आने के पूर्व इब्न खाल्दून फेज में बड़े-बड़े पदों पर काम कर चुका था। ग्रेनेडा के सुल्तान मुहम्मद छठे का दूत बनकर वह कास्टिलियन दरबार में भी गया था। दो वर्षों के बाद अपने शक्तिशाली एवं प्रभावशाली मित्र इब्न-अल खातिब की ईर्ष्या का शिकार होकर मगरीब (Maghrib) वापस आ गया जहाँ उसने अनेक पदों पर नियुक्ति पाकर सरकारी सेवा की। अन्त में वह कलात इब्न सलमा (Qalat Ibn-Salamah) चला गया जहाँ उसने इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। 137[illegible] ई० तक वह सलमा में बना रहा। 1382 ई० में उसने हज के लिए प्रस्थान किया। किन्तु बीच में ही काहिरा के अल-अजहर में व्याख्यान देने के लिए अपनी यात्रा स्थगित कर दी। दो वर्षों के उपरान्त काहिरा के मामलूक सुलतान अल-जाहिर बरकूक (al-Zahir Barquq) ने उसे 'मलिकात काजी' (Malikite Qadi) के पद पर नियुक्त कर दिया। सन् 1401 ई०में जाहिर बरकूक के उत्तराधिकारी अल-नासिर (al-Nasir) के साथ तैमूरलंग के विरुद्ध दमिश्म गया। तैमूर ने एक विशिष्ट अतिथि के रूप में इब्न खाल्दून का स्वागत किया। स्पष्ट है कि इस प्रसिद्ध इतिहासकार ने उत्तरी अफ्रीका तथा स्पेन की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और इन सारी भूमिकाओं एवं राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख उसने अपनी पुस्तक में किया। उसका वृहत् इतिहास 'किताब अल-इबर बा-दीवान अल-मुस्तदा व-अल

---

13. In his death Granada, if not the whole of Arab Spain, lost its last important author, poet and statesman.

—*P. K. Hitti*, p. 567.

खबर की अय्याम अल-व-अल अजाम व-अल वर्बर, (Kital al-Ibar wa-Diwan al-Mubtada W-al-Khabar fi Ayyam al-Arab W-al-Ajam W-al-Barbar) के नाम से प्रसिद्ध है। इस पुस्तक का सर्वाधिक प्रसिद्ध भाग 'मुकद्दमा' है जिसने इब्न खाल्दून को अमर बना दिया। पुस्तक के दूसरे भाग में अरबों की उन संधियों का उल्लेख है जिन्हें उन्होंने पड़ोसी राज्यों से किया था। तीसरे भाग में बर्बरों और उत्तरी अफ्रीका के मुस्लिम वंशों के शासन का उल्लेख है। किन्तु पहला भाग 'मुकद्दमा' ही अधिक प्रसिद्ध हुआ। इसमें पहली बार खाल्दून ने ऐतिहासिक विकास के सिद्धान्तों का निरूपण किया। यह इतिहासकार वस्तुतः इतिहास अथवा समाजशास्त्र के क्षेत्र और स्वरूप का अन्वेषक और संस्थापक था।[14] अभीतक किसी भी अरबी लेखक ने इतिहास को विशद रूप प्रदान नहीं किया था और न इसे दार्शनिक विचारोंवाला विषय ही माना था। इतिहास को व्यापकता तथा दार्शनिकता देने वाला पहला इतिहासकार इब्न खाल्दून ही था। प्रत्येक युग में यह इतिहासकार अपनी महानता के लिए स्मरण किया जाता रहेगा।[15]

इस शासनावधि में भूगोल और यात्रा-वृतान्त भी लिखे गये। भूगोल के क्षेत्र को अल-बक्री (al-Bakri) तथा अल-इद्रीसी (al Idrisi) ने धनी बनाया। अल-बक्री ने 'अल-मसालिक व-अल ममालिक' (al-Mamalik w-al-Mamalik) नामक पुस्तक लिखकर सड़कों तथा साम्राज्यों की भौगोलिक जानकारी दी। इस पुस्तक का केवल एक भाग ही उपलब्ध है। अल-इद्रीसी केवटा (Ceuta) में 1100 ई० में पैदा हुआ था और सिसली के नार्मन शासक रोजर द्वितीय के काल का विद्वान था।

इन दोनों भूगोलवेत्ताओं के बाद अन्य कोई विद्वान नहीं हुए। हाँ भौगोलिक यात्राओं ने भूगोल को बढ़ाया। यात्रियों ने अपने यात्रा-वृतान्तों को लिपिबद्ध करके स्थानों एवं हवा-पानी का ज्ञान दिया। यात्रा-सम्बन्धी विवरणों को प्रस्तुत करनेवाले वृत्तान्तकारों में इब्न-जुबेर (Ibn-Jubayr), अबू-अल हुसैन मुहम्मद इब्न-अहमद (abu-al-Husayn Muhammad ibn-Ahmad) आदि प्रसिद्ध हैं। जुबैर ने 1183-85 के बीच ग्रेनेडा से यात्रा प्रारम्भ की थी और मक्का तक गया था तथा वापसी में मिस्र, इराक सीरिया और सिसली की भी यात्रा की थी। उसने दो अवसरों पर पूरब के देशों की भी यात्रा की थी। इसी यात्रा के दौर में सिकन्दरिया में उसकी मृत्यु हो गयी थी। उसने अपनी यात्रा को लिपिबद्ध किया जिसे 'रिहलाह' (Rihlah) के नाम से जाना गया। यह

---

14. Ibn-Khaldun may be considered the discoverer of the true scope and nature of history or at least the real founder of the science of sociology. —*Ibid*, p. 568.

15. Ibn-Khaldun was the greatest historical philosopher Islam produced and one of the greatest of all time. —*Ibid.*

अरबी साहित्य का अनमोल ग्रन्थ बन गया। इब्न अहमद बेलेंसिया में 1145 ई० में पैदा हुआ था और जतीवा (Jativa) में अध्ययन किया था। उसकी यात्रा भी ज्ञान-वर्द्धक सिद्ध हुई। एक अन्य यात्री अबू-हमीद मुहम्मद अल-मेजीनी (abu Hamid Muhammad al-Mazini : -1080/1-1169/70) था जो ग्रेनेडा का रत्न था। उसने 1136 ई० में रूस की यात्रा की थी। वोल्गा क्षेत्र में बुल्गारों के साथ रहते हुए उसने यह देखा था कि यहाँ के लोग व्यापार करते थे जिसे दुनियाँ के लोग नहीं जानते थे। यहाँ से हाथियों के दाँत ख्वारिज्म भेजे जाते थे जहाँ कंघियाँ और लघु पेटिकाएँ बनायी जाती थीं।

मोरक्की अरब मुहम्मद इब्न अब्दुल्ला इब्न-बतूता (Muhammad ibn Abdullah ibn-Batutah), ने जो तांजियर में पैदा (1204) हुआ था और मरकिश (Marrakesh) में मृत्यु (1377) को प्राप्त हुआ था, चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में चार बार मक्का की यात्रा की थी और इसी दौर में लंका, भारत, चीन, कुस्तुनतुनिया और अफ्रीकी देशों का भ्रमण किया था। उसका यात्रा-वृतान्त 'रहला' में संकलित है। इबन बतूता के विवरण से संसार को अत्यधिक लाभ हुआ। अनेक देशों के पारस्परिक व्यापारिक संबंध कायम हुए।

कार्दोवा के खलीफाओं ने 10 वीं शताब्दी के मध्य भाग से विज्ञान-जगत को धनी बनाने की दिशा में कदम उठाया। वज्ञानिकों को विभिन्न शाखाओं के अन्वेषण, विकास तथा प्रसारण के लिये प्रोत्साहन दिये जाने लगे।

गणित-ज्योतिष तथा गणित का क्षेत्र अधिक विकसित हुआ। अरब के प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों का अध्ययन किया गया और तब उनके आधार एवं आदर्श पर ज्योतिष विज्ञान का विकास किया गया। इस विज्ञान को धनी बनाने में कार्दोवा के अल-मज्रीति (al-Majriti), तालेदो के अल-जरकली (al-Zarqali) और सेविले के इब्न-अफ्ला (ibu-Aflah) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मज्रीति ने अल-ख्वारिज्मी (al-Khwarizmi) की नक्षत्र तालिका में संशोधन किया। अल-जरकली, अबू इशाक इब्राहिम इब्न यह्या आदि ने अन्वेषण विधि से तोलेदा की तालिकाओं का निर्माण किया और इनमें हालेमी तथा ख्वारिज्मी की रचनाओं से प्राप्त भौगोलिक ज्ञान का उल्लेख किया। अल-जरकली पहला वैज्ञानिक था जिसने सौर सिरोबिन्दु की गति को सिद्ध किया और 'सफीहा' (Safihah) की रचना की। अपनी पुस्तक 'डी रिवोल्यूसनीबूस आरबियन कोलेस्टियम' (De-revolutionibus Orbium Coelestium) में कोपरनिकस ने अल-बतानी (al-Battani) के साथ जरकली का भी उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस महान विद्वान ने कोपरनिकस को भी प्रभावित किया था।

जबीर इब्न अफ्ला ने अपनी पुस्तक 'कताब अल-हया' (Kitab al-Hayah) में टोलेमी के सिद्धान्तों की आलोचना की। उसने यह सिद्धान्त दिया कि बुद्ध तथा शुक्र ग्रहों को देखने का लम्बन नहीं है। इस पुस्तक में उसने आकाश सम्बन्धी अन्य बातों तथा ज्यामिति का भी उल्लेख किया।

स्पेन का एक और ज्योतिषाचार्य था जिसका नाम था नूर-अल-दीन अबू-इशाक अल बितरूजी (Nur-al-Din abu-Ishaq al Bitruji) जो इब्न तफायल (Ibn-Tufayl) का शिष्य था। उसने अरस्तू के सिद्धान्त को ही पुनर्स्थापित किया।

स्पेन के ज्योतिष गणित ने यूरोप को अत्यधिक प्रभावित किया। परवर्ती काल मे यूरोप में लिखा गया सारा साहित्य स्पेन के ज्योतिष विज्ञान से प्रभावित था। यूरोप के विद्वानों ने स्पेन के अरबों से अनेक शब्दों को लिया। एक्रेब (Aq-rab, Scorpion), अलगेडी (Algedi, Jadi the kid), अल्टेयर (Altair, al-tair, the flyer), डेनेब (Deneb, Dhanab, tail) आदि शब्द अरबों से ही लिये गये।

स्पेन के उमैय्यों ने गणित के विश्व को भी उजागर किया। अलजबरा और शून्य का ज्ञान अरबों ने ही यूरोप के विद्वानों को दिया। किन्तु स्मरण रहे कि अरबों ने शून्य का ज्ञान भारतवर्ष से लिया था। स्पेन मे नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही संख्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। संख्या तथा शून्य को व्यवहार में लाने वाला सबसे पहला विद्वान ख्वारिज्मी था। 'संख्या' को 'हिंदसी' कहा करता था जो इस बात का संकेत है कि संख्या का जन्म-स्थल भी हिन्दुस्तान ही था। हिन्दुस्तानी संख्या को गिनती के तरीकों को बाथ (Bath) के अडेलार्ड (Adelard) ने 12 वीं सदी में लैटिन भाषा में अनुवाद किया था। नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संख्या का ज्ञान अरबों को मिला था। इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि अरबों ने गणित के क्षेत्र में यूनानी गणितज्ञों को आधार दिये।

जीव विज्ञान की शाखा में भी फल-फूल लगे। स्पेन के वैज्ञानिकों ने ही पहली बार पेड़-पौधों का वर्गीकरण किया। कार्दोवा का प्रसिद्ध जीव विज्ञान का वैज्ञानिक इब्न मुहम्मद था जिसका असल नाम अबू-जफर अहमद इब्न मुहम्मद था। उसने 'अल-अदविया अल-मुफ़दा' (al-Adwiyah al-Mufradah) नामक पुस्तक की रचना की। अन्य वैज्ञानिकों में इब्न अल-बेतार (Ibn al-Baytar), अबू-जकरिया यहया इब्न-मुहम्मद इब्न-अल-अव्वाम (Abu-Zakaria Yahya Ibn-Muhammed ibn-al-Awwam) आदि उल्लेखनीय हैं। अव्वाम ने अल-फिलाह (al-Filahah) नामक पुस्तक का निर्माण किया था जिसमें कृषि संबंधी बातों का उल्लेख किया गया। इस पुस्तक में उसने 584 पौधों और 50 फल देनेवाले पौधों का जिक्र किया। खेती करने के तरीके भी बतलाये गये।

चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में भी खोज की गयी। स्पेन के वैज्ञानिकों ने शरीर की रचना, रोगों तथा उनके उपचार आदि विषयों पर पुस्तकें लिखी। इस युग के अन्य चिकित्साशास्त्रियों में इब्न-मुमिन, इब्न जुहर, इब्न रशद, इब्न-बिज्जाह, अल-जहारावी आदि प्रसिद्ध थे। जब यूरोप के लोग चर्च के मनाही पर दवाईयों का प्रयोग नहीं करते थे वहाँ अरब के लोग चिकित्साविज्ञान से परिचित थे। स्पेन के प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक अल-जहरवी (al-Zahrawi) अल-हकाम द्वितीय का दरबारी चिकित्सक था जिसने 'अल तसरीफ ली मन अजाज अन अल-तालीफ

(al-Tasrif li-Man Ajaz an al-Taalif) नामक पुस्तक की रचना की जिसका अनुवाद लैटिन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में किया गया। इस पुस्तक में घावों, पथरी तथा शल्य के तरीकों पर प्रकाश डाला गया। वेनिस में 1497 में इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित हुए। क्रेमोना (Cremona) के गेरार्ड (Gerard) ने इसका लैटिन में अनुवाद किया था। बासेल (1541) तथा ऑक्सफोर्ड (1778) में भी यह पुस्तक प्रकाशित की गयी। शल्यशास्त्र के लिये अनेक सदियों तक सालेरनो, मन्टिपेलियर आदि में यह पुस्तक आदर्श के रूप में बनी रही।

इब्न जुहर (Ibn-Zuhr) स्पेन का एक महान चिकित्साशास्त्री था। उसका जन्म (1091 या 1094) सेविले में हुआ था और वहीं 1162 में उसकी मृत्यु भी हुई। अनेक वर्षों तक वह राजकीय चिकित्सक के रूप में खिलाफत की सेवा करता रहा और अब्द-अल-मुमिन का वजीर भी बना। उसने चिकित्साविज्ञान पर छः पुस्तकों की रचना की जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध 'अल-तासीर फी अल-मुदावा व-अल तदबीर' (al-Taysir fi al-Mudawah w-al-Tadbir) नामक पुस्तक है। इस पुस्तक का निर्माण उसने अपने मित्र और प्रशंसक इब्न रशद (Ibn-Rashd) की इल्तजा पर किया था।

इब्न रशद ने कुलीयात' (Kulliyat) की रचना की। अपनी इस कृति में उसने जुहर को गैलेन के बाद सबसे बड़ा चिकित्सक कहा है।

जुहर के खान्दान में अनेक चिकित्सक पैदा हुए। अबू बकर मुहम्मद, अब्दुला मलिक तथा अल-बहीले नामक चिकित्सक उसी के वंशज थे। अबू-बकर मुहम्मद पर अनेक कविताओं की रचना की गयी। मरविश में अल-मंसूर ने उसे अपना चिकित्सक बनाकर नियुक्त कर दिया था। यहीं एक ईर्ष्यालु वजीर ने गरल पान कराकर उसे मार डाला। खलीफा मंसूर ने इस महान चिकित्सक को खुद अपने हाथों दफनाया। अब्दुल मलिक ने न केवल स्पेन में अपितु बगदाद में भी चिकित्सक का काम किया। काहिरा में भी उसने अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। अल-मेरिया के अल-बहीले ने बगदाद में मलिकशाह की सेना में रहा। वह चिकित्सा शास्त्री होने के साथ-साथ कवि भी था। 1154 में दमिश्क में उसकी मृत्यु हो गयी।

विज्ञान की अन्य शाखाओं को भी उमैय्या खलीफाओं ने विकसित किया। ज्यामीति के क्षेत्र में स्पेन के विद्वान यूक्लिड से आगे नहीं बढ़े, किन्तु अलजेबरा का विकास उन्हीं के प्रयत्न से संभव हो सका। उन्होंने त्रिकोणमीति के अनेक सिद्धान्तों को भी खोज निकाला। त्रिज्या, स्पर्शरेखा, उप-स्पर्शरेखा आदि को खोजकर उन्होंने त्रिकोणमीति को धनी बनाया। पदार्थ विज्ञान की क्षेत्र में उन्होंने दोलक तथा चश्मे की खोज की। इस काल में रसायन शास्त्र का क्षेत्र भी अछूता न बचा। पोटास, चान्दी का नाइट्रेट, सल्फर एसिड, अलकोहल आदि मुस्लिम वैज्ञानिकों की ही देन है।

कला के विकास की सीमा दर्शन, इतिहास, साहित्य तथा विज्ञान की तरह अधिक विस्तृत न हो सकी। फिर भी स्थापत्यकला, संगीत कला तथा कुछ औद्योगिक कलाओं का विकास इस युग में संभव हो सका।

स्थापत्य कला के विकास में मुस्लिम कलाकारों ने अधिक अभिरुचि दिखलायी। राजधानी कार्दोवा में बने भवन स्थापत्य कला की श्रेष्ठता की बात की पुष्टि करते हैं। कार्दोवा की मस्जिद (Mosque of Cordova) स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। खलीफा अब्दुर्रहमान प्रथम ने इस मस्जिद के निर्माण की नींव 786 ई० में डाली थी। रोमन चर्च के भग्नावशेष पर इस मस्जिद का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। खलीफा हिशाम प्रथम ने मस्जिद के मुख्य भाग के निर्माण का कार्य 793 ई० में पूरा किया। इस खलीफा ने मस्जिद में मीनार जोड़कर इसका विस्तार भी किया। अफ्रीकी शैली पर इस मीनार का निर्माण किया गया। हिशाम के उत्तराधिकारियों ने इस मस्जिद में और भी विस्तार लाया। इसमें स्तम्भ लगाये गये और रोशनी की व्यवस्था की गयी। ईसाइयों के गिरजाघरों की घंटियों को गलाकर पीतल की लालटेन बनायी गयीं और उन्हें मस्जिद में लगाया गया। मस्जिद की सजावट के लिये बिजेन्ताईन कलाकारों को प्रयुक्त किया गया। सीरिया के उमैय्या शासकों ने भी इन कलाकारों की सेवा ली थी। मस्जिद की सजावट में करीब अस्सी हजार स्वर्ण टुकड़े लगाये गये जिन्हें गोथों से लूटकर प्राप्त किया गया था। अल-मंसूर के काल तक मस्जिद का विस्तार तथा मरम्मत का कार्य चलता रहा। आजकल यह मस्जिद एक बड़े गिरजाघर के रूप में है।

सेविले का अलकाजार (Alcazar of Seville) और ग्रेनेडा का अलहम्ब्रा (Alhambra of Granada) विनष्ट होकर भी अपनी भव्यता का पुट लिये हुए हैं। अब्दुर्रहमान तृतीय तथा उसके उत्तराधिकारियों ने कार्दोवा में 'मदीनात अल-जहरा' (Madinat al-Zahra) का निर्माण किया और इसके निर्माण की सामग्रियों का रोम से आयात किया। इस महल की मुख्य विशेषता यह है कि खलीफा अब्दुर्रहमान ने अपनी माशूका जहरा की मूर्त्ति बनाकर उसे महल के प्रवेश-द्वार पर स्थापित कर दिया। महल के प्रांगण में एक फव्वारा लगाया गया जो कुस्तुनतुनिया से मंगवाया गया था। इस फव्वारे में मानव-आकृतियाँ उत्कीर्ण थीं। सन् 1010 ई० के बर्बर-विद्रोह के कारण मदीनात अल-जहरा धराशायी हो गया और इसमें आग लगा दी गयी। इसी समय कार्दोवा के पूरब स्थित मदीना अल-जहीरा (Madinah al-Zahirah) को भी बर्बरों ने विध्वंस कर दिया। तोलेदो के एक वास्तुकार ने मुवाहिद गवर्नर के आदेश पर 1199-1200 ई० में अलकाजार का निर्माण किया। कार्दोवा, तोलेदो तथा स्पेन के अन्य अलकाजारों में सेविले का अलकाजार सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सेविले को अपने गिराल्डा टावर (Giralda Tower) के लिये भी गौरव प्राप्त है जो मुवाहिदों का स्मारक है। इसका निर्माण 1184 ई० में किया गया था।

स्पेन में नासरीद राजभवन का अलहम्ब्रा स्थापत्य कला की श्रेष्ठता का आदर्श उपस्थित करता है। ग्रेनेडा का यह भवन अपनी सजावट, पच्चीकारी आदि के लिये मशहूर है। मुहम्मद प्रथम अल-गालिब ने 1284 ई० में इसका निर्माण कार्य प्रारम्भ किया था और अबू-अल हज्जाज युसूफ (1303-54) और उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद पंचम् अल घनी (1354-9) ने उसे पूरा किया। इस भवन का सर्वाधिक आकर्षक भाग कोर्ट ऑफ लायन्स (Court of Lions) है। कोर्ट

के मध्य भाग में संगमरमर निर्मित बारह सिंह-मूर्तियाँ हैं जो वृत्ताकार में बैठायी गयी हैं। प्रत्येक मूर्ति के मुख से पानी का फव्वारा निकलता दिखलाया गया है। निर्मित 'न्याय-भवन (Hall of Justice) भी अपने आप में अनूठा है।

स्पेन में घोड़े के नाल की आकृत्ति के समान मेहराब बनाने की कला भी विकसित हुई। नुकीले मेहराब स्पेन के महलों में बनाये जाने लगे।

मुस्लिम स्पेन अपनी संगीत कला के लिये भी प्रसिद्ध हुआ। संगीत का विकास जरयाव (Zirvab) के समय से प्रारम्भ हुआ जो स्पेन का प्रथम संगीतज्ञ माना जा सकता है। वह बगदाद के मावसीली स्कूल (Mawsoli; School) का शिष्य था। यहीं उसने गान-विद्या, शारीरिक विज्ञान और सुरुचिपूर्ण व्यवहार को सीखा और एक श्रेष्ठ सामाजिक आदर्श का पात्र बन गया। इस संगीतज्ञ ने अब्दुर्रहमान द्वितीय की संरक्षणता प्राप्त करके संगीत कला के विकास में सहयोग किया। उसने एक संगीत भवन का निर्माण किया जो शीघ्र ही अन्दालूसी का रक्षा गृह बन गया। संगीत की तरक्की के लिये सेविले, तोलेदो, बैलेंसिया तथा ग्रेनेडा में भी स्कूल खोले गये। पूरब के संगीत को स्पेन में लोकप्रिय बनाने का श्रेय अबू अल-कासिम अब्बास इब्न फिरनास को दिया जाता है। फिरनास एक निर्माता भी था जिसने पत्थर में शीशे को प्रयुक्त करने की कला का विकास किया और प्लानीटोरियम का निर्माण किया जहाँ बैठकर लोग हॉल में कृत्रिम सितारों, बादल के टुकड़ों और बिजली को देख सकते थे। कथित दोनों संगीतकारों ने कार्दोवा में संगीत की सरस सरिता बहा दी। बगदाद के संगीतज्ञ इन दिनों अन्दालुसिया के संगीतज्ञों की तुलना में फीके पड़ गये। फिरनास इतिहास का प्रथम व्यक्ति है जिसने उड़ने के लिये वैज्ञानिक प्रयोग किया था। इन दोनों संगीतकारों ने फारसी अरबी शैली का विकास किया था जो बाद में यूनानी और पाइथागोरियन शैली से दब गयी। इन दिनों सेविले संगीत का, संगीतकारों का नगर बन गया। यहाँ वाद्ययन्त्रों का निर्माण किया जाता था जिनका यहाँ से से निर्यात भी होता था।

इब्न-बज्जाह तथा इब्न-साबिन नामक दो अन्य संगीत-विशारद भी थे जिन्होंने संगीत की विद्या का विकास किया। साबिन ने संगीत शास्त्र पर 'किताब अल-अदवार अल-मंसूब' नामक एक पुस्तक की रचना भी की। मूरी नर्त्तकियों तथा गायकों ने स्पेन के लोगों तथा पुर्तगालियों का अपने गान से बड़ा मनोरंजन किया। विज्ञान तथा साहित्य की तरह स्पेन का संगीत भी यूरोपीय देशों में फैल गया। शतरंज का खेल, तालबद्ध लय, वीणा आदि का इजाद स्पेन में ही हुआ।

स्पेन में अन्य औद्योगिक कलाओं ने भी विकास का वातावरण पाया। यहाँ बुनाई कला, काष्ठ कला, मृतिका कला, धातु कला आदि का विकास हुआ। शीशे और हाथी दाँत के अनेक सामान यहाँ बनाये जाते थे। सुघड़ बासन, हथियार, आभूषण तथा सजावट के अन्य सामान यहाँ बनाये जाते थे। रेशमी वस्त्र, मसलिन पर्दे, दरी, मंजूषा आदि बनाने में यहाँ के लोग दक्ष थे।

अध्याय 16

सिल्जुक तुर्कों का उत्कर्ष
(Rise of the Siljuk Turks)

अब्बासी खिलाफत के पतन-काल में पूर्व तथा पश्चिम के अनेक छोटे छोटे राज्य-स्वतन्त्र सत्ता का संस्थापन नये राजवंशों के नेतृत्व में कर लिया। ये सभी के सभी मुस्लिम राजवंश थे जो पानी के बुलबुले की तरह जन्मे, बढ़े, चले और एक के बाद एक विलुप्त होते गये। पूर्व में नये शासन कायम करने वाले राजवंशों में ताहोरीदी, शफरीदी, समानी, गजनवी, बुवाहिद, सिज्लुक आदि उल्लेखनीय थे। पश्चिम में अरबों के नये राजवंशों में स्पेन के उमैय्या, इद्रीसी, अगलावी, तुलुनी, इशीदी, हमदानी आदि मशहूर थे।, इन सभी राजवंशों में पूर्व में सिल्जुक तुर्क तथा पश्चिम में स्पेन के उमैय्या शासक, शासन तथा सभ्यता संस्कृति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। उमैय्या का इतिहास हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। यहाँ सिज्लुक तुर्कों के इतिहास का अध्ययन किया जायेगा।

सिल्जुक कौन थे ?

सिज्जुकों के उत्कर्ष तथा शासन की जानकारी के पूर्व उनके नस्ल की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। प्रशासन संस्थापन के बहुत पहले सिल्जुक खानाबदोश थे और अरब के बद्दूओं की सी जिन्दगी गुजारते थे। उनका जीवन-यापन लूट के धन से होता था और वे यत्र-तत्र घूमते फिरते थे। वे यायावार थे और 'ओगज' के नाम से जाने जाते थे। इस्लाम के उदय के बाद जब ओगजों ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया तब उन्हें 'तुर्कोमान' कहा गया। इस्लाम के उत्कर्ष के पूर्व तुर्क ओगज जाति के लोगों ने उत्तरी राज्य की स्थापना (छठी शताब्दी में) कर डाली थी और तत्पश्चात उन्होंने पश्चिम की ओर अपना विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया था। इस्लाम स्वीकार करने के बाद इन्होंने सुन्नी सम्प्रदाय के प्रति विशेष अनुराग का प्रदर्शन किया। इतिहास में तुर्कोमान अपनी वीरता के कारण मशहूर होने लगे। जब समानियों तथा कारखानियों और इलेकखानों तथा गजनी के सुल्तान के मध्य खींचातानी और संघर्ष हुए तब इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। दूसरी तरह वे अपना विस्तार भी करने में सक्रिय बने रहे तथा पश्चिम में अजरबैजान तथा ईराक तक अपनी सत्ता तथा शक्ति का विस्तार कर लिये। उत्कर्ष के इन्हीं दिनों उनका नेतृत्व करने के लिये एक नेता का आविर्भाव हो गया जिसने इस जाति को संगठित कर इसके उत्कर्ष में चार चाँद लगा दिये। इस नेता का नाम था सिल्जुक जिसके नाम पर तुर्कोमान 'सिल्जुक' कहे गये। सिल्जुक ने 9्6 ई० से अपना उत्कर्ष करना प्रारम्भ किया। उसके नेतृत्व में ही तुर्किस्तान की यह खानाबदोश जाति संगठित हो गयी और स्थानान्तरण करके बुखारा में आकर बस गयी। यहीं उसने इस्लाम को स्वीकार कर लिया और उत्कर्ष के अन्य सोपानों को खोजना प्रारम्भ किया।

सिल्जुक तुर्कों का उत्कर्ष

बुखारा को ही अपना शक्ति केन्द्र बनाकर सिल्जुक तुर्कों ने अपने उत्कर्ष की गति को तीव्र किया। सिल्जुक का खान्दान ही इस क्षेत्र में नाम कमाने लगा। उसके एक पौत्र तुगरिल ने अपने परिवार के एक सदस्य (संभवत: उसका भाई हो) के सहयोग से अपने शक्ति-बल को बढ़ाकर खुरासान तक अपने अधिकार की सीमा बढ़ा ली। इस समय खुरासान में गजनवी वंश का शासन चल रहा था जिसे परिसमाप्त करके तुगरिल अपना शासन कायम करना चाहता था। गजनवी शासक मसूद भी कम ज़िद्दी नहीं था। वह इस बात के लिये कटिबद्ध था कि सिल्जुकों को खुरासान से खदेड़ दिया जाय और उनके पाँव जमने न दिया जाय। इस बात का निर्णय युद्ध के द्वारा हो सकता था। अन्ततोगत्वा दोनों पक्षों की सेनाओं में हेरात में मुठभेड़ हो गयी। तुगरिल के सैनिकों में अटूट विश्वास था, अदम्य उत्साह था और विस्तार करने का नया जोश खरोश था। अतः उन्होंने मसूद की सेना को हेरात में पछाड़ दिया और गज़नवी वंश के धराशायी राज्य महल की नींव पर सिल्जुकों ने अपना महल खड़ा किया। मसूद के उत्तराधिकारी सुल्तान इब्राहिम इतना भयभीत हो गया कि उसने तुगरिल से समझौता कर लिया और अपने विस्तार के लिये हिन्दुस्तान की ओर मुखातिब हुआ। युद्ध के बाद तुगरिल का उत्कर्ष बढ़ता गया और उसने गजनियों के अधिकृत प्रदेश मारव तथा नेसाबूर पर अपना अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात उसके नेतृत्व में सिल्जुकों ने बल्ख, जुर्जान, तबारिस्तान, ख्वारिज्म, हमादान, रे, इस्बहान आदि पर अधिकार कर लिया। गजनवी वंश को पस्त करने के बाद सिल्जुकों ने बगदाद स्थित बुवाहिद वंश के शासन को समाप्त करने का कार्यक्रम तैयार किया। बुवाहिद परवर्ती अब्बासी शासकों को नगण्य मानकर स्वतन्त्र रूप से बगदाद में शासन करने लगे थे। सन् 1055 ई० में तुगरिल बगदाद आ धमका और बगदाद में खलीफा पर से न केवल बुवाहिदों के प्रभाव को विनष्ट किया बल्कि उनकी शक्ति को भी मर्दित किया। बुवाहिद शासक का अन्तिम प्रतिनिधि गवर्नर अल-बसासीरी ने बगदाद का त्याग कर दिया। इस समय खलीफा के पद पर अब्बासी देश का अल-कईम बैठा था। उसने तुगरिल का स्वागत करने के लिये अपना हृदय खोल दिया। स्वागत करने के अलावा अन्य कोई चारा भी तो नहीं था।

ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में सिल्जुकों ने उत्कर्ष करना प्रारम्भ किया और पूरब में उनकी धाक जमने लगी। अब्बासी शासकों की कमजोरी ने ही उन्हें उत्कर्ष का अनुकूल वातावरण दिया था। दूसरी तरफ स्पेन में उमैय्या और मिस्र में फातिमी वंशों ने अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया था। बुवाहिदों, गजनवियों आदि ने फारस, ट्रांसआक्सियाना तथा पूरब और दक्षिण के विभिन्न क्षेत्रों को आपस में बाँट लिया था। सर्वत्र अराजकता व्याप्त थी, राजनीतिक अस्थिरता थी। ऐसी स्थिति में तुगरिल बेग ने अपना उत्कर्ष करके सिल्जुक वंश का शासन स्थापित कर लिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

सिल्जुक के बाद तुर्कों के तीन महान शासक—तुगरिल बेग, आल्प आर्सलेन और मलिक शाह—हुए जिनका काल स्वर्ण-युग माना जाता है। इनके काल में

इस्लाम की सीमा पुनः विस्तृत हुई और एक बार पुनः पश्चिम एशिया में एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य कायम हुआ।

तुगरिल बेग (1037-63)

सिल्जुक के बाद सिल्जुक तुर्कों ने तुगरिल बेग को अपना नेता चुन लिया। उसने अपने वंश के शासन को स्थायित्व प्रदान करने में सर्वाधिक प्रयास किया। अपने भाई की सहायता से उसने खोरासान तक धावा किया जिसका उल्लेख किया जा चुका है। 1037 ई० में दोनों भाइयों ने गजनी के मारव और नेसाबूर पर आक्रमण किया और उन पर अधिकार कर लिया। बल्ख, जर्जान, जबारिस्तान, ख्वारिज्म, हमदान, रे और इस्बहान पर भी तुगरिल बेग ने शीघ्र ही कब्जा कर लिया। बुवाहिद शासक तुगरिल बेग की शक्ति के समक्ष लड़खड़ाने लगा। 18 दिसम्बर, 1055 ई० तुगरिल बेग बगदाद के प्रवेश-द्वार पर आ धमका। बुवाहिद (अब्बासी) वंश का अन्तिम गवर्नर बगदाद छोड़ कर भाग गया। अब्बासी खलीफा कईम ने आगे बढ़कर विजयी सरदार का स्वागत किया।

एक वर्ष पश्चात तुगरिल बेग पुनः बगदाद वापस लौटा जहाँ उसका जमकर स्वागत हुआ। खलीफा ने उसे अपने राज्य का प्रति-शासक (Regent) बनाया और 'पूरब तथा पश्चिम के देशों का राजा' मानकर उसे सुल्तान' की उपाधि से अलंकृत किया। सिद्धान्ततः कईम ही अब्बासी राज्य का खलीफा रहा, पर व्याव-हारिक रूप से खिलाफत के सारे अधिकार सुल्तान के हाथों में चले गये।

सुल्तान बनते ही तुगरिल ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। उनकी अनुपस्थिति से फायदा उठाकर बसासीरी ने पुनः बगदाद पर अधिकार कर लिया। इस कार्य में फातिमी खलीफा मुस्तानसिर ने बसासीरी की मदद की थी क्योंकि बसासीरी ने वचन दिया था कि बगदाद तथा अपने सारे अधिकार उसे सुपुर्द कर देगा। उसने अपने वचन का पालन किया। बगदाद-विजय के पश्चात् उसने राजकीय पोशाक, राजकीय चिन्ह एवं कईम की पगड़ी और राजभवन की खिड़की मुस्तानसिर के पास भेज दी।

इस घटना की खबर जैसे ही तुगरिल बेग को मिली वैसे ही वह वापस लौट आया और 1060 ई० में बसासीरी को परास्त कर कईम को पुनः पदस्थापित किया। कुछ दिनों के बाद बसासीरी की हत्या कर दी गयी।

इसी वर्ष तुगरिल बेग ने बिजेन्ताईन के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। बिजेन्ताईनों को कप्पाडोसिया और फारजिया से खदेड़ने में उसे सफलता मिली। लेकिन उसकी अचानक मृत्यु हो जाने के कारण स्थायी प्रभाव कायम न रह सका।

तुगरिल बेग एक कुशल विजेता और सफल शासक था। एशिया में सिल्जुक तुर्कों का गौरव बढ़ाने में तुगरिल बेग ने ही सहयोग दिया। इसके उत्कर्ष के पूर्व इस्लाम का सारा गौरव जाता रहा था और राज्य में सर्वत्र अराजकता व्याप्त

थी। तुगरिल ने न केवल इस्लाम को नया जीवन दिया प्रत्युत राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था भी कायम की।

तुगरिल के चरित्र में मानवता के सो उद्दात्त गुण विद्यमान थे। उसके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सादगी थी। एक साथ ही वह सज्जन, सहिष्णु एवं दयालु था। वह साहित्य एवं कला का प्रेमी भी था। उसने जिन-जिन शहरों एवं भू-प्रदेशों पर अधिकार किया, वहाँ मदरसों तथा मस्जिदों का भी निर्माण किया। उसकी विद्यानुरागिता तथा दयालुता की प्रशंसा उसके शत्रु तक करते थे।

आल्प आर्सलेन (1063-72)

आल्प आर्सलेन दूसरा प्रसिद्ध सुल्तान था जिसने तुगरिल बेग द्वारा अधूरे कार्य को पूरा किया। यह तुगरिल बेग का भतीजा था। इसके नाम का अर्थ है 'दिलेर सिंह' (Valiant Lion) और सिंह की तरह उसने दिलेरी दिखलाकर अपने नाम के अर्थ को सार्थक किया।

आल्प आर्सलेन को अपने पुराने शत्रु बिजेन्ताईनों से संघर्ष करना पड़ा। 1071 ई० में मन्जीकार्त्त के युद्ध में बैजेन्ताईन शासक डियोजेनस रोमानस को परास्त किया और अनेक रोमनों के साथ उसे गिरफ्तार कर लिया। सम्राज्ञी यूडोसिया भी रोमानस को विजय नहीं दिला सकी जिसकी सहायता से वह राजा बना था। अब एशिया में बैजेन्ताईनों की सारी शक्ति नष्ट हो गयी और सम्पूर्ण एशिया माइनर में मुसलमान आकर निवास करने लगे। रोमानस ने सुलतान से सन्धि कर अपनी मुक्ति खरीद ली। संधि के अनुसार यह निर्णय हुआ कि (क) रोमानस अपनी पुत्रियों की शादी आल्प के पुत्रों से करेगा, (ख) एक करोड़ धनराशि सुल्तान को देगा, (ग) 360 स्वर्ण-खंड प्रतिवर्ष खिराज के रूप में सुलतान की सरकार को देगा और (घ) युद्ध में पकड़े गये सारे कैदियों को मुक्त कर देगा। संधि के उपरान्त रोमानस कुस्तुनतुनिया लौट गया। लेकिन उसकी प्रजा ने उसे पदच्युत कर दिया और उसकी आँखें फोड़कर प्रजा ने उसकी हत्या कर डाली। आल्प चाहते हुए भी अपने इस मित्र की मदद न कर सका क्योंकि उसके पहुँचने के पूर्व ही रोमानस की जीवन लीला समाप्त हो चुकी थी। सुल्तान ने अपने चचेरे भाई कुतलुमिश के पुत्र सुलेमान को एशिया माइनर का गवर्नर नियुक्त कर दिया। 1077 ई० में उसी सुलेमान ने यहाँ रूम सल्तनत कायम की। धर्म-युद्ध के काल तक सुलेमान के उत्तराधिकारी एशिया माइनर पर शासन करते रहे। आगे चलकर तातारों ने एशिया माइनर पर अधिकार कर रूम सल्तनत को समाप्त कर दिया।

अगर तुगरिल बेग ने शासन को स्थायित्व प्रदान किया तो अल्प आर्सलेन ने राज्य का विस्तार किया। आल्प ने इस्वहान को राजधानी बनाकर शासन का कार्य किया और बगदाद से अलग रहा। तुगरिल ने भी बगदाद की जगह

मारव को अपनी राजधानी बनायी थी। 1091 ई० में मलिक शाह ने बगदाद को ही अपने शासन का केन्द्र बनाया।

आल्प का कल्याणकारी शासन उचित न्याय पर आधारित था। उसके सम्पूर्ण शासन का संगठन उसके कुशल वज़ीर ख्वाजा हसन या निजाम उल-मुल्क ने किया था। इतिहासकार आथिर ने आल्प की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। उसके अनुसार सुलत न प्रजा-पालक एवं प्रजा का शुभचिन्तक था। उसके जीवन में सज्जनता, सरलता एवं सादगी के गुण भरे हुए थे। वह मानवता का पुजारी, दरिद्रों का सहायक, महान दानी एवं सफल विजेता था।

मलिक शाह (1072-92)

सिल्जुक शासन का उत्कर्ष मलिक शाह के शासन-काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। अपने पिता आल्प आर्सलेन से वह अधिक योग्य शासक सिद्ध हुआ। खलीफा मुक्तदी ने इसके शासन के गौरव को ध्यान में रखकर ही इसे 'जलालुद्दौला' का विरुद् प्रदान किया था जिसका अर्थ होता है 'साम्राज्य का गौरव'।

मलिक शाह के काल में राज्य-विस्तार का काम काफी सफलतापूर्वक चला। रूम सल्तनत के अधिकारी सुलेमान ने काहिरा तक राज्य-विस्तार करके सिल्जुक शासन को अधिकाधिक गौरवान्वित बनाया। रोमानस के उत्तराधिकारी नाइसेफोरस बोटानियेट्स तथा अलैक्जियास कॉमनेसस ने मलिक शाह की संप्रभुता को स्वीकार कर लिया। सुलेमान ने अन्तिओक से ग्रीकों को खदेड़ दिया। इब्न खालिकन के शब्दों में "मलिक शाह ने अपने बाहुबल से राज्य-सीमा का अपूर्व विस्तार किया। उसका राज्य काशगर से जेरुसलेम तक लम्बा और कुस्तुनतुनिया से कास्पियन सागर तक चौड़ा था।"

लेकिन मलिक शाह की प्रसिद्धि उसके विजय-कार्यों पर अधारित न होकर उसके द्वारा संगठित शासन-व्यवस्था पर आधारित है। निजाम उल-मुल्क की अमूल्य सेवा से इसका काल भी लाभान्वित हुआ। मलिक शाह ने इस वजीर को 'अता बेक' (Prince Governor) की उपाधि देकर उसका सम्मान किया।

प्रजा के कल्याण के लिये मलिक शाह ने हारून रशीद तथा मामून की तरह अपने राज्य के विभिन्न भूखण्डों में कूपों एवं नहरों का निर्माण करवाया। उसने ढहती मस्जिदों एवं गिरती दीवारों की मरम्मत करवायी और हज के लिये जाते हुए कारवाँ को आराम देने के लिये सरायों का प्रबन्ध किया। इब्न खालिकन के अनुसार उनके राज्य की सारी सड़कें निरापद थीं और ट्रानजोक्सियाना से सीरिया तक कोई भी व्यक्ति निर्भय होकर यात्रा कर सकता था। मुक्तादी ने बगदाद में स्वास्थ्य एवं सफाई कायम रखने के लिये जिन साधनों का ईजाद किया था, उनमें से अधिकांश उसी सुलतान के मस्तिष्क की उपज थे। इसी के परामर्श पर सार्वजनिक स्नानागार से गन्दे पानी के निष्कासन की व्यवस्था

की गयी थी। पानी को स्वच्छ रखने के लिये मछलियों से सहायता लेने का काम भी इसी ने बतलाया था। रोम एवं अरब के किसी भी प्रजापालक शासक से मलिक शाह कम नहीं था।

कला और साहित्य की दुनियाँ भी मलिक शाह के काल में चमक उठी। मलिक शाह कलाकारों एवं साहित्यकारों को मुक्त-हस्त सहायता दिया करता था। फारसी के विकास में सुलतान ने विशेष दिलचस्पी दिखलायी। एशिया के विभिन्न शहरों में सुलतान ने कॉलेजों, अस्पतालों एवं मस्जिदों का निर्माण करवाया। वजीर निजाम स्वयं एक विद्वान पुरुष था। शासन कला पर उसकी 'सियासतनामा' पुस्तक आज भी प्रसिद्ध है। इस युग की अन्य पुस्तकें 'नासिर-ए खुसरों' तथा 'उमर अल खय्याम' साहित्यजगत की अमूल्य धरोहर हैं।

मलिक शाह की सबसे बड़ी देन जलाली कैलेन्डर है। मलिक का पूरा नाम जल्लालुद्दीन अबू अलफत था। अतः उसके काल में बना यह कैलेन्डर उसी के नाम से पुकारा गया। राज्य के खगोलशास्त्रियों का सम्मेलन बुलाकर वजीर निजाम तथा कवि एवं खगोलशास्त्री खैय्याम के निर्देशन में जलाली कैलेन्डर का निर्माण किया गया था।

मलिक के शासन के अन्तिम वर्षों में हत्यारों का एक दल (Assassins) हसन सबा नामक एक विद्यालय के शिक्षक के नेतृत्व में अधिक प्रभावशाली हो उठा। इसी दल के एक व्यक्ति ने वजीर की हत्या कर दी। निजाम की हत्या का गम सुलतान बरदाश्त न कर सका और 1098 ई० में 39 वर्ष की ही अवस्था में चल बसा। मलिक के साथ ही सिल्जुक राज्य एवं शासन की सारी प्रगति और मान मर्यादा भी जाती रही। साम्राज्य गृह-युद्ध का शिकार हो गया और मलिक के अयोग्य उत्तराधिकारी राज्य के हित की बातें न सोचकर अपने हक और अधिकार की बातें सोचने लगे।

अवसान

सिल्जुक तुर्कों का शासन निजाम उल मुल्फ की मृत्यु के साथ ही प्रारम्भ हो गया। अबतक के कथित तीन सिल्जुक सुल्तानों के काल में साम्राज्य में समग्र प्रगति आयी थी क्योंकि वे सभी सुल्तान प्रतापी, कर्मठ तथा बहादुर थे। उनके बाद का शासन अवसान के आसन्न हो गया और 1092 के उपरान्त तुर्कों का दर्प फीका पड़ गया, शासन की शक्ति छीन हो गयी और प्रगति के सारे चिन्ह विलुप्त हो चले। तुगरिल का तेज, मलिक शाह की मर्दानगी और आर्सलेन का अदम्य उत्साह अब कहीं देखने को न था। अपने शक्ति-बल से इन तीनों सिंहों ने अपनी तलवारों की गर्जना से न केवल साम्राज्य की सीमा में विस्तार लाया था अपितु उसके गौरव एवं सभ्यता-संस्कृति में भी अभिवृद्धि की थी। किन्तु इस्लाम की कहानियों में सिल्जुक तुर्कों की कहानी अत्यन्त ही लघु थी। तीन अभिनायकों ने सफल अभिनय करके नेपथ्य में लघु पात्रों को छोड़ दिया जो आपस में ही उलझकर रह गये और अपने खान्दान के गौरव को धूल-धूसरित होने दिये। मलिक

शाह के स्वर्गगामी होने के पश्चात् सिल्जुक घराना कलह का आखाड़ा बन गया और उत्तराधिकार के प्रश्न पर सभी सदस्य आपस में लड़ने लगे। गृह-कलह ने साम्राज्य की शक्ति का हनन करना प्रारम्भ किया। 'हत्यारों के दल' ने परिस्थिति को अनुकूल पाकर हसन सबा के नेतृत्व में अपनी ताकत बढ़ा ली। एक तरफ गृह-कलह और दूसरी तरफ विरोधियों के जुम्म ने अपना दूषित परिणाम लाया। शासन को विघटित होना पड़ा। इसी नाजुक दशा में गद्दी पर आनेवाले सारे अन्य उत्तरकालीन सिल्जुक शासक महमूद, बरकयारूक, मोहम्मद आदि कमजोर तथा अदूरदर्शी सिद्ध हुए। साम्राज्य को विघटित करनेवाले तत्वों का जन्म होता गया और सिल्जुकों के अधिकृत प्रदेश स्वतन्त्र होकर अपनी सत्ता का संस्थापन करने लगे। यह सही है कि सिल्जुकों की प्रधान फारसी शाखा के लोग 1157 ई० तक टूटते-बिखरते राज्य पर अधिकार एवं शासन जमाये रखे, किन्तु यह केवल दिखावापन के अलावा और कुछ न था। लगभग 1300 ई० तक रूम राज्य सत्ता से चिपका रहा जिसे बाद में ऑटोमन तुर्कों ने अपने अधिकार में कर लिया। इस मध्यकाल में ऑटोमन तुर्कों ने अपना उत्कर्ष करके इस्लामी इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया। उनके नेतृत्व में इस्लामी साम्राज्य का अपरिमित विकास हुआ और वह प्रथम विश्वयुद्ध तक बना रहा। दूसरी तरफ सिल्जुक साम्राज्य के अवशेष भाग पर मुजाहिदों ने अधिकार कर लिया। मुजाहिदों की शक्ति का दमन करने में सुल्तान बरकयारूक अशक्त हो गया। फिर, 1194 ई० में अन्तिम सिल्जुक सुल्तान तुगरिल तथा ख्वारिज्म के शासक तकाश के बीच युद्ध हुआ जिसमें सिल्जुक सुलतान को पराजय मिली। इस पराजय के बाद इराक तथा कुर्दिस्तान में भी सिल्जुकों की शक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया हो गयी। बाद में मंगोलों के नेता चंगेज खाँ तथा तातार आक्रान्ताओं ने अब्बासी साम्राज्य के साथ-साथ सिल्जुकों के अवशेष राज्य को भी रौंद डाला। इस तरह सिल्जुकों का भाग्य-सूर्य बहुत ही जल्द अपना तेज खोकर अस्ताचल की ओर चल पड़ा।

यों तो कथित सन्दर्भ सिल्जुकों के पतन की कहानी स्पष्ट करते हैं, पर क्रमिक रूप से इन विघटनकारी तत्वों का उल्लेख प्रासंगिक हैं।

सिल्जुकों के पतन का प्रधान कारण गद्दी पर कमजोर उत्तराधिकारियों का आरूढ़ होना है। मलिक शाह के उपरान्त वास्तव में सिल्जुक गद्दी की शोभा श्रीहीन हो गयी क्योंकि अब योग्य शासकों की जगह कमज़ोर शासकों ने शासन करना प्रारम्भ किया। इन कमजोर शासकों ने साम्राज्य में पैदा होने वाले विघटनकारी तत्वों को समाप्त न कर सके। हत्यारों का दल विरोध करता रहा, बुवाहिदों का उत्कर्ष होता रहा और केन्द्रीय सत्ता लड़खड़ाती रही। कमजोर उत्तराधिकारियों ने इन विघटनकारी तत्वों की वृद्धि में सहायता ही दिये।

कमजोर उत्तराधिकारियों ने गृहकलह को जन्म दिया। मलिक शाह के बाद शासन आन्तरिक दृष्टि से गृह-कलह के कारण कमजोर होता गया। गृह-कलह का कारण था सत्ता पर अधिकतर। मलिक शाह के पुत्र सत्ता के प्रश्न को करले आपस में झगड़ पड़े। घर की फूट पतन का कारण है। मलिक शाह के

बाद सिल्जुक गद्दी पर उसका छोटा पुत्र महमूद बैठा जिसे उसके अग्रज बरक्यारूक ने हटाकर स्वयं गद्दी पर अख्तियार कर लिया। इस बीच उनका एक दूसरा भाई मोहम्मद बीच में आ टपका और उसने परक्यारूक का विरोध करना प्रारम्भ किया। इस गृह-कलह का अन्त तभी हुआ जब शासन ने दम तोड़ा। गृह-कलह के समय 'हत्यारों के दल' तथा उसके नेता हसन सबा ने अपनी स्थिति एवं शक्ति मजबूत कर ली।

उत्तरकालीन सिल्जुक शासकों का तिरस्कार जनसमूह ने करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक तीनों शासक साम्राज्यवादी ही नहीं थे, जनहितकारी भी थे। उन्होंने आम जनता के जीवन को खुशहाल बनाने का प्रयास किया था और तत्संबंधी अनेक कार्यों का सम्पादन किया था। किन्तु, उनके उत्तराधिकारियों ने जनहित की उपेक्षा कर दी और केवल सत्ता पर अधिकार करने की चिन्ता एवं संघर्ष में लगे रहे। अतः जन-सहयोग के अभाव में संकट के समय शासकों को अकेला रह जाना पड़ा।

सिल्जुक साम्राज्य के पतन में जागीर प्रथा ने भी अपनी भूमिका निभायी जिसको वजीर निजाम-अल-मुल्क ने अपने काल में अधिक प्रोत्साहन दिया था। इस प्रथा के अनुसार सैनिकों तथा सैनिक अफसरों को अब नगद वेतन की जगह बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाने लगीं। इन जागीरों पर सैनिकों के वंशानुगत अधिकार भी कायम कर दिये गये। जागीरें अर्द्ध स्वतन्त्र राज्य की तरह थीं जिनपर उत्तरकालीन सिल्जुक शासकों ने नियन्त्रण कायम रखने में असफलता पायी। मलिक शाह के शासन के उपरान्त साम्राज्य में जितनी जागीरें थीं, लगभग सभी की सभी स्वतन्त्र हो गयीं। उनकी स्वतन्त्र सत्ता एवं क्रिया-कलापों ने परवर्ती सिल्जुक सुल्तानों की कमजोरी को स्पष्ट कर दिया।

सिल्जुकों की केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होते ही बाह्य आक्रमणकारियों ने साम्राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अराजक स्थिति की व्याप्तता ने मुजाहिदों को आक्रमण करने के लिये उत्प्रेरित किया। उनके आक्रमणों की बाढ़ को रोकने में सिल्जुक सुल्तान अथवा अब्बासी खलीफा एकदम असफल सिद्ध हो गये। मुजाहिदों ने ट्रिपोली पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया और बारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही उन्होंने अब्बासी साम्राज्य के विस्तृत भूभागों पर अधिकार कायम करने में सफलता प्राप्त कर ली। तदुपरान्त चंगेज खाँ तथा तातारों के आक्रमणों ने साम्राज्य को रौंद कर उसकी शक्ति को विनष्ट कर दिया। कालान्तर में ऑटोमन तुर्कों ने सिल्जुक तथा अब्बासी साम्राज्य को निगल डाला।

सिल्जुक शासन का महत्व

इस्लामी इतिहास में सिल्जुक शासनावधि अपनी प्रगतिशील कार्यों तथा आर्थिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिये महत्वपूर्ण है। यद्यपि बहुत थोड़

समय तक ही सिल्जुकों ने गौरवयुक्त शासन कायम रखा था, तथापि इस अल्पावधि में ही उन्होंने प्रजा को आर्थिक सम्पन्नता देने का प्रयास किया और संस्कृति के वक्ष में फल-फूल लगाने का प्रयास किया। संयोगवश फारसी वजीर निजाम-उल-मुल्क जैसा व्यक्ति इस शासन को मिल गया जिसने चतुर्दिक प्रगति लाने का प्रयास किया।

सिल्जुकों ने राज्य की समृद्धि के लिये आर्थिक क्षेत्र को गठित करने का प्रयास किया। वजीर निजाम-उल-मुल्क ने सामन्तवादी व्यवस्था के आधार पर राज्य का आर्थिक गठन किया। सिल्जुक और उनके सैनिक यायावर होने के कारण अनुशासित जीवन से दूर थे। ऐसी दशा में सिल्जुक शासक आततायी हो सकते थे और अपनी प्रजा का आर्थिक शोषण कर सकते थे। यही कारण था कि उसने अर्थ-व्यवस्था को व्यवस्थित करने का प्रयास किया। सिल्जुक सैनिकों को कुछ ऐसी सुविधाएँ देनी थीं जिसके कारण राज्य के वफादार सेवक बन सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने जागीर की प्रथा प्रारम्भ की। सैनिकों को जैसे ही जागीरें मिलीं वैसे ही वे निष्ठापूर्वक राज्य की सेवा करने लगे। किन्तु यह भी स्मरण रहे कि कालान्तर में जागीरों के कारण ही सिल्जुकों के शासन का पतन भी हुआ जिसका उल्लेख किया जा चुका है। फिर सिल्जुक शासक दरिद्रों की सहायता करते थे। आर्सलेन महान दानी था और गरीबों तथा दरिद्रों को दान दिया करता था।

सिल्जुक काल संस्कृति के विकास के लिये भी महत्वपूर्ण है। वजीर ने न केवल आर्थिक संगठन में अपनी अभिरुचि दिखलायी थी प्रत्युत संस्कृति के विकास में भी उसने समान रूप से दिलचस्पी ली। सन् 1065 ई० में निशापुर में और पुनः बगदाद में निजामिया विश्वविद्यालय की स्थापना की। अतः उमैय्या तथा अब्बासी कालों की तरह इस काल में भी शिक्षा के विकास की ओर ध्यान दिया गया। इसी प्रकार इस काल में साहित्य का सृजन भी किया गया। गजाली ने निशापुर में बैठकर साहित्य-सर्जना की। वह इस्लामी इतिहास का अन्तिम धर्मशास्त्री माना जाता है। उसने दर्शन एवं धर्मशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था और धर्मशास्त्र पर तो ग्रन्थ की रचना भी की थी। उसके काल के लोग उसकी रचनाओं को समझने में असमर्थ थे।

इस काल का दूसरा अन्यतम विद्वान था उमर-अल-खैय्याम। इस विद्वान ने गणित, ज्यामिति तथा अलजेबरा पर पुस्तकों का सृजन किया। इसी विद्वान के निर्देशन में सिल्जुक सुलतान मलिक शाह ने तालिका का निर्माण करवाया जिसे 'जलाली कैलेन्डर' कहा जाता है। खैय्याम एक महान कवि भी था और उसकी चर्चा प्रत्येक युग में होती रहेगी। वजीर निजाम-उल-मुल्क भी युग का एक महान साहित्यकार था। उसने फारसी में 'सियासतनामा' लिखा जो एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। नासिर ए खुसरो भी इस काल का एक महान शिक्षाविद् था।

सिल्जुक सुल्तान निर्माता भी थे। मलिक शाह के काल में निर्माण कार्य अधिक हुए। इसका कारण यह था कि उसे निजाम जैसा योग्य वजीर मिल गया था। उसके काल में साम्राज्य में पथों, कूपों, सरायों तथा नहरों का निर्माण किया गया। सड़कों की सुरक्षा के लिये सुल्तान ने पहरेदारों की व्यवस्था की। जन-स्वास्थ्य के लिये चिकित्सालय तथा शिक्षा प्रसार के लिये मदरसों की स्थापना की गयी। अनेक नगरों में मस्जिदों का निर्माण किया गया। निःसंदेह सिल्जुक काल में संस्कृति के विकास में सुल्तानों ने रुचि दिखलायी।

अध्याय—17

फातिमी खिलाफत

फातिमी खिलाफत इस्लाम के इतिहास में सबसे बड़ा शिया खिलाफत है जिसकी स्थापना 909 ई० में सईद इब्न हुसेन ने ट्यूनिसिया में की थी। इस्माइल सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए इस वंश के खलीफाओं ने सम्पूर्ण मिस्र पर कब्जा जमा लिया और फातिमी शासन की विशालता अब्बासी शासन को चुनौती देने लगी। सईद इब्न हुसेन पैगम्बर मुहम्मद की पुत्री फातिमा तथा ईस्माइल का वंशज था। इसीलिये उसके द्वारा स्थापित शासन को फातिमी खिलाफत कहकर सम्बोधित किया गया। पहले के 'इक्सीदीद' तथा 'तुलुनीद' नामक दो वंशों के लोगों को राज्य के धर्म तथा प्रशासन में कुछ भी महत्व नहीं था।

राजनीतिक महत्ता

राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इस वंश का शासन महत्वपूर्ण है। इस वंश में कुल तेरह खलीफा हुए। प्रारम्भिक दो-तीन खलीफाओं ने राज्य का विस्तार कर शासन का समुचित संगठन किया। सच्चे अर्थ में राजनीतिक दृष्टिकोण से फातिमी काल ने इतिहास में एक नये युग का सृजन किया। फराऊ-काल के बाद पहली बार सम्पूर्ण मिस्र पर एक संप्रभुता व्याप्त गयी जो धर्म पर आधारित थीं। यह शासन अपनी दृढ़ता के लिये प्रसिद्ध था।[1] कला, साहित्य एवं विज्ञान का विकास कर फातिमी खलीफाओं ने अपने शासन को सांस्कृतिक दृष्टि-कोण से भी महत्वपूर्ण बनाया। इस्लाम के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में बगदाद के अब्बासी शासन और कार्दोवा के उमैय्या शासन का जो महत्व है वही महत्व काहिरा के फातिमी शासन का भी है।

अल-महदी (909-34)

सईद इस वंश का संस्थापक तथा पहला खलीफा था जिसने उबेदुल्लाह अल-महदी की उपाधि धारण कर शासन करना प्रारम्भ किया। अल-महदी के शासन काल में उसके धर्म प्रचारक अल-सी (al-shii) ने काफी मदद की। प्रारम्भ में इस्माइल सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार के लिये सईद सलामिया में रहा करता था जिसे कालान्तर में त्यागकर एक व्यापारी के वेश में उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका आ गया और 909 ई० में अघलब वंश के अन्तिम शासक जिया-

---

1. Politically the Fatimid period marks a new epoch in the history of the land, which for the first time since pharaonic days had a completely sovereign powerful of vitality and founded on a religious basis, —*P. K. Hitti; op. cit.* p. 625.

दत उल्लाह् को हटाकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। शासक बनते ही वह अल-महदी के नाम से विख्यात हुआ।

अल-महदी ने कैरवान के रक्काद नामक नगर में अपनी शक्ति का विकास एवं संचय किया और यहीं से अभियान-कार्य प्रारम्भ कर फातिमी राज्य की सीमा में विस्तार करना प्रारम्भ किया। रक्काद की धरती ने उसे एक योग्य शासक के रूप में प्रसिद्धि प्रदान की।

अपने शासन के दूसरे वर्ष अल-महदी ने अपने धर्म-प्रचारक की हत्या करवा दी और मोरक्को से लेकर मिस्र तक के प्रदेशों पर अपना विजय-ध्वज फहरा दिया। इसी काल में करीब-करीब सम्पूर्ण अफ्रीका फातिमी संप्रभुता के अधीन हो गया। 914 ई० में सिकन्दरिया पर भी कब्जा कर लिया गया और दो साल बाद डेल्टा पर कहर ढाया गया। 'कितमा' कबीले के एक सदस्य को उसने सिसली का गवर्नर बना दिया और स्पेन के शक्तिशाली विद्रोही इब्न-हफसून से मित्रता कर अपनी दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।

918-19 ई० में अल-महदी ने पुनः विस्तारवादी नीति का अनुशीलन किया। उसके पास अग्रलबों की नौसेना पहले से ही थी। इसी सेना के जरिये उसने माल्टा, सर्डेनिया, कोर्सिका बालीयेरिक आदि द्वीपों पर अधिकार कर लिया। राज्य की विशालता को देखकर अल-महदी ने अब राजधानी का परिवर्त्तन करना आवश्यक समझा। रक्काद की जगह अब महदिया को उसने अपनी राजधानी बना डाली और यहाँ आकर शासन करने लगा। इसके शासन-काल में फातिमी राज्य का काफी विस्तार हुआ।

अल-कईम (934-46)

अल-महदी के उत्तराधिकारी ने भी विस्तारवादी नीति को प्रश्रय दिया। उसका पुत्र अबू अल-कासिम मुहम्मद अल-कईम जब खलीफा बना तब उसने 934-35 ई० में नौसेना की शक्ति से फ्रान्स के दक्षिणी तटवर्ती प्रदेशों को रौंद डाला। इतना ही नहीं, इसी समय उसने जेनोवा तथा केलाब्रिया पर अधिकार कर लिया और वहाँ से असंख्य गुलामों एवं अपरिमित सम्पदा को अपनी राजधानी ढो लाया। लेकिन उसकी ये सारी विजयें अस्थायी थीं। खलीफा का वास्तविक ध्येय सम्पत्ति अर्जन कर अपने राज्य को आर्थिक सम्पन्नता प्रदान करना था।[2]

अल मुईज (952-75)

अल-कईम के पश्चात अल-मंसूर (946-52) नया खलीफा बना। इसका शासन राजनीतिक दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण नहीं था। लेकिन उसका उत्तराधिकारी तथा पुत्र अबू तामिम मआद अल-मुईज अवश्य ही एक योग्य शासक था।

2. Bernard Lewis : The Origins of the Ismailism, pp. 51-52.

उसने नौसेना के रहते हुए भी अपनी नौसेना का संगठन किया और मक्स को सैनिक-शक्ति का गढ़ बनाकर विजय-कार्य प्रारम्भ किया। उसने काहिरा (Cairo) को अपनी राजधानी बनायी और यहाँ सैन्य संगठन किया।

956 ई० में खलीफा की सेना ने स्पेन के तटवर्ती प्रदेशों पर हमला किया और उनपर कब्जा जमा लिया। स्पेन का शासक अल-नासिर हाथ मलता रह गया। उस विजय के तीन वर्ष उपरान्त फातिमी सेनापति ने उत्तर की तरफ प्रस्थान किया और अपने सैनिकों के साथ अतलान्तिक तक पहुँच गया। अतलान्तिक से उसने खलीफा अल-मुईज को सेना में जार में भर कर जीवित मछलियाँ भेजी। 969 ई० में इख्शीदीद शासकों से मिस्र के कुछ हिस्से छीन लिये गये। इस अन्तिम अभियान में जौहर अल सिकीली ने, जो गुलाम के रूप में कैरवान लाया गया था और अब एक योग्य नायक बन गया था, अपनी बहादुरी का परिचय दिया। राजधानी पुस्तात में प्रवेश करने के पश्चात् सिकोला ने काहिरा का निर्माण किया। 973 ई० में यही काहिरा फातिमी शासकों की राजधानी बनी। इसी सेनानायक ने 972 ई० में प्रसिद्ध अजहर की मस्जिद का निर्माण किया जो खलीफा अल-बजीज के काल में एक शिक्षण संस्था बन गयी।

जौहर अल-सिकोली को फातिमी वंश के शासन का दूसरा संस्थापक माना जा सकता है। अपने काल में सीरिया पर आक्रमण कर दमिश्क को उसने अपने अधिकार में कर लिया था और सभी दिशाओं में इस्लाम का प्रचार किया था। फातिमी शासन को स्थायित्व प्रदान करने में उसने किसी खलीफा से कम सहयोग नहीं दिया।

अल-अजीज (975-96)

अबू-मंसूर निजार अल-अजीज इस वंश का पाँचवा शासक था। इसके काल में राज्य में सर्वत्र शान्ति व्याप्त थी। इसका काल फातिमी मिस्र का स्वर्ण-युग माना जाता है। अतलान्तिक से लेकर लाल सागर के प्रदेशों तक उसने विजय-कार्य किया। मक्का, दमिश्क और मोसिल में इस खलीफा का नाम प्रार्थनाओं में शामिल किया गया। बगदाद के अब्बासी शासन के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में इसी काल में फातिमी शासन अवतरित हुआ। अल-अजीज को ऐसा विश्वास था कि एक दिन बगदाद पर फातिमी शासन अवश्य कायम होगा और हजारों अब्बासियों को कैदी बनकर कैरों में जिन्दगी गुजारनी होगी। इसीलिये उसने पहले ही अपने प्रतिद्वन्दियों को कैदी के रूप में रखने के लिये दो करोड़ दीनार खर्च करके कैरों या काहिरा में एक विशाल भवन का निर्माण कराया। अपने शासन काल में इसने स्पेन के उमैय्या राज्य पर भी आक्रमण करने की योजना बनायी थी।

समस्त फातिमी खलीफाओं में अल-अजीज सर्वाधिक बुद्धिमान एवं योग्य शासक था। विलास-प्रिय होने पर भी वह युद्धो में अपनी अनुपम वीरता का प्रदर्शन करता था। कैरो तथा अन्य शहरों में उसने अनेक मस्जिदों, भवनों, सेतुओं एवं

नहरों का निर्माण किया। मिस्र में निवास करने वाले ईसाईयों के साथ भी उसने काफी सहिष्णुता दिखलायी। इसके काल में ईसाई सर्वाधिक सुविधाओं का उपभोग किये। खलीफा को उदारमना एवं सहिष्णु बनाने में उसकी रूसी पत्नी तथा ईसाई वजीर इसा-इब्न-नस्तूर ने काफी सहयोग दिया था। इसके काल में तुर्की, बर्बर तथा गुलामों में परस्पर संघर्ष हुआ जिसके फलस्वरूप राज्य के स्थायित्व को गहरा धक्का लगा। कालान्तर में इन तीनों वर्गों के लोगों ने अपने वंशों का शासन कायम करने का प्रयास किया।

अल-हकीम (996-1021)

अल-अजीज के उपरान्त अबू अली मन्सूर अल-हकीम नया खलीफा बना। खिलाफत की बागडोर हाथ में सँभालते समय अल-हकीम की उम्र ग्यारह वर्ष की थी।

फातिमी शासन में विघटन के तत्व अल-हकीम के काल से दृष्टिगोचर होने लगे। यह काल राक्षसी नृशंसता का काल था और राज्य की समस्त प्रजा अपने खलीफा से असन्तुष्ट थी। खलीफा ने अपने अनेक वजीरों को जान से मार डाला, अनेक गिरजाघरों को धराशायी कर ईसाईयों की समस्त सुविधाओं का अपहरण कर लिया, ईसाईयों तथा यहूदियों की समस्त सुविधाओं का अपहरण कर लिया, ईसाईयों तथा यहूदियों को काला वस्त्र धारण करने के लिये बाध्य किया तथा उन्हें केवल गधे की सवारी करने की इजाजत दी। उसने एक राजकीय घोषणा निकाल कर यह एलान किया कि स्नान करने के समय ईसाई रस्सी के टुकड़े को और यहूदी घण्टी को अपने गले में लटकायेंगे।[3] इस्लाम के इतिहास में खलीफा मुतावक्किल तथा उमर द्वितीय के बाद अल-हकीम ही एक ऐसा खलीफा हुआ जिसने गैर-मुस्लिम प्रजा पर ऐसा प्रतिबन्ध लगाया। फरवरी 13, 1021 ई० को षडयन्त्र के द्वारा इसकी हत्या कर दी गयी।

इस काल में काहिरा की सभ्यता का वर्णन वारिसर-ए-खुसरो ने किया है। उसके अनुसार यहाँ 20,000 मकान थे जो ईंट के बने थे। अधिकांश मकान पाँच से छः मंजिलों तक के थे। बाजार में उतनी ही दूकानें थीं जो स्वर्ण, जवाहरात, इत्यादि से भरी थीं। प्रधान गलियों में धूप तथा रोशनी की व्यवस्था की गयी थी। सरकार ने वस्तुओं की कीमत का निर्धारण कर दिया था। जो दूकानदार अधिक कीमतें लेता था उसे ऊँट पर सारे बाजार की सैर कराकर सजा दी जाती थी। उसके गले में घंटी बाँध दी जाती थी और उसे सर्वथा अपना अपराध स्वीकार करना पड़ता था। राज्य में अनेक करोड़पति थे। एक व्यापारी यहूदी ने पाँच वर्षों तक अकाल के समय सम्पूर्ण प्रजा को भोजन दिया था। खलीफा को धनिकों से अधिक आर्थिक सहायता मिल जाती थी जिससे वह पुस्तकालयों, कालेजों, मस्जिदों आदि की स्थापना करता था।

---

3. Ibn Khallikan; vol. iii, p. 5.

संक्षेप में सामान्यतः फातिमी शासकों का काल कल्याणकारी और उदार था। सम्पन्नता तथा संस्कृति की दृष्टि से इस शासन की तुलना मिस्र के प्राचीन शासन से की जा सकती हैं।[4]

अल-हकीम के उत्तराधिकारी

अल हकीम के बाद अयोग्य खलीफाओं का युग प्रारम्भ हुआ। इनमें से कुछ खलीफा नावालिग भी थे। ऐसे खलीफाओं के काल में फातिमी शासन की मान-मार्यादा एवं शक्ति को गहरा धक्का लगा। विभिन्न वजीरों ने मौका पाकर अपना अधिकार बढ़ा लिया और अब वे अपने को 'मलिक' कहने लगे।

अल हकीम के बाद उसका पुत्र अल-जाहिर (1021-35) फातिमी खलीफा बना। गद्दी पर बैठते समय उसकी उम्र केवल पन्द्रह वर्ष की थी। इसके काल में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। इसके उपरान्त उसका ग्यारह वर्षीय पुत्र मआद अल-मुस्तानसिर (1035-94) खलीफा बना। इस खलीफा ने 64 वर्षों तक शासन किया जिसके काल में मिस्र में विपुल धनराशि बढ़ी। वह आरामपसंद शासक था और विलासिता के लिए उसके एक विलास भवन का निर्माण किया था जहाँ शराब, गान एवं यौन-तुष्टि में वह डूबा रहता था। काबा की यात्रा से अधिक सुखदायी यह शराब होती है।[5] इतने दीर्घ काल तक शासन करने वाला वह पहला मुस्लिम शासक था। उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उसकी सूडानी यहूदी माता ने शासन को अधिकाधिक प्रभावित किया। इस समय तक फातिमी शासन मिस्र तक ही कायम रहा। 1043 ई० के पश्चात् सीरिया, पैलेस्टाईन आदि प्रदेशों में विद्रोह होने लगे। पूरब से प्रबल सिल्जुक तुर्कों ने पश्चिमी एशिया पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। उधर अफ्रीका के फातिमी राज्य भी विद्रोह करने लगे। अब्बासी शासकों ने अफ्रीकी राज्य पर अधिकार कायम कर लिया। 1052 ई० में हिलाल तथा सुलेम की अरब जाति ने पोलो तथा ट्यूनिसिया पर आक्रमण कर उन्हें रौंद डाला। 1071 ई० में नार्मनों ने फातीमियों से सिसली छीन लिया। खलीफा मुस्ताली (1094-1101) ने अपने काल में पतनोन्मुख फातिमी राज्य को पतन से रोकने का प्रयास किया। पर उसका प्रयास निरर्थक सिद्ध हुआ। फातिमी राज्य में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुस्ताली के उपरान्त उसके पंचवर्षीय पुत्र अल-अमीर (1101-30) को खलीफा घोषित किया गया और उसका काल भी गृह-युद्ध का ही काल रहा। उसके बाद अल-हफीज (1130-49) नया खलीफा बना जो

---

4. The rule of the Fatimids was in general beneficent and liberal, and could be compared, in prosperity and culture with any age in Egyptian history. —*Noldeve; Sketches*, p 3.

5. This is more pleasant than starting at the Black stone, listening to the Muezzim's drove & drinking impure water."

—*P. K. Hitii*, p 626.

अभी नाबालिग ही था। केरो के राजमहल तक फातिमी शासकों का प्रभाव सिमटकर आ गया था। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी अल-जाफिर (1149-54) के शासन काल में मलिक अल-आदिल ने अपना प्रभाव काफी फैलाया। इस समय के फातिमी दरबार की चर्चा करते हुए तत्कालीन इतिहासकार उसमाह ने लिखा है कि "राजदरबार षड्यन्त्र का केन्द्र बन गया था और दरबारी एक-दूसरे से ईर्ष्या किया करते थे।" 1153 ई० में खलीफा की पत्नी का पोता नसर इब्न-अब्बास ने खलीफा की हत्या कर दी। इस हत्या के साथ ही फातिमी इतिहास ने एक अन्धकारपूर्ण युग में प्रवेश किया। जाफिर की हत्या के बाद अल-फेज (1154-60) शासक बना। यह अभी नाबालिग ही था। शीघ्र ही 11 वर्ष की उम्र में यह चल बसा। अतः अल-फैज का नौ वर्षीय चचेरा भाई अल-आदीद खलीफा बना जो आखिरी और चौदहवाँ खलीफा था। इस काल में राज्य अकाल और प्लेग का शिकार हुआ और प्रजा को असहनीय कष्ट झेलने पड़े। ऊपर से इस खलीफा ने प्रजा पर टैक्सों का भीषण भार लाद दिया। इसी समय मुजाहिदों (Crusaders) ने फातिमी राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। जेरूसलेम के शासक एमेलरिक ने भी फातिमी राज्य पर आक्रमण किया और कैरो तक आ धमका। 1171 ई० में सल्लाहुदीन ने खलीफा को गद्दी से हटाकर स्वयं उसपर अधिकार कर लिया।

प्रशासनिक महत्ता

फातिमी शासकों ने न केवल एक वृहत साम्राज्य का निर्माण किया अपितु उसके लिए एक सुदृढ़ प्रशासन भी दिया। उन्होंने प्रशासनिक विभागों के संगठन के लिए अब्बासियों तथा ईरानियों के प्रशासन को आधार बनाया और उन्हीं का अनुकरण कर एक सुदृढ़ प्रशासन की व्यवस्था की। उनकी प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लेख अल-कलकासन्दी ने किया है। प्रशासन का सर्वोपरि अधिपति खलीफा होता था जिसका पद वंशानुगत होता था। खलीफा खुदा का नुमाइन्दा था और इसीलिए दैवी अधिकारों से अभिहित था। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करना विभिन्न अधिकारियों तथा प्रजा के लिए सम्भव नहीं था। खलीफाओं ने उदारतापूर्वक शासन किया और साम्राज्य की सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रयास किया।

प्रशासन ने केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया और यही कारण था कि खलीफा अधिक तथा अनेक अधिकारों से सम्पूरित थे। केन्द्र के शासन की शक्ति के तीन आधार थे : धर्म सेना और राज्य कर्मचारी (नौकरशाही) इस्लाम अथवा मुहम्मद साहब की शिक्षाएँ समस्त शासन का आधार थीं और सम्पूर्ण फातिमी राज्य इस्लाम के प्रसार का हिमायती था। इस विभाग का प्रधान कोई राजनीतिक व्यक्ति ही होता था जो अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से खलीफा को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ था। इस प्रधान व्यक्ति का काम था धर्म का प्रचार करना। धर्म के प्रचार के लिए उसने धर्म-प्रचारकों का संघटन (Hierarchy) या शासनतन्त्र भी तैयार कर लिया था। इस विभाग का काम ज्ञान का विस्तार करना भी था। मुख्यतः इस्माइली विचारधारा का प्रचार करना इस विभाग का काम था। डिक्टेटर की तरह धर्म विभाग ने फातिमी राज्य में

धर्म तथा तथा ज्ञान का प्रसार किया। धर्म विभाग केन्द्रीय शक्ति वृद्धि का प्रधान आधार था।

सैनिक साम्राज्य के प्राण थे। सैन्य विभाग एवं नौकर शाही पर वजीर का नियन्त्रण रहता था; किन्तु सेना के अन्य तीन प्रधान थे जिनके नेतृत्व में सेना का संगठन, संचालन और प्रशासन चलता रहता था। पहला अमीर था जिसके अधीन उच्चतम सैनिक अधिकारी और खलीफा के तलवारधारी अंगरक्षक थे; Guards) थे जो अपने विभिन्न अधिकारियों के नियन्त्रण में रहकर केन्द्र की शक्ति में वृद्धि करते रहते थे। तीसरा, विभिन्न फौजी टुकड़ियाँ यथा हफीजिया, जूयूसिया, सूडानिया आदि थीं जो खलीफाओं और वजीरों का प्रिय-पात्र थीं और जिनका संगठन उन्हीं के नामों के साथ होता था।

केन्द्र की शक्ति का तीसरा आधार नौकरशाही था। वजीर, सैनिक अधिकारी, काजी, बाजार-निरीक्षक आदि के साथ-साथ प्रान्तों के शासन के लिए अनेक अधिकारी थे। सारे राज्य-कर्मचारी खलीफा के प्रति उत्तरदायी थे। समस्त प्रशासन का संचालन इस नौकरशाही पर ही निर्भर करता था। इतिहासकार बर्नार्ड लेविस के अनुसार खलीफा अल-मुईज तथा अल-अजीज ने आन्तरिक प्रशासन का संगठन किया था। अल-अजीज के वजीर याकूब अल-किलिस ने प्रशासन की संरचना में अत्यधिक सहयोग दिया था। इन्हीं खलीफाओं के कारण साम्राज्य को एक सुदृढ़ प्रशासन मिला और प्रजा ने शान्ति तथा व्यवस्था के वातावरण में अपना जीवन बिताया।

आर्थिक महत्ता

फातिमी खिलाफत ने राज्य का आर्थिक-उत्थान भी किया। खिलाफत के योग्य खलीफा इस बात को समझते थे कि आर्थिक सम्पन्नता के बल पर ही शासन का स्थायित्व निर्भर करता है और इसलिए उन्होंने राज्य की आर्थिकोन्नति के लिए कदम उठाया।

फातिमी खलीफाओं ने व्यापार तथा उद्योग के विकास की ओर ध्यान दिया। प्रारंभ में युद्धों तथा नील में पानी के अभाव के कारण मिस्र कुछ समय तक अकाल का शिकार रहा, किन्तु अधिकांशतः प्रजा का जीवन सुखी रहा और देश धन-धान्य से भरा रहा। व्यापार के विस्तार के लिये अल-अजीज का काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस खलीफा के वजीर याकूब इब्न किलिस ने व्यापार वाणिज्य का विस्तार किया और उसके बाद के वजीर तथा शासक इसका विस्तार करते रहे। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि फातिमी खिलाफत के पहले मिस्र का व्यापार सीमित था और लोग कम ही व्यापार किया करते थे। फातीमियों ने इस क्षेत्र को काफी विस्तृत किया। भारत तथा यूरोप के विभिन्न देशों के साथ फातिमी मिस्र का व्यापारिक संबंध कायम हुआ। पश्चिम में ट्यूनीसियम काल से ही मिस्र ने इतालियन नगरों (अमाल्फी, वेनिस तथा पीसा) से

व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया था और उसके जहाज स्पेन तक जाने लगे थे। सिकन्दरिया तथा सीरियन ट्रिपोली मिस्र के प्रमुख बन्दरगाह थे जो व्यापार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिये। लेविस ने लिखा है कि फातिमी जहाज पूर्वी मेडीटरेरियन के व्यापार पर एकाधिपत्य कायम कर लिये थे। पूर्व भारत से उनका व्यापार चलता था और मिस्र में भारतीय वस्तुओं का अपरिमित मात्रा में आयात होता था। लाल सागर के दोनों किनारों पर मिस्र के सामानों के बाजार लगने लगे। मिस्र के व्यापारियों ने ही भारतीय व्यापार को मध्य पूर्व की फारस की खाड़ी से लाल सागर की ओर, विशेषकर सूडानी समुद्री किनारे पर स्थित ऐदट्टाब की ओर मोड़ दिया। मिस्र के व्यापारिक संबंध बिजेन्ताईन तथा अन्य मुसलमानी राज्यों से भी कायम थे।

सांस्कृतिक महत्ता

फातिमी शासकों ने केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नाम नहीं कमाया प्रत्युत सांस्कृतिक क्षेत्र में भी। जिस प्रकार उन्होंने विभिन्न भूखण्डों को जीत कर इस्लाम की सीमा बढ़ायी और मिस्र को राजनीतिक गरिमा प्रदान की, उसी प्रकार कला साहित्य एवं विज्ञान का विकास कर मिस्र का सांस्कृतिक उत्थान भी किया।

फातिमी युग अपने कलात्मक विकास के लिए इस्लाम के इतिहास में स्मरणीय है। प्रथम दो खलीफाओं और उत्तरकालीन दो वजीरों के काल को कलात्मक कृतियों से भर दिया। जौहर ने 972 ई० में अजहर-मस्जिद का निर्माण कर अपनी कला-मर्मज्ञता का परिचय दिया। इस मस्जिद की गिनती मध्य कला कृतियों में की जाती है। इसका मध्य भाग इब्न तुलुन मस्जिद के आधार पर ईंटों से निर्मित था। इसकी महान विशेषता इनकी नुकीली मेहरावें हैं। इस मस्जिद का निर्माण करते समय कलाकार ईरानी कला से प्रभावित हुए थे। इसकी वर्गाकार मीनार काफी भारी है।

अल-हकीम की मस्जिद इस काल की दूसरी कला-कृति है जिसके निर्माण में कुल बाईस वर्ष (990.1012) लगे। अल-अजहर मस्जिद की शैली के आधार पर ही मस्जिद का भी निर्माण किया गया। इसकी गुम्बज ईंट से बनी हुई है जो एक अष्टभुज आकार के नगाड़े पर मुनहसिर है। इस मस्जिद में पत्थर का भी व्यवहार किया गया है।

1125 ई० में प्रसिद्ध अल-अकमार की मस्जिद बनायी गयी। यह पहली मस्जिद थी जिसमें ईंट की जगह पत्थर का व्यवहार किया गया था। इस मस्जिद की एक और विशेषता इसका मकरनास (Niche) है। इसके विशाल स्तम्भ उत्कृष्ट कला के अनुपम उदाहरण हैं।

इस युग की एक और प्रसिद्ध मस्जिद सालो हिवन रज्जिक है जिसका निर्माण 1160 ई० में हुआ था। कूफा की कला की झलक इस मस्जिद में स्पष्ट परिलक्षित होती है।

फातिमी युगीन कला की उत्कृष्टता की कहानी बाब जाबीला, बाब अल-नसर और बाब अल-फुतूह के भव्य प्रवेश-द्वार भी कह रहे हैं। बिजेन्टाईन शैली पर बने कैरो के ये शानदार प्रवेश द्वार फातिमी मिस्र की शान-शौकत के स्मारक-स्वरूप हैं।

काहिरा के म्युजियम में अनेक काष्ठ-खण्ड सुरक्षित रखे हुए हैं जिन पर जानवरों के चित्र उत्कीर्ण हैं। एक खण्ड पर राक्षसों द्वारा सिंह पर आक्रमण करता दिखलाया गया है। दूसरे पर गिद्धों से खरहे को घिरा हुआ दिखलाया गया है। साज-सज्जा के ये चित्र सासानी कला की शैली पर उतारे गये हैं। इसी तरह के चित्र कांसा, शीशा तथा धूपदानी पर भी बनाये गये। पीसा में 40 ईंच ऊँचा एक कांसा सुरक्षित है जो सुन्दर चित्र से चित्रित है।

इस युग में बुनाई-कला भी विकसित हुई। सासानी और ईरानी बुनाई कला से काहिरा की कला प्रभावित थी। इस काल में वस्त्रों पर भी जानवरों के चित्र बनाने में बुनकर विशेष दिलचस्पी लेते थे। मिस्र के दबीक, दिमयात और टिन्नीस नामक शहरों में वस्त्र-उद्योग की कला का काफी विकास हुआ था। मिट्टी के बर्त्तनों पर भी चित्र उभारने में फातिमी युगीन कलाकार दक्ष थे। जिल्द-बँधाई और चमड़ा-रँगाई के काम भी इस युग में होते थे।

फातिमी खलीफा साहित्य के महान प्रेमी थे। इब्न किलीस इस युग का प्रथम श्रेणी का साहित्यकार था। साहित्य की उन्नति के लिए उसने एक अकादमा का निर्माण किया जिस पर 1000 दीनार मासिक खर्च किया जाता था। मुहम्मद इब्न युसुफ अल-किन्दी इस युग का महान इतिहाकार था जिसकी मृत्यु फुस्तात में 961 ई० हुई थी। उसने 'किताब अल-बुलाह् वा किताब अल-कुदाह्' नामक ग्रन्थ की रचना की। इब्न-सलमा अल-कूदा एक दूसरा इतिहासकार था जिसने 'आयून अल-मारिफ वा-फनून अखबार अल खालाईफ' की रचना की।

फातिमी खलीफा सुसंस्कृत एवं विद्वान भी थे। अल-अजीज एक महान कवि था। उसकी विद्यानुरागिता की चर्चा काफी होती थी। अजहर मस्जिद को अकादमी का रूप देकर उसने साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। उसने कैरो में एक विशाल पुस्तकालय का संगठन किया जिसमें 2,00,000 पुस्तकें थीं। इस पुस्तकालय में केवल कुरान की 24,000 प्रतियाँ थीं जिनकी जिल्दें बेशकीमती थीं। इतिहासकार तबारी की ऐतिहासिक पाण्डुलिपि इस पुस्तकालय में सुरक्षित रखी गयी थी। 1068 ई० में तुर्कों ने आक्रमण कर इस पुस्तकालय को विनष्ट कर दिया। कहा जाता है कि 25 ऊँटों पर उन्होंने सारी पुस्तकें ढो डालीं। बहुमूल्य पाण्डुलिपियों को जलाकर तुर्कों ने अपना भोजन बनाया।

वैज्ञानिक उपलब्धि

कला और साहित्य की तरह विज्ञान की दुनियाँ भी विकसित हुई। मुहम्मद बिन तामिमी इस युग का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था जो पदार्थशास्त्र का विद्वान था

हालांकि वह जेरूसेलम में पैदा हुआ था, पर 970 ई० से कैरो आकर रहने लगा था।

फातिमी शासकों की सबसे महान देने हैं विज्ञान भवन (Hall of Science) इसे काहिरा में 'दार अल-हिकमा' अथवा 'दार अल-इल्म' कहा गया। 1005 ई० में खलीफा हिकमा ने शिया सिद्धान्त के अध्ययन एवं प्रचार के लिए इसका निर्माण किया था। विज्ञान भवन में 257 दीनार केवल पाण्डुलिपि को तैयार करने में खर्च किया जाता था। इस विज्ञान भवन का सम्बन्ध राजमहल से था। वाद-विवाद एवं सभा का आयोजन करने के लिए विज्ञान भवन में अनेक कोठरियाँ बनी हुई थीं। धर्मशास्त्र के अतिरिक्त यहाँ खगोलशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र का भी अध्ययन किया जाता था।

अली इब्न यूनूस मिस्र का सर्वश्रेष्ठ खगोलशास्त्री था जो खलीफा हकीम के दरबार का रत्न था। हकीम स्वय खगोलशास्त्री था। उसने मुकत्तक मे एक वेधशाला का निर्माण किया था। अली अल-हसन इब्न अल-हैथाम इस काल का प्रसिद्ध पदार्थशास्त्री था। उसे नेत्र-विद्या का गहरा अध्ययन था। उसने खगोल सम्बधी एक टेबुल का निर्माण किया जिससे खगोल सम्बधी ज्ञान में वृद्धि आयी। गणित, खगोलशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा चिकित्साशास्त्र पर उसने करीब 100 पुस्तकों की रचना की। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक का नाम 'किताब अल मन्जीर' है जो नेत्र पर लिखी गयी है। अम्मार इब्न अली अल-मानसीली भी नेत्र-विद्या का का जानकार था जिससे 'मन्तखाब फी इलाज अल-आईन' नामक पुस्तक की रचना की।

उपरोक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट पता चलता है कि फातिमी खलीफाओं ने राजनीति तथा संस्कृति को उन्नतिशील बनाने के लिए अकथनीय प्रयास किया था। अपनी इन राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण फातिमी युग इस्लाम के इतिहास में अत्यधिक प्रसिद्ध है। फातिमी खलीफाओं के नेतृत्व में कार्दोवा तथा बगदाद की तरह कैरो भी समस्त प्रगतिशील गतिविधियों का केन्द्र बना।

पतन

हम लगभग ढाई सौ वर्षों तक फातिमी शासकों ने मिस्र पर शासन किया और राजनीति तथा संस्कृति के क्षेत्रों को धनी बनाया। भारतीय इतिहास में पल्लव-संस्कृति का जो महत्व है, अरब के इतिहास में फातिमी संस्कृति का वही महत्व है। किन्तु महान सांस्कृतिक शासन का भी पतन होता है। काल की गति के साथ कतिपय कारणों का जन्म होता है जो राज्यों तथा साम्राज्यों का विघटन कर देते हैं। फातिमी शासन भी कई कारणो से समाप्त हो गया। सलाहुद्दीन ने फातिमी वंश के अन्तिम शासक अजीज को 1171 ई० में पदच्युत कर दिया और इसके उपरान्त मिस्र पर अय्यूबी राजवंश के शासकों ने शासन करना प्रारंभ किया। संक्षेप में अग्रलिखित त्रुटियों के कारण फातिमी शासन ने दम तोड़ दिया।

फातिमी शासन के अवसान का पहला और महत्वपूर्ण कारण थे भाड़े पर नियुक्त सैनिक। खलीफा अल-अजीज ने अपने काल में भाड़े पर सैनिकों को नियुक्त किया। इन सैनिकों का काम था युद्ध लड़ना और अपना पारिश्रमिक लेना। ऐसे सैनिकों में राज्य के प्रति निष्ठा का अभाव होता है। ये सैनिक बहादुरी से युद्ध भी नहीं करते हैं फातिमी राज्य के लिए इन सैनिकों के हृदय में भक्ति की भावना कतई नहीं थी। बाद में भाड़े प नियुक्त ये विदेशी सैनिक अपना प्रभाव कायम करने के लिए आपस में संघर्ष करने लगे। भक्तिहीनता तथा संघर्ष ने शासन को कमजोर बना दिया और नयी-नयी समस्याओं को जन्म दे डाला। फातिमी सेना में बर्बर, तुर्की और सुडानी शामिल थे। इनमें सत्ता कायम करने के लिये होड़ प्रारंभ हुई।

फातिमी वज़ीरों की कार्रवाईयाँ भी शासन को हिला दी। वज़ीरों ने सैनिकों को अपनी सत्ता-संस्थापन के लिये नियुक्त किया और इस प्रकार विदेशी सैनिकों के बल पर मिस्र में गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस गृह-युद्ध ने अन्य साम्राज्यों की तरह फातिमी साम्राज्य को भी विनष्ट कर दिया।

अराजक स्थिति की गंभीरता फातिमी विनाश में पूर्णतः सहायक हुई। फातिमी शासन के अन्तिम चरण में मिस्र में हत्यायें होने लगी, अधिकारियों एवं शासकों को पदच्युत किया जाने लगा और आपस में लोग एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगे। अराजक स्थिति में जहाँ शासन में अस्थिरता आयी वहाँ प्रजा को भी अनेक कष्टों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा। शासक अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहे और प्रजा का कष्ट बढ़ता गया। इसका फल यह हुआ कि सांस्कृतिक विकास होते हुए भी फातिमी शासन की लोकप्रियता घट चली।

फातिमी शासन को दुर्दैव की विषभरी करवट का भी शिकार होना पड़ा। सिल्जुक शासन की तरह फातिमी शासन को भी दुर्भिक्ष का शिकार होना पड़ा और इसका दुष्परिणाम आम जनता को भोगना पड़ा। अभी दुर्भिक्ष की स्थिति पर नियंत्रण भी नहीं पाया गया था कि महामारी का दौर प्रारंभ हो गया। दुर्भिक्ष तथा महामारी ने लोगों को मृत्यु की गोद में सुला दिया। दूसरी तरफ उत्तरकालीन फातिमी शासकों ने इन्हीं कष्ट के दिनों में जनता पर करों का बोझ लाद दिया। सच पूछा जाय तो फातिमी शासन को शक्तिशाली बनाने में जनता का, विशेष कर कृषकों तथा शिल्पकारों का सहयोग मिला था। जब शासकों ने दुर्भिक्ष तथा महामारी को दूर करने के बदले आम जनता पर अतिरिक्त करों का भार लाद दिया तब जनता का सारा हौसला ठंडा पड़ गया। उसने शासन से असहयोग करना प्रारम्भ किया।

इसी अराजक स्थिति में विदेशी सैनिकों ने शासन को और भी जर्जरित कर दिया। आखिरी फातिमी खलीफा ने सल्लाहुद्दीन को वजीर के पद पर नियुक्त किया जो एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने इस अंतिम शासक को गद्दी से हटा दिया और स्वयं शासक बन गया जिसका उल्लेख किया जा चुका है। सल्लाहुद्दीन फातिमी शासन को समाप्त करनेवाला आखिरी मुहरा था।

अध्याय 18

फारस और सीरिया में इस्लाम का प्रसार

(Spread of Islam in Persia and Syria)

इस्लाम का इतिहास मात्र अरब का ही इतिहास नहीं रहा है अपितु गैर अरबी देशों का भी। विश्व में धर्म का स्वरूप धारण करने के लिये इस्लाम को अरब की सीमा तोड़कर बाहर निकलना आवश्यक था। इस्लाम ने ऐसा किया भी। अपने प्रादुर्भाव के समय से थोड़े वर्षों के उपरान्त यह मिस्र, सीरिया, फारस आदि राज्यों में भी शनैः-शनैः प्रवेश पाने लगा और इसी क्रम में इसकी विस्तार सीमा में वृद्धि आने लगी। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इन प्रदेशों में प्राचीन काल से ही समृद्ध सभ्यताओं ने जन्म लिया था और यहाँ अनेक धर्म उदित हुए थे। इन देशों के निवासी अपनी उच्च सभ्यता पर गर्व भी करते थे। फलतः जैसे ही इस्लाम का प्रसार इन देशों में हुआ वैसे ही इस्लाम का राजनीतिक स्वरुप तो कायम रहा ही, उसका सांस्कृतिक स्वरुप भी विकसित हुआ। इस्लाम की अपनी कोई मौलिक संस्कृति नहीं है। यह वस्तुतः अरबी, फारसी तथा अन्य विजित प्रदेशों की संस्कृति के मिश्रण से ही बनी है। वस्तुतः यह एक बहुरंगी सभ्यता थी जिस पर विभिन्न देशों और मजहबों के प्रभाव पड़े थे। दूसरे शब्दों में यह विश्व के उन समस्त देशों की सभ्यता थी जहाँ इस्लाम के हिमायतियों ने, अरबों ने अपना राज्य फैलाया था।[1] इस सभ्यता पर न केवल फारस, यूनान आदि देशों के ही प्रभाव पड़े थे प्रत्युत् भारत की सभ्यता ने भी उसे अनुप्रमाणित किया था। प्रसिद्ध इतिहास-मर्मज्ञ श्री हैवेल ने स्पष्ट शब्दों में यह लिखा है कि "भारत ने, न कि यूनान ने, इस्लाम को प्रभावग्राही युवावस्था में उसे सिखाया, उसके दर्शन तथा रहस्यवादी धार्मिक आदर्शों का निर्माण किया और साहित्य, कला तथा स्थापत्य में इसकी अत्यन्त विशिष्ट अभिव्यक्ति को अनुप्रमाणित किया।" लेकिन अरब की चहारदीवारी से बाहर निकलकर ही इस्लाम इन देशों की सभ्यताओं के सम्पर्क में आ सका और इसी सिलसिले में उसने भी इन देशों में विजय के बाद अपना प्रसार किया। सीरिया तथा फारस में इस्लाम का प्रसार अधिकाधिक हुआ।

इस्लाम के इतिहास में फारस की विजय एक महत्वपूर्ण घटना है। फारस में इस्लाम का विकास धीरे-धीरे हुआ। कालान्तर में फारस के प्राचीन धर्म समाप्त हो गये और वहाँ इस्लाम प्रभावशाली बना। लेकिन फारस का दर्शन,

---

1. Arabs built up an electic civilization drawing the best from the various parts of their far-flung dominions and fusing everything in the fire of their new born zeal. —*S. R. Sharma.*

कला, साहित्य आदि अरब को प्रभावित करता रहा। इस्लाम का शिया सम्प्रदाय का दर्शन वस्तुतः फारस का दर्शन है। इसी प्रकार सूफी सम्प्रदाय का प्रकृतिवाद (Panetheism) तथा रहस्यवाद अरब की मरुभूमि की उपज न होकर फारस की निधि है। मुहम्मद के जन्म एवं उत्कर्ष के पूर्व ही फारसी सभ्यता के उपरोक्त गुण प्रमुख अंग थे।

लेकिन सीरिया की कहानी फारस की कहानी से कुछ पृथक है, कुछ भिन्न है। सीरिया के बाशिन्दे विजेन्ताईन की अपेक्षा अपने आपको मक्का के अधिक निकट मानते हैं। इन्होंने ईसाई धर्म को अंगीकार तो अवश्य किया था, पर उसे वे पूर्ण तथा आत्मसात् न कर पाये थे। इसलिये सीरिया में, जहाँ यूनानी या हेलेनिक सभ्यता जड़ नहीं पकड़ पायी थी, इस्लाम का विस्तार तीव्र गति से हुआ। यहाँ के निवासी जातिगत या परम्परागत दृष्टिकोण से अरबों के अधिक निकट थे। यही कारण था कि अरबों ने सीरिया पर बड़े आसान तरीके से विजय प्राप्त कर ली थी। आक्रमण के समय सीरिया अरबों से घुल-मिल जाने के लिये काफी तत्पर थे। फारस का राजतन्त्र भी अरब आक्रमणकारियों के एक हल्के धक्के की प्रतीक्षा कर रहा था। राजनीतिक स्थिति आक्रमणकारियों को आक्रमण करने के लिये निमन्त्रण दे रही थी। फारस के दरबार की स्थिति और वातावरण आक्रमणकारियों को और भी प्रोत्साहन दे रहा था। हरम की औरतें, हिजड़े आदि शासक के परिवर्तन में मजे से हाथ बँटा रहे थे और आसान ढंग से राजा-रानी गद्दी पर बैठते और उससे उतरते रहे थे। ऐसे काहिल, अकर्मण्य नाममात्र वाले शासकों के काल में फारस की केन्द्रीय सरकार दिनानुदिन कमजोर बनती गयी और देश अराजकता का शिकार बनता गया।

संक्षेप में दोनों देशों की स्थिति वाह्य आक्रमणकारियों को आक्रमण करने के लिये प्रेरित कर रही थी। इस्लाम की मसाल हाथ में जलाकर, अरब आक्रमणकारी, जो विश्व-विजय का स्वप्न देखा करते थे और इस दिशा में तत्पर थे, ऐसे मौके की तलाश में तो रहते ही थे। अगर सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कोई यह घोषणा करता कि बर्बर अरब सासानी साम्राज्य के उत्तराधिकारी बन जायेंगे और विजेन्ताईन साम्राज्य से उसका सबसे सुन्दर प्रदेश अपहृत कर लेंगे तो इसे एक पागल का प्रलाप ही कहा जाता। ऐसी उम्मीद नहीं थी कि फारस अथवा सीरिया जैसे बड़े-बड़े देश बर्बर अरब आक्रमणकारियों के पैरों तले रौंदे जायेंगे। लेकिन वे रौंदे गये और अरब की विजय पताका उनकी राजधानियों की दीवारों पर लहरायी गयी।

पैगम्बर मुहम्मद के मृत्योपरान्त अरब की भूमि वीरों की, लड़ाकुओं की भूमि बन गयी। खालिद-इब्न अल-वलीद तथा उम्र इब्न अल-आस के दूसारा ईराक, सीरिया तथा फारस की विजय इतिहास में प्रमुख युद्ध-अभियानों में प्रमुख स्थान रखती है। अरब के इतिहासकार इस विजय-क्रम को केवल धार्मिक उत्साह का परिणाम मानते हैं और आर्थिक कारणों को कुछ भी महत्व नहीं देते।

सच तो यह है कि धार्मिक कारण से अधिक आर्थिक कारण इस विजय के उत्प्रेरक तत्व रहे हैं। आर्थिक आवश्यकताओं ने बद्दूओं को, उनकी सेना को अरब की मरूभूमि छोड़कर उत्तर की उर्वर भूमि की ओर जाने को प्रेरित किया था। हो सकता है कि कुछ लोगों को स्वर्ण के सुख की कामना भी इस दिशा में कदम बढ़ाने को बाध्य किया हो, परन्त अधिकांश लोग तो लूट के द्वारा प्राप्त धन से दूसरे जीवन में पृथ्वी पर, अपने परिवार में स्वर्ग का निर्माण कर सुखों का उपभोग करना चाहते थे। अल-बलादुरी जैसे मध्यकालीन इतिहासकार और बेकर जैसे आधुनिक इतिहासकार भी यह स्वीकार करते हैं कि लूट में धन-प्राप्ति का लोभ प्रमुख प्रेरक तत्व था जिसके चलते उपरोक्त भू-प्रदेशों पर आक्रमण किया गया। फारसी सेनानायक रुस्तम ने भी कहा था कि दरिद्रता के निवारण तथा जीवन-यापन के साधनों की खोज के कारण ही अरब-आक्रमणकारियों ने साम्राज्यवादी नीति का अनुशीलन किया।

इन अभियानों के प्रमुख सूत्रधार खलीफा अबू बक्र तथा खलीफा उमर थे। पर उन्होंने कभी सोच-समझकर नियोजित ढंग से इस दिशा में कदम नहीं बढ़ाया था। आपसी युद्ध में संघर्षरत कबीलों की युद्ध-लिप्सा को साम्राज्य-विजय तथा लूट-मार के अभियानों की तरफ मोड़ा गया। सर्वप्रथम साम्राज्य निर्माण उद्देश्य भी नहीं था। पर विजय पर विजय मिलती गयी जो धीरे-धीरे स्थायी सिद्ध हो गयी। जिन्होंने इस विजय की प्रथा एवं श्रृंखला का निर्माण किया था, वे कल्पना में भी नहीं सोच सके थे कि उसकी ये विजय स्थायी सिद्ध होगी। परिस्थितियों के तर्क एवं काल के कारनामों ने एक के बाद एक मिलती गयीं विजय से एक इस्लामी राज्य का जन्म हो गया।

सासानी तथा बिजेन्ताईन साम्राज्य के आपसी संघर्षों ने दोनों साम्राज्यों को शक्तिहीन बना दिया था। निरन्तर युद्धों एवं करों के भार ने भी जनता की सारी खुशी छीन ली थी और वह सीरिया के सेमाईट आक्रमणकारियों को अपना समझ रही थी। ऐसी ही परिस्थिति में मुहम्मद साहब ने ही सीरिया पर अभियान करने की आज्ञा दी थी। परन्तु मुता में अरब सेना को अपनी पराजय देखनी पड़ी तथा सेना के संचालक जैद को ईसाई कबीलों के हाथों मृत्यु को प्राप्त होना पड़ा। अरबों ने उसका प्रतिशोध लेने का विचार कर पुनः तैयारी की। मुहम्मद ने अपने जीवन काल में ही जैद के पुत्र उसमान की अधीनता में दूसरी फौज देकर उसे आक्रमण करने की आज्ञा दे दी।

मुहम्मद के काल कवलित होने के उपरान्त अबू बकर के काल की परिस्थितियों में इस अभियान को भेजना संदेहास्पद नजर आ रहा था। उमर ने भी भय व्यक्त किया कि उसमान के अनुभवहीन हाथों में नेतृत्व सौंपना नितान्त मूर्खता होगी। पर अबू बक्र स्वयं इस अभियान को पूरा करना चाहता था। वह मुहम्मद साहब का परम मित्र था और इसीलिये मुहम्मद द्वारा आयोजित इस अभियान को रोकना अधार्मिक एवं अनुचित मानता था। अतः उसने सेना को प्रस्थान करने की

आज्ञा दे दी। ढाई तीन महीनों तक लूटपाट होती रही, पर पूर्ण विजय हाथों से बाहर रही।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि यह आक्रमण निरर्थक था। सच तो यह है कि यह अभियान उन अभियानों की श्रृंखला की पहली कड़ी थी जो सीरिया पर विजय प्राप्त करके ही दम ली। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा निरन्तर आक्रमण होते रहे और बेजेन्टाईन साम्राज्य आक्रमणकारियों की क्रूर कठोरता से कुचला जाता रहा। इसके उपरान्त अब तीन सेनानायकों के नेतृत्व में सीरिया पर आक्रमण करने के लिये सेना भेजी गयी। वे सेनानायक थे—उम्र बिन अल आस, यजीद इब्न अबी सुफयान तथा शुराहबील इब्न हसनाद। तीनों सेनानायक पृथक-पृथक भागों से सीरिया आ धमके। यजीद को अनेक स्थलों पर विभिन्न परेशानियों को उठाने के बाद भी काफी सफलता मिली।

शासक हरक्यूलिस ने अरबों के विरुद्ध अपने भाई को एक सेना के साथ भेजा। बिजेन्ताईन सेना अपनी युद्ध-कला की प्रवीणता के लिये प्रसिद्ध थी। सासानी साम्राज्य से युद्ध के क्रम में उसने अपनी उच्च सामरिक कला का प्रदर्शन कर परिचय दिया था। अतः अब अरब सेना को सहायता की आवश्यकता थी। यह सहायता खालिद इब्न अल-वलीद अल्लाह की तलवार की ओर से मिली। उस समय वलीद ईराक की विजय करने में व्यस्त था। ईराक पर आक्रमण ही फारसी साम्राज्य पर प्रथम आक्रमण था। परन्तु ईराक के निवासी फारसी नहीं थे। फारसवासी आर्य थे और ईराक-निवासी हम्मुराबी के काल से ही सेमेटिक। भूमि असाधारण रूप से उर्वर थी। हेरोडोटस ने इस प्रदेश को "विश्व का अन्न भण्डार" कहकर पुकारा है। इसी पृष्ठभूमि में अरबों का आक्रमण हुआ। फारसी तथा अरबी सेना के मध्य जमकर लड़ाई हुई। स्थानीय निवासियों ने इस संघर्ष में कोई रुचि नहीं दिखलायी। फारस की सेना में भी अधिक उत्साह नहीं था। सर्वप्रथम मोरमूस का युद्ध हुआ। खालिद ने यह शर्त रखी कि फारस की सरकार या तो इस्लाम स्वीकार करे या टैक्स दे। इसे ठुकराये जाने पर ही उपरोक्त युद्ध की पृष्ठिभूमि तैयार हुई। मोरमूस का युद्ध "जंजीरों का युद्ध" (Battle of Chains) भी कहलाता है क्योंकि फारसी सैनिकों ने अपने को जंजीरों से आबद्ध कर रखा था जिससे उनमें से एक भी युद्ध-भूमि से पीठ दिखाकर भाग न सके। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में परिणाम क्या होगा। अरबों को इस युद्ध में विजय मिली। इस युद्ध के बाद अरब सैनिक विजय पर विजय प्राप्त करते गये। अन्त में हीरा ने भी समर्पण किया। "अरब प्रायद्वीप से बाहर अरबों की यह प्रथम विजय थी; फारसी साम्राज्य के वृक्ष से टपका हुआ प्रथम फल था।"

पर अबू बकर की दृष्टि में फारस की विजय से अधिक महत्वपूर्ण सीरिया की विजय थी। खालिद को उसने सीरिया पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी और यह कहा कि वह शीघ्र ही अरब की सेना की सहायता करे जो सीरिया को विजय करने में संलग्न है। खालिद ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया। रेगिस्तान को लाँघता हुआ यह वीर सेनानायक सेना सहित सीरिया आ धमका।

सैनिकों के लिये पानी ढोकर ले जाया गया और वृद्ध ऊँटों को मारकर घोड़ों को पानी दिया गया। शुष्क एवं जलविहीन मरूभूमि में पाँच दिनों की यात्रा के पश्चात् नाटकीय अदा के साथ खालिद दमिश्क पहुँच गया। अठारह दिनों तक यात्रा करने के उपरान्त वह बिजेन्ताईन सेना के पृष्ठभाग के सम्मुख आ पहुँचा। यहाँ तथा बसरा में उसने सैनिकों को बुरी तरह परास्त किया। खालिद अब अरबों की संयुक्त सेना का नेतृत्व कर रहा था। बसरा के समर्पण करते ही सितम्बर, 635 ई० में दमिश्क ने भी अपना समर्पण कर दिया। खालिद इब्न अल वालिद ने घोषणा की कि अगर सीरिया के निवासी कर देते रहेंगे तो उन्हें, उनके नगर एवं उनके गिरजाघरों को कोई हानि नहीं पहुँचायी जायेगी। अन्य नगर भी एक के बाद एक अरब सैनिकों के दमों पर गिरते गये। विजेताओं के मार्ग में कोई भी बड़ी रुकावट नहीं आयी।

इसी बीच हरक्यूलिस ने 50,000 सैनिकों की एक टुकड़ी अपने भाई के साथ भेज दी थी। जोर्डन स्थित यारमूक की घाटी में युद्ध हुआ। ईसाईयों को प्रार्थनाओं और क्रॉस की उपस्थिति से कोई लाभ नहीं हुआ। ईसाई सेना को अपना पूर्ण विनाश देखना पड़ा। भागती हुई सेना के अधिकांश सैनिक नदी में डूबकर मर गये और जो बचे थे शत्रुओं की प्यासी तलवार की प्यास बुझाये। हरक्यूलिस का भाई थियोढोरस स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ। सेना एक भागती हुई भीड़ बनकर रह गयी। इस निर्णायक युद्ध ने सीरिया के भाग्य का फैसला कर दिया। पूर्वी साम्राज्य ने अपना एक समृद्ध प्रांत खो दिया। अन्तिम विदाई के समय हरक्यूलिस ने पश्चात्ताप प्रकट किया।

अपनी कठिनाइयों के निरन्तर सहने के कारण ही अरबों को विजय भी मिलती गयी। लैरिसा की जनता ने तो बाजे-गाजे के साथ खालिद का स्वागत किया। सीरिया के लोगों को अपने ग्रीक शासकों से एक अलगाव का अनुभव सदा होता रहा था। साथ ही विजेताओं ने भी विजितों के साथ सद्व्यवहार किया। उनपर करों का भारी बोझ भी नहीं लादा गया। अतः सीरिया ने अभी भी अपने जाति-बन्धु अरबों के विरुद्ध कोई समस्या नहीं खड़ी की। केवल जेरूसलेम तथा केसरिया, जिनपर यूनान का गहरा प्रभाव था, के दरवाजे क्रमशः 638 ई० और 640 ई० तक बन्द रहे। परन्तु मुआविया के आक्रमणों के सामने 640 ई० तक समस्त सीरिया झुक गया।

अबू उबैदा तथा यजीद के उपरान्त उमैय्या वंश का भावी संस्थापक मुआविया सीरिया का गवर्नर नियुक्त किया गया।

इस प्रदेश की विजय का अत्यधिक सामरिक महत्व है। एक तरफ इससे इस्लाम की नवोदित शक्ति को आत्मविश्वास मिला तो दूसरी तरफ दुनियाँ की निगाहों में अरबों का सम्मान बढ़ा। सीरिया को आधार बनाकर वे मिस्र तथा अफ्रीका के अन्य भागों में फैलाने लगे। सीरिया की सेना की ही सहायता से पैगम्बर की मृत्यु के उपरान्त सौ वर्षों के अन्दर ही अरब यूरोप के स्पेन तक छा गये।

पर ईराक़ की कुछ और ही परिस्थिति थी। अरबों को वहाँ प्रत्येक क़दम पर एक-एक इंच भूमि के लिये संघर्ष करना पड़ा। ईराक़-विजय का सारा भार खालिद अल मुथन्ना के ऊपर छोड़ दिया गया था। लेकिन अरब को सेना की सफलता पाकर भी सब कुछ खो देना पड़ा था। इसलिये अबू बक्र ने अपनी मृत्यु-शैय्या पर पड़े-पड़े उमर को ईराक में सैन्य सहायता भेजने की सलाह दी थी।

सीरिया एवं फारस की विजय कथा उमर के खिलाफत काल से जुड़ी हुई है। खलीफा अबू बक्र की मृत्यु के समय तक सीरिया की पूर्ण विजय निश्चित ही थी वैसे फारस अछूता था। हाँ, ईराक में भले ही अरब के लोग शक्ति की आज़माईश कर रहे थे। अरबों की सफलता या असफलता फारसी प्रशासन एवं सैनिक संगठन पर निर्भर करती थी।

खलीफा उमर ने इब्न मसूद की अधीनता में जो सेना ईराक भेजी थी वह अल-होरा के निकट 'सेतु-युद्ध (Battle of Bridge) में पराजित हुई तथा सेना-नायक वीरगति को प्राप्त हुआ। फिर भी हिम्मत नहीं हारी गयी और नयी सेना भेजी गयी। सीरिया जाने को तत्पर स्वयंसेवकों को उसने ईराक जाने को कहा क्योंकि ईराक में उनकी आवश्यकता थी, सीरिया में नहीं। अब फ़ारस के सनिकों ने फुरात नदी को पारकर अरबों पर आक्रमण कर दिया। यह 'दस की हत्या' के युद्ध के नाम से मशहूर है क्योंकि एक अरब सैनिक ने दस फारसी सैनिकों की हत्या की। इस युद्ध में फारस के सैनिकों को वही दिन देखना पड़ा जो अरब के सैनिकों को सेतुयुद्ध में देखना पड़ा था। भागती हुई सेना के लिये नदी सबसे बड़ी हत्यारिणी सिद्ध हुई।

फारसी दरबार ने अब अपना नया राजा चुना। वह था यज्दग्रीद। यज्दग्रीद के सिंहासनारूढ़ होते ही महल के षडयन्त्र एवं शिशु राजाओं का काल समाप्त हुआ। इसी के साथ-साथ फारसी राजतन्त्र का भी अन्त हो गया। अपने राज्यारोहण के साथ ही यज्दग्रीद ने प्रसिद्ध फारसी सेनानायक रुस्तम को आक्रमण करने की आज्ञा दी। प्रारम्भ में रुस्तम अरबों पर हावी हो गया और अरबी फ़ुरात के पश्चिमी किनारे पर सिमटकर ठण्डे पड़े रहे। मदीना से नयी सेना के आने के पूर्व तक यही स्थिति बनी रही। खलीफा उमर स्वयं सेनापतित्व करने को तत्पर था। पर बाद में उसने अनिच्छापूर्वक अपने स्थान पर साद इब्न वक्कस को नियुक्त किया। सीरिया में यारमूक की विजय हो चुकी थी और इसलिये अब ईराक पर ध्यान दिया जा सकता था।

कादिशिया के युद्ध में प्रथम बार रुस्तम तथा साद की सेना का पारस्परिक मुकाबला हुआ। यह दिन भी यारमूक के युद्ध-दिवस की तरह ही गर्म था। इस युद्ध में भी अरबों ने यारमूक युद्ध प्रणाली को ही अपनायी और ठीक उसका ही परिणाम पाया। युद्ध में रुस्तम मारा गया। भय-ग्रस्त सासानी सेना भाग चली। दजला नदी के पश्चिमी किनारों की सारी निम्नभूमि पर अरबों का

अधिकार हो गया। सेमेटिक ईरानियों ने भी सीरियनों की तरह ही आक्रमण-कारियो का स्वागत किया। इस युद्ध के बाद अरबों ने शनैः-शनैः दजला और फुरात नदियों के मध्यवर्त्ती प्रदेशों पर अधिकार कायम कर लिया। साद का अगला लक्ष्य था फारसी साम्राज्य की राजधानी पर अधिकार कायम करना। संगमर्मर निर्मित श्वेत गुम्बद को देखकर साद को अनायास लगा कि यह स्वर्ग ही है। स्वर्ग के चारों तरफ साद के सैनिकों ने घेरा डाल दिया। शासक ने संधि की शर्त्त रखी कि आक्रमणकारी ईराक पर अपना आधिपत्य कायम करें, पर वे वहीं तक सीमित रहें और दजला को पार न करें। विजय पर विजय प्राप्त करने वाली अरब सेना भला इस शर्त्त को क्यों स्वीकार कर सकती थी? वह आगे बढ़ती रही और फारस निवासी चुपचाप पश्चिमी किनारों के अवस्थित नगरों को खाली कर दिये। बाढ़ के कारण दजला उमड़ रही थी। फिर भी सैनिकों ने हिम्मत नहीं हारी। जान हथेली पर लेकर शिथिल धारा की ओर से सैनिकों ने दजला पार किया। फारस निवासियों को स्वप्न में भी आस्था नहीं थी कि अरब-सैनिक नदी पार करने का यह चमत्कार दिखलायेंगे। आश्चर्य चकित होकर फारसी भाग चले और बिना किसी जीवन हानि के फारसी शहरों पर अरबों का अधिकार हो गया। अब फारस-प्रवेश का मुख्य द्वार खुल गया था। लूट में अपार धन आक्रमणकारियों के हाथ लगा। ताबी तथा आथिर नामक इतिहास-कारों के अनुसार विजेताओं को करीब दस करोड़ दरहम प्राप्त हुए।

कुदिश्शिल तथा मदाईन को विजयों के उपरान्त व्यवस्थित एवं संगठित रूप से समस्त फारस को विजय करने में अरबों को सफलता मिली। सम्राट याज्दग्रीद ने अन्तिम संघर्ष में एक बार पुनः विजय प्राप्त करने का प्रयास किया। पर उसका प्रयास सफल नहीं हो सका। नहावन्द में भी विजय का ताज अरब सैनिकों के सिर पर आ गिरा मुस्लिम विजेता विजयश्री की प्राप्ति के बाद भी आगे बढ़ते रहे। पूर्व दिशा में बढ़कर उन्होंने मकरान के रेगिस्तान तक अपने विजय-ध्वज को फहराया। दूरदर्शी उमर ने अपने सैनिको को अब वापस बुला लिया। कूफा, बसरा तथा मुख्य फारस पर विजय प्राप्त हो गयी थी। शिराज ने एक बार सशस्त्र प्रतिरोध किया, पर उमर की मृत्यु के पूर्व सम्पूर्ण फारस इस्लाम की बाहों में आ गया।

याज्दग्रीद ऑक्सस की ओर भाग निकला था। तुर्कों की सहायता से उसने 'मारव' पर घेरा डालने का प्रयास किया। लेकिन इस बार भी असफलता उसके दामन से चिपकी रही। मारव, बल्ब, खुरासान, मकरान तथा बलुचिस्तान के तटवर्त्ती प्रदेशों को जीतती हुई अरबी फौजें काफी दूर तक निकल गयीं। अभागा याज्दग्रीद यत्र-तत्र भटकता रहा। उसके समर्थकों और सहायकों की संख्या कम होती गयी। अन्त में उसमान की खिलाफत के आठवें वर्ष में किसी आदमी ने उसकी हत्या कर दी। उसकी मृत्यु के साथ ही बारह सो वर्षों से शासन करते चले आनेवाला फारसी साम्राज्य एकाएक अब धराशायी हो गया।

पर फारस आसानी से समर्पण करने वाला नहीं था। खलीफा अली के काल में फारस मे होने वाले विद्रोहों की निरन्तर खबरें मिलती रहो। अतः यह

स्वीकार करने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी कि फारस की विजय उतनी सरल नहीं थी जितनी मिस्र अथवा सीरिया की विजय थी। एक दशक के प्रयत्नों के बाद ही फारस पर अरबों का पूर्वाधिकार कायम हो सका। उन्होंने खुलकर मुकाबला किया। अभियानों में 35-40 हजार अरब सैनिकों ने भाग लिया। फारस के लोग जरथुष्ट के धर्म के समर्थक थे। इस्लाम धर्म से वे काफी घृणा किया करते थे। यही कारण था कि वे अपने धर्म की रक्षा के लिये भी इस्लाम के अनुयायियों से संघर्ष करते रहते थे। फारस के लोग अरबों को सीरियनों की तरह कर देना नहीं चाहते थे। फारस एक देश था, यहाँ के निवासी स्वयं शासक थे, वे आर्य थे न कि सेमेटिक। उनकी सभ्यता एवं संस्कृति भी श्रेष्ठ थी और सदियों से उनके देश का राष्ट्रीय अस्तित्व कायम था। इसीलिये सीरिया की तरह फारस आसानी से अरबों के समक्ष अपना समर्पण नहीं कर सकता था। फारस के सासानी शासक विश्व के किसी भी देश के शासकों से कम नहीं थे। वे अरबों के जुऐ में अपना गरदन कभी भी नहीं लगा सकते थे। फारस-विजय के बाद भी उनकी सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक श्रेष्ठता कायम रही और वे अरबों के शासन के बड़े-बड़े पदों पर नियुक्तियाँ पाये। उनकी कला, उनका दर्शन, उनका चिकित्सा-विज्ञान अरबों की सम्पति बनी। अरबी सभ्यता के नाम पर प्रचलित सभ्यता वस्तुतः ईरानी ही थी। अब्बासी काल की अरबी सभ्यता पूर्णतः ईरानी सभ्यता ही थी।

हमें यह याद रखनी चाहिए कि ईरान व्यावहारिक रूप से कभी भी अरबों के अधीन नहीं रहा। उसका विरोध शिया धर्म के रूप में उभरा। फातिमी वंश या शिया सम्प्रदाय सदा ही खिलाफत एवं अरबों के विरोध में था। शिया धर्म के समर्थक के रुप में उन्होंने सदैव प्रत्येक अरबी वस्तु का विरोध किया। उमैय्यों के विरुद्ध उनका यद्ध चलता रहा। फातिमी वंश भी अब्बासी लाफत का विरोध करता रहा। इसी रूप में फारस में सदा ही अरब का प रागत इस्लाम का, शिया धर्म के इमाम के दैवी सिद्धान्त के रूप में बद्दू स्वातंत्रता की भावना का सदा विरोध किया। स्थल देश की विजय अरबों ने भलेही कर ली, पर फारस के निवासियों के हृदय, कला, संस्कृति आदि पर उनका अधिकार नहीं रहा। इस दृष्टि से फारस सदैव अजेय रहा।

———

अध्याय—19

धर्मयुद्ध (1095-1291)

(The Crusades)

धर्मयुद्ध क्या है ?

सन् 1095 ई० से प्रारम्भ होकर दो शताब्दियों तक समस्त मध्य यूरोप में एक ही नारा गूँजता रहा और वह नारा था "ईश्वर यह चाहता है, ईश्वर यह चाहता है।" होठों पर यह नारा और छाती पर एक लाल सलीब (क्रॉस) लिए हजारों हजार ईसाई पैदल, घोड़े पर सवार होकर या किसी जहाज पर चढ़कर पवित्र भूमि के पवित्रतम नगर जेरूसलेम की ओर रवाना हुए थे। कवच धारण किये हुए शूरमा, चिथड़े पहने हुए कृषक दास, मुक्ति के अभिलाषी मानव, लूट चाहने वाले लोग, महिलाएँ, शिशु, अपराधी और कर्जदार - ये सारे के सारे जन धर्मयुद्ध के योद्धा थे। 'धर्मयोद्धा' (crusaders) उसे कहा जाता था जो सलीब धारण कर लेता था और 'धर्मयुद्ध' (Crusade) वह था जो ईसाई धार्मिक नगरों (फिलस्तीन स्थित) को सारासेनों (मुसलमानों) के नियंत्रण से मुक्त करने तथा पूरब में लैटिन राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए किया गया था। ये धर्मयुद्ध सशस्त्र तीर्थयात्राएँ अथवा सामुद्रिक यात्राएँ होती थीं, जिन्हें आधुनिक युग में 'क्रुसेड' कहा जाता है। ये यात्राएँ पवित्र भूमि जेरूसलेम को मुसलमानों से मुक्त कराने के लिए की जाती थीं। जेरूसलेम की यात्रा करना कष्टदायक था और अनेक कठिनाइयों के कारण वहाँ पहुँचना मुश्किल था, किन्तु ईसा की प्रेरणा तथा संतों के बल के कारण तीर्थयात्री वहाँ पहुँचते रहे और धर्मयुद्ध चलता रहा।

धर्मयुद्ध पूरब और पश्चिम के मध्य दीर्घ काल तक चलते रहे। यूनान तथा ईरान के पारस्परिक युद्ध के कारण धर्मयुद्धों का जन्म हुआ। कैरोलिजियनों तथा मूरों के बीच हुए संघर्ष भी धर्मयुद्ध के ही रूप थे। ऑटोमन साम्राज्य तथा यूरोपीय राज्यों के मध्य उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में जो संघर्ष हुए थे वे भी धर्मयुद्ध के ही रूप में स्वीकार किये जाते थे। परन्तु वास्तविक धर्मयुद्ध वे हैं

जो ईसा के अनुगामियों (ईसाइयों) तथा पैगम्बर मुहम्मद साहब के समर्थकों (मुसलमानों) के मध्य हुए जिनका उल्लेख इस ग्रन्थ में किया जायेगा।

धर्मयुद्ध से सम्बद्ध अनेक सैनिक अभियान हुए। इनमें कुल आठ अभियानों के उल्लेख मिलते हैं। इनमें भी कुल चार अभियान ही ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण हैं। साधारण अभियानों में स्पेन में मूरों के विरुद्ध, फ्रांस में एलविजेन्सेस के विरुद्ध और बाल्टिक तट के विधर्मी स्लावों के विरुद्ध किये गये धर्मयुद्धों की गणना की जा सकती है। क्रिश्चनों तथा सारसेनों के बीच के ये धर्मयुद्ध अरब भूमि में न फैलकर ईसाई संसार (यूरोप) में ही वापस आ गये। कालान्तर में धर्मयुद्ध के उपयोग का उद्देश्य बदल गया। धर्मयुद्ध पवित्र नगर की वापसी के लिये किये जाते थे, अब पोप ने अपने विरोधियों तथा आलोचकों के दमन के लिये धर्मयुद्ध करना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे धर्म का महत्त्व घटता गया और पोपवाद ने दम तोड़ना प्रारम्भ किया। अतः धर्मयुद्ध का उत्प्रेरक (पोप) जैसे ही कमजोर होने लगा वैसे ही धर्मयुद्ध भी समाप्त होने लगा।

धर्मयुद्धों के कारण

सन् 1905 में फ्रांस स्थित क्लैर्मो (clermont) के मैदान में एक विशाल जन समुदाय पोप अर्बन द्वितीय (Urban II) का एक भाषण सुनने के लिए एकत्रित हुआ। यह भाषण इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण में से एक था। वक्तृत्व कौशल के साथ पोप ने अपने श्रोताओं से कहा कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, उसे जहाँ का तहाँ छोड़ दें और जेरूसलेम चले जायें। उसने यह कहा कि यह कितनी शर्म की बात है कि जहाँ ईसा ने अपना बचपन बिताया, युवावस्था गुजारी, जहाँ प्रवचन किया और अपने शिष्यों के साथ अन्तिम भोजन किया और अन्त में जहाँ सलीव पर चढ़े, वह प्रदेश विधर्मियों के कब्जे में है। उससे जेरूसलेम में मुसलमानों के विरुद्ध धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने का उपदेश दिया। उसने कहा "जेरूसलेम को मुक्त कराने के लिये लड़ो। वहाँ एक-एक स्थान ईसा द्वारा उच्चारित शब्दों से और उसके लिये चामत्कारिक कार्यों से प्रभावित हो रहा है।" वज्रनाद के से उल्लास से इस विशाल जनसमुदाय ने प्रत्युत्तर दिया, "ईश्वर की यही इच्छा है (God Will it)।" तनिक भी विलम्ब किये बिना हजारों लोग अपने-अपने घरों तथा खेतों को छोड़कर इन युद्धों में लड़ने के लिये चल दिये।

पोप ने सशस्त्र तीर्थ यात्राओं के लिये एकाएक यह पुकार क्यों की ? इसके राजनीतिक तथा धार्मिक कारण थे। दूसरे शब्दों में पोप के आह्वान के पीछे ऐसी राजनीतिक तथा धार्मिक बातें थीं जिनके चलते धर्मयुद्ध लड़े गये।

पहले राजनीतिक कारण को लिया जाय। सन् 1025 का वर्ष बिजेन्ताइन साम्राज्य के इतिहास में मोड़ का वर्ष माना जायगा। इस वर्ष सम्राट बेसिल द्वितीय की मृत्यु हो गयी और साम्राज्य खण्ड-खण्ड होने लगा। अखिल साम्राज्य में अराजक स्थिति पैदा हो गयी और गृह युद्ध ने केन्द्रीय शक्ति को झकझोर डाला। इस विषम स्थिति में साम्राज्य वाह्य आक्रमणकारियों का शिकार हुआ। उससे दक्षिण इटली छीन लिया गया। बुलारों पाजिनेकों, कुमानों तथा रूसियों ने साम्राज्य के विभिन्न भागों पर हमला कर दिया और यूरोप में फैले उसके प्रभाव को घटा दिया। इसी समय बिजेन्ताइन साम्राज्य पर सेलजुक तुर्कों ने भी आक्रमण किया और उसके एशियाई प्रदेश संकट में पड़ गये। सेलजुक सैनिकों ने साम्राज्य की सेना को करारी हार दी। उनके नेता तुगरिलाबेग के उत्तराधिकारियों ने सीरिया तथा जेरूसलेम पर कब्जा जमा लिया और आर्मेनिया स्थित मेंजेकर्ट की लड़ाई (अगस्त, 1071) में साम्राज्य की सेना को बुरी तरह परास्त किया। साम्राज्य के सम्राट रोमनुस डायोजेनस को बन्दी बना लिया गया। मेंजीकर्ट की लड़ाई के परिणामस्वरूप साम्राज्य की शक्ति अप्रत्याशित रूप से घटी और साथ ही साथ उन यूरोपीय तीर्थ यात्रियों (ईसाई लोगों) को कष्ट दिया जाने लगा जो पश्चिमी फिलस्तीन की यात्रा पर निकलते थे। किन्तु कष्ट की घड़ियाँ शीघ्र ही समाप्त हो गयीं। सन् 1098 तक सेलजुकों का उत्कर्ष समाप्त हो गया और उनका साम्राज्य विघटनकारी तत्वों का शिकार होकर समाप्त हो गया। सेलजुकों की शक्ति के क्षीण होते ही ईसाई धर्मयोद्धाओं ने पश्चिमी फिलस्तीन पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। मुस्लिम आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये बिजेन्ताइन सम्राट एलेक्सियन कौमेनुस (Alexius Comnesus) ने यूरोप के सामन्तों, राजाओं और कालान्तर में 1095 ई० में पोप अर्बन द्वितीय की सहायता ली। अब पश्चिम में नहीं पूरब में इस्लाम के विरुद्ध धर्मयुद्ध प्रारम्भ हुआ। धर्मयुद्ध में भाग लेकर अथवा सम्राट की सहायता करके पोप अर्बन द्वितीय अपने प्रभाव को बढ़ा सकता था। इसीलिये उसने सहायता देने तथा युद्ध की अग्नि को प्रज्जवलित करने का प्रयास किया। अतः इन राजनीतिक घटनाओं ने धर्मयुद्ध की पृष्ठभूमि का निर्माण तो किया ही, उनका श्रीगणेश भी किया।

ईसाई न केवल राजनीतिक आधार पर अपितु धार्मिक आधार पर भी फिलस्तीन से संबद्ध थे। सारे ईसाई फिलस्तीन को अपना घर समझते थे। रोम साम्राज्य में जैसे ही ईसाई धर्म प्रचार होना प्रारम्भ हुआ वैसे ही पश्चिमी यूरोप

के ईसाई तीर्थयात्री पवित्र स्थानों के दर्शनार्थ आने लगे थे। धीरे-धीरे तीर्थ-यात्रियों की संख्या में वृद्धि होने लगी और ग्यारहवीं शताब्दी में उनकी संख्या में और भी वृद्धि हुई। तीर्थयात्रियों की तीर्थयात्रा में मुसमानों ने भी प्रारम्भ में सहयोग दिया था क्योंकि उन्हें तीर्थयात्रियों से काफी पैसे मिल जाते थे। किन्तु जब मुस्लिम जगत में सेलजुक तुर्कों का उत्कर्ष हुआ और उन्होंने साम्राज्य की स्थापना कर डाली तब ईसाई-तीर्थयात्रियों के प्रति इस्लाम समर्थकों का रुख बदल गया। तीर्थयात्री फिलस्तीन की यात्रा में अनेक उत्पीड़नों का शिकार होने लगे। वे बन्दी बना लिये गये, उनका अपमान किया जाने लगा और उन्हें मारा भी गया। वेमबर्ग के विशप गुन्थर का उत्पीड़न ईसाई धर्म के इतिहास में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। अपने साथियों के साथ जेरूसलेम पहुँचते ही गुन्थर पर मुसलमानों (लुटेरों) ने लगातार तीन दिनों तक आक्रमण किया और उनपर कष्टों का पहाड़ ढाया। तीर्थयात्रा से वापस आकर जब तीर्थयात्रियों ने मार्ग में पाये कष्टों तथा उत्पीड़नों का उल्लेख किया तब समस्त ईसाइयों के लिए एक समस्या उत्पन्न हो गयी। शार्लमां तथा खलीफा हारुन-अल-रशीद के मध्य समानता के आधार पर एक समझौता हुआ था और आपसी-संघर्ष को दूर करने का निर्णय लिया गया था। पर बाद में सलजुकों ने इस समझौते की उपेक्षा करके ईसाइयों का उत्पीड़न करना प्रारम्भ किया था। काहिरा के खलीफा हकीम का आदेश पाकर मुसलमानों तथा मुस्लिम सैनिकों ने सन् 1009 में ईसा की पवित्र समाधि को नेस्तनाबूद कर दिया था और ईसाइयों तथा यहूदियों के जीवन से खिलवाड़ किया था। जेरूसलेल में निवास करनेवाले ईसाई अपने प्राणों की रक्षा की चिंता में पड़े रहते थे और वे एक प्रकार से बन्दी जीवन ही व्यतीत कर रहे थे। वे मुस्लिम शासकों की कोप दृष्टि के शिकार थे। उन्हें मुस्लिम राज्यों को विभिन्न प्रकार के कर देने पड़ते थे। करों के अतिरिक्त उन्हें विभिन्न प्रकार की चुंगियाँ भी देनी पड़ती थी और मुसलमानों के लिये बेगारी भी करनी पड़ती थी। विपदाओं का अन्त नहीं था। वे खुलकर अपने सामाजिक तथा आर्थिक समारोहों तथा त्योहारों का आयोजन भी नहीं कर सकते थे। वे अपने आवास-गृहों को साफ नहीं रख सकते थे, क्योंकि उसके वातायनों तथा दरवाजों को कूड़ा-करकट, कीचड़ आदि से गन्दा कर दिया जाता था। एक ईसाई अकेला गलियों में घूमने-फिरने का साहस नहीं कर सकता था। ईसाइयों की वाणी मूक थी। अगर कोई ईसाई मुसलमानों अथवा उनके शासकों के विरुद्ध बोलता था तो उसका अंग-भंग कर दिया जाता था। खलीफा कभी-कभी ईन ईसाइयों का बध करके उनकी सम्पति को भी जब्त कर लेता था। ईसा के समर्थकों पर कहर ढाहने की मुहम्मद साहब के समर्थकों ने जैसे शपथ

ले ली थीं। ईसाई परिवार की लड़कियों तथा युवकों को ईसाई धर्म का त्याग तथा मुस्लिम धर्म को अंगीकार करने के लिये बाध्य किया जाता था। जब ईसाइयों के उत्पीड़न की यह कहानी यूरोप में फैलने लगी तब ईसा के पुत्रों में प्रतिक्रिया की भावना का निःसरण होना प्रारम्भ हुआ। उन्हें यह बात जान कर काफी क्लेश हुआ कि उनके गिरजाघरों का विनाश किया जा रहा है और उनके बंधुओं पर धार्मिक अत्याचार किये जाते हैं। ईसाइयों के लिये जेरूसलेम का वही महत्त्व था जो मुसलमानों के लिये मक्का का महत्त्व था। अपने पवित्र प्रदेश जेरूसलेम का त्याग करने को ईसाई कभी भी तैयार नहीं थे। अभी तक पवित्र भूमि की यात्रा करना पुण्य का कार्य समझा जाता रहा था; किन्तु अब उससे भी अधिक पुण्य का कार्य था जेरूसलेम को विधर्मियों के क़ब्जे से मुक्त कराना। अतः ईसाई तीर्थयात्री की जगह धर्मयोद्धा बन गये।

धर्मयुद्ध का एक तीसरा भी कारण था और वह था चर्च में युद्धवाली प्रवृत्ति का क्रमिक विकास। इस्लाम के प्रचार के लिये पैगम्बर मुहम्मद के समर्थकों ने जिन तरीकों को अपनाया था, ईसा के अनुयायियों ने भी उन्हीं तरीकों को अपनाया। ग्यारहवीं शताब्दी तक चर्च पूर्णतः समर में विश्वास करने लगा था और उसका दृष्टिकोण सामरिक हो गया था। ईसा ने धर्म-प्रचार के लिये प्रेम का, न कि तलवार का, प्रयोग करने का परामर्श दिया था। कालान्तर में पोपगण तलवार को म्यान से निकालकर युद्ध करने का उपदेश देने लगे। सलजुक तुर्कों की दमन-नीति ने शायद कुछ हद तक ईसाइयों को सामरिक प्रवृत्ति प्रदान की हो, पर चर्च अथवा ईसाइयों के इस परिवर्तित दृष्टिकोण का एक अन्य कारण भी था। अबतक अनेक बर्बर कबीलों के लोग ईसाई बन चुके थे। सारे बर्बर युद्धक प्रवृत्ति के थे। ईसाई धर्म में उनके प्रवेश पर उनकी युद्धक प्रवृत्ति की प्रविष्ट हुई। कबीलों के हजारों हजार जन सामूहिक रूप से उत्साहपूर्वक ईसाई धर्म में दीक्षित हुए थे। वे इस नये धर्म में अपनी विश्वास, भक्ति, निष्ठा तथा सच्चाई का प्रदर्शन करना चाहते थे और युद्धों में सफल होना चाहते थे। सामंती युग में नाइटों का प्रभाव बढ़ा तथा शूर धर्म का विकास हुआ था। जब मुसलमानों ने ईसाईयों को सताना प्रारंभ किया तब अपनी रक्षा के लिये ईसाइयोंने नाइटों के शूरधर्म को अंगीकार कर लिया। शूरधर्म के अपनाने के कारण ही ईसाई जगत में सामरिक भावना का आगमन होना प्रारम्भ हुआ। अन्ततः इस्लाम के अत्याचार के कारण ईसाई हिंसक हो चले। अब उन्होंने चर्च के रक्षार्थ तलवार उठाकर मुसलमानों से संघर्ष करना आवश्यक समझा। अबतक लोग अधिक संख्या में ईसाई धर्म में विश्वाश

करने लगे थे। उनके विश्वास की रक्षा के लिये भी मुसलमानों से संघर्ष करना आवश्यक हो गया। मुसलमानों ने जेरूसलेम पर कब्जा जमा लिया था। जेरूसलेम की मुक्ति के लिये संघर्ष ही एक मार्ग बच गया था। चूंकि ईसाइयों का खास ध्येय था विश्व में ईसाई धर्म का प्रचार करना और प्रचार का कार्य तभी सम्भव था जब प्रचार-कार्य में आनेवाली बाधाओं का उन्मूलन कर दिया जाय। मुसलमान उत्पीड़क तो थे ही, बाधक भी थे। अतः विश्वव्यापी चर्च के संस्थान हेतु तलवार का सहारा लेना आवश्यक हो गया। रोम भी मुसलमानों के आक्रमण का शिकार हो सकता था, ऐसी संभावना ईसाई करने लगे थे। नौवीं तथा दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुसलमान रोम के लिये आक्रामक सिद्ध होने लगे थे और युद्ध में भाग लेने लगे थे। पोप ग्रेगोरी चतुर्थ (826-844), पोप लियो चतुर्थ (847-55), जॉन अष्टम् (872-82) तथा जॉन दशम् (614-28) ने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध में शामिल होकर रोम को खतरों से बचाने का प्रबन्ध किया। इसी प्रकार बेनेडिक्टि अष्टम् (1012-24) ने सन् 1015-16 में सर्डिनिया के मुस्लिम विजेताओं के विरुद्ध अभियानों को पूरी-पूरी सहायता दी थी। इसी प्रकार बिजेन्टाइन साम्राज्य का पक्ष लेकर पोप ग्रेगोरी सप्तम् (1063-85) ने बड़े अभियानों का मार्ग प्रशस्त किया था और इन अभियानों का उद्देश्य था मुसलमानों की शक्ति का दमन करना। विक्टर तृतीय ने भी सन् 1087 में महदिया के विरुद्ध किये गये सैनिक अभियान में सहायता दी थी।

धर्मयुद्ध को प्रारम्भ करने तथा ईसाइयों में युद्ध की प्रवृत्ति पैदा करने में नार्मनों नें अत्यधिक सहयोग किया। अपने नाइटों के नेतृत्व में नार्मन लोग स्पेन, अफ्रिका तथा अन्य मुस्लिम प्रदेशों पर निरन्तर आक्रमण कर रहे थे। पश्चिमी ईसाई जगत नार्मनों की गतिशीलता तथा सामरिकता के कारण अत्यधिक प्रभावित हुआ। अतः यह कहना अक्षरशः सत्य है कि नार्मनों के मुस्लिम प्रदेशों पर आक्रमण करके पश्चिमी ईसाई जगत के लोगों को मुसलमानों के विरुद्ध तलवार उठाने के लिये ललकारा तथा धर्मयुद्ध को बढ़ावा दिया।

फिलस्तीन की पुनः प्राप्ति की बात ईसाइयों तथा मुसलमानों के बीच संघर्ष का कारण बना। सारे ईसाई फिलस्तीन को अपना 'फिफ' समझते थे। 'फिफ' एक सामान्ती शब्द है जिसका अर्थ होता है, 'जागीर का टुकड़ा' जिसपर व्यक्ति खेती करता है, उससे अपने जीवन का पालन करता है और जिसपर वह निवास करता है। समस्त ईसाई जगत फिलस्तीन को इसी कारण मुसलमानों के कब्जे से मुक्त करना चाहता था। अगर फिलस्तीन पर मुसलमानों का अधिकार नहीं रहता तो संभवतः धर्मयुद्ध नहीं होते। साम्राज्य की स्थापना करने के शीघ्र बाद ही

शार्लमेन ने फिलस्तीन की ओर ध्यान दिया था। यूरोप का एक भी ईसाई इस बात की कल्पना नहीं कर सकता था कि हमेशा के लिये उनका यह 'फिफ' (फिलस्तीन) दूसरे के अधिकार में रहे। गॉड फ्री लोग निरन्तर इस बात के लिये चिन्तित रहा करते थे कि फिलस्तीन (जेरुसलेम) एक बार पुनः ईसाई 'फिफ' बना लिया जाय। तेरहवीं शताब्दी तक धर्मयुद्धों ने यूरोप में एक संस्थान का रूप धारण कर लिया। धर्मयुद्धों ने कानूनों को जन्म दिया। इनका महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया कि इनमें शामिल होना पावन कर्तव्य समझा जाने लगा और धर्मयोद्धा बनने के लिए प्रशासन से आज्ञा लेने की परिपाटी चल पड़ी।

कुछ फुटकर कारणों के चलते भी धर्मयुद्ध हुए। कुछ लोग स्थान परिवर्त्तन, जिज्ञासा एवं साहसिकता की दृष्टि से धर्मयुद्धों में शामिल हुए। इटली के कुछ नगरों ने कतिपय राजनीतिक तथा व्यावसायिक स्वार्थों के कारण धर्मयुद्धों में भाग लिया। यूरोप के राजा, नाइट तथा शासक वर्ग के अन्य लोग इस कारण धर्मयुद्धों में भाग लिये क्योंकि वे मुसलमानों से युद्ध के दरम्यान सम्पत्ति और जागीर का अपहरण करने की कामना रखते थे। यूरोप के कम्मी लोग इस कारण युद्ध चाहते थे क्योंकि उनका विचार था कि युद्ध उनके जीवन को कष्टों से उबार सकता है। कुछ ऐसे थे जो न्याय के चंगुल से मुक्त होने के लिए, कर्ज के भार से छुटकारा पाने के लिये तथा अपराध से बरी होने के लिए युद्ध में शामिल हुए। इन मिले-जुले कारणों ने ईसाइयों को धर्मयुद्ध प्रारंभ करने के लिये उत्प्रेरित किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार विला डंयूरा ने व्यावसायिक उन्नति की भावना को धर्मयुद्धों का एक प्रधान कारण माना है। उन्होंने लिखा है कि इटली के पिसा, जेनोवा, वेनिस, एमेफी आदि नगरों ने अपने उन्नतशील व्यापार तथा व्यापारिक शक्ति को और भी अधिक उन्नतशील तथा शक्तिशाली करने का प्रयास किया। जब नौर्मनों ने मुसलमानों से सिसली छीन लिया (1060-91) और क्रिश्चियनों ने 1085 में स्पेन में मुस्लिम शासन को श्रीहीन कर दिया तब क्रिश्चियन व्यापारियों को पश्चिमी मेडीटरेनियन के प्रदेशों से व्यापार करने में सुविधा तथा स्वतन्त्रता मिल गयी और इटली के नगर धनी तथा शक्तिशाली बनने लगे। उन्होंने पूर्वी मेडीटरेनियन में मुसलमानों के उत्कर्ष को समाप्त करने तथा निकट पूर्व में अपना बाजार खोलने की योजना बनाना प्रारम्भ किया।

परिस्थिति की अनुकूलता ने भी धर्मयुद्धों की फिजा तैयार की और धर्म-योद्धाओं का दल तैयार किया। जब हंगरी के नागरिक ईसाई बन गये तब पूरब

की दिशा में ईसाई धर्म का प्रचार होना संभव हो गया। इसी समय इटली के नगरों ने अपनी सामुद्रिक शक्ति में वृद्धि कर ली और सिसली से मुसलमानों को खदेड़ दिया जिसकी चर्चा की जा चुकी है। इसी के परिणामस्वरूप पूरब का सामुद्रिक मार्ग मुसलमानों के नियन्त्रण से मुक्त हो गया और धर्मयुद्ध के सैनिक अब पूरब की ओर आसानी से बढ़ सकते थे। धर्मयुद्ध के लिये और भी अनुकूल परिस्थितियाँ एकाएक सृजित हुईं। सलजुक तुर्कों का अपकर्ष हुआ और उनका साम्राज्य विघटित हो गया। तुर्कों तथा अरबों के मध्य द्वेष तथा कलह ने जन्म लिया और इन घटनाओं के फलस्वरूप पोपतंत्र की शक्ति में वृद्धि हुई। इस कारण धर्मयुद्ध की भावना को बल मिला। कुछ धार्मिक तथ्यों तथा आयोजनों ने भी धर्मयुद्ध के लिये मार्ग बनाया। पीटर द हरमिट के उपदेशों का प्रभाव धर्मयुद्धों के पक्ष में हुआ। इसी प्रकार पियासेंजा तथा क्लोर मौंट की धर्मसभाओं ने भी धर्मयुद्धों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। कहा जाता है कि फ्रान्सीसी पीटर द हरमिट ने जेरूसलेम की यात्रा की और वहाँ के धर्माध्यक्ष से यूरोप के ईसाइयों के नाम पत्र लेकर रोम पहुँचा। रोम आकर उसने पोप अर्बन द्वितीय से धर्मयुद्ध करने की अनुमति मांगी। पीटर द हरमिट ने मार्च से अक्तूबर (1095) तक गांवों तथा नगरों में घूम घूमकर लोगों को प्रथम धर्मयुद्ध में शामिल होने के लिये उत्प्रेरित किया। उसने उत्तरी इटली तथा दक्षिणी फ्रांस की यात्रा की और नेताओं तथा समर्थकों को उत्प्रेरणा दी। उसकी सरलता तथा निष्ठा ने जनमानस को गहरे रूप से प्रभावित किया। पोप अर्बन द्वितीय का प्रयास भी सफल रहा। अभी यूरोप संक्रमण काल में था। एक तरफ यूरोप में ईसाइयों के बीच धार्मिक उत्तेजना का निःसरण हो रहा था और दूसरी तरफ तुर्क पूरब में कुस्तुनतुनिया की ओर बढ़ रहे थे। ऐसी स्थिति में सम्राट् एलेक्सियस कोमेनुस ने पोप से सहायता की याचनी की। इस पर विचार करने के लिये पोप ने 1065 में (वसंतऋतु) पियासेंजा में एक धार्मिक सभा का आयोजन किया। किन्तु बैठक में आमन्त्रित प्रतिनिधि पारस्परिक मतभेद के कारण इस बात का निर्णय न कर सके कि पूर्वी चर्च की रक्षा अथवा जेरूसलेम का उद्धार किया अथवा नहीं। इसी वर्ष क्लेयर मौंट में पोप ने दूसरी सभा का आयोजन किया जिसमें अनेक साधारणजनों के अतिरिक्त 14 आर्क विशप, 225 बिशप एवं 400 भिक्षुओं ने भी भाग लिया। कुछ विभिन्न मसलों पर विचार करने के उपरान्त अन्त में नवम्बर 27, 1065 को धर्मयुद्ध का प्रश्न सामने आया। पोप एक कुशल वक्ता तथा राजनीतिज्ञ था जिसने अपने अभिभाषण से समस्त श्रोताओं को प्रभावित किया। उसने अपनी फ्रेंच भाषा में ईसाइयों के उत्पीड़न तथा फिलस्तीन की दुर्दशा का उल्लेख तो किया ही, साथ ही इस बात का भी संकेत

दिया कि तुर्कों का उत्कर्ष तथा फैलाव यूरोप के लिये संकटपूर्ण है। जब पोप ने अपने भाषण में यह कहा कि ईसामसीह धर्म की रक्षा के लिये समस्त ईसाइयों का आह्वान कर रहे हैं तब श्रोता उत्तेजित हो उठे। वे एक स्वर से चिल्ला उठे; "यह ईश्वर की इच्छा है, यह ईश्वर की इच्छा है।" श्रोताओं में से सैकड़ों ने अपने वस्त्रों पर क्रॉस (+) का पवित्र चिह्न इस बात को सिद्ध करने के लिये लगा लिया कि वे जेरूसलेम में ईसा के समाधि को मुक्त करने के लिये धर्मयुद्ध में शामिल होने के लिये वचनबद्ध हैं। परिस्थिति सर्वाधिक अनुकूल हो गयी। अगले दिन अर्थात् 28 नवम्बर को विशपों ने धर्म सभा द्वारा प्रस्तावित और प्रतिपादित अभियान की रूपरेखा तैयार की। यह निर्णय लिया गया कि धर्मयुद्धों में शामिल होने वाले धर्मयोद्धा रंगीन कपड़े का क्रॉस अपने कोट पर लगायेंगे और इसीसे उन्हें 'क्रूसेडर्स' कहा गया। इस बात का भी निर्णय लिया गया कि विशप नाइटों की सम्पत्ति की रक्षा तब तक करते रहेंगे जब तक नाइट धर्मयुद्ध में संलग्न रहेंगे। धर्मसभा में यह बात भी कही गयी कि यदि धर्मयोद्धा जेरूसलेम तक पहुँच जायेंगे अथवा इस पवित्र कर्त्तव्य में अपना जीवन खो देंगे तो उनके सभी अपराध क्षमा कर दिये जायेंगे; अगर वे धर्मयुद्ध से विमुख होंगे तो उनका जाति-वहिष्कार कर दिया जायगा। माल्मसबरी के विलियम ने लिखा है कि शीघ्र ही कुछ सामन्त पोप के चरणों पर झुक गये और ईश्वर की सेवा में अपनी सारी सम्पत्ति का अर्पण कर दिये। उनकी देखा-देखी हजारों नागरिकों, मठ वासियों तथा यात्रियों ने वैसा ही किया और सभी धर्मयुद्ध के लिये कटिबद्ध हो गये। अभियान की रूपरेखा तैयार कर ली गयी और इनके अनुसार सारे धर्म-योद्धाओं को कुस्तुनतुनिया में एकत्र होना था और अन्तिम रूप से 15 अगस्त 1096 को अभियान के लिये प्रस्थान कर देना था।

यह एकाएक मानसिक उथल-पुथल पोप के आह्वान के कारण ही हुई। हर वर्ग के सहस्रों लोग अपने समान बेच कर या दूसरों के सुपुर्द कर कुछ महीने बाद पवित्र देश के लिये रवाना हुए। राजा और रंक सभी इसमें शामिल हुए। राजा और सामन्त भूमि मार्ग और जलमार्ग से जानेवाले दलों के नेता बने। उनके

1. "At once, some of the nobility, falling down at the knees of the Pope, consecrated themselves and their property to the service of God."

—William of Malmesbury, P 358

प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न थे जिनका उल्लेख किया जा चुका है। कुछ तो पवित्र प्रदेशों को तुर्कों के हाथ से वापस लेने के लिये गये और दूसरे लोग दायित्वों से पीछा छुड़ाने के लिए, धन और भूमि पाने के लिये गये। कुछ अन्य लोग पापों का प्रायश्चित करने के लिए गये, कुछ लोग मात्र साहसिक अभियान के लिये गये। लेकिन सामन्त और शासक अपने आपसी झगड़े भूल गये और पश्चिमी यूरोप समान उद्देश्य के लिये एक हो गया।

धर्मयोद्धाओं की खास पोशाकें थीं। जीवन न्योछावर करने वाले इन वीरों को सुरक्षा के लिये सिर पर सरकाये जा सकने वाले तोपें जुड़े हुए भूरे रंग की पोशाक से पहचाना जा सकता था। प्रत्येक धर्मयोद्धा जेरूसलेम जाते हुए अपने सीने पर और वहाँ से लौटते अपनी पीठ पर एक लाल क्रॉस पहने रहता था। उनकी कमर में एक चौड़ी पेटी से पानी की बोतल या तुम्बी और कभी-कभी घंटी लटकती रहती थी। जो लोग पैदल गये उनके पाँवों के तलों में छाले पड़ गये और वे थक गये। जहाजों से जानेवाले योद्धाओं को भी आराम नहीं था। चूँकि जहाजों के स्वामी अधिक-से-अधिक भाड़े लेकर पैसा बनाना चाहते थे, इसलिए प्रत्येक यात्री को सोने के लिये उन्होंने डेक पर छ: फुट लम्बी और २ फुट चौड़ी जगह देदी थी। पर मजबूत लोग कमजोर लोगों की जगह हड़प लेते थे और सोते वक्त धक्का देकर उन्हें कुछ जमीन त्यागने के लिये बाध्य कर देते थे। कुछ यात्री निरन्तर अण्डे मिलते रहने के लिये मुर्गियाँ तथा दूध के लिये बकरियाँ अपने साथ रखते थे और जहाज छोड़ने के बाद यात्रा करने के लिये घोड़े रख लिये थे। सफाई की दशा बड़ी बुरी थी। वे लोग बुखार के शिकार हो गये और अनेक अन्य कष्टों में पड़े। शक्ति-क्षय, गन्दे जहाजों, या लग गये छूत के रोगों तथा जेरूसलेम पहुँचने के लिये मुसलमानों से लड़ी गयी लड़ाइयों के कारण धर्मयुद्ध के दौरान मरने वालों की संख्या बहुत अधिक थी।

जोखिमों तथा कष्टों के बावजूद हजारों आदमी धर्मयोद्धा की पोशाक धारण करते और पवित्र देश की ओर जाते रहे। वे एक शताब्दि से अधिक समय तक तो लगभग समान, निरन्तर प्रवाह, फिर बाद में लगभग एक शताब्दि तक कुछ कम संख्या में, जाते ही रहे। पश्चिमी यूरोप के भूमध्यसागर तट पर स्थित बन्दरगाहों से इन उत्साही यात्रियों को ले जाने वाले जहाज प्रतिवर्ष छूटते रहे।

प्रथम धर्मयुद्ध (1096-99)

प्रथम धर्मयुद्ध सन् 1096 में प्रारम्भ हुआ और कुल तीन वर्षों तक चला। यह भावावेश और उत्तेजना में प्रारम्भ हुआ था। सुनियोजित योजना तथा सुसं-

गठित सेना को क्रियात्मक रूप देने के पूर्व ही यति पीटर द हरमिट तथा उसके अनुयायियों ने धर्मयुग के लिये तत्काल प्रस्थान कर दिया। इस विशाल जनसमुदाय में सारे वर्गों के लोग थे। शासकों तथा सामन्तों के साथ-साथ पुजारी, बिशप और भिक्षु तथा अमीर-गरीब और महिलाएँ तथा बच्चे भी थे। मिकॉड ने लिखा है कि "इस समय यूरोप निर्वासन की भूमि जान पड़ता था जिसका त्याग करने के लिये सभी आतुर थे।" जनसमूहों में कुछ सीधे सादे किसान थे जो यति पीटर ए हरमिट के अभिभाषण से प्रभावित होकर धर्मयोद्धा बन गये और कुस्तुनतुनिया की ओर प्रस्थान कर दिये। कुछ ऐसे भी अवांछित तत्त्व थे जो जेरूसलेम की चिन्ता कम करते थे और लूट में धन अर्जन करने के दृष्टिकोण से धर्मयोद्धा का चोला धारण कर लिये थे। किसान श्रेणी के धर्मयोद्धाओं ने दो पहियावाली गाड़ियों में अपने बैलों को घोड़े की तरह जोत लिया और उनपर दैनिक आवश्यकता की सामग्रियों तथा अपने परिवार के सदस्यों को लादकर निकल पड़े। लोगों ने जेरूसलेम के आकर्षक तथा सुखप्रद होने की कल्पना की और यही कल्पना उनमें उत्साह भरने के लिये काफी थी। उत्सुक बच्चे तथा सीधी-साधी स्त्रियाँ मार्ग में विशाल दुर्गों अथवा नगरों को देखकर उन्हें जेरूसलेम समझ बैठती थीं। प्रत्येक धर्मयोद्धा जल्द-से जल्द जेरूसलेम पहुँच जाना चाहता था।

सम्राट् एलेक्सियस कुशल तथा बुद्धिमान प्रशासक और राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि हथियारों के प्रयोग तथा लड़ने की कला से अनभिज्ञ रहने के कारण धर्मयुद्ध पर निकले ये सारे किसान और औरतें तथा अबोध शिशुगण तुर्कों द्वारा गाजर-मूली की तरह काट डाले जायेंगे। अतः उसने सारे जनसमुदाय को कुस्तुनतुनिया में तबतक रुके रहने का सत्परामर्श दिया जब तक कि ईसाई योद्धाओं का प्रधान दल न आ जाय।[1] किन्तु उत्तेजित जन समुदाय जल्द-से-जल्द कुस्तुनतुनिया से आगे बढ़कर जेरूसलेम पहुँच जाना चाहता था। कंगाल नाइट वाल्टर तथा पीटर द हरमिट भी अनियंन्त्रित जनसमूह पर नियंत्रण कायम करने में असफल हो गये। जब जन-समुदाय ने कुस्तुनतुनिया को लूटना प्रारम्भ किया तब विवश होकर एलेक्सियस ने उन्हें आगे बढ़ जाने दिया। परिणाम की कल्पना तो

---

1. "Do not cross the Hellespont until the great army of the Charistian arrives, for there are not enough of you to fight against the Turks."

—May R. Brice & Margaret Howell, p 201

पहले ही की जा चुकी थी। इन अधिकांश योद्धाओं में से अनेक लोगों की बीमारी,
भुखमरी तथा दासता की चपेट में आ जाना पड़ा। जो थोड़े से लोग पवित्र प्रदेश
को पहुँच भी पाये, उनको तुर्कों ने कत्ल कर दिया। पीटर कुछ लोगों के साथ
अपनी दयनीय एवं करुण स्थिति की कथा सुनाने के लिये कुस्तुनतुनिया लौट आया।

इसी बीच कुछ सरदार तथा राजागण अपने प्रथम अधिकृत धर्मयुद्ध का
संगठन करने में लगे थे और अपना संगठन बनाकर करीब तीन लाख धर्मयोद्धाओं
के साथ फिलस्तीन की ओर प्रस्थान कर गये। पीटर द हरमिट के प्रस्थान जर्मनी
तथा फ्रान्स के रेमाँड, राबर्ट, गाडफ्री, बाल्डविन तथा टैनक्रेड जैसे राजाओं ने
धर्म योद्धाओं के इस दल का संगठन किया था। यह दल पहले की अपेक्षा सुसंगठित
था। दल के योद्धा तीन भागों में बँट गये और तीन ओर से कुस्तुनतुनिया के लिये
प्रस्थान किये। दूसरे दल के प्रस्थान की सूचना पाकर एलेक्सियस काफी भयभीत
हो गया क्योंकि पोप से प्राप्त उसके पास कम सैनिक थे। उसकी चिन्ता तब और
बढ़ गयी जब उसने यह खबर पायी कि उसका पुराना शत्रु दक्षिण इटली का बोहे
मोंड भी धर्मयोद्धाओं के साथ है। संक्षेप में, इस बार धर्मयोद्धाओं को सफलता
मिली। धर्मयोद्धाओं ने कुस्तुनतुनिया से एन्टिओक (उत्तरी सीरिया का प्रदेश) की
ओर प्रस्थान किया और उस पर अधिकार कर लिया। उन्होंने 1097 ई० में
इकाइयों पर भी अधिकार कर लिया। तुर्क सेना डोरिलेयम के युद्ध में ईसाइयों
की सेना से बुरी तरह परास्त हुई। इस बीच धर्मयोद्धाओं में से कुछ कलुष भावना
के शिकार हो गये। बोहे मोंड ने एन्टिओक तथा इसके निकटस्थ प्रदेशों पर अपना
अधिकार जमा लेने का यत्न किया। दूसरी तरफ एन्टिओक पहुँचने के पहले ही
बाल्डविन ने प्रमुख दल का त्याग कर दिया और एडेसा का शासक बन बैठा।
वह एडेसा का शासक तब तक बना रहा जब तक वह 1100 ई० में अपने भाई
गाँडफ्री की जगह पर जेरूसलेम का शासक न हो सका। अनेक विपदाओं तथा
कठिनाईयों के बावजूद मुख्य सेना एन्टिओक की ओर अग्रसर होती रही। एन्टिओक
पहुँचने पर 1093 ई० में बोहे मोंड ने नगर पर अधिकार करने के लिये अपनी
सारी ताकत लगा दी। नगर पर धर्मयोद्धाओं का अधिकार हो गया। इसी समय
तुर्कों की एक सेना ने धर्मयोद्धाओं को एन्टिओक में पछाड़ने के लिये प्रयास किया।
तुर्क सेना की प्रबलता से सारे धर्मयोद्धा निराश होने लगे। कहा जाता है कि बार्थ
लोम्यू चर्च की वेदी से एक भाला खोज निकाला और धर्मयोद्धाओं के साथ
तुर्क सैनिकों से भिड़ गया। सारे तुर्क सैनिक खदेड़ दिये गये। इतिहास में यह
घटना 'बार्थलोम्यू का भाला' के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में बार्थलोम्यू पर

झूठा होने का आरोप लगाया गया और उसे अग्नि की लपटों में फेंक दिया गया। बोहेमोंड एण्टिओक में ही अड़ा रहा, पर रेमांड अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा।

इस बीच जेरूसलेम पर मिस्र के फातमी खलीफाओं का अधिकार हो गया था। सन् 1099 ई० धर्मयोद्धा जेरूसलेम पहुँच गये। नगर की रक्षा के लिये मुसलमानों ने उत्तम व्यवस्था की थी जिसके कारण धर्मयोद्धा अपने प्रथम आक्रमण में असफल हो गये। किन्तु शीघ्र ही धार्मिक जोश में उफान आया और ईसाई योद्धाओं ने दूने उत्साह से नगर पर आक्रमण किया और उसपर अधिकार (15 जुलाई, 1099) कर लिया। हजारों मुसलमानों को उनकी मस्जिदों से बाहर निकाल दिया गया और हजारों मार डाले गये। नगर की गलियों में खून की धारा बह चली। समस्त फिलस्तीन और सीरिया में धर्मयुद्ध में भाग लेने वाले भूमिपतियों ने अपने सामन्ती राज्य स्थापित कर लिये। लूट-पाट में माल पाकर निर्धन धर्मयोद्धा भी धनी हो गये। लूट तथा जीत का काम तमाम होने पर धर्मयोद्धाओं ने लोरेन के गॉडफ्री को अपना शासक बना लिया और इस प्रकार जेरूसलेम में लैटिन राज्य की स्थापना की गयी। जेरूसलेम का 'राजा' न होकर गॉडफ्री अपने को उसका 'संरक्षक' ही कहता रहा। बाद में 1100 ई० में जब उसका भाई बाल्डुविन जेरूसलेम का शासक बना तो उसने स्वयं को 'राजा' कहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार फिलस्तीन पर ईसाइयों का अधिकार हो गया और कुछ समय के लिये वह यूरोपीय प्रदेश बन गया। जेरूसलेम पर अधिकार करने के उपरान्त प्रसन्नता की लहर व्याप्त गयी और इस अधिकार का श्रेय महात्मा ईसा को दिया गया।[1] ईसाई योद्धाओं ने मिस्र के 20,000 सैनिकों को पुन: एसकेलन के युद्ध में परास्त किया। अब योद्धा जेरूसलेम को मुक्त कर सामुद्रिक और स्थलीय भागों से यूरोप वापस आ गये। उनके वापस आने पर यूरोप में पुन: उत्साह आया और धर्मयोद्धाओं के तीन दल ने पुन: हथियारों से लैश होकर एशिया माइनर को पार किया। पर प्रत्येक दल तुर्कों द्वारा असफल कर दिया गया और कुछ ही लोग यूरोप वापस लौट सके। प्रथम धर्मयुद्ध में लगभग 10 लाख धर्मयोद्धा काम आये।

---

1. बोहेमोंड के किसी अज्ञात नाम नाइट ने एक लघु पुस्तक की रचना की जिसमें उसने इस प्रसन्नता का इस प्रकार उल्लेख किया है : "Then our men came back to Jeruslem rejoicing bearing with them all sorts of provisions which they needed. This battle (a victory at Arsuf outside Jeruslam) was fought on the 12th August by the mercy of our lord Jesus Christ, to whom be honour and glory, now and for ever; world without end. May every soul say 'Amen.'

द्वितीय धर्मयुद्ध (1147-49)

प्रथम धर्मयुद्ध के 37 वर्ष बाद 1147 ई० में द्वितीय धर्मयुद्ध प्रारम्भ हुआ जो कुल दो ही वर्षों तक चला। सामन्तीय राज्यों द्वारा मुसलमानों के विरुद्ध सहायता की माँग करने पर द्वितीय धर्मयुद्ध प्रारम्भ हुआ। जेरूसलेम में लैटिन राज्य की स्थापना अवश्य की गयी थी, किन्तु वह कमजोर था। पवित्र नगर को मुक्त कर अधिकांश यूरोपवासी यूरोप वापस आ गये जिसके कारण राज्य का बल घट गया। इसी समय जेरूसलेम में दो धार्मिक सैनिक समुदायों का संगठन हुआ। उनके नाम थे हॉसपिटलर्स तथा टेम्पलर्स। जेरूसलेम की सुरक्षा के लिए ये दोनों दल अधिक सचेष्ट थे। इनके सदस्य धर्मयुद्ध में घायल हुए ईसाइयों की सेवा करते थे, तीर्थ यात्रियों के मनोरंजन के लिए व्यवस्था करते और ईसाई धर्म के प्रचार में सक्रियता दिखलाते थे। सीरिया तथा फिलस्तीन में बैरनों की तरह इन दोनों समुदायों के अनेक किले बने हुए थे। वस्तुत: इन्हीं की सहायता के बल पर फिलस्तीन में ईसाई टिके हुए थे। सन् 1130 तक नाइटों तथा बैरनों के पारस्परिक कलह तथा मतभेद के कारण जेरूसलेम का लैटिन राज्य कमजोर पड़ गया और इसका फायदा उठाकर मुसलमानों ने 25 दिसम्बर, 1144 ई० एडेसा नामक नगर पर अधिकार कर लिया। मुसलमानों ने नगर के सारे नागरिकों की हत्या कर डाली या उन्हें गुलाम बनाकर उनकी बिक्री कर डाली। एडेसा के पतन से जेरूसलेम के ईसाई तथा यूरोपवासी अत्यधिक चिन्तित हो गये क्योंकि उन्हें आशंका होने लगी कि फिलस्तीन पर मुसल-मानों का पुन: अधिकार कायम हो जायेगा। इस निराशा की स्थिति में पीटर द हरमिट की तरह संत बर्नाड का आगमन हुआ जिन्होंने जेरूसलेम की रक्षा के लिए ईसाइयों को प्रेरित किया तथा धर्मयुद्ध का वातावरण तैयार कर दिया। उन्होंने खुले शब्दों में उपदेश दिया कि "स्वर्ग राजा (ईसा) की भूमि (जेरूसलेम) के अपहृत हो जाने से पृथ्वी काँप रही है। ईसा की आँखें आप पर लगी हैं और वे खोज रही है कि कौन व्यक्ति उसके साथ कष्ट उठाने को तैयार है। वह लोगों की परीक्षा ले रहा है।"[1] इस युद्ध में बैरनों, नाइटों तथा अन्य जनों के साथ यूरोप के प्रमुख राजाओं ने भी भाग लिया।

---

1. The earth trembles and is shaken because the king of Heaven has lost his land, the land where once he walked. The great eye of Providence observes these acts in silence; it wishes to see if anyone who seeks God, who suffers with him in his sorrow, will render him his heritage'''I tell you, the Lord is testing you. — Bernard

धर्मयुद्ध अब प्रारम्भ हो गया। फ्रांस के राजा लुई सप्तम ने 1300 विद्रोहियों को एक गिरजाघर में जिन्दा अग्नि की भेंट चढ़ा दिया। वध के पाप से मुक्ति पाने के लिये उसने द्वितीय धर्मयुद्ध में खुलकर भाग लिया। इसी प्रकार जर्मनी के सम्राट कानरेड तृतीय ने भी जेरूसलेम स्थित महात्मा ईसा की समाधि की रक्षा के लिये शपथ ली और धर्मयुद्ध के लिये देश से चल पड़ा। यद्यपि कि मार्ग की कठिनाइयों के कारण फ्रांस तथा जर्मनी के अधिकांश सैनिक विनष्ट हो गये, फिर भी उनमें से कुछ फिलस्तीन तक पहुंच ही गये। सैनिकों ने दमिश्क का घेरा डाल दिया, पर उसपर अधिकार न कर सके। इसका कारण था धर्मयोद्धाओं तथा फिलस्तीन के ईसाइयों का आपसी झगड़ा। अतः सैनिक यूरोप लौट आये और द्वितीय धर्मयुद्ध असफल हो गया।

इसके कुछ ही समय के उपरान्त (4, जुलाई 1187) सारा यूरोप यह देखकर आतंकित हो गया कि जेरूसलेम पर पुनः मुसलमानों का अधिकार हो गया था। मुसलमानों का शासक सलादीन ने, जो अतिशय धार्मिकता का शिकार था और मिस्र का शासक था, तिवेरिस के निकट हिट्टीन में ईसाइयों को बुरी तरह परास्त करके जेरूसलेम पर कब्जा जमा लिया था। टेम्पलरों अथवा हॉस्पीटलरों के प्रति तनिक भी दया नहीं दिखलायी गयी। उसने राजा गुय (Guy) तथा ड्यूक रेजिनॉल्ड को सामने उपस्थित करने का आदेश दिया। उसने राजा को क्षमा कर दिया, किंतु रेजीनाल्ड को इस्लाम स्वीकार करने का आदेश दिया। जब रेजिनाल्ड ने परधर्म स्वीकार करने से इनकार किया तब सलादीन उसके सिर को तलवार ने धड़ से अलग कर दिया। उसने उसके शरीर का एक टुकड़ा, जिसमें क्रॉस लटक रहा था, बगदाद के खलीफा की सेवा में भेज दिया। जब उसने एक भी सैनिक को अपने में खड़ा नहीं पाया तब उसने एकट पर अधिकार करने कि लिय प्रस्थान किया। एकट पहुँचकर उसने करीब 4000 मुस्लिम कैदियों को मुक्त किया तथा लूट के माल को अपने सैनिकों में बाँट दिया। कुछ ही महीनों के अन्तर्गत सारा फिलस्तीन उसके पैरों पर लोटने लगा। जैसे ही, वह जेरूसलेम पहुँचा वैसे ही वहाँ के प्रमुख नागरिकों ने शान्ति समझौता करने के लिये उसके पास सन्देश भेजा। अपार धन तथा स्वर्ण लेकर सलादीन ने उसकी जान बख्श दी।

यूरोप के इतिहास में सलादीन अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध है। बाद में यूरोपीय लेखकों तक ने उसकी वीरता, सहिष्णुता तथा न्याय-प्रेम का बखान किया परन्तु जेरूसलेम की विजय के समय यूरोप में ये अफवाहें फैलायी गयीं कि सलादीन प्रातराश में ईसाई बच्चों का भक्षण किया करता था। जो हो, सलादीन के कारण ही ईसाई द्वितीय धर्मयुद्ध में भी असफल रहे।

तृतीय धर्म युद्ध (1189-92)

जेरूसलेम पर पुनः अधिकार करने के लिये जर्मनी के शासक फ्रेडरिक बार-बरोसा फ्रांस के शासक फिलीप आगस्टस तथा इंगलैंड के शासक रिचर्ड प्रथम (जिस शेरदिल, कहा जाता है) ने तीसरे धर्मयुद्ध के लिये प्रस्थान किया।

फ्रेडरिक बारबरोसा सत्तर वर्ष का बूढ़ा होते हुए भी एक वीर सेनापति और कुशल प्रशासक था। हालांकि उसके पास रसद का अभाव था, पानी की कमी थी, फिर भी वह अपने अनुशासित सैनिकों के साथ आगे बढ़ता गया। किंतु भाग्य-सूर्य सलादीन के पक्ष में ही चमक रहा था। जब जर्मन सम्राट की सेना एशिया माइनर में से सेलेफ नदी को पार कर रही थी, बूढ़ा सम्राट नदी में अचानक गिर पड़ा और डूबकर मर गया। जर्मन सैनिकों में निराशा छा गयी और वे स्वदेश वापस लौट आये। सम्राट की लाश एन्टिओक में ही दफना दी गयी।

शेष दो सम्राट फिलीप आगस्टस तथा रिचर्ड प्रथम कच्ची उम्र के कारण युद्धकला में प्रवीण नहीं थे। इसके अतिरिक्त उनमें आपसी प्रतिद्वन्द्विता भी थी। रिचर्ड प्रथम के राज्य का एक बड़ा हिस्सा फ्रांस में पड़ता था जिसको लेकर दोनो देशों के शासक एक दूसरे के विरोधी हो गये थे। दोनों शासकों की प्रकृति भी आपस में मेल नहीं खाती थी। जहाँ रिचर्ड प्रथम शान शौकत का प्रेमी था वहाँ फिलीप उससे घृणा करता था। पहला झगड़ालू था तो दूसरा समझौता-वादी। दोनों के विरोध को नया करने में एक घटना ने तत्काल सहयोग दे दिया। साइप्रस पहुँचते ही रिचर्ड प्रथम ने नेभारा की राजकुमारी बेरेंरिया से विवाह कर लिया जबकि पूर्व निर्णयानुसार उसे फिलिप की बहन से विवाह करना था। साइप्रस में अधिक ठहराव तथा विवाहोपलक्ष्य में समय लगाना इस बात के प्रमाण थे कि रिचर्ड बहाना बनाकर फिलस्तीन पहुँचने में देर कर रहा था जबकि फ्रांस का सम्राट वहाँ बहुत पहले ही पहुँच गया था।

फिलिप की सेना ने एकट नामक बन्दरगाह तक पहुँचकर अपना खेमा गाड़ दिया था। यहाँ पहले से ही मुसलमानों ने अपनी सैनिक छावनियों का निर्माण कर लिया था। तत्काल फ्रान्स के सैनिक-शिवरों के अगल बगल मुसलमानों के सैनिक मड़राने लगे थे। एक पहुँचे हुए फ्रान्स के सैनिक रिचर्ड तथा उसके सैनिकों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे जब 8 जून 1191 ई० को रिचर्ड अपने सैनिकों के साथ आ धमका तब फ्रेंच सैनिकों में प्रसन्नता की लहर छा गयी और उन्होंने नगाड़े बजाकर उसका स्वागत किया। सच पूछा जाय तो धर्मयोद्धा रिचर्ड

को ही अपना सच्चा नायक मानते थे क्योंकि उसकी वीरता से वे अभिभूत थे। रिचर्ड एक महान तथा वीर सेनानायक था और किसी भी सेनानायक से अधिक अपने सैनिकों को प्रेरणा देने का सामर्थ्य रखता था।

अब जर्मनी तथा फ्रांस के सैनिकों ने मिलकर एकर पर आक्रमण कर दिया। सलादीन के सैनिक युद्ध में हिम्मत हार गये और उन्होंने विवश होकर 12 जुलाई को आत्मसमर्पण कर दिया। रिचर्ड ने पारस्परिक भेद भाव को भुला दिया और युद्ध में डटकर मुस्लिम छावनी के सैनिकों तथा उनके परिवार के सदस्यों को बन्दी बना लिया। तनिक देर तक निरूत्साहित होने के उपरान्त सलादीन ने पुनः हिम्मत से काम लिया। उसने अपने सैनिकों की मुक्ति के लिये रिचर्ड प्रथम को एक अच्छी रकम देने के लिये संकल्प किया। इसी बीच फ्रान्स के सैनिक तथा उसके राजा फ्रांस वापस लौटने को व्यग्र थे। इसका कारण फिलिप का गिरता स्वास्थ्य तथा उसका रिचर्ड से वैमनस्य का भाव था। रिचर्ड जर्मनी के योद्धाओं तथा उनके नेता लियोपोल्ड के प्रति भी अनुदार तथा अशिष्ट हो चला था। उसकी अशिष्टता का प्रतिशोध लियोपोल्ड ने परवर्ती वर्षों में लिया अंतिम रूप से फिलिप अपने सैनिकों के साथ फ्रांस वापस लौट गया।

अब रिचर्ड धर्मयुद्ध का अकेला नायक था। फिलिप की वापसी के उपरान्त उसने अविलम्ब जेरूसलेम पहुँचने का प्रयास किया। इसी समय उसने एकर की छावनी में 27,000 मुस्लिम सैनिकों का वध कर दिया। जेरूसलेम पहुँचना टेढ़ी खीर था, फिर भी रिचर्ड अपने सैनिकों के साथ किसी तरह आँरसुफ पहुँचने में सफल हो गया। यहाँ धर्मयोद्धाओं तथा मुस्लिम सैनिकों में घमासान युद्ध हुआ। मुसलमानों की पराजय हो गयी और तब जेरूसलेम पहुँचने का मार्ग खुल गया। किन्तु फिलस्तीन के ईसाइयों के परामर्श से रिचर्ड ने जेरूसलेम पर अधिकार करने का ख्याल छोड़ दिया। ईसाइयों का कहना था कि रिचर्ड के सैनिक जेरूसलेम पर अधिकार जमाकर वापस लौट जायेंगे और तब मुसलमान पुनः उसपर कब्जा जमा लेंगे। अतः जेरूसलेम पर अधिकार करना व्यर्थ है। यही कारण था कि रिचर्ड जाफा पर अधिकार करने के उपरान्त मिस्र के शासन सलादीन से संधि कर ली। संधि के अनुसार समुद्र तट के नगर ईसाईयों के कब्जे में छोड़ दिये गये और ईसाई तीर्थयात्रियों को निर्विघ्न जेरूसलेम की यात्रा करने की सुविधा दी गयी। कुछ इतिहासकार (प्लैट तथा ड्रमंड) यह स्वीकार करते हैं कि "रिचर्ड तथा सलादीन दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो गया। जब रिचर्ड बीमार हो गया तब वीर सलादीन ने उसके ज्वर-तप्त मस्तक को शीतल

करने के लिये बर्फ भिजवाई। अन्तः रिचर्ड ने सलादीन से यह अनुमति प्राप्त कर ली कि ईसाई लोग वहाँ उपासना कर सकते हैं।" चाहे समझौता का जो भी कारण हो रहा हो, यह सत्य है कि जेरूसलेम पर अधिकार किये बिना ही रिचर्ड वापस लौट आया। वापसी के समय वह अपनी सेना को भी पीछे छोड़ दिया। मार्ग में दुर्भाग्य उसका पीछा कर रहा था। उसका जलायान दुर्घटना का शिकार हो गया और वह आस्ट्रिया के उसी ड्यूक (लियोपोल्ड) के हाथ पड़ गया जिसके ध्वज को रिचर्ड ने एकर में उखाड़कर फेंक दिया था और जिसका अपमान किया था। प्रतिशोध की अग्नि अभी तक लियोपोल्ड के हृदय में सुलग रही थी। उसने रिचर्ड को जर्मनी के सम्राट के सुपुर्द कर दिया जिसने उसे एक वर्ष तक कैदी का जीवन बिताने को बाध्य किया। अन्त में हेनरी षष्ठ ने उसे मुक्त करने के लिए एवज में एक भारी रकम की मांग की। उसे कैदी जीवन से मुक्त करने के लिए अंग्रेजों ने गिरजाघरों की स्वर्णराशि तक बेच डाला। इस प्रकार मुक्त होकर वर्ष के उपरान्त रिचर्ड इंगलैंड पहुँच सका।

चतुर्थ धर्मयुद्ध (1102-1204)

चतुर्थ धर्मयुद्ध का संगठन वेनिस के व्यपारियों ने किया था। इस बार मिस्र पर आक्रमण करने के लिए सामुद्रिक मार्ग अपनाया गया। वेनिस धर्मयोद्धओं को एक भारी रकम पाने के पश्चात् अपने जलयान तथा खाद्य सामग्रियाँ दिये। जब कुछ योद्धा भारी रकम देने में अपनी असमर्थता दिखलाये तब वेनिस के बनियों ने रकम की जगह उन्हें डाल्मेशिया स्थित जारा नगर के विद्रोह का दमन करने के लिये कहा। योद्धाओं ने नगर का विद्रोह दमन करके जलयान तथा अन्य यात्रा-सम्बन्धी समान प्राप्त किये। उसी बीच धर्मयोद्धायों का ध्यान मिस्र से हटकर कुस्तुनतुनिया की ओर चला गया जहाँ एक घटना घट गयी थी। कुस्तुनतुनिया में विद्रोह हो गया था और एक विद्रोही ने सम्राट को खदेड़कर गद्दी पर अधिकार कर लिया था। इस पर निष्कासित सम्राट के पुत्र एलेक्सियस एनजेलस ने फ्रांक धर्म-योद्धाओं से सहायता की अपील की। फ्रांक धर्मयोद्धाओं तथा वेनेसियनों मिलकर यात्रा प्रारम्भ कर दी और 300 जलयानों को लेकर निकल पड़े तथा कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया। निर्वासित शासक एलेक्सियस भी जीवित न रह सका और उसकी हत्या हो गयी। धर्मयोद्धाओं ने अब कुस्तुनतुनिया में लैटिन राज्य की स्थापना करने का निश्चय किया। सन् 1204 ई० में उन्होंने दूसरी बार कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण किया और उस पर कब्जा जमाकर फ्लैंडर्स के बाल्डविन को पूर्वी सम्राट के रूप में गद्दी पर प्रस्थापित कर दिया। साम्राज्य के कुछ भाग पर फ्रैंक

नाइटों ने कब्जा जमा लिया और जागीर के रूप में उसका उपभोग करने लगे। बिजेन्ताइन साम्राज्य का विघटन हुआ और उसकी जगह सामन्ती राज्यों का उदय हुआ। इन्हीं राज्यों में एथेन्स का राजकमण्डल भी एक है।

कुस्तुनतुनिया का नव-स्थापित लैटिन राज्य अधिक दिनों तक अपना अस्तित्व कायम न रख सका। यूनानियों ने सन् 1261 में इस पर पुनः अधिकार कर लिया और उनके अधिकार में यह राज्य 1453 ई० तक बना रहा। यूनानियों के पश्चात् उसपर तुर्कों का अधिकार कायम हो गया।

अन्य धर्मयुद्ध

कथित चार धर्मयुद्ध के अतिरिक्त चार अन्य धर्मयुद्ध भी हुए जिन्हें पंचम्, षष्ठम्, सप्तम् और अष्ठम धर्मयुद्ध कहे जाते हैं। किन्तु इन धर्मयुद्धों के पूर्व यूरोप के ईसाई बालावृन्द ने 1212 ई० में एक धर्मयुद्ध किया था जिसे हम 'बच्चों का धर्मयुद्ध कह सकते हैं। इस धर्मयुद्ध का प्रेरक फ्रान्स के कृषक परिवार का एक शिशु था जिसका नाम था स्टेफेन। स्टेफेन को अचानक इस बात का एहसास हो गया कि क्राइस्ट ने उसे अपने समाधि को मुक्त करने के लिए आदेश दिया है। उसने इस बात का प्रचार करना प्रारम्भ किया और बच्चों में इतना अधिक उत्साह तथा बल आ गया कि वे घरों से निकल पड़े और उनके अभिभावक उन्हें रोक सकने में असमर्थ हो गये। बच्चों का दल धर्मयुद्ध के लिये निकल पड़ा। इस दल में बारह वर्ष से भी कम उम्र के बच्चे थे। जर्मनी के बच्चों ने युद्ध के लिए सबसे पहले प्रस्थान किया और वे आल्प्स को पार कर इटली के समुद्र तट पर आ गये। यहाँ आकर उन्होंने यह आशा की कि वे आगे बढ़ने के लिए एक चमत्कारी सड़क पा लेंगे और उसके सहारे फिलस्तीन तक पहुँच जायेंगे। मार्ग की विकट कठिनाइयों से प्रजनित कष्टों का सहन अधिकांश शिशु न कर सके और वे मार्ग में ही मृत्यु की गोद में सो गये। जो बच्चे रोम पहुँच सके पोप का परामर्श पाकर यूरोप वापस आ गये। पोप ने उन्हें यह समझाकर वापस कर दिया कि वे युवक बनने के बाद धर्मयोद्धा बनें और तभी उन्हें सफलता मिल सकती है।

जर्मनी की तरह फ्रान्स के करीब 3000 बच्चे भी धर्मयुद्ध के लिए निकल पड़े और सभी मार्शलीज में एकत्र हुए। मार्शलीज में उफनते समुद्र को देखकर शिशु घबड़ा गये और वे यह न जान पाये कि अब इस विशाल समुद्र को किस तरह पार किया जाय। अधिकांश शिशु फ्रान्स वापस आ गये, किन्तु लगभग छः सात हजार शिशु मार्शलीज नगर के दो व्यापारियों के जलयानों से यात्रा पर निकल गये।

इन अबोध शिशुओं को यह आश्वासन मिला था कि उनसे यात्रा शुल्क नहीं लिया जायेगा और उनको गन्तव्य स्थान पर पहुँचा दिया जायेगा। किन्तु व्यापारियों ने इन ईसा प्रेमी सरल शिशुओं के साथ विश्वासघात किया और उन्हें सिकन्दरिया तथा अन्य मुस्लिम नगरों के बाजारों में दास के रूप में बेच डाला। तीर्थयात्री बालक दास बना लिये गये। ईसा की समाधि को मुक्त करनेवाले बच्चे स्वयं अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे। कुछ बालक दो जहाजों के पारस्परिक टक्कर के कारण दुर्घटना के शिकार हो गये और समुद्र की लहरों में समा गये। शिशुओं का धर्मयुद्ध निष्फल हो गया, किन्तु उनका बलिदान इतिहास का अविस्मरणीय अध्याय बन गया।

पाँचवे से आठवें धर्मयुद्ध को 'सामान्य धर्मयुद्ध' की संज्ञा दी गयी है। पाँचवें धर्मयुद्ध का प्रारम्भ हंगरी तथा साइप्रस के राजाओं ने किया था जो चार वर्षों (1216- 0) तक जला। इस युद्ध के योद्धा अपने प्राणों को मिश्र में खो बेठे और इस धर्मयुद्ध का कोई अर्थपूर्ण परिणाम न निकला। जर्मन सम्राट फ्रेडेरिक द्वितीय ने छठवें धर्मयुद्ध का सूत्रपात किया। उसे इस कार्य में सफलता मिली और उसने मुसलमानों को परास्त कर जेरूसलेम तथा अन्य नगरों पर अधिकार भी कर लिया। फ्रांस के सम्राट लुई नवम् ने सातवें धर्मयुद्ध (1249-54) का नेतृत्व किया जो पाँचवें धर्मयुद्ध की तरह असफल हो गया। आठवें तथा अन्तिम धर्मयुद्ध का आयोजन किया फ्रांस के लुई नवम् तथा इंगलैंड के राजकुमार एडवर्ड (जो कालान्तर के राजा बनकर एडवर्ड प्रथम कहलाया) ने। लुई ने उत्तरी अफ्रिका में ट्यूनिस के मुस्लिम नगर पर अशिकार करने का प्रयास किया, किन्तु महामारी (प्लेग) का शिकार होकर अपने प्राण गँवा दिये। किन्तु राजकुमार एडवर्ड को अपने कार्य में कुछ सफलता मिली। उसने मिस्र के सुलतान से 1272 ई० में मित्रता करके ईसाइयों के लिए कुछ सुविधाओं को प्राप्त किया।

इन युद्धों के उपरान्त धीरे-धीरे धर्मयोद्धाओं के धार्मिक उत्साह ठंडे पड़ने लगे। अन्ततोगत्वा मिस्र के मामलुकों ने ईसाइयों के कब्जे के अन्तिम नगर एकर पर भी अधिकार कर लिया और इस प्रकार 1291 ई० तक जेरूसलेम के लैटिन राज्य की इतिश्री हो गयी। फिलस्तीन के अनेक ईसाई और उनके संगठन के बहुसंख्यक लोग भी यूरोप वापस आने को बाध्य हो गये। फिलस्तीन में पैदा हुए इन ईसाइयों ने यूरोप में यत्र-तत्र अपने केन्द्रों की स्थापना करके मुसलमानों से मिस्र में संघर्ष करने का स्वप्न देखने लगे। फिलस्तीन के समुदायों के लोग सर्वप्रथम साइप्रस तथा तत्पश्चात् रोहड्स द्वीप में बस गये जहाँ उन्होंने करीब 200 वर्षों तक पश्चिम में इस्लाम के विस्तार-कार्य का विरोध करते रहे। बाद में तुर्कों द्वारा खदेड़े जाने

पर 1530 ई० में वे माल्टा चले आये। यहाँ नाइटों के रूप में वे अनेक वर्षों तक मुसलमानों का विरोध करते रहे। वे 1789 तक यहाँ के निवासी बने रहे। जर्मनी के नाइटों ने उत्तरी पूर्वी यूरोप को अपना नया रंगमंच बनाया। इन नाइटों का प्रभाव धर्मसुधार आन्दोलन तक बना रहा। टेम्पलर नाइटों के लिए फ्रांस कार्य-क्षेत्र बना था। किन्तु 1307 ई० में फिलिप द फेयर ने इनके नेताओं पर फ्रांस का अपमान करने तथा मुसलमानों से गठबंधन कायम किये जाने का झूठा आरोप लगाया और उनकी हत्या करवा दी। फेयर ने इन नेताओं की सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली। आगे चलकर उनकी भू-सम्पत्ति को होस पिट्लर्स में बाँट दिया गया।

इसी प्रसंग में 'यूरोपीय धर्मयुद्ध' का उल्लेख कर देना भी प्रासंगिक होगा। विधर्मी समझे जाने वाले मुसलमानों के साथ ईसाइयों ने कथित युद्ध लड़े ही, यूरोप के अन्दर ही ईसाई धर्मद्रोहियों के विरुद्ध भी धर्मयुद्ध हुए। मिसाल के तौर पर 1209 से 1229 तक के बीच अलबिजेनसियनों के विरुद्ध हुए धर्मयुद्ध का उल्लेख किया जा सकता है। एलबी (दक्षिणी फ्रांस) में ईसाइयों का एक सम्प्रदाय बना था जिसके सदस्य 'अलबिजेनसियन' कहलाते थे। ये मूल ईसाई धर्म से अपना सम्बन्ध बिच्छेद कर लिये और इस कारण पोप इन्नोसेंट तृतीय ने उन्हें मुसलमानों से भी अधिक बुरा तथा दुरात्मा की श्रेणी में रखा। पोप ने जब अलबिजेनसियनों में सुधार लाने में सफलता प्राप्त न की तब उसने फ्रांस के राजा फिलिप द्वितीय को उन्हें तथा उनके संरक्षक तुलां के काउन्ट रेमाँड छठे को दण्ड देने का आदेश दिया। फिलिप स्वयं इस धर्मयुद्ध से पृथक रहा, किन्तु उसके अनेक सामन्तों ने इसमें खुलकर भाग लिया। सन् 1209 से 1213 के बीच साइमन डी मॉटफोर्ट ने इनका दमन किया। एलबी प्रदेश का अधिकांश हिस्सा विनष्ट कर दिया। उसके नागरिकों की हत्या कर दी गयी और उनके आवासगृहों को जलाकर खाक कर डाला गया। केवल एक नगर बेजियर्स में ही 30,000 नागरिक मार डाले गये। सन् 1229 ई० में फ्रांस के शासक लुई नवम् ने इस प्रदेश को पुनः लूटा और रेमाँड सातवें से उसके अधिकांश क्षेत्र अपहृत कर लिये गये। इस तरह विधर्मी अलबिजेनसियनों का अन्त किया गया।

प्रभाव और महत्व

धर्मयोद्धा पवित्र भूमि जेरूसलेम पर अधिकार कर पाने में असफल रहे, किन्तु एक नये यूरोप का निर्माण करने में सफल अवश्य हुए। धर्मयुद्धों में भाग लेने वाले यूरोपियनों को यह पता चल गया कि अन्य लोगों के पास ऐसा बहुत कुछ है

जिसे वे ग्रहण कर सकते हैं और अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं। बिजेन्ताइन तथा मुस्लिम नगरों की शानदार सभ्यता तथा चमक-दमक को देखकर वे चकित रह गये थे। निश्चित रूप से इनकी सभ्यता ने उनमें परिवर्त्तन लाया। धर्मयुद्धों के पहले से ही पश्चिमी यूरोप में परिवर्त्तन आ रहा था। धर्मयुद्धों का होना ही इस बात का प्रमाण है कि जन-समुदाय में परिवर्त्तन आना निश्चित-सा था। धर्मयुद्धों के कारण ये परिवर्त्तन जल्द आ गये। पूरब की यात्रा के बाद जब लोग वापस आये तो उनका दृष्टिकोण पहले से अधिक व्यापक हो चुका था और वे यूरोप को नयापन दे सकते थे। धर्मयुद्धों के कारण यूरोपियनों ने एक व्यापक दृष्टिकोण और दूसरी जातियों के बारे में बेहतर ज्ञान का अर्जन किया। यात्रा में उनकी अभिरूचि बढ़ी, वे अधिक जागरूक तथा जिज्ञासु हो गये। ये सारे परिवर्त्तन संभवतः धर्मयुद्धों के बिना भी आते, किन्तु धर्मयुद्धों के कारण इनके आने में शीघ्रता आ गयी। ग्यारहवीं शताब्दी का यूरोप चौदहवीं शताब्दी में कुछ और था। इन बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि धर्मयुद्धों के द्वारा मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। इनके कारण यूरोप का आर्थिक तथा बौद्धिक जीवन अत्यन्त ही प्रभावित हुआ। अतः मानव-सभ्यता के इतिहास में धर्मयुद्धों का अपना खास महत्त्व है।

धर्मयुद्धों ने यूरोप की धार्मिक संरचना, धार्मिक दृष्टिकोण तथा धार्मिक जीवन को प्रभावित किया। चर्च (पोप) यूरोप के ईसाई धर्म की रक्षा तथा प्रसार के लिये उत्तरदायी था। यही कारण था कि प्रायः सभी पोप धर्मयुद्धों में अभिरूचि लेते थे, भाग लेते थे, उनका नेतृत्व करते थे और उनकी योजना भी बनाते थे। अतः धर्मयुद्धों का पोप-व्यवस्था अथवा चर्च-जगत पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। धर्मयुद्धों ने पोप को दो दृष्टियों से लाभ पहुँचाया। प्रथमतः यह कि पोप लगभग दो शताब्दियों तक यूरोप की राजनीति का नेता बने रहे। धर्मयुद्धों का संचालन उनके ही नेतृत्व में हुआ और इस प्रकार कथित काल तक यूरोप का ईसाई जगत पोप का मुखापेक्षी बना रहा। इससे पोप की प्रतिष्ठा तथा गौरव में वृद्धि हुई। धर्मयुद्धों ने सिद्ध किया कि साम्राज्य के आध्यात्मिक पक्ष का सर्वाधिकारी (श्रेष्ठ) पोप ही है, राजा नहीं। धर्मयुद्धों का श्रीगणेश और बीच की सारी व्यवस्थायें पोप के द्वारा की गयी थीं। धर्मयुद्ध प्रारम्भ होने पर पोप के प्रतिनिधि इसमें खुलाकर भाग लेते थे और इनका निर्देशन तथा नेतृत्व करते थे। धर्मयुद्धों के काल में यह विचार सर्वत्र धावित था कि जो जन इस पवित्र कार्य में शामिल होंगे वे पोप की प्रजा माने जायेगे। अतः समग्र ईसाई प्रजा पर पोपतन्त्र

पर 1530 ई० में वे माल्टा चले आये। यहाँ नाइटों के रूप में वे अनेक वर्षों तक मुसलमानों का विरोध करते रहे। वे 1789 तक यहाँ के निवासी बने रहे। जर्मनी के नाइटों ने उत्तरी पूर्वी यूरोप को अपना नया रंगमंच बनाया। इन नाइटों का प्रभाव धर्मसुधार आन्दोलन तक बना रहा। टेम्पलर नाइटों के लिए फ्रांस कार्य-क्षेत्र बना था। किन्तु 1307 ई० में फिलिप द फेयर ने इनके नेताओं पर क्रॉस का अपमान करने तथा मुसलमानों से गठबंधन कायम किये जाने का झूठा आरोप लगाया और उनकी हत्या करवा दी। फेयर ने इन नेताओं की सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली। आगे चलकर उनकी भू-सम्पत्ति को होस पिटलर्स में बाँट दिया गया।

इसी प्रसंग में 'यूरोपीय धर्मयुद्ध' का उल्लेख कर देना भी प्रासंगिक होगा। विधर्मी समझे जाने वाले मुसलमानों के साथ ईसाइयों ने कथित युद्ध लड़े ही, यूरोप के अन्दर ही ईसाई धर्मद्रोहियों के विरुद्ध भी धर्मयुद्ध हुए। मिसाल के तौर पर 1209 से 1229 तक के बीच अलबिजेनसियनों के विरुद्ध हुए धर्मयुद्ध का उल्लेख किया जा सकता है। एलबी (दक्षिणी फ्रांस) में ईसाइयों का एक सम्प्रदाय बना था जिसके सदस्य 'अलबिजेनसियन' कहलाते थे। ये मूल ईसाई धर्म से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिये और इस कारण पोप इन्नोसेंट तृतीय ने उन्हें मुसलमानों से भी अधिक बुरा तथा दुरात्मा की श्रेणी में रखा। पोप ने जब अलबिजेनसियनों में सुधार लाने में सफलता प्राप्त न की तब उसने फ्रांस के राजा फिलिप द्वितीय को उन्हें तथा उनके संरक्षक तुलां के काउन्ट रेमॉड छठे को दण्ड देने का आदेश दिया। फिलिप स्वयं इस धर्मयुद्ध से पृथक रहा, किन्तु उसके अनेक सामन्तों ने इसमें खुलकर भाग लिया। सन् 1209 से 1213 के बीच साइमन डी मॉटफोर्ट ने इनका दमन किया। एलबी प्रदेश का अधिकांश हिस्सा विनष्ट कर दिया। उसके नागरिकों की हत्या कर दी गयी और उनके आवासगृहों को जलाकर खाक कर डाला गया। केवल एक नगर बेजियर्स में ही 30,000 नागरिक मार डाले गये। सन् 1229 ई० में फ्रांस के शासक लुई नवम् ने इस प्रदेश को पुनः लूटा और रेमॉड सातवें से उसके अधिकांश क्षेत्र अपहृत कर लिये गये। इस तरह विधर्मी अलबिजेनसियनों का अन्त किया गया।

प्रभाव और महत्त्व

धर्मयोद्धा पवित्र भूमि जेरूसलेम पर अधिकार कर पाने में असफल रहे, किन्तु एक नये यूरोप का निर्माण करने में सफल अवश्य हुए। धर्मयुद्धों में भाग लेने वाले यूरोपियनों को यह पता चल गया कि अन्य लोगों के पास ऐसा बहुत कुछ है

जिसे वे ग्रहण कर सकते हैं और अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं। बिजेन्ताइन तथा मुस्लिम नगरों की शानदार सभ्यता तथा चमक-दमक को देखकर वे चकित रह गये थे। निश्चित रूप से इनकी सभ्यता ने उनमें परिवर्त्तन लाया। धर्मयुद्धों के पहले से ही पश्चिमी यूरोप में परिवर्त्तन आ रहा था। धर्मयुद्धों का होना ही इस बात का प्रमाण है कि जन-समुदाय में परिवर्त्तन आना निश्चित-सा था। धर्मयुद्धों के कारण ये परिवर्त्तन जल्द आ गये। पूरब की यात्रा के बाद जब लोग वापस आये तो उनका दृष्टिकोण पहले से अधिक व्यापक हो चुका था और वे यूरोप को नयापन दे सकते थे। धर्मयुद्धों के कारण यूरोपियनों ने एक व्यापक दृष्टिकोण और दूसरी जातियों के बारे में बेहतर ज्ञान का अर्जन किया। यात्रा में उनकी अभिरूचि बढ़ी, वे अधिक जागरूक तथा जिज्ञासु हो गये। ये सारे परिवर्त्तन संभवत: धर्मयुद्धों के बिना भी आते, किन्तु धर्मयुद्धों के कारण इनके आने में शीघ्रता आ गयी। ग्यारहवीं शताब्दी का यूरोप चौदहवीं शताब्दी में कुछ और था। इन बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि धर्मयुद्धों के द्वारा मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। इनके कारण यूरोप का आर्थिक तथा बौद्धिक जीवन अत्यन्त ही प्रभावित हुआ। अत: मानव-सभ्यता के इतिहास में धर्मयुद्धों का अपना खास महत्त्व है।

धर्मयुद्धों ने यूरोप की धार्मिक संरचना, धार्मिक दृष्टिकोण तथा धार्मिक जीवन को प्रभावित किया। चर्च (पोप) यूरोप के ईसाई धर्म की रक्षा तथा प्रसार के लिये उत्तरदायी था। यही कारण था कि प्राय: सभी पोप धर्मयुद्धों में अभिरूचि लेते थे, भाग लेते थे, उनका नेतृत्व करते थे और उनकी योजना भी बनाते थे। अत: धर्मयुद्धों का पोप-व्यवस्था अथवा चर्च-जगत पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। धर्मयुद्धों ने पोप को दो दृष्टियों से लाभ पहुँचाया। प्रथमत: यह कि पोप लगभग दो शताब्दियों तक यूरोप की राजनीति का नेता बने रहे। धर्मयुद्धों का संचालन उनके ही नेतृत्व में हुआ और इस प्रकार कथित काल तक यूरोप का ईसाई जगत पोप का मुखापेक्षी बना रहा। इससे पोप की प्रतिष्ठा तथा गौरव में वृद्धि हुई। धर्मयुद्धों ने सिद्ध किया कि साम्राज्य के आध्यात्मिक पक्ष का सर्वाधिकारी (श्रेष्ठ) पोप ही है, राजा नहीं। धर्मयुद्धों का श्रीगणेश और बीच की सारी व्यवस्थायें पोप के द्वारा की गयी थीं। धर्मयुद्ध प्रारम्भ होने पर पोप के प्रतिनिधि इसमें खुलाकर भाग लेते थे और इनका निर्देशन तथा नेतृत्व करते थे। धर्मयुद्धों के काल में यह विचार सर्वत्र धावित था कि जो जन इस पवित्र कार्य में शामिल होंगे वे पोप की प्रजा माने जायेंगे। अत: समग्र ईसाई प्रजा पर पोपतन्त्र

का गहरा प्रभाव छाया रहा। नाइटों तथा साधारण जनों के अतिरिक्त यूरोप के तत्कालीन राजागण भी धर्मयुद्ध के प्रश्न पर पोप के अनुचर थे। जर्मनी, फ्रान्स, इंगलैंड, नेपल्स, हंगरी आदि सभी देशों के शासक पोप के निर्देशन में पवित्र भूमि की मुक्ति के लिये तलवार उठाने को तैयार रहते थे और इस प्रकार वे प्रजा की तरह पोप का आदेश पालक बन गये थे। हेनरी द्वितीय, फिलिप आगस्टस तथा फ्रेडरिक द्वितीय जैसे शक्तिशाली सम्राट भी पोप का तत्काल विरोध न कर सके और अपनी प्रजा के द्वारा पोपतन्त्र में विश्वास करने को तथा पोप की आज्ञा का पालन करने को वाध्य किये गये। अर्बन द्वितीय तथा इन्नोसेंट तृतीय के प्रभावों को छिपाया नहीं जा सकता है। अतः दो शताब्दियों तक पोप यूरोप की राजनीति में प्रधान बना रहा और उसकी प्रतिष्ठा तथा शक्ति बढ़ती रही।

द्वितीयतः, धर्मयुद्धों ने पोप की सैनिक शक्ति को भी प्रभावित किया और उसे आर्थिक सम्पन्नता प्रदान की। पोप की सेवा में हजारों हजार लोग सैनिक के रूप में स्वयंमेव उपस्थित रहने लगे। जहाँ राजाओं को धनराशि खर्च करके सेना का संगठन करना पड़ता था वहाँ जेरूसलेम की मुक्ति के नाम पर अनेक जन पोप के लिये सैनिक के रूप में काम करने लगे। अतः इस अवधि में पोप की सैनिक शक्ति में वृद्धि आयी। पुनः धर्मयुद्धों के संचालन तथा सफलता के लिये लोगों ने चर्च के व्यवस्थापक पोपों को काफी आर्थिक सहायता दी। अतः चर्च तथा मठ की आर्थिक सम्पदा में बढ़ोतरी आती गयी। कुछ मठों ने तो धर्मयोद्धाओं की सम्पत्ति को खरीदकर अपनी आर्थिक स्थिति को और भी सुदृढ़ बना लिया। अनेक मठ सहायता के रूप में प्रचुर धनराशि प्राप्त किये और इससे भी उनकी आर्थिक स्थिति में सम्पन्नता आयी। अतः धर्मयुद्धों ने पोप-जगत को सैनिक तथा आर्थिक लाभ भी पहुँचाया। धर्मयुद्धों के समय पोपों ने आर्थिक लाभ की प्राप्ति के लिये दण्ड-मुक्ति तथा दशांश कर का उपयोग किया। ग्रेगोरी सप्तम ने दण्ड-मुक्ति कर को बहुत कम ही उपयोग में लाया था, किन्तु पोप अर्बन द्वितीय ने उसे सारे ईसाई जगत पर लागू किया। इस काल में पोप को दशांश कर से सर्वाधिक लाभ हुआ। स्मरण रहे कि धर्मयुद्धों के पूर्व पोपतन्त्रीय करों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की खास व्यवस्था नहीं की गयी थी। द्वितीय धर्मयुद्ध की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम फ्रान्स के सम्राट लुई सप्तम ने 1246 ई० में फ्रेंच पादरियों पर दशांश कर लगाया था। सन् 1188 ई० में रिचर्ड प्रथम तथा फिलिप आगस्टस ने 'सलादीन दशांश कर' की वसूली की थी। किन्तु पोप इस कर की वसूली का सहन नहीं कर सका। यही कारण था कि 1196 ई० में टूर्स की धर्मसभा में

विशपों द्वारा राजाओं को दशांश कर देना निषिद्ध कर दिया गया। इतना ही नहीं, मध्य यूरोप के सर्वाधिक महत्वाकांक्षी पोप इन्नोसेंट तृतीय ने इस दशांश कर पर चर्च का अधिकार कायम किया और उसे चर्च की आय के रूप में स्वीकार कर उसको व्यवहार में लाना प्रारम्भ किया। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धर्मयुद्धों के कारण पोप के गौरव में वृद्धि हुई, उसकी सैनिक शक्ति बढ़ी और उसकी आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी।

धर्मयुद्धों ने पश्चिमी यूरोप को एक और नजरिया से प्रभावित किया। एकर के पतन पूर्व के ही यूरोप का उदार धार्मिक समुदाय युद्धों के बदले उपदेश तथा दीक्षा से मुसलमानों को सुधारने का प्रयास करना प्रारम्भ किया था। ऐसे समुदाय के लोग यह विश्वास करते थे कि शक्ति की जगह प्रेम तथा उपदेश का सहारा लेकर विधर्मियों को उदार बनाया जा सकता था और उन्हें गलत कार्य करने से रोका जा सकता था। शान्ति के तरीकों से, न कि तलवार के बल पर, धर्म का प्रचार किया जा सकता है, ऐसा विश्वास किया जाने लगा। यही कारण था कि असीसी के संत फ्रांसिस तथा संत डोमिनिक 13 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रेम तथा उपदेश के बल पर मुसलमानों को भी ईसाइयत की सीमा में लाने का प्रयास करते रहें और अनेक मुसलमान ईसाई हो गये। मध्य एशिया के मंगोलों को फ्रांसिसकन विलियम ने ईसाई धर्म में दीक्षित करने का प्रयास किया ताकि वे तुर्कों के विरुद्ध मंगोलों की सहायता पाकर फिलस्तीन पर ईसाइयों का अधिकार कायम कर सके। फ्रांसिसकन को संत लुई से प्रेरणा मिली थी। फ्रांसिसकन के प्रयास के कारण ही पोप इन्नोसेंट चतुर्थ ने धर्म प्रचारक दल की स्थापना (1253 ई०) की जो मध्ययुगीन यूरोप का प्रथम दल था। रेमंड लुई ने भी ईसाई धर्म के प्रचार के लिए तलवार की जगह शान्ति को चुना और शान्तिपूर्ण तरीकों से ईसाइयत के विस्तार के लिये अपने जीवन का अर्पण कर दिया। धर्मयोद्धाओं ने तलवार के बल पर जो सफलता प्राप्त नहीं की उसे धर्म प्रचारकों ने शान्ति तथा प्रेम के बल पर प्राप्त कर ली। एशियाई क्षेत्रों में इन्हीं धर्मप्रचारकों के कारण धर्म का काफी प्रचार हुआ। आर्मेनिया, पर्सिया, चीन आदि में अनेक गिरजाघरों की स्थापना की गयी और अनेक लोग इस धर्म के समर्थक बन गये। ईसाई धर्म-प्रचारक सन् 1330 ई० तक भारत तथा तिब्बत तक पहुँच गये। तलवार की जगह शान्ति तथा रक्त की जगह भक्ति-प्रदर्शन की भावना अप्रत्यक्ष रूप से धर्मयुद्धों की ही देन है।

धर्मयुद्धों ने पेपसी को लाभ ही नहीं, हानि भी दी। जो पोप पथ-निर्देशक था वह घृणा का भी पात्र बना। इसका कारण था यूरोप के राजाओं के विरुद्ध

पोपों द्वारा धर्मयुद्धों का दुष्प्रयोग। लोग धर्मयोद्धा के रूप में लड़े थे। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने सफलता और असफलता पायी थी। जेरूसलेम पर मुसलमानों ने पुनः अधिकार कर लिया था। इस कारण धर्मयोद्धा दुखी अवश्य थे, किन्तु इस असफलता का दोषी पोप को नहीं ठहराते थे। बाद में जब ईसाई संगठन द्वारा राजाओं के विरुद्ध ही धर्मयुद्ध किया जाने लगा और यूरोप के अन्दर ही धर्मयुद्ध सिमटकर रह गया तब लोग पोप को दोषी मानने लगे और उससे घृणा करने लगे। चर्च तथा पोप के प्रति उनके हृदय में वितृष्णा ने जन्म लेना प्रारम्भ किया। जब दूसरी बार कुस्तुनतुनिया की लूट की गयी तब ईसाइयों के चरित्र तथा तौर-तरीकों में भी सन्देह किया जाने लगा। न केवल आम लोग अपितु राजागण भी पोप से शंकाकुल हो गये। धर्मयुद्धों के फलस्वरूप पोप की सैनिक तथा आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि आयी थी और इससे राजाओं को ऐसा लगने लगा कि उनकी सत्ता पर खतरे की तलवार लटक रही है। पोप की शक्ति अधिक समृद्ध होकर राजसत्ता को विनष्ट न कर दे, इसलिए राजाओं ने पोप से तेजी से संघर्ष करना प्रारम्भ किया। स्मरण रहे कि राज्य तथा चर्च में संघर्ष की शुरूआत धर्मयुद्धों के पहले से ही प्रारम्भ हो गयी थी। यह संघर्ष चर्च के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। अब साधारण पादरियों ने भी पोपों का विरोध करना प्रारम्भ किया क्योंकि पोप दशांश कर का दुरूपयोग करने लगे थे। पोप ने दण्ड मुक्ति को भी नियमित आय का साधन बना लिया था। इस कारण भी पोप का चरित्र घृणास्पद माना गया। सन् 1184 ई० में ऐसे लोगों को भी चंदा देकर आंशिक दण्ड-मुक्ति प्राप्त करने के लिये कहा गया जो कुछ कारणों के चलते धर्मयुद्धों में अपनी भूमिका नहीं निभाये थे। सन् 1215 ई० में एक कदम आगे बढ़कर यहाँ तक घोषणा की गयी कि धर्मयुद्ध के लिये जो लोग अपनी सम्पत्ति के अनुपात में चर्च को चंदा के रूप में धनराशि देंगे, उन्हें दण्ड-मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी। स्पष्ट है कि पोप इन तरीकों से दण्ड-मुक्ति का दुष्प्रयोग कर रहा था। सन् 1184 और 1215 के पश्चात् बड़ी तेजी से दण्ड-मुक्ति का दुर्व्यवहार किया जाने लगा। पोप के प्रतिनिधि स्वर्ग तक पहुँच पाने के लिये लोगों के बीच 'प्रवेश-पत्र' बेचते रहे और गलत तरीकों से धनार्जन करते रहे। दण्ड तथा पाप से मुक्ति पाने के लिये पोप द्वारा आविष्कृत यह नयी खोज पोप के चरित्र पर ही कुठाराघात करने लगी। पाप-मुक्ति की इस प्रथा का विरोध धर्मसुधारकों ने किया जिनमें जोनहस, विक्लिफ, मार्टिन लूथर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

धर्मयुद्धों ने मठों के विनाश का भी मार्ग प्रशस्त किया। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि धर्मयुद्धों को सफल बनाने के लिये धर्मप्रेमी सहृदय

जनों ने मठों को अपार सम्पत्ति भेंट के रूप में प्रदान की थी। धन की प्रचुरता ने मठीय जीवन की पवित्रता तथा सच्चरित्रता को विनष्ट कर डाला और मठवासी दुराचारी हो चले। इससे मठों का सारा गौरव और महत्त्व समाप्त होने लगा।

धर्मयुद्धों ने यूरोप की राजनीति को भी प्रभावित किया। इनका सबसे बड़ा राजनीतिक प्रभाव यह हुआ कि सामन्तों का प्रभाव और उनका बोलबाला समाप्त हो गया और उसकी जगह राजाओं का प्रभुत्व पुनः कायम हुआ। स्मरण रहे कि शार्लमेन के साम्राज्य के पतन के उपरान्त राजतंत्रीय राजाओं का प्रभाव घटने लगा था और शनैः-शनैः अराजक स्थिति से लाभ उठाकर सुरक्षा तथा शान्ति के नाम पर सामन्तों ने अपना उत्कर्ष कर लिया था। अब राजाओं के प्रभाव पुनः कायम होने लगे और उनकी शक्ति में विकास होना प्रारंभ हुआ था। धर्मयुद्धों के संचालन तथा कामयाबी के लिये फ्रांस के अनेक सामन्तों ने अपनी सम्पत्ति को बेच डाला और उनकी सम्पत्ति को राजाओं ने खरीद कर अपनी समृद्धता में वृद्धि कर ली। जिन समान्त शूरमाओं ने धर्मयुद्धों में भाग लिया और फिलतन की ओर गये, वे पुनः लौटकर वापस नही आ सके अथवा उनमें से अधिकांश तो निश्चित रूप से धर्मयुद्धों में काम आये, अतः उनके अभाव में राजाओं ने उनकी जागीरों को जब्त कर लिया। अतः इस कारण भी राजाओं ने अपनी आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त कर ली। सामन्तों के विलुप्त हो जाने से उनकी शक्ति का क्षय हुआ और उनके अनुपात में राजाओं की शक्ति में वृद्धि हुई। फ्रांस के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशों के सामन्तों तथा राजाओं के साथ भी यह बात थी।

धर्मयुद्धों में किसी एक देश के नहीं, अनेक देशों के धर्मयोद्धाओं ने भाग लिया था। किन्तु सारे धर्मयोद्धा पारस्परिक मतभेद तथा ईर्ष्या के शिकार थे और विभिन्न देशों की सैनिक टूकड़ियाँ एक दूसरे के प्रति विद्वेष की भावना रखती थी। इन टुकड़ियों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता तथा प्रतिस्पर्द्धा की भी भावना विद्यमान ओर उनमें अपने-अपने देश से सम्बन्धित में राष्ट्रीय भावना थी। इस कारण विभिन्न देशों में राष्ट्र चेतना तथा जागरण की भावना आयी। इस राष्ट्रीय भावना का मन्थर गति से बिकात तो अनेक छोटे-बड़े देशों में हुआ, किन्तु-विशेष रूप से इंगलैंड, फ्रांस तथा जर्मनी में यह अधिक बलवती थी। इन देशों के लोग अपने-अपने देश को अन्य देशों की तुलना में अधिक सभ्य, जागृत तथा सजग मानने लगे। वे देश एक दूसरे से अपने-अपने को पृथक भी मानने लगे। विभिन्न देशों के पृथकत्व तथा राष्ट्रीय चेतना की भावना की बात की पुष्टि डियूल के ओडो द्वारा द्वितीय धर्मयुद्ध के उल्लेख से होती है।

ट्यूटोनिक सम्प्रदाय भी इस बात की पुष्टि करता है जिसका नाम तथा स्वरूप पहले अन्तर्राष्ट्रीय हॉस्पीटलरल अथवा टैम्परल सम्प्रदाय से भिन्न तथा जर्मन राष्ट्रीयता पर आधारित था।

धर्मयुद्धों ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भविष्य में कायम होने वाले कतिपय यूरोपीय राज्यों यथा स्पेन, प्रशा; पुर्त्तगाल आदि की नींव डाली। अतः, इस बात को माना जा सकता है कि धर्मयुद्धों के कारण ही यूरोप के राजनीतिक मानचित्र की रूपरेखा तैयार हुई। आज के बाल्कर प्रदेश के ईसाई राज्य वस्तुतः इन्हीं धर्मयुद्धों के कारण प्रकट हुए।

यूरोप का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन भी धर्मयुद्धों से अनुप्राणित हुए बिना न रह सका। यह सच है कि धर्मयुद्ध न होने पर भी नगरों तथा गांवों के लोग सामन्ती दासता के नियंत्रण से मुक्त कभी न कभी होते ही, किन्तु यह भी सच है कि धर्मयुद्धों ने दासता से छुट्टी दिलाने में अधिक और जल्द प्रयास किया। सामन्ती नियंत्रण से मुक्त होने में कम्मियों ने धर्मयुद्धों के कारण सुअवसर पाया। इस क्रम में उद्योग तथा व्यापार का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप गरीबों तथा निरीह जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को अधिक सुखी जीवन जीने का अवसर मिला। पहले की अपेक्षा यूरोप की महिलाओं की स्थिति में भी सुधार आया। असंख्य धर्मयोद्धाओं ने धर्मयुद्धों में भाग लेने के लिये अपने-अपने गृहों का त्याग किया था। उनकी अनुपस्थिति में महिलाओं ने गृह-कार्यों का सम्पादन किया था। पुरुषों की अनुपस्थिति में वे गृहों का स्वामिनी बनीं। इस स्थिति ने उनकी सामाजिक तथा आर्थिक महत्ता को बढ़ा दिया।

सामन्तों के घटते प्रभाव के कारण सामाजिक उत्पीडन का युग लद गया। सामन्तों के अत्याचार से लोग पीड़ित तथा त्रस्त थे। धर्मयुद्ध के कारण सामन्तों की संख्या में ही कमी नहीं आयी, उनका प्रभाव भी घटा और राजाओं का प्रभाव बढ़ा। अतः सामन्ती उत्पीड़न से कुछ हद तक लोगों को त्राण मिला।

सामाजिक जीवन में सौन्दर्य तथा खान-पान में स्तरीय रूची का विकाश धर्मयुद्धों के कारण हुआ। यूरोप के लोगों का खान-पान, शृंगार प्रसाधन, वस्त्र आभूषण, साज-सज्जा पर एशियाई लोगों का प्रभाव पड़ा। यूरोप के लोग अरबों तथा तुर्कों की देखादेखी लम्बी दाढ़ी रखने लगे। धान, मकई, तरबूज, नींबू, दरी, रंग, दवाइयाँ, मसाले, स्वर्ण, रजत आदि वस्तुएँ यूरोपियनों द्वारा प्रयोग में लायी जाने लगीं। अधिकाधिक यूरोपीय महिलायें मखमल, रेशम,

छींट तथा दमिश्क के चोगे पहनने लगी। यहाँ होनेवाले सहभोजों में पूरब के देशों के मसाले से छौंके गये अधिकाधिक व्यंजन और आड़ू, तरबूज, खजूर और नींबू जैसे दुर्लभ फल अधिकाधिक प्रयुक्त होने लगे। गढ़ के मकान में कालीन तथा पर्दे सामान्य रूप से प्रयुक्त होने लगे। इन नयी सामग्रियों में से कुछ तो सीधे मुसलमानों से प्राप्त होती थी और कुछ अन्य वस्तुएँ सुदूर पूर्व के देशों से मुसलमानों के द्वारा यूरोप पहुँचती थीं। इतना ही नहीं, धर्मयुद्धों के कारण ही पश्चिम के लोग पूरब से सार्वजनिक स्नान तथा गुप्त पैखाने की परिपाटी को सीखे।

धर्मयुद्धों के कारण यूरोप में कतिपय अपरिहार्य आर्थिक परिवर्त्तन लाये। नागरी सभ्यता का विकास वेनिस, मार्सेलीज, पिसा, जेनेवा आदि नगरों में बड़ी तेजी के साथ हुआ और नगरों ने वाणिज्य-व्यापार के विकास में काफी सहयोग किया। एशियाई ईसाई राज्यों में यूरोपीय सामन्तों की खपत हुई और एशियाई सामग्रियों से यूरोपीय नगरों के बाजार भर गये। फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड आदि देशों के नगरों में व्यवसायिक विकास की यह रफ्तार द्रष्टव्य है। चतुर्थ धर्मयुद्ध ने भूमध्यसागर पर यूरोप का अधिकार कायम कर दिया। इसके फलस्वरूप कुस्तुनतुनिया का आर्थिक महत्त्व जाता रहा। अतः १२वीं एवं १३ वीं शताब्दियों में यूरोपीय व्यापार का उत्कर्ष अत्यधिक हुआ। जब धर्मयुद्ध प्रारंभ भी नहीं हुआ था तब पूर्व के व्यापार पर एमेल्फी तथा वेनिस ने एकाधिपत्य क़ायम कर लिया था। क़िन्तु जब नार्मनों ने दक्षिण इटली पर कब्ज़ा जमा लिया तब एमेल्फी का व्यावसायिक महत्त्व जाता रहा। धर्मयुद्ध के प्रारम्भ होने के समय इटली में सिर्फ वेनिस ही पूर्वी व्यापार का केन्द्र रह गया था। जब १०८२ ई० में एलेक्सियस कोमेनल ने विशेष छूट दे दी तब वेनिस-व्यावसायिक दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण हो गया था। किन्तु वेनिस का आर्थिक महत्त्व अधिक दिनों तक कायम न रह सका। धर्मयुद्धों में भाग लेने के लिये जो लोग इटली के मार्ग से गुजरते थे वे वेनिस के अतिरिक्त जिनेवा तथा पिसा में भी अपना पड़ाव डालते थे और वहाँ से भी जहाजी तथा आर्थिक सहायता पाते थे। अतः वेनिस की तरह इन दोनों नगरों ने भी व्यवसायिक महत्ता प्राप्त करली और इसके फलस्वरूप एक मात्र वेनिस ही आर्थिक महत्त्व का नगर न रह सका। वेनिस की तरह इन नगरों ने धर्मयोद्धाओं को अपने जहाजों पर लादकर गन्तव्य स्थान तक पहुँचाया। इतना ही नहीं, उन्होंने विजय-अभियानों में भी सक्रिय रूप से हाथ बटाया। जिनेवा वालों के कारण ही आरसुफ; सिजेरिया तथा एकर की विजय संभव हो सकी।

इसी बार पिसा के निवासियों के कारण ही लाबोडिसिया पर धर्मयोद्धाओं ने अधिकार कायम किया। वेनिस नगर के निवासी भी इसी प्रकार विजय-अभियानों को सफल बनाये थे और उन्हीं के चलते सिडोन तथा टायर की विजय संभव हो सकी थी। इन नगरों की विजय का धार्मिक महत्त्व तो था ही, व्यवसायिक महत्त्व भी कम नहीं था। सीरिया के तटीय तथा भीतरी नगरों में वेनिस, पिसा तथा जेनोवा को अनेक व्यापारिक अधिकार प्राप्त हुए। पुन: जिन योद्धाओं ने फिलस्तीन को अपना प्रदेश बना लिया था और वहाँ निवास करने लगे थे, वे भी अपनी आवश्यक सामानों यथा अश्व, जलयान, आयुध, शराब, परिधान सिना आदि के लिये पश्चिम पर ही निर्भर करते थे। इन सारी सामग्रियों का व्यापार इटली के कथित नगर ही करते थे। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष करोड़ों तीर्थ यात्री फिलस्तीन की यात्रा पर जाते थे जिनको इटली के जलयान ढोते थे। अत: इटली के नगरों का व्यवसायिक तथा व्यापारिक महत्त्व इन धर्मयुद्धों के कारण भी बढ़ा।

इसी प्रकार मार्शलिज, राइन घाटी तथा दक्षिण फ्रांस के व्यावसायिक नगर भी पूर्वी व्यापार के लाभ उठाये। एशियाई भोग-विलास की सामग्रियों की खपत यूरोप के देशों में अत्यधिक होने लगी। यूरोप के अभिजात तथा कुलीन परिवारों के सदस्य रेशम, चीनी, गरम मसाले आदि के शौकीन थे और एशिया से ये सामान दमिश्क तथा मिस्र के मार्ग से यूरोप भेजे जाते थे।

वाणिज्य व्यापार के विकास ने अर्थ व्यवस्था में कतिपय नये परिवर्त्तन भी लाये। इटली तथा अरब के निर्माताओं से इंगलैंड जैसे देश ने जलयान-निर्माण की कला का ज्ञान हासिल किया। अरबों ने यूरोपियनों को दिक्सूचक यन्त्र की जानकारी दी। पूर्वी व्यापार के कारण ही यूरोप में स्वर्ण निर्मित सिक्के पहुँचने लगे। यूरोपीय देशों में सिसली, फ्लोरेन्स तथा वेनिस के नगरों ने इन सिक्कों को सबसे पहले बनाना प्रारम्भ किया। व्यापार की व्यापकता के कारण प्रत्यय पत्र व्यवहार में लाये गये जो आधुनिक बैंक प्रथा का प्रारम्भिक रूप माना जाता है। व्यवहार में वृद्धि होने से महाजनी की प्रथा चल पड़ी। इन नगरों की बढ़ोत्तरी व्यापार और निर्माण में वृद्धि तथा महाजनी के विकास से एक शक्तिशाली व्यावसायी उठ खड़ा हुआ। शक्ति संचय करते राजाओं ने शक्तिशाली व्यवसायी वर्ग के समर्थन से अन्तगतोत्वा पोप की शक्ति दुर्बल कर देना था। किन्तु कुछ इतिहासकारों का कथन है कि धर्मयुद्धों के इस प्रकार के तथा कथित परिणाम धर्मयुद्धों के बिना भी होकर ही रहते। उनका कहना है कि पश्चिम का पूरब से मिलन व्यापार तथा यात्रा

द्वारा अनिवार्य रूप से होता है। धर्मयुद्धों ने केवल इस मिलन की गति को तेज कर दिया।

यूरोप का सांस्कृतिक जीवन भी धर्मयुद्धों के प्रभाव से वंचित न रह सका। चिकित्सा विज्ञान, विज्ञान के अन्य पहलू, दर्शन तथा कला में मुसलमानों तथा बैजेन्तियम की उपलब्धियों ने यूरोप को प्रेरणा दी। यूरोप के नाविक दिक्सूचक यन्त्र का प्रयोग करने लगे जिसका उल्लेख किया जा चुका है। एशिया से ही यूरोप के लोग पवन चक्की का ज्ञान प्राप्त कर सके। नीदरलैंड में पवनचक्की को सर्वाधिक व्यवहार में लाया गया। धर्मयोद्धाओं ने पूरब से लूटकर अनेक कलात्मक कृतियों को यूरोप ले गये जिनसे उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिला। कुस्तुनतुनिया की कांसानिर्मित अश्व-मूर्तियाँ लूटकर यूरोप लायी गयी तथा उन्हें वेनिस में संत मार्क के गिरजाघर में प्रतिष्ठापित किया गया। यूरोप के शूरमा वर्न के लोग एशिया की उन्नत संस्कृति से अधिक प्रभावित हुए। मुसलमानों की स्वच्छन्दता ने यूरोपवासियों को काफी प्रभावित किया और वे अपनी गन्दगी पर लज्जा का अनुभव करने लगे। पूरब से वे काफी प्रभावित किया और अपनी पर लज्जा का अनुभव करने लगे। पूरब से उन्होंने दीवारें गिराने के यन्त्र तथा गोफण (कैटेपुल्ट) जैसे नये हथियार ले आये। इन नये हथियारों की क्षमता के कारण सामन्तों को लकड़ी की गढ़ियों से अधिक सुदृढ़ गढ़ियाँ बनवानी पड़ी। इसलिए पत्थर की गढ़ियाँ और गोलाकार मीनारें बनने लगीं। गोल गिरजाघरों के निर्माण की शुरुआत भी प्रारम्भ हुई। पूरब के देशों के आधार पर पश्चिम में अब लोकगीतों तथा रूमानी कहानियों की रचना की जाने लगी। इतिहास, संस्मरण तथा पुरावृत्ताख्यान लिखने की कला का विकास धर्मयुद्धों के कारण ही हुआ। अनुवाद करने की पद्धति तथा चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान की बातें विकसित हुईं। तेरहवीं शताब्दी के यूरोपीय पुनर्जागरण को इन धर्मयुद्धों ने गहरे रूप से प्रभावित किया। अरस्तु के ग्रन्थों का अनुवाद जब अरबी भाषा में किया गया तब यूरोप के बौद्धिक जगत में अरस्तू पुनः जी उठा। मध्यकाल का संभवतः सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार टायर-निवासी विलियम धर्मयुद्ध-काल का ही रत्न है। अरब विद्वानों के ही माध्यम से ही यूरोपवासी यूनान के ज्योतिष-शास्त्र तथा भारत के गणित से परिचित हुए। निश्चित रूप से धर्मयुद्धों ने जीवन के सांस्कृतिक बिन्दु को भी अनुप्राणित किया। बारूद, मुद्रकयन्त्र तथा कम्पास का प्रयोग अरबों के कारण ही यूरोप में होने लगा।

धर्मयुद्धों के कारण ही अनेक मानव भौगोलिक खोजों को संभावित बना सका। वेनिस के निवासी, मार्कोपोलो ने एशिया के सुदूर देशों की खोज की। खोज

की प्रक्रिया को कोलम्बस, बास्कोडिगामा तथा मैगल्लन ने संचालित रखा। इसी प्रकार भूमध्यसागर के प्रदेशों का अन्वेशन इटली के नगरों के साहसी व्यापारियों ने किया। खोजों के उपरान्त ही सम्भवतः 1280 ई० में यूरोप का पहला मानचित्र तैयार किया गया। मध्ययुगीन पुनर्जागरण के विकास में इन भौगोलिक खोजों का कम महत्त्व नहीं है।

धर्मयुद्ध ने युद्ध-कला तथा आयुधों को भी प्रभावित किया। इस काल में विशाल तथा सुरक्षा युक्त दुर्गों का निर्माण किया जाने लगा। घेरेबन्दी की कला का विकास पहले की अपेक्षा अधिक हुआ। एशिया के चलते यूरोप के लोग धनुष-वाण का तथा संवादवाहक कबूतरों से परिचित हुए और उन्हें प्रयोग में लाने लगे। दीवारोंण को ध्वस्त करने के हथियारों का इजाद इस काल में हुआ जिसका उल्लेख किना जा चुका है।

धर्मयुद्धों ने पूर्वी साम्राज्य को भी प्रभावित किया। इन्हीं के कारण कुछ समय के लिए कुस्तुनतुनिया की सुरक्षा संभव हो सकी। तुर्कों के निरन्तर आक्रमण का प्रक्रिया प्रथम धर्मयुद्ध के कारण रूक गयी और लगभग 300 वर्षों तक के लिए पूर्वी साम्राज्य (कुस्तुनतुनिया) जीवन धारण किये रहा। अगर प्रथम धर्मयुद्ध तुर्कों के बाढ़रूपी आक्रमण को रोक पाने में असमर्थ रहता तो बहुत पहले ही पूर्वी साम्राज्य और उसकी राजधानी कुस्तुनतुनिया का पतन हो गया रहता। कुस्तुन-तुनिया की रक्षा हो जाने के कारण इसाई जगत स्वयं को शक्तिशाली बना सकने में समर्थ हो सका तथा यही कारण हुआ कि वह भविष्य में अनेक वर्षों तक विधर्मियों से संघर्ष करने में समर्थ रहा। किन्तु यह भा याद रहे कि धर्मयुद्धों के कारणों ही कुस्तुस्ततुनिया की स्थिति दयनीय भी हो गयी। चतुर्थ धर्मयुद्ध के समय पूर्व साम्राज्य की इस राजधानी को जी भरकर लूटा गया और उसकी कलात्मक कृतियों को वितष्टकर तथा कीमती धातुओं को गलाकर उसे सौन्दर्य हीन कर दिया गया। राजधानी की सैनिक शक्ति भी विनष्ट हुई। इस प्रकार धर्मयुद्धों का अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का प्रभाव पूर्वी साम्राज्य पर पड़ा।

मध्ययुगीन धर्मयुद्धों ने मध्यकाल के विनाश के सारे बिन्दुओं को प्रभावित किया। इन्हीं के कारण बाणिज्य-व्यापार का विकाश हुआ, ईसाई धर्म का प्रसार हुआ, सामन्तों की शक्ति, धार्मिक विश्वास, शूरधर्म आदि सभी प्रचलित हुए। इस लिये धर्मयुद्ध मध्यकालीन नाटक का सर्वश्रेष्ठ अंक है और संभवतः यूरोप निकट पूर्व के इतिहास की अत्यधिक मनोरंजनकारी घटना।

धर्मयुद्धों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ईसाइयों की तुलना में मुसलमान अधिक शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ है। लगभग दो सौ वर्षों तक जेरुसलेम के प्रश्न पर ईसाइयों तथा मुसलमानों में संघर्ष चलता रहा और अन्त में जेरुसलेम पर मुसलमानों का ही अधिकार कायम हुआ। पहले मुस्लिम शक्ति अधिक उदार थी। धर्मयुद्धों ने मुसलमानों को अब अनुदार बना दिया। फिलस्तीन तथा सीरिया बन्दरगाहों पर मुसलमानों के कब्जे हो गये जो पहले इटली के व्यापार के प्रमुख केन्द्र तथा साधन थे। शिष्टाचार, सुख, शिक्षा तथा युद्ध के विन्दुओं को अगर दोनों सभ्यताओं से तुलना की जाय तो मुस्लिम सभ्यता अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होती है क्योंकि इससे ईसाई जगत (यूरोप) ने बहुत कुछ सीखा।[1]

—:o:—

1, Muslim civilization had droved itself superior to the christiwn in refinement, comfort, education and war.

—Ibid; p 609

परिशिष्ट

वंश तालिका

(1) मुहम्मद साहब का कबीला

कुरेश
|
कुसेय्य
|
अब्द मनाफ
- अब्द शाम्स
  - उमैय्या
- हाशिम
  - अब्दुल मुत्तालिब
    - अल-अब्बास
    - अब्दुल्ला
      - मुहम्मद (पैगम्बर)
    - अबू-तालिब
      - अली

(2) कुलुफा-ए-राशिदीन के खलीफा

★———अबू बकर———632—34
★———उमर ———634—44
★———उसमान ———644—56
★———अली ——— 56—61

(3) उमैय्या मुआविया का मूल-स्थल

उमैय्या
- अबू अल-आस
  - अल हकाम
    - मरवान
  - अफमान
    - उसमान
- हरब
  - अबू सुफयान
    - मुआविया (उमैय्या वंश का संस्थापक)

(4) खलीफा अली के वंशज

अब्द-अल-मुत्तालिब

अब्दुल्ला — अबू-तालिब — अल-अब्बास (अब्बासी खलीफाओं के पूर्वज)

अब्दुल्ला → मुहम्मद

मुहम्मद, अबू-तालिब → फातिमा-अली

फातिमा-अली → अल-हसन, अल-हुसेन

अल-हसन → अल-हसन → अब्दुल्ला

अब्दुल्ला → इब्राहिम, मुहम्मद

(5) उमैय्या शासकों की तालिका

उमैय्या

उमैय्या → अबू अल-आस, हरब

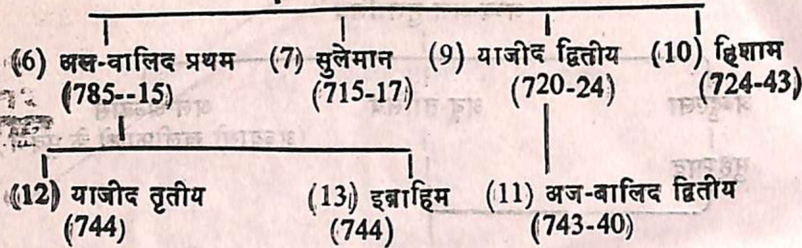
अबू अल-आस → अल-हकाम → (4) मरवान प्रथम (684-5)

हरब → अबू सुफयान → (1) मुआबिया (661-80) → (2) याजीद प्रथम (680-830) → (3) मुआविया द्वितीय (683-84)

(4) मरवान प्रथम → मुहम्मद, (5) अब्द-अल-मलिक (685-705), अब्द-अल-अजी

मुहम्मद → (14) मरवान द्वितीय (744-50)

(5) अब्द-अल-मलिक (685-705) ↓



(6) अब्बासी खिलाफत

हाशिम

अब्दुला — अबू तालिब — अल-अब्बास

अल-अब्बास → अब्दुल्ला → अली → मुहम्मद

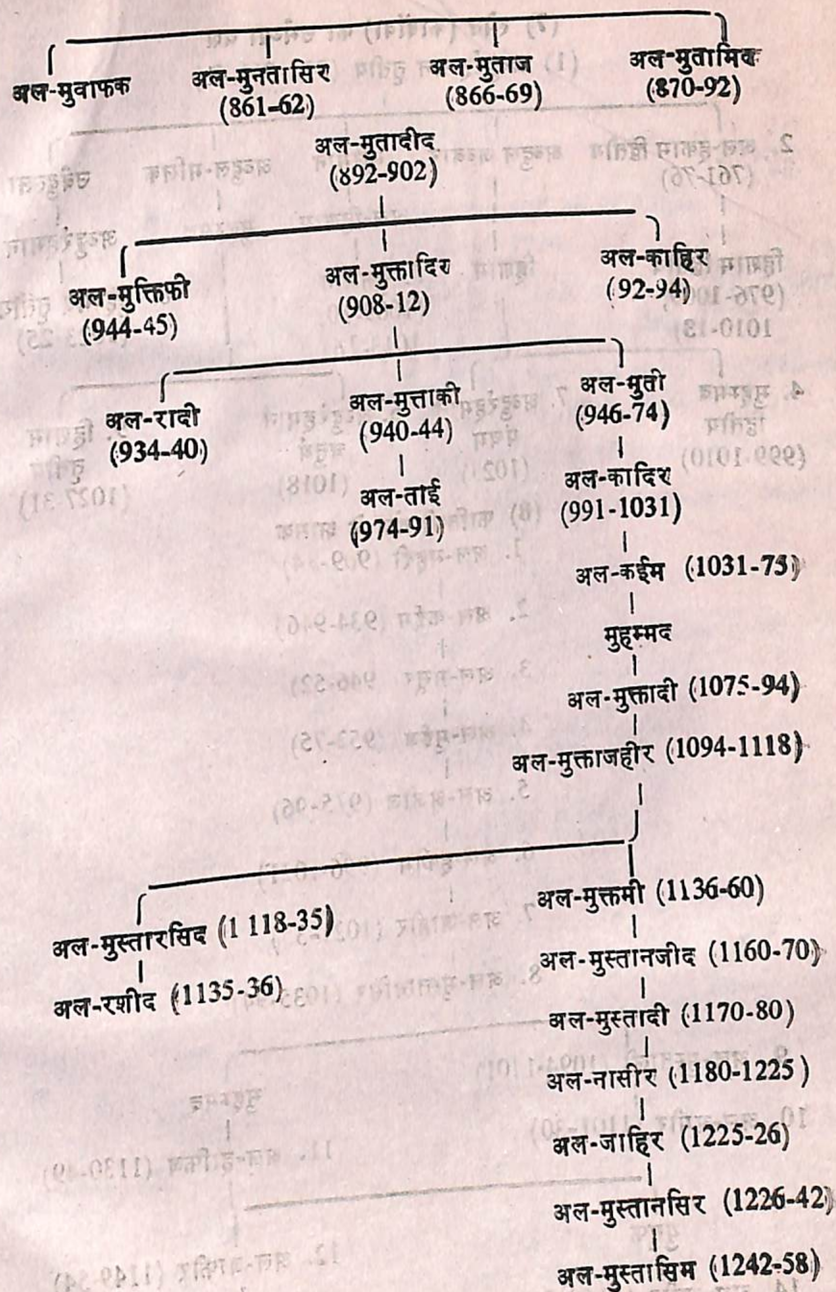
मुहम्मद:
- अल-सफा (750-54) (अब्बासी वंश का संस्थापक)
- अल-मंसूर (754-75)

अल-मंसूर (754-75) → अल-महदी (775-85)

अल-महदी (775-85):
- अल-हादी (785-86)
- अल-राशीद (786-809)

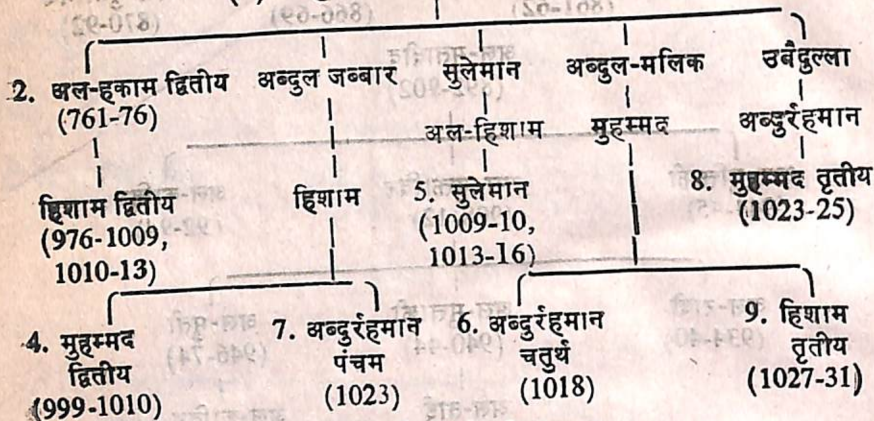
अल-राशीद (786-809):
- अल आमीन (809-13)
- अल-मामून (813-33)
- अल-मुतासिम (833-42)

अल-मुतासिम (833-42):
- मुहम्मद → अल-मुस्ताईन (862-66)
- अल-वाथिक (842-47) → अल-मुहतादी (869-70)
- अल-मुतावकिल (847-61) ↓


अल-मुवाफक
अल-मुनतासिर (861-62)
अल-मुताज (866-69)
अल-मुतामिद (870-92)
अल-मुतादीद (892-902)
अल-मुक्तिफी (944-45)
अल-मुक्तादिर (908-12)
अल-काहिर (92-94)
अल-रादी (934-40)
अल-मुत्ताकी (940-44)
अल-मुती (946-74)
अल-ताई (974-91)
अल-कादिर (991-1031)
अल-कईम (1031-75)
मुहम्मद
अल-मुक्तादी (1075-94)
अल-मुक्ताजहीर (1094-1118)
अल-मुस्तारसिद (1118-35)
अल-रशीद (1135-36)
अल-मुक्तमी (1136-60)
अल-मुस्तानजीद (1160-70)
अल-मुस्तादी (1170-80)
अल-नासीर (1180-1225)
अल-जाहिर (1225-26)
अल-मुस्तानसिर (1226-42)
अल-मुस्तासिम (1242-58)

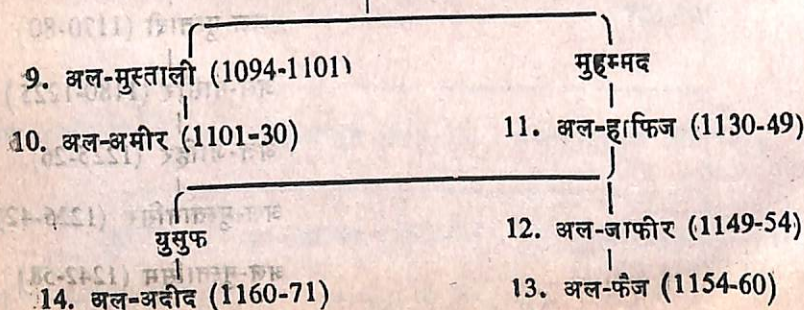
(7) स्पेन (कार्दोवा) का उमैय्या वंश

(1) अब्दुर्रहमान तृतीय (912-961-61)



(8) फातिमी वंश के शासक

1. अल-महदी (909-34)
2. अल-कईम (934-946)
3. अल-मंसूर (946-52)
4. अल-मुईज (952-75)
5. अल-अजीज (975-96)
6. अल-हकीम (996-1021)
7. अल-जाहीर (1021-35)
8. अल-मुस्तानसिर (1035-94)



ग्रन्थ-सूची

1. Alfred Guillaume	:	The Traditions of Islam. Oxford, 1924.
2. A. J. Wensinck	:	A Hand Book of Early Muhammadan Tradition, Leyden, 1927.
3. A. S. Tritton	:	The Caliphs and their non-Muslim Subjects, Oxford, 1930.
4. A. Nicholson	:	The Mystics of Islam, London, 1914.
5. Ameer Ali	:	Short History .of Saracens, London, 1955
6. " "	:	Spirit of Islam
7. A. T. Olmastead	:	History of Assyria, New York, 1927.
8.	:	History of Palestine.
9. A. F. Calvert	:	Cardova.
10. C. Leonard Woolley	:	The Sumerians, Oxford, 1929.
11. Carleton S. Coon	:	Carvan: the Story of the Middle East, New York, 1951.
12. C. A. Becker	:	Christianity and Islam, London 1909.
13. Charles Viehl	:	History of Byzantine Empire, tr. by G. B. Ives, Princeton, 1925.
14. Charles H. Haskins	:	Studies in the History of Mediaeval Science, Cambridge, 1927.
15. " " "	:	Cambridge Mediaeval History, Vols. I. II & III.
16. Charles Oman	:	A History of the Art of War in the Middle Ages, London, 1924.
17. Crane Brinton and Others	:	Civilization in the west,

18. D.B. Macdonald : Development of Muslim Theology, Jurisprudence and Constitutional Theory.

19. D.S. Margoliouth : The Relations between Arabs and Israelites, London, 1924.

20. D.G. Hogarth : The Penetration of Arabs, New York, 1904.

21. Daniel C. Dennett Jr. : Taxation and the Pole Tax in Early Islam, Cambridge, 1950.

22. Edward Gibbon : The Decline and Fall of the Roman Empire, ed. by J. B. Bury, London, 1898.

23. " " : Encyclopaedia of the Social Sciences.

24. E.A. Freeman : History and Conquest of the Saracens, London, 1876.

25. Edward Creasy : The Fifteen Decisive Battles of the World, New York 1918.

26. " " : Encyclopaedia of Islam.

27. E. Barker : The Crusades, London, 1923.

28. De Goeje (Ed.) : Futuh al-Buldan (London, 1866); Tr. by Philip K. Hitti in the name of the Origins of the Islamic State, New York, 1916.

29. Farmer : Arabian Music.

30, George A. Barton : Semetic and Hamitic Origins, Philadelphia, 1934.

31. Guy Le Strange : Palestine Under the Moslems, Boston, 1890.

32. Hugo Wunckler : The History of Babylonia and Assyria, Tr. by James A. Craig, New York, 1909.

33. H.G. Wells : The Outline of History.

34. G.A.R. Gibb : The Damascus Chronicle of the Crusades, London, 1932.

35. H. St. J B. Philby : The Background of Islam, Alexandria, 1947.

36. H.R.P. Dickson : The Arab of the Desert.

37. Ignace J. Gelb : Hurrians and Subarians, Chicago, 1944.

38. J. B. Trend : The Legacy of Islam.

39. J. B. Bury : The Imperial Administrative System in the Ninth Century, London, 1911.

40. John. W. Draper : A History of the Intellectual Development of Europe, London, 1910.

41. John L. Burckhardt : Travels in Arabia, London, 1829.

42. Khalil A. Totah : The Contribution of the Arabs to Education, New York, 1926.

43. " " " : Koran.

44. Lady A. Blunt & W. S. Sir : The Seven Goldes Odes of Pagan Arabs

45. M.S. Briggs : Muhammedan Architecture in Egypt and Pakistan, Oxford, 1924.

46. Nicholson : Literary History.

47. Ockley : History of Saracens.

48. Procopius : History of Wars ed. and tr. by H.B. Dewing, London. 1904.

49. R.A. Nicholson : Translations of Eastern Poetry and Prose.

50. R. Meinertz hagen : The Birds of Arabia. Edinburgh, 1954.

51. Reuben Levy : A Baghdad Chronicle, Cambridge, 1929.

52. Robert Roberts : The Social Laws of the Qoran.

53. S. Lane Poole : Story of Moors in Spain.

54. " " " : The Mohammedan Dynasties, London, 1893.

55. S. Khuda Bakhsh : The Orient Under the Caliphs, Calcutta, 1920.

56. T. W. Arnold : The Preaching of Islam, London, 1913.

57. William R. Brown : The Horse of the Desert.

58. William Muir : The Life of Mohammad.

59. W. G. Palgrave : Essays on Eastern Questions, London, 1872.

60. William Osler : The Evolution of Modern Medicine, New Haven, 1922.

61. Will Durant : The Age of Faith, New York, 1950.

●

trilochan